कर्मवीर महात्मा गाँधीको सादर समर्पित ।

"× × भारतवर्षमे प्रजोत्पत्ति कमती होने से ठीक है। कमती करनेका एक ही इलाज मुझे मान्य है—संयम। पाश्चात्य शास्त्रियोके कृत्रिम इलाज राक्षसी और हानिकर हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष भी स्वादेन्द्रियको मारकर सहलसे ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते हैं।"

—मोहनदास गाँधी।

लेखक की अन्य पुस्तकें।

देश-दर्शन—(उर्दू में)

,, (गुजराती में)

दम्पति मित्र—(हिन्दी में)

,, ,, (गुजराती में)

,, ,, (उर्दू में)

देशोद्धार (हिन्दी में)

शिवाजी - (हिन्दी में)

पतिहत्या में पातिव्रत—(हिन्दी में)

नई रोशनी के बाबू—(हिन्दी में)

मिलने के पते—

(१) भारत के सभी प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता।

(२) शान्तिभवन, चेतगंज, काशी।

विषय-सूची ।

विषय ।		पृष्ठ-सख्या
पूर्वाभास		९
भूमिका		१०
प्रथम खण्ड ।		
पहला परिच्छेद	विषय-प्रवेश	१
दूसरा ,,	विषयारम्भ	९
तीसरा ,,	वृक्ष और पशु-जगत्	११
चौथा ,,	मनुष्य-जगत्	१६
	प्रथमखण्डका साराश	२२
दूसरा खण्ड ।		
पहला परिच्छेद	जनसख्याकी निःसीम वृद्धि कैसे रुकती है ?	२५
दूसरा ,,	दैवी कारण—युद्ध	२७
तीसरा ,,	दैवी कारण—दरिद्रता	४१
	हमारा पशु-धन	४६
	हमारा पैतृक और सचित धन	४९
	नौकरी पेशेवालोकी आमदनी	५२
	हमारा व्यापार	६१
	हमारे कृषक	६६
चौथा ,,	दैवी कारण—दुर्भिक्ष या अकाल	९०

पाँचवाँ परिच्छेद... दैवी कारण—रोग और मृत्यु . ९८
छठा ,, ...(क) विवाह संस्कार ११७
(ख) वैदिक समय . १२२
(ग) विवाह-संस्कारकी अधोगति १२८
(घ) बाल-विवाह . . १३५
(ङ) बालविवाहका कारण भारतकी उष्णता नहीं है १३८
(च) विज्ञानद्वारा विवाह-काल-निर्णय ... १४३
(छ) क्या भारतकी प्राचीन विवाहप्रणाली विज्ञानके प्रतिकूल है? .. १४५
(ज) विवाहित पुरुषोंकी जाँच .. १४९
(झ) विवाहित जनोंके दुःखके प्रधान कारण १५३
(ञ) दहेजकी कुप्रथा १५७
(ट) हम अपने भाग्यके आप मालिक हैं १६१
(ठ) भारतमें विवाहित जनोंकी तथा जन्म और मृत्युसंख्याकी अत्यन्त अधिकता ... १७०
सातवाँ ,, .. अन्यान्य रुकावटें १७६
आठवाँ ,, . हमारी शिक्षा १९९
दूसरे खण्डका सारांश २०६

तीसरा खण्ड।

पहला परिच्छेद मानवी कारणद्वारा जनसंख्याकी असीम वृद्धिमें रुकावट .. २१७
दूसरा ,, ... वृक्ष और पशु-जगत् . २१९
तीसरा ,, . मनुष्यजगत्—जनसंख्याका इतिहास २२३
चौथा ,, .. भारतवर्षमें प्रचलित वंशवृद्धि-धर्म . २३०
पाँचवाँ ,, .. जन-वृद्धि-निरोधका उत्तम उपाय .. २४०
छठा ,, .. संतानशास्त्र अर्थात् उत्तम संतति उत्पन्न करनेके नियम २४३

(क) प्राकृतिक प्रयोगशालाका रहस्य .. २४६
उत्पादक संस्थान २५३
प्राकृतिक प्रयोगशालाके मसाले २५६
प्रयोगशालामें शरीर-रचना .. २५६
(ख) वंश-परंपरा अर्थात् वंशमें पीढ़ी दर पीढ़ी उतरनेवाले गुण या अवगुण .. २६३
(ग) मनःशक्ति और प्रेमका प्रभाव .. २६७
(घ) सन्तानका पालन-पोषण और शिक्षण. . २७५
सातवाँ परिच्छेद. .ब्रह्मचर्य्य या इन्द्रिय-निरोध २८०
आठवाँ ,, . कृत्रिम निरोध अर्थात् औषधि या यन्त्रोंके प्रयोगसे सन्तानवृद्धिमें कमी करना . २६७
तीसरे खण्डका सारांश . ३०४
परिशिष्ट ३०७
ग्रन्थ-सूची ३२०

पूर्वाभास ।

शान्तिका स्वप्न देखते देखते भारतवर्ष अब समुद्रमें गिरा कि गिरा ! बस एक करवट और, और धम अथाह जलमें ! कारण, मैं बिना रोटीके जी सकता हूँ, हवामें पद्मासन जमा सकता हूँ, समुद्रकी लहरों पर चल सकता हूँ; बिना तलवारके संसार पर विजय प्राप्त कर सकता हूं ।

जिस देशमें पेटके लिए स्त्रियाँ वेश्या बनें, अनाथ मुसलमान और ईसाई हों, जहाँ एक रोटीके चार हिस्सेदार हों, जहाँकी आधी जनसंख्या भूखों मर रही हो, जहाँ दुधमुँहे बच्चोंका विवाह हो, और जहाँका प्रत्येक निवासी मूर्ख और अपाहिजोंकी उत्पत्तिसे जनसंख्या बढ़ावे, वहाँ ऐसी अवस्थामें, देशोद्धार असम्भव और देशपतन निश्चित है ।

यदि अब भी भारतकी आलस्य-निद्रा नहीं टूटती, भारतसन्तान विषय-विकारको त्यागने पर कमर नहीं कसती तो, बेधड़क सख फूँक दो ! कूचका बिगुल बजा दो ! कह दो, भारतवासियोंका इस ससार संसारसे कूच हुआ !

पूर्व कालमें हम बुरे नहीं थे । हम अच्छे थे । सारा संसार उन्नति कर गया और हम पीछे पड़ गये । किन्तु, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है । यदि थोड़ेसे देशभक्त सांसारिक सुखोंको ' अलविदा ' कहकर राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारके बलिदानके लिए निकल पड़ें तो, कल ही विजयकी पताका मातृभूमि पर फहराने लगे ।

हमारे सुन्दर होनहार बालकों और बालिकाओंमें क्षात्रवीर्य, ब्रह्मतेज, वज्रसी दृढ़ता आदि अनेक अनुपम गुण हैं । ये सब कुछ कर सकते हैं यदि हजारों और लाखोंकी संख्यामें विवाह-वेदी पर इनका प्रतिवर्ष सर्वनाश न किया जाय ।

भूमिका।

किसी समाज या मनुष्यमात्रकी उन्नतिका विचार उपस्थित होने पर ये दो प्रश्न आपसे आप मनमें उठते हैं –(१) वे कौन कौनसे कारण हैं जो अवतक मनुष्यजातिकी उन्नति और सुखसमृद्धिको रोकते रहे ? और (२) क्या भविष्यमें उन सब कारणों, या सब न सही तो उनमेंसे कुछ कारणोंके दूर होनेकी आशा है ?

इन प्रश्नोंको पूरी तरह हल करना और मनुष्यकी उन्नतिके बाधक कारणों पर पूरी तरह विचार करना किसी एक मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है। इस लिए भिन्न भिन्न देशों तथा भिन्न भिन्न समयोंके विद्वानों, तत्त्ववेत्ताओं और लोकहितैषी मनुष्योंने इन प्रश्नोंको अपने अपने ढंग पर अलग अलग हल करनेका प्रयत्न किया है और उन्नतिके बाधक कारणोंमेंसे किसी एक कारण पर अपने अपने विचार प्रकट किये हैं।

ससारमें जितने शास्त्र हैं सबकी रचना धीरे धीरे हुई है। कोई शास्त्र एकदम ही नहीं बन गया। जगतमें अनेक प्रकारके व्यवहार होते हैं। जिसे जो व्यवहार अच्छा लगता है वह उसे ही करता है। प्रत्येक व्यवहारका जैसा भला या बुरा परिणाम होता है, वैसा ही लोग उसका अनुगमन या त्याग करते हैं। लाभदायक व्यवहारोंको लोग स्वीकार कर लेते हैं और हानिकारक व्यवहारोंको छोड़ देते हैं। मनुष्य अपने तथा अपने पूर्वजोंके अनुभवोंसे लाभ उठाता है। पहले उनके अनुभवके अनुसार साधारण नियम निश्चित होते हैं फिर और कुछ दिनोंके बाद उन्हीं नियमोंके एकीकरणसे शास्त्रकी उत्पत्ति होती है। ससारके सब शास्त्र धीरे धीरे इसी तरह बने हैं।

कोई ढाई सौ वर्ष पहले यूरोपके पडितोंने अपने तथा अपने पूर्वजोंके अनुभवों या तजरबों पर एक नये शास्त्रकी नीव डाली। अँगरेजीमें उसे पोलिटिकल इकानमी (Political Economy)कहते है। हिन्दीमें इस विषयका नाम सपत्तिशास्त्र या अर्थशास्त्र रक्खा गया है।

यह नवीन शास्त्र मनुष्यके नित्यके जीवन या व्यवहारसे सबध रखनेवाली बातोंकी जाँच करके, निश्चित किये हुए सिद्धान्तोंके आधार पर रचा गया है। इसके व्यापक सिद्धात बतलाते हैं कि किस प्रकारके व्यवहारसे क्या नतीजा होता है। इस शास्त्रमें मनुष्य-समाज या मनुष्य-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यापक व्यवहारोंका पूर्ण वर्णन है। पश्चिमीय पण्डितोंने कुछ व्यापक व्यवहारोंको आधार मानकर धन और श्रम आदिका शास्त्रोक्त विचार किया है।

मनुष्य-जातिकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला प्रधान साधन धन है। इस धन-सम्बन्धी सब प्रकारकी घटनाओंके विषयमें अन्वेषण करनेवाली विद्याका नाम 'सम्पत्ति-शास्त्र' है। इस शास्त्रमें नीचे लिखी हुई बातोंका विचार किया गया है:—

(१)किन किन बातोंसे मनुष्य सम्पत्तिकी उन्नति, वृद्धि और रक्षा कर सकता है, (२)किन किन राजकीय, व्यावहारिक और औद्योगिक बातोंका सम्बन्ध सम्पत्तिकी उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षासे है और (३) राज्यकी आय और व्यय अथवा राष्ट्रकी शासन-शैलीका प्रभाव सम्पत्तिकी उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा पर क्या पड़ता है।

भारतके जिन प्राचीन ग्रन्थकारोंने गहनसे भी गहन और क्लिष्टसे भी क्लिष्ट विषयोंके विवेचनसे भरे हुए ग्रन्थ लिख डाले, उन्होंने सम्पत्तिसम्बन्धी इस इतने बड़े महत्त्वपूर्ण विषयपर अपने विचार न प्रकट किये हों, यह असम्भव प्रतीत होता है। भारतीय इतिहासके विद्वानोंने भारतमें अर्थ-शास्त्रकी विद्यमानताके कतिपय प्रमाण ढूँढ निकाले हैं *। पर साथ ही मानना पड़ता है कि इस देशके पडितोंने लक्ष्मीको सदा तुच्छ दृष्टिसे देखा। यदि एकने सम्पत्तिकी महिमा पर विचार करके उसे स्पृहणीय बताया, तो दसने त्याज्य। उन्होंने अर्थको अनेक अनर्थोंका मूल समझानेहीमें ससारका कल्याण देखा और सम्पत्तिको तृणवत् समझनेहीमें अपनी प्रतिष्ठा समझी।

देशकी सम्पत्ति कई कारणोंसे घटती है, उनमे ये तीन कारण प्रधान हैं:—

---

* १ अतिप्राचीन चार उपवेदोंमे एकका नाम अर्थवेद है। २ विष्णुपुराणके अनुसार भारतकी १८ प्रधान विद्याओंमे एक 'अर्थशास्त्र' है। ३ अमरकोश, शुक्रनीति और चाणक्य नीतिमे अर्थशास्त्रकी बातोंकी व्याख्या मिलती है। ४ कौटिल्यके 'अर्थशास्त्र' नामक सस्कृत ग्रंथका भी कुछ समय हुए पता लगा है और वह छपकर प्रकाशित भी हो गया है।

१ प्राकृतिक। जमीनकी उर्वरा-शक्तिके कम हो जानेसे, खानोंसे सोना, चाँदी, लोहा आदि खनिज पदार्थोंका निकलना कम होजानेसे या बिलकुल ही बन्द हो जानेसे देशकी सपत्ति घट जाती है।

२ राजकीय। जीते हुए देशकी सम्पत्ति यदि कोई विजयी राजा धीरे धीरे अपने देशको ले जाय और क्रमक्रमसे विजित देशको नि सार करता रहे तो उस देशकी सम्पत्ति घटती है।

३ व्यापार-विषयक। देशोंकी चढा ऊपरीसे, अन्य देशोंके सदृश उत्तम और सस्ती चीजोंके न बन सकनेसे, विदेशी वस्तुओंके प्रचारसे और कला कौशल तथा औद्योगिक धन्धोंकी कमी अथवा बिलकुल बदी हो जानेसे भी देशकी सपत्ति घटती है।

अँगरेजी राज्यके पहले, ऐसे कारणोंकी उत्पत्ति भारतवर्षमें बहुत कम हुई। मुसलमानी राज्यमें, यद्यपि बाहरी बादशाहोंने भारतको अनेक बार लूटा और इस देशसे वे असख्य धन ले गये, पर उससे देशकी सम्पत्तिको विशेष धक्का नहीं पहुँचा। क्योंकि सोना, चाँदी रत्न आदि जो वे लूट ले गये, एक मात्र उन्हींकी गिनती सम्पत्तिमें नहीं है। व्यवहारकी सभी चीजें सम्पत्तिमें शामिल हैं। भारतनिवासियोंकी आमदनी पूर्ववत् बनी रही। पृथ्वीके पेटसे रत्न और अन्न आदिकी प्राप्ति बराबर होती रही और कितने ही मुसलमान बादशाह तो भारत-निवासी ही बन गये, जो भारतका धन भारतहीमें खर्च करते रहे। मुसलमानी राज्यमें इस देशके व्यापारका उत्कर्ष होता रहा, कभी अपकर्ष नहीं हुआ, कला-कौशल और व्यापार आदिमे यह देश हमेशा ही बढा चढा रहा। देशदेशान्तरोंके बाजारोंमें यहाँकी चीजें पटी ही रहीं। जल और स्थलका सारा व्यापार भारत-वासियोंके ही हाथ था। बगदाद, मिसर, रोम और ग्रीस क्या समस्त भूमण्डलमें भारतका माल जाता था। ढाकेका मलमल, लकडीकी उत्तमोत्तम चीजें और बडे बडे जहाज तो अभी अँगरेजोंके आने पर भी यहाँसे बिक्रीके लिए यूरोप जाते थे। सम्पत्ति-ह्रासके जितने प्रधान कारण हैं उनमेंसे एकका भी सामना इस देशको पहले नहीं करना पडा।

यह तो मुसलमानी राज्यके समयकी बात हुई। उसके पहले, हिन्दूसाम्राज्यके समयमें तो चैन ही चैन था। सम्पत्तिशास्त्रकी उत्पत्तिका उत्तेजक, उक्त कारणोंमेसे एक कारण भी नहीं पैदा हुआ। विपरीत इसके, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, विद्वान् पडितोंके हृदयोंमे सपत्तिकी तुच्छताका भाव जागरूक रहा।

वह इस शास्त्र-रचनाके मार्गका और भी अधिक अवरोधक हुआ। और यह अखण्डनीय सिद्धान्त है कि बिना कारणके कार्य नहीं होता। गरज यह कि भारतमें इन बातोंका प्रेरक कोई कारण ही नहीं उपस्थित हुआ, इसीसे यहॉके विद्वान् सम्पत्तिशास्त्रकी उद्भावना करने, उसके सिद्धात ढूंढ निकालने, और सपत्तिका प्रवाह रोकने आदिके वखेड़ेमे नही पड़े।

मैं अपनी खेती करता हूँ और प्रात काल उठकर अपने हल और वैलोंको प्रणाम करता हूँ। मेरा जीवन जङ्गलके पेड़ों और पक्षियोंकी संगतिमें गुजरता है। आकाशके सुन्दर वादलोंको देखते देखते मेरा दिन निकल जाता है। मेरे खेतमें अन्न उग रहा है, बिस्तरके लिए पृथ्वी, वस्त्रके लिए कमली, कमरके लिए लॅगोटी और सिरके लिए चोटी काफी है। मेरे हाथ पॉव वलवान् हैं, भूख खूव लगती है; वाजरा और मकई, छाछ और दही, दूध और मक्खन, मुझे और मेरे वच्चोंको मिल जाते हैं—फिर ससारमें क्या हो रहा है इससे मुझे प्रयोजन? और न जाननेसे मेरी हानि? मैं किसीको धोखा नहीं देता, मेरे इहलोक और परलोक दोनों वन रहे हैं। हॉ, यदि मुझे कोई धोखा दे, तो उसका फल वह ईश्वरसे पावेगा। यह कौन कह सकता है कि इस सादगी और सचाईका जीवन अच्छा नहीं, पर कठिनता यह है कि इस प्रकारका निर्विघ्न जीवन वहुत दिनों तक नहीं व्यतीत हो सकता। धर्महीके सहारे जाति उन्नति कर सकती है, यह ठीक है। परन्तु वह धर्म्माङ्कुर जो जातिको उन्नत करता है, इस भोले भोले पवित्र वेवकूफीके ढेर पर नही उगता।

वह कठोर जीवन, जिसे देशदेशान्तरोंको ढूँढ निकाले विना शान्ति नहीं मिलती, जिसकी अन्तर्ज्वाला दूसरी जातियोंको जीतने, लूटने, मारने और उन पर राज करनेके विना मन्द नही पड़ती—केवल वही विशाल जीवन समुद्रकी छाती पर दाल दलकर, जंगलोंको चीरकर, पहाड़ोंको तोड़-फोड़ या फॉद कर उदय-अस्ततक राज्य जमा सकता है और राज्य कर सकता है।

शान्तिप्रिय भारतमें साहित्य, सगीत, कला और सम्पत्तिकी अतिसे आलस्य, विषय-विकार, ईर्षा, द्वेप आदि अनेक दोप आगये। जगल और पहाड़ोंको हिला देनेवाली पवित्र आर्यजाति घोड़ेसे उतर कर मुलायम तकियोंके सहारे मखमली गद्दो पर ऐसी सोई कि न यह आप जागी और न कोई इसे जगा ही सका।

वहशी, लुटेरे या ऐयाश मुसलमान राजाओकी इतिश्री हो जाने पर यह अभागा देश पश्चिमीय वणिकोंके हाथ पड़ा। इनके पधारते ही–ॲंगरेजोंकी सत्ताका सूत्रपात होते ही–यहॉकी स्थितिमें भयंकर फेरफार शुरू हो गया। कहॉ सहस्रों वर्षोंका सोया हुआ और तत्त्वज्ञानका स्वप्न देखनेवाला भारत और कहॉ कुटिल नीतिसे रॅंगे हुए क्लाइव और हेस्टिंग्ज। हुकूमत, पालिसी और भारतकी अज्ञानतासे इस देशके व्यापारकी जड़में कुठाराघात होने लगा। कला, कौशल, उद्योग-धन्धे सब खिसक कर इॅंग्लैंड पहुॅचे। साथ ही साथ सम्पत्तिने भी यहॉसे कूच कर दिया। ब्रिटेनने भारतको कला, कौशल और सम्पत्तिहीन तो अवश्य कर दिया, पर देशमें शान्ति खूब फैलाई। अमन और अमानके कारण आवादी खूब वढी और जनसख्याकी अधिकतासे पहलेसे वहुत अधिक जमीन जोती बोई जाने लगी। जमीनकी पैदावार पर ही कोई ९० फीसदी भारतवासियोकी जीविका चलने लगी। सारा ठाटबाट जमीनकी पैदावार पर जमा। उसीको बेच कर राज्य-कर चुकाना, उसीसे वस्त्र आदि आवश्यक वस्तुयें खरीदना, उसीसे व्याह आदिमे धूम धाम करना और उसी एक अन्न पर दान, पुण्य, शिक्षा आदि सव कुछ करना प्रारम्भ हुआ।

जव तक जनसंख्या कम थी, तव तक तो राम-राज्यका सा सुख ज्ञात हुआ, पर जव आवादी वढी–जिस आमदनी पर १८ करोड़ निर्वाह करते थे उसी पर २०, फिर २५, फिर २८, फिर २९, और आगे चल कर ३१ करोड़को निर्वाह करनेकी नौवत आई तव मुश्किल पड़ी। ६० वर्षके भीतर आमदनी नही वढी; पर खानेवाले और उनकी जरूरतें दूनी हो गईं। फिर क्या पूछना था, वही हुआ जो होना चाहिए था। देशकी आधी जनसख्या भूखी रहने लगी। निरन्तर अकाल पड़ने लगे। लाखो करोड़ो जन भूखसे मरने लगे। दूध घी आदि सभी चीजें कम प्रतीत होने लगी, या यो कहिए कि लोगोंको कम मिलने लगीं। इससे वच्चे वेहद मरने लगे। हैजा, प्लेग आदि दरिद्रताकी वीमारियॉ आरम्भ हुई और क्रमश भारत-सन्तानका हर तरहसे क्षय होने लगा।

जव सम्पत्ति खो गई तव उसे पुन उपार्जन करनेकी इच्छा हुई। ॲंगरेजीमें इस विपय पर हजारों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। वे पुस्तकें जव भारतवासियोंकी नजरसे गुजरीं तव कुछ शिक्षित और दूरदर्शी लोगोंका ध्यान इस शास्त्रके प्रचारकी ओर गया, और कहीं कहीं इनके अनुवाद देशी भापाओंमे भी होने लगे, पर वे इतने कम हैं कि अभी ॲंगलियो पर गिने जा सकते हैं।

कोई ६० वर्ष पहले देहली कालेजके पंडित धर्म्मनारायणजीने इस विषय पर दो किताबें उर्दूमें लिखीं। रावसाहब विश्वनाथ नारायण और पंडित कृष्णशास्त्रीने दो एक पुस्तकोंका अनुवाद मराठीमें करके दक्षिणमें इस शास्त्रका प्रचार किया। गुजराती आदि और और भाषाओंमें भी इस विषय पर कई पुस्तकें प्रकाशित हुई। हिन्दीमें सबसे पहले सन् १९०७में पंडित गणेशदत्त पाठकने एक छोटीसी पुस्तक निकाली। बादको हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीने अपना महत्त्वपूर्ण सम्पत्तिशास्त्र प्रकाशित किया। प्रो० बालकृष्णजीने भी इसी विषय पर एक उत्तम पुस्तक लिखी। कोई दो वर्ष पहले प० गिरिवर शर्मांने मिसेस फासेट एलएल डी के अर्थशास्त्रका अनुवाद लिखा। मतलब यह कि क्रमशः हिन्दीमें भी इसका प्रचार होने लगा।

सम्पत्तिशास्त्रका विषय बहुत ही गहन और कठोर है। इस शास्त्रका सम्बन्ध व्यापार और राज्य-व्यवस्थासे बहुत अधिक है। सम्पत्तिशास्त्रके विचारमें और शास्त्रोंका भी काम पड़ता है। उनकी मददसे इस शास्त्रके सिद्धात निश्चित किये जाते हैं। नीतिशास्त्र, जीवनशास्त्र, जनसंख्याशास्त्र आदिकी मदद लिये बिना इस शास्त्रका काम नहीं चल सकता। सम्पत्तिशास्त्रका सम्बन्ध जनसख्यासे है और जनसख्याका विषय बड़े महत्त्वका है। भारतमें इस विषय पर ध्यान आकर्पित करानेकी बहुत बडी आवश्यकता है। जितनी भूख है उससे यदि हम अधिक खायँगे तो हमें बदहजमी हो जायगी और हम बीमार पड जायँगे। यदि माली पेड़-पत्तोकी काट-छाँट न करे तो बहुत जल्द ही खूबसूरत बाग जङ्गलकी शकलमें बदल जाय और वहाँ शोभा और शातिके स्थान पर कुरूपता और अशातिका दौरदौरा हो जाय। इसी तरह यदि किसी जातिकी जनसख्या एक नियत सीमाका उल्लघन कर जाती है, तो उस जातिमें अनेक बुराइयोंकी वृद्धि होने लगती है और उस जातिका अध पतन होना प्रारभ हो जाता है। प्रकृतिने हर बातके लिए एक नियम, एक सीमा बना रक्खी है। उस नियमको न जानकर उसकी नियमित सीमाका उल्लघन करना ही प्रकृतिका नियम तोड़ना है। और यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि हर अवस्थामें प्रकृति-नियमके प्रतिकूल काम करनेसे अनेक बाधायें और उपद्रव आ खड़े होते हैं।

प्रसिद्ध अँगरेज लेखक और तत्त्ववेत्ता माल्थस साहबने जनसख्या-विषय पर खूब विचार करके सन् १७९८ ई० में जनसंख्याके नियम पर एक निबंधावली (Essay on the principle of population) लिखी। उसमें उन्होंने

अपना मत प्रकाशित किया कि संसारकी उन्नतिका सबसे बड़ा बाधक कारण जन संख्याकी नि सीम वृद्धि है। उनका मत है कि " जीवन धारण करनेके लि प्रकृतिने जितना आहार प्राणियोंके लिए सम्पादित किया है उससे अधिक प्राणि मात्रमे अपनी संख्या बढानेकी चेष्टा है। जन-संख्या उसी संख्या तक परीमित रहेगी जिस संख्या तकके भोजनके लिए अन्न मौजूद है। जनसख्या अन्नकी वृद्धिके साथही साथ वढ सकेगी। जनसख्याकी नि सीम वृद्धिको रोकने और उसे एक नियम सीमाके भीतर रखनेवाले कारण दो हैं—एक तो दुर्भिक्ष, महामारी, प्लेग, युद्ध आदि दैवी और मानुषी विपत्तियाँ और दूसरा इन्द्रिय-दमन।"

माल्थसके इस सिद्धान्तको ससारमात्रके विद्वान् मानते हैं। सम्पत्तिशास्त्रके धुरन्धर पंडित जान स्टुअर्ट मिल, मारशल, वॅकर, फासेट और वारलो आदिने इसकी पुष्टि की है।

१८३५ ई० में अमेरिकाके डाक्टर चार्ल्स नोलटनने एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि जनसख्याका एक मात्र इन्द्रिय-दमनके आधार पर कम किया जाना अत्यन्त कठिन है। यदि स्त्री-पुरुष वहुत आयु बीतने पर विवाह करना टानते हैं या जीवन भर अविवाहित रहना चाहते है तो इसका निश्चित परिणाम दुराचार या व्यभिचार होता है। और यदि सब लोग विवाह कर लेते हैं, तो किसी तरह भी बच्चोंकी भरभार हुए विना नहीं रहती। विवाहित युवा पुरुष और युवती स्त्रियाँ कितना ही बचकर क्यों न रहें, जरूरतसे ज्यादा सतान पैदा हो ही जाती है। विवाहित दम्पति इन्द्रिय-दमन द्वारा सन्तानोत्पत्तिको कम नहीं कर सकते और अधिक बच्चोंकी उत्पत्तिसे न तो उनकी ठीक शिक्षा ही हो सकती है और न उनके खाने-पहननेका प्रबन्ध। इस तरह पलने पर ये बच्चे आगे अपने जीवननिर्वाहके लिए कोई उत्तम काम नहीं कर सकते हैं। इन सब बातोंसे राष्ट्र क्षीण होता है। अतएव डाक्टर नोलटनने कुछ ऐसे उपाय बताये जिनसे विवाहित पुरुष एक उचित और नियमित सीमातक विषय-वासना शान्त करके भी उतनी ही सन्तानोत्पत्ति कर सकें जितनेका भार वे उठा सकते है। ४२ वर्ष तक यह पुस्तक अमेरिका और इंग्लैंडमें निर्विघ्न बिकती रही। सन् १८७७ मे ब्रिस्टल शहरके एक नीच किताब बेचनेवालेने इस पुस्तकमें कुछ अश्लील तसवीरें लगा दीं, जिससे उसको सजा हुई, साथ ही इस पुस्तककी बिक्री भी बन्द कर दी गई। पर इसी १८७७ में मिसेस एनी बीसेण्ट और चार्ल्स ब्रेडलाने डाक्टरनोलटनकी इस 'तत्त्वज्ञानके फल' (Fruits of Philosophy)

नामकी पुस्तकको बिना अश्लील तसबीरोंके छपवाया, एक छोटीसी दुकान खोली और पुलिसको नोटिस दिया कि वे खुद इस पुस्तकको बेचते हैं। भूमिकामें लिखा था कि " जिस बात पर मनुष्यका सुख और दुःख निर्भर है, उस पर खुले आम विचार करनेका मनुष्यको अधिकार है। यदि सरकार ऐसी बातोंके विचारमें बाधा डालती है तो वह अन्याय करती है। अतः इस अन्यायपूर्ण कानूनको हम नहीं मान सकते। "

इस समय मिसेस बीसेण्ट अपने पतिसे अलग हो चुकी थीं और उनकी आयु कुल ३१ वर्षकी थी। वे जानती थीं कि इस सिद्धान्तका खुल्लमखुल्ला प्रचार करनेसे पब्लिक उनके पवित्र सतीत्वमें बट्टा लगा सकेगी—उनके शुद्ध आचरण पर सन्देह प्रकट कर सकेगी। मिस्टर ब्रेडलाको भी इन्हीं बातोंका भय था। उन्हें तो विश्वास था कि कदाचित् उनकी ऐसी बदनामी हो कि पार्लियामेण्टसे ही उन्हें अलग हो जाना पड़े। पर उनका उद्देश्य ससारमात्रका कल्याण था, इससे इन सब बातोंकी परवा न कर, वे आगमें कूद ही पडे।

मेजिस्ट्रेट पुलिस तथा अन्य बडे अफसरोंमे इन्होंने अपने हाथसे किताबें बाँटी। पुलिसवालोंको गिरफ्तार करनेमे सुगमता कर देनेके लिए बेचनेका दिन और समय भी उन्होंने बता रक्खा था। कुछ दिनोके बाद ये लोग गिरफ्तार किये गये। मुकदमा बड़ी धूमसे लड़ा गया। सारे सभ्य संसारका ध्यान इस मुकदमेकी ओर आकर्षित हुआ। निदान इस मशहूर ट्रायल (परीक्षा) का अन्त यह हुआ कि ये लोग छोड़ दिये गये और उस प्रकारकी अनेक पुस्तकें सारे संसारमे निर्विघ्न बिकने लगीं। अनेक पश्चिमीय देशोंमे जनसख्याविषयक सभायें स्थापित हुई और वे माल्थस तथा नोलटनके सिद्धान्तोका प्रचार करने लगीं। माल्थसकी जनसंख्या रोकनेकी विधि (इन्द्रियदमनसम्बन्धी) को माल्थसीज्म (Malthusism) और नोलटनके सिद्धात (यन्त्र या ओषधिद्वारा जनसंख्या रोकनेको न्यू माल्थसीज्म (New-Malthusism)कहते हैं।

किसी जाति अथवा देशकी उन्नति उस जाति अथवा उस देशके लोकसमुदायकी व्यक्तिगत उत्तमता पर अवलम्बित है। यह कोई नवीन विचार नहीं है। २३०० वर्ष पहले रोम-रिपब्लिकमे भी एक ऐसे ही कानून बनानेका प्रस्ताव हुआ था कि अयोग्य स्त्रीपुरुष कानूनसे बलपूर्वक विवाह न करने पावें, जिनसे वंशपरंपरागत दुर्गुण भावी सन्तानमें न आने पावें। एकमात्र उत्तम और सुयोग्य

संतानोत्पत्ति की जाय जिससे सारा राष्ट्र पवित्र और शक्तिशाली वन जाय। भारतीय ऋषियोंने भी इस विषय पर वहुत कुछ लिखा है। विवाहसवंध दृढ़ करनेके पहले कुलकी उत्तमता देखनी चाहिए; वर और कन्याके गुण, कर्म, और स्वभाव मिलने पर विवाह होना चाहिए, संस्कारहीन या चरित्रभ्रष्ट कुलमें, क्षय-कुष्ठवाले कुलमें, और सगोत्रियोंमे विवाह न करना चाहिए, कन्याके अनुकूल गुणवान् पति न मिलनेसे उसका आजन्म अविवाहित रहना उत्तम है। ऐसी शास्त्रकी आज्ञायें हैं। इन आज्ञाओंसे हमारे ऋषिमुनियोंका एक मात्र यही अभिप्राय था और है कि भावी सन्तान सुयोग्य हो, वर्णसकर न हो। क्यो कि वर्णसंकर होनेसे कुल या जातिका क्षय हो जाता है। इतिहास इसका साक्षी है।

इटली देशके मेंडले नामक विद्वानने पूर्वोक्त विषय पर विचार करते हुए एक नये शास्त्रकी नीव डाली। इस शास्त्रका नाम युजेनिक्स (Euginics)पड़ा। हिन्दीमें इसका अनुवाद 'अभिजननशास्त्र,' 'सुप्रजाजननशास्त्र,' 'सुसतान-शास्त्र' आदि हुआ है। इंग्लैंडके पंडित गाल्टन (Sir Francis Galton) ने इस विषयमे वहुत कुछ कर दिखाया। उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालयको ३,७५,००० रुपया इस शर्त पर दान दिया कि एक स्थायी प्रोफेसर नियुक्त किया जाय जो इस शास्त्रका ही काम (Research)करे। इस शास्त्रकी उन्नति अभी २५ वर्षोंसे ही हुई है, तथापि इसके तत्त्व अमेरिका और यूरोपमे वडी तेजीके साथ फैल रहे हैं।

जनसख्या और यूजेनिक्ससे सम्वन्ध इस तरह है कि यदि देशमे काफी अन्न नहीं है और देशवासी सुयोग्य हैं तो वे भूखों न मर जायँगे। उस योग्य देशकी जनसख्या अन्य अयोग्य देशवालोंके मुहँकी रोटी छीन लावेगी — अपनेसे दुर्वल देशवालोंको कुचलकर–निर्मूल करके अपनी रक्षा करेगी। आफ्रिका, अमेरिका, न्यूजीलैण्ड आदिके खास निवासी लोप होते जा रहे हैं और उनका देश उनसे अधिक योग्य जातिवालोंसे वस गया है। स्वप्नमे भी यह आशा नहीं की जा सकती कि अव पुरानी जातियाँ वहुत काल तक जी सकेंगी और किसी अशमें हिन्दुस्तान भी पूर्वोक्त सिद्धान्तकी पुष्टिका प्रत्यक्ष प्रमाण है। सन् १८७१ और १९११ की मर्दुमशुमारी या मनुष्य-गणनाके अकोंकी तुलना करनेसे ज्ञात होता है कि गत ४० वर्षोंमे हिन्दुओंकी सख्या सैकड़ा पीछे १७ कम हुई है। यद्यपि ह्रासकी मात्रा वहुत धीमी है पर यदि यह ह्रास रोका न जाय और कायम रहे

तो कोई समय आ सकता है जब माउरीज (Maoris of New Zealand) की तरह हिन्दू जातिका भी पता न लगे। इन देशोंके अभागे निवासी क्रमशः क्षीण हुए जा रहे हैं *और उनके स्थान पर अन्य जातियाँ खूब फूल फल रही हैं।* यह जीवन-संघर्ष केवल काले और गोरोंमें ही नहीं जारी है, गोरी जातिवाले भी एक दूसरेको हड़प जानेका यत्न किया करते हैं। योग्य अयोग्यको कुचल डालता है—अयोग्य मर मिटता है और योग्य जीता रहता है। यही इस संसारका अखण्डनीय नियम है।

यूजेनिक्सका सम्बन्ध वंशपरपरासे है। इसमें एक पीढीसे दूसरी पीढी किस तरह बँधी है, जातीय प्रवाह या पुश्तैनी सिलसिला किस तरह चलता है, किस रीतिसे प्राणी मात्र अपना लैङ्गिक विचय (Sexual Selection) कर उत्तम सन्तानोत्पादन कर सकते हैं, इत्यादि विषयोंका विचार प्रधान है।

जनसख्याका विषय बड़ा ही गम्भीर और विस्तृत है। इसका फैलाव इतना बड़ा है कि इसके प्रत्येक अगका निरूपण इस छोटीसी पुस्तकमें असम्भव है। इसका सम्बन्ध जीवविद्या (Biology), समाज-शास्त्र (Sociology) धर्म और आचार सभीसे है। इसमे अपने देशके प्राचीन आचार और शास्त्रोंकी मर्य्यादाकी ओर ध्यान रखना भी परम आवश्यक है। सम्भव है कि हमारे पूजनीय पूर्वपुरुषोका ध्यान सम्पत्तिशास्त्रकी ओर न झुका हो, पर सततिसुधार विषय पर उन्होंने बहुत कुछ अनुसन्धान किया है। प्राचीन आचार-प्रणालीसे यह सिद्ध है उन लोगोने केवल विचार ही नही किया था, किन्तु वे व्यवस्थापित नियमोंके अनुसार चलते भी थे। उनके आदर्शजीवनकी झॉकी—मनुष्य किस प्रकार जीवन व्यतीत करें, किस प्रकार परस्पर मिलजुल कर समाज तथा देशकी सेवा करें, किस तरह देश, काल और निज स्थिति पर पूर्ण विचार करके धर्म या अधर्मकी सीमा बनाये रक्खें, इत्यादिकी झलक हमे उनकी प्राचीन पुस्तकोमे मिलती है। पश्चिमीय वैज्ञानिक अनुसन्धानोका उल्लेख करके हम केवल यही सिद्ध किया चाहते है कि भावी सततिका सुधार होना चाहिए। बिना इन नियमोंके अनुशीलन किये हमारा या देशका उद्धार नहीं हो सकता। हमारी भावी संततिका सुधार उन सास्कारिक नियमो पर बहुत कुछ निर्धारित है जो हमारे पूजनीय पूर्वजनोंने हमारी वंशोन्नतिके हेतु बताये है। मेरा उद्देश्य यह है कि यथाशक्ति अपने पूर्वजोंके विचारोंको, और महान् आदर्शोंको सामने रखते हुए पश्चिमीय अनुसन्धानोका उल्लेख करके नये और पुराने खयालवाले दो

दलोंका ध्यान जनसख्याकी ओर फेरूँ । हॉ, पुरानी लकीरका फकीर वनना और नये आविष्कारोंको तुच्छ समझकर लात मारना, मुझे पसन्द नहीं है । साथ ही नई रोशनीका सुधारक बनकर बिल्कुल पश्चिमीय बन जाना भी मुझे नापसन्द है । नये सुधारक (Reformer) और पुरानी लकीरके फकीर (Regeneration), इन दोनो दलोंकी अति (Extreme) को हम हानिकारक मानते है । इसीसे दोनों दलोके बीचके रास्ते पर चलना हमने उचित समझा है । देश, काल और अपनी स्थितिकी आवश्यकताके अनुसार प्राचीन आचारपद्धति पर चलना साथ ही स्वदेश या अन्य देशोके अर्वाचीन आविष्कारोंसे उचित लाभ उठाना हमारा मन्तव्य है । जिस तरह सम्भव हो देशकी दशा सुधारना, और संसारचक्रके साथ अपनी उन्नति करके चलना, प्रत्येक भारतवासीका, महान् कर्तव्य और परम धर्म्म है ।

भारतवर्षमें कई कारणोसे अनेक कुरीतियॉ चल पडी हैं जिनसे समाज दूषित हो गया है । जातिवृद्धि तथा देशोद्धारके लिए इनका पृथक् किया जाना अत्यन्त आवश्यक है । इन भयकर भूलोंको समूल नष्ट करनेके लिए हमें कड़ी समालोचना करनी पड़ेगी और कष्टसाध्य उपायोंसे काम लेना पड़ेगा । इन बातोंको ध्यानमें रखकर और पक्षपातरहित होकर पाठकगण इस पुस्तक पर विचार करनेकी कृपा करें ।

इस पुस्तकके तीन खण्ड हैं । **प्रथम खण्डमें** जनसंख्यासम्बन्धी प्राकृतिक नियमोंका वर्णन है कि किस तरह सजीव जगतकी सख्या सम्पादित आहारसे बढ जाती है । प्रकृतिका यह एक विलक्षण नियम है कि खानेवाले अधिक और खोराक कम पैदा होती है । **द्वितीय खण्डमें** सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि भारतवर्षकी जितनी जनसंख्या है उतनेके आहारका उचित प्रबन्ध नहीं हो सकता । भारतके आधे निवासी पेट भर अन्न नहीं पाते । इससे भारत-सन्तान दिनो दिन क्षीण और हीन होती जा रही है । दरिद्रताकी मात्रा बढ रही है । दुर्भिक्ष और प्लेगादिसे जो दरिद्रताके निश्चित परिणाम हैं देश गारत हो रहा है । तरह तरहकी कुरीतियॉ, नशेबाजी और व्यभिचार समाजको नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं । भारतनिवासियोंकी आयु अत्यन्त कम हो गई है । यहॉ सारे संसारसे अधिक मृत्युसंख्या है, बच्चोंकी मृत्यु भी बेहद होती है, पर साथ ही जन्मसंख्या भी ससारसे ऊपर है ।

तीसरे खण्डमें इन आपत्तियोंसे बचनेके उपाय बताये गये है। क्योंकि ऐसी सन्तानका उत्पन्न करना जिसके पालन-पोषणका प्रबन्ध न हो अत्यन्त हानिकारक है। ऐसी सन्तानोत्पत्तिका स्पष्ट अर्थ यह है कि हम अपनी शक्ति और सम्पत्ति मुर्दों पर लगाते हैं। यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि एक बच्चेके गर्भस्थितिकालसे लेकर उसके जन्म और जीवन काल तक कितना धन और श्रम लगता है। यदि वह बच्चा जीवित न रहे, तो जो कुछ द्रव्य और श्रम उस पर खर्च हुआ वृथा गया। शोक, सन्ताप और कुटुम्बभरको मानसिक क्लेश मिला ऊपरसे। ऐसी न जीनेवाली सन्तानोत्पत्तिसे माता-पिता तथा देशका शक्तिक्षय होता है और जनसख्या भी नहीं बढ सकती। बच्चे पैदा हुए और मर गये, इससे भला क्या लाभ हो सकता है? अतएव प्रकृतिके नियमोंको समझकर देश और काल तथा अपनी स्थिति पर विचार करके उतनी ही संतानोत्पत्ति करना जिनको हम सर्वथा योग्य बना सकें—बताया गया है। इसका उपाय ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-दमन है। न्यू-माल्थसीज्म (New malthusism) के अनुसार ओषधि या यन्त्रद्वारा गर्भ-स्थिति रोकना, इस पुस्तकमें नहीं बताया गया।

ससारमें सब देशोंकी स्थिति एकसी नहीं है। प्रत्येक देशके व्यवहारो, राज्य-प्रबन्धों, और सामाजिक व्यवस्थाओंमें भिन्नता होनेसे जनसंख्याके सिद्धातोंको भी प्रत्येक देशकी स्थित्यनुसार कुछ न कुछ भिन्न रूप धारण करना पड़ता है। परतु इससे उसके प्राथमिक सिद्धातको धक्का नहीं लगता। जब जर्मनी, फ्रास, इँग्लैंड और अमेरिकाकी राज्यव्यवस्थाओ या व्यवहारोंमे तुलना करनेसे भारी अतर दीखता है, तब हर बातमे भारतकी तुलना भी उन देशोंसे नही की जा सकती। यह हमे दिखाना नहीं है कि जर्मनी या अमेरिकाके अमुक विद्वानने माल्थसके सिद्धात काट कर यह सिद्ध कर दिखाया है कि बिजलीके यन्त्रोंकी सहायतासे और वैज्ञानिक रीतिसे खाद आदि डालनेसे खेतीकी पैदावार बहुत कुछ बढाई जा सकती है। विचार इस बात पर करना है कि क्या भारतके कृषक भी उस ढगसे खेती कर सकते हैं और सचमुच पृथ्वीकी उपज बढ़ सकती है? भारत तो अभी सैकड़ो वर्ष पीछे है। अभी तो शायद यहाँ सर्व साधारणको उस तरह खेती करना सीखनेमें सदियाँ लग जायँ।

इस विषय पर पूर्ण ध्यान न देकर लोग कह बैठते हैं कि भारतका सुधार जनसंख्याके कम या अधिक करनेसे न होगा। वह एक मात्र शिक्षासे होगा।

यही तो कठिनता है। जनसख्याकी नि सीम वृद्धिसे उचित शिक्षाका प्रवंध नहीं हो सकता। सरकारके कोशमें इतना द्रव्य नहीं कि वह प्रारमिक शिक्षा तक दे सके। सर्वसाधारण मामूली टैक्सोंके भारसे कुचले जा रहे हैं। वे अधिक टैक्स देकर इस न्यूनताको दूर करनेमें असमर्थ हैं। जब भारतनिवासी अपने खर्चसे इतने विद्यालय नहीं खोल सकते हैं कि सर्वसाधारणको मामूली शिक्षा भी मिल सके, तब क्या और अधिक जन-सख्या वढनेसे कहीं आसमानसे वन टपक पड़ेगा कि सबको उच्च शिक्षा मिल जायगी ?

भारतवासियोंके लिए उपनिवेश (Emigration)—या दूसरे देशोंके वासी होना असम्भव है, वे कहीं जाने ही नहीं पाते। मजदूरीकी शरह वढाई नहीं जा सकती। जितनी ही जनसख्या वढेगी उतने ही मजदूर सस्ते मिलेंगे। यही कारण है जिससे भारत और चीनके मजदूर सारे ससारके मजदूरोंसे कम दर पर काम करते हैं और हर जगह इन दोनों देशोंके मजदूर जाजाकर काम करते हैं। इसी तरह अन्नका भाव भी नहीं घट सकता। जनसख्याके साथ साथ अन्न आदि जितनी व्यवहारकी चीजें हैं सब महॅगी होंगीं। उदार समष्टिवादियों (Socialists) को भी मानना पड़ता है कि जनसंख्याकी नि.सीम वृद्धिमें समानताका प्रचार असभव हो जाता है। इसलिए नि सीम वृद्धिको रोकना ही होगा। इस तरहके अनेक प्रश्न तो निरे प्रश्न ही हैं। हॉ, जनसख्या विषयकी दो शंकायें गभीर हैं·—

(१) जनसख्याकी कमी पर केवल विचारशील सज्जन ही ध्यान देगे जिसका परिणाम यह होगा कि विचारशील स्त्री-पुरुषोंकी सन्तति घटेगी और मूर्खोंकी वैसी ही रहेगी। अर्थात् भले आदमियोंके वच्चोंकी संख्यासे मामूली आदमियोंके वच्चोंकी सख्या अत्यन्त अधिक हो जायगी। और तव देशके अनेक कार्योंके लिए अच्छे आदमियोंके वदले मामूली आदमियोंहीमेंसे चुनाव करना होगा।

(२)जनसख्याकी कमीसे जीवन-सघर्प (Struggle for existence) कम होजायगा। इससे प्राकृतिक विचय (Natural Selection) से जो लाभ होता आया है वह वन्द हो जायगा।

पहले प्रश्नका उत्तर तो यह है कि विना इस विपय पर ध्यान दिये ही मूर्खोंके मुकावले विचारशील पुरुषोंको स्वभावत कम वच्चे हुआ करते हैं। इसका रोकना तो असम्भव है। पर साथ ही यह वात भी है कि अपनी स्थिति विचार कर सन्तानोत्पत्ति करनेसे वच्चे सुयोग्य और दीर्घायु होते हैं। वे

अपने कुटुम्बका जातिका और राष्ट्रका गौरव बढाते हैं, पर मूर्खोंकी अधिक सन्तान अल्पायु हुआ करती है, बच्चे अधिक तो अवश्य होते है पर उनमेंसे बहुतेरे नष्ट हो जाते हैं और उनकी सख्या अधिक नहीं हो सकती ।

दूसरे प्रश्नका भय भी निर्मूल है । जनसंख्या घटानेका यह आशय नहीं है कि देशमें कोई रही न जाय । नहीं, कमी तो एक मात्र नि·सीम वृद्धिमें करनी है । इससे जीवन-सघर्ष वैसा ही बल्कि और अधिक रहेगा । फल यह होगा कि दुर्भिक्ष, हैजा, प्लेग, बच्चोंकी मृत्यु आदि बन्द होगी। रहा विवर्त्तन (Evolution) सो प्राकृतिक विचयसे तो पशु भी विवर्तित होते हैं । यदि मानवजातिका विवर्त्तन प्राकृतिक विचयसे हुआ, तो मनुष्य और पशुमें भेद ही क्या रहा ? मानवजाति अपना उत्थान या विवर्तन विवेकी विचयके द्वारा प्राकृतिक विचयसे कहीं शीघ्र कर सकती है । अस्तु । जड प्रकृति पर अपना विवर्तन छोड़ना लाभदायक नहीं है—' Progress is made more rapidly and more economically by rational than by natural selection and that the time has arrived for man to control his own evolution instead of leaving it to the blind forces of nature.

अर्थात् ससारमे प्रकृतिके नियमोंकी अपेक्षा, विवेकसे काम लेनेसे शीघ्र और सरलतासे उन्नति हो सकती है। मनुष्यके लिए अब ऐसा समय उपस्थित हुआ है कि वह 'दैवेच्छा बलीयसी' के भरोसे न रहे, वरन् अपने विवेकसे प्राकृतिक नियमोंको ढूँढ निकाले ।

अन्तमे यह भी प्रकट कर देना उचित है कि जनसख्या आदि विषयोपर मैं अपना स्वाधीन विचार नहीं प्रकट कर रहा हू, और न यह पुस्तक किसी अन्य भाषाकी किसी पुस्तकका अनुवाद है। लगभग ५० या इससे भी अधिक पुस्तकोंके अध्यनसे और अनेक समाचारपत्रों और मासिकपत्रोंके अवलोकनसे इस पुस्तककी सामग्री एकत्रित की गई है । मै इन पुस्तकोंके लेखकोंका तथा उन महाशयोंका जिनकी कृपासे ये पुस्तकें मुझे प्राप्त हुई, बहुत ऋणी हूँ— खासकर मित्रवर बाबू केदारनाथ खण्डेलवाल बी० ए०, एलएल० बी० का, जिन्होंने सन् १९०९ ई० मे मेरा ध्यान इस विषयकी ओर आकर्षित किया; और सुप्रसिद्ध बाबू शिवप्रसाद गुप्तका कि जिनकी असीम कृपासे मै बहुतसी पुस्तकोंका अध्ययन कर सका ।

हिन्दी ससारके लिए यह एक बिलकुल ही नया विषय है,इस लिए इसे पुस्तकरूपमें प्रकाशित करनेके पहले मैंने आवश्यकता समझी कि इस पर मैं अपने देशबन्धुओंकी सम्पत्तियाँ भी जान लूँ। इसके लिए मैंने काशीके सुप्रसिद्ध मासिकपत्र ‘ इन्दु ’ मे इस विषयके १८ लेख ‘ संतान-शास्त्र ’ शीर्षक देकर (अगस्त सन् १९१३ से जनवरी १९१५ तक) प्रकाशित कराये। इसके सिवाय ‘ मर्यादा ’ और उर्दूके मासिक पत्र ‘ जमाना ’ मे भी मैंने कई लेख प्रकाशित कराये। यह देखकर मेरा उत्साह बहुत बढ गया कि लेखोंका खण्डन करना तो दूर रहा, लोगोंने उन्हे बहुत पसद किया और ‘ सद्धर्मप्रचारक ’ 'भारतवर्ष' (बंगला भाषाका सर्वश्रेष्ठ मासिकपत्र) आदि कई पत्रोंने उनकी बहुत अच्छी समालोचना की।

जनसंख्याका विषय, जो सम्पत्तिशास्त्रका एक अग है बहुत ही कठोर है। इस देशमें केवल कालेजोंमें उच्च शिक्षा पानेवालोंमेंसे कुछ छात्रोंको जो पोलीटेकल इकानमी लेते हैं इस विषयके सिद्धान्तोंका परिचय प्राप्त होता है। केवल स्वदेशी भाषा जाननेवालोंको इस विषयका ज्ञान होना दुर्लभ है। एक मात्र इस त्रुटिको दूर करनेके अभिप्रायसे, हिन्दीसे सर्वथा अनभिज्ञ होते हुए,-इस विषयकी पुस्तक लिखनेके गुणोंसे हीन होते हुए—और अपनी पूर्ण अयोग्यता रखते हुए भी मैंने इस पुस्तकके लिख मारनेकी धृष्टता की है। मुझे डर ही नहीं विश्वास भी है कि मैं अनेक दोष और त्रुटियोंके अतिरिक्त अनेक बातें कुछकी कुछ लिख गया होऊँगा, क्यों कि हिन्दीको कौन कहे अँगरेजी तकमे भारतीय जनसंख्या पर कोई सर्वांगपूर्ण अच्छी पुस्तक नहीं है। मुझसा अयोग्य लेखक इस विषयकी पहली ही पुस्तक दोपरहित लिख डाले, यह असम्भव है। अतएव सुयोग्य पाठकों तथा पाठिकाओंसे सविनय प्रार्थना है कि वे मेरी त्रुटियों पर ध्यान न देकर एकमात्र इस विषयके ज्ञानसे लाभ उठावे। यदि किसी एक भी देशभक्त स्त्री या पुरुषके हृदयपर इस पुस्तकके सिद्धान्तका प्रभाव पड़ा और उससे स्वदेशका किसी अशमें कल्याण हुआ तो मैं अपने कई वर्षोंके परिश्रमके फलरूप इस त्रुटिपूर्ण ग्रन्थको, सफल समझूँगा।

असिलहा,
मिरजापुर।

—लेखक।

देश-दर्शन।

पहला परिच्छेद।

विषय-प्रवेश।

'The production of wealth is but a means to the sustenance of man, to the satisfaction of his wants, and to the development of his activities, physical, mental and moral. But man himself is the chief means of the production of that wealth of which he is the ultimate aim' *Marshall*

सम्पत्तिकी उत्पत्ति ही मनुष्यका उपजीवन, उसकी आवश्यकताओंकी तृप्ति और उसकी शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नतिका एक साधन है। परतु जो सम्पत्ति अतमें मनुष्यके ही काममें आनेवाली है उसके उत्पन्न करनेका मुख्य साधन मनुष्य ही है।

—मार्शल।

आवश्यकता ही इस संसारका मूल मन्त्र है। कीट, पतंग, पशु, पक्षी और मनुष्य सभी अपनी अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें लगे रहते हैं। प्रत्येक कार्य और उत्पत्तिका मूल कारण आवश्यकता ही है। हम कार्य-क्षेत्रमे इस लिए पैर रखते हैं कि जिसमें उस समयकी आवश्यकतासे निवृत्ति हो।

पदार्थोंको इस लिए पैदा करते हैं कि हमारी जरूरतें रफा हों। विद्यमान पदार्थकी उपयोगिता किसी न किसी प्रकारसे इस लिए बढ़ाते हैं कि उससे नर-नारियोंकी आवश्यकता अधिक अंशमें पूरी हो। बाल और वृद्ध, ज्ञानी और मूर्ख, राजा और रंक—कोई आवश्यकतासे खाली नहीं रहता, सभी किसी न किसी आवश्यकता—शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, सामाजिक या राजनीतिक—की पूर्तिमें जन्मसे मृत्युकाल तक लगे रहते हैं।

इन आवश्यकताओंकी पूर्तिके अनेक साधन हैं। इनमेंसे सम्पत्ति प्रधान है। बिना सम्पत्तिके संसारमें रहकर कालक्षेप करना असम्भव है। बड़ेसे बड़े महात्मा योगीश्वर, विद्वान् और वैज्ञानिकोंको सम्पत्तिमानोंका आश्रय लेना पड़ता है। बिना थोड़ी बहुत सम्पत्तिके किसी तरह काम नहीं चल सकता। सम्पत्ति और मनुष्यमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्यकी उन्नति—व्यक्तिगत, सामाजिक, या राष्ट्रीय—सम्पत्तिके उचित प्रयोग पर निर्धारित है, और साथ ही सम्पत्तिकी उत्पत्ति मनुष्यकी उत्तमत्ता—शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक (moral)— पर निर्भर है। जिसमें जितनी योग्यता है वह उतना ही सम्पत्तिसान् होता है। अयोग्य शीघ्र ही सुयोग्योंको अपना स्थान दे देता है। सुयोग्य अयोग्योंसे अधिक सम्पत्ति संचय करके प्रतिदिन उन्नति करता जाता है और अयोग्य सम्पत्तिहीन होकर अवनतिके गहरे गढ़हेमे गिर जाता है। सुयोग्य सम्पत्तिमान् और श्रीमान् बनता है और अयोग्य क्षीण और हीन होकर मर मिटता है। दूसरे शब्दोंमें यही बात यों कही जा सकती है कि अधिक सम्पत्तिमान् अधिक सुयोग्य बन सकता है। सम्पत्तिमान् जीता है और सम्पत्तिहीनकी मृत्यु होती है।

भिन्न भिन्न जाति या देशके मनुष्योंमें बहुत भेद है। उनकी मानसिक और शारीरिक अवस्थामें भिन्नता है। इसी कारण जाति जातिके मनुष्योंमें उत्पादक शक्तिमें भी अन्तर होता है। चीन और भारतकी जनसंख्या भूमण्डलके सभी देशोंसे अधिक है, पर इन दो देशोंसे अधिक सम्पत्तिहीन देश सभ्य संसारमें नहीं पाया जाता। इससे देखना यह है कि सम्पत्तिकी उत्पत्तिके लिए मनुष्यमें क्या क्या गुण होने चाहिए।

संसारके सभी कामोंमें श्रमकी आवश्यकता होती है। बिना श्रमके छोटा या बड़ा कोई काम पूरा नहीं हो सकता। शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक बलके अनुसार मनुष्योंमें न्यूनाधिक श्रम या कार्य-शक्ति होती है। जिन श्रमि-

योंका शरीर पुष्ट है, नर्वस सिस्टम (nervous system) ठीक हैं, जिनमें बल है, पुरुषार्थ है, साहस और उमंग है, वे इन गुणोंसे रहित अथवा उन श्रमियोंकी अपेक्षा जिनमें इनकी कमी है, अधिक कार्य कर सकते हैं। यही कारण है कि डच अमेरिकनसे, अमेरिकन अँगरेजसे, अँगरेज फ्रांसीसीसे, फ्रासीसी रूसीसे और रूसी भारतवासी श्रमीसे अधिक काम कर सकता है। बंगालीसे अधिक हिंदुस्तानी, हिंदुस्तानीसे अधिक पंजाबी, पंजाबीसे अधिक जाट, जाटसे अधिक राजपूत और राजपूतसे अधिक पेशावरी श्रमी काम कर सकता है।

माननीय मैकलियाडके कथनानुसार अमेरिकाका एक श्रमी ५ टन, इंग्लैंडका २½ टन और भारतका श्रमी कुल ½ टन कोयला प्रतिदिन खोद सकता है। अर्थात् एक अमेरिकन श्रमी १० भारतीय श्रमियोंके और एक अँगरेज श्रमी ५ भारतीय श्रमियोंके बराबर है। +

एक ३०० रुपयेकी घड़ी ज्यादा टिकाऊ होती है, ठीक समय देती है और २५-३० वर्ष तक घड़ीसाजकी दूकान नहीं देखती, पर, उसी कारखानेकी ३ रुपयेकी घड़ी हर हफ्ते घंटे भर स्लो-फास्ट जाती है और वर्ष दो वर्षके बाद ही निकम्मी हो जाती है। कारण यह कि दामी घड़ीके पुर्जे बहुत अच्छे और मजबूत धातुके बने होते हैं और सस्ती घड़ीके मामूली और कमजोरके। ठीक इसी तरह जिस श्रमीका जन्म सुयोग्य, बलवान्, अरोग्य और उत्तम कुलवाली जाति (influence of race) में होता है और उसके ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंकी पूर्णतः रक्षा की जाती है, वह अधिक

---

* श्रमीसे मेरा मतलब कुलीसे नहीं है, हरतरहका छोटा या बड़ा काम करनेवाले नरनारीको श्रमी समझना चाहिए।

+ श्रमके मापके लिए हमें यह देखना है कि किस देशका श्रमी नित्य कितने घंटे, सालमें कितने दिन और जीवनमें कितने वर्ष काम करता और कितना काम खतम करता है। भिन्न भिन्न देशोंके श्रमियोंकी कार्य-शक्तिका अनुमान करनेके लिए एक ही तरहका काम, एक ही तरहके औजारसे होना चाहिए। पत्थरका कोयला खोदनेमें श्रमियोंके श्रमका ठीक अन्दाज हो सकता है। लकड़ी चीरनेमें भी उनके श्रमका मुकाबला हो सकता है। लार्ड मेहनके कथनानुसार एक अँगरेज ३२ भारतीय लकड़हारोंके बराबर लकड़ी चीर सकता है।

कार्यकुशल (efficiency of labour) होता है और उसमें कर्मशक्ति भी अधिक होती है, साथ ही वह बहुत दिनोंतक कार्य करता है। आप जानते हैं कि बड़ी लाइन (ई. आई आर) का इंजन, छोटी लाइन (बी एण्ड एन डब्ल्यू. आर.) के इंजनसे बहुत तेज चलता है और ज्यादा गाड़ियाँ खींचता है। पर साथ ही बड़े इंजनके लिए कोयला और पानी भी अधिक चाहिए। इसी तरह जिस जातिके श्रमी जितना अधिक और पुष्टिकर पदार्थ खाते हैं उनमें उतनी ही कर्मशक्ति पैदा होती है। किस प्रकारके श्रमीको कौन कौनसे पदार्थ खाने चाहिए, इसके विचारसे भी अधिक कार्यशक्ति उत्पन्न होती है। चतुर और कार्यकुशल स्त्रियाँ, विज्ञानकी सहायतासे बहुत कम खर्चेमें अपने परिवारके खानपानका उत्तम प्रबन्ध कर लेती हैं। पर मूर्खायें अधिक व्यय करके पाचनशक्तिसे अधिक पुष्टिकर पदार्थ और हानिकारक चटपटी चीजें बनाती हैं, और समय तथा ऋतुपर ध्यान न देकर, दुलार और प्यारके वशीभूत हो अपने कुटुम्बकी बीमारीका कारण होती हैं, जिससे शारीरिक बल घटता है और श्रमी उचित मात्रामें कार्य नहीं कर सकते। रहे वे अभागे जिन्हें ऋतुके अनुसार वस्त्र और पेटभर भोजनका सौभाग्य प्राप्त ही नहीं होता, सो ये कहाँ तक कार्य कर सकते हैं यह बतानेकी जरूरत नहीं।

शारीरिक बलकी रक्षाके लिए जैसे भोजन और वस्त्रकी अवश्यकता है वैसे ही विश्राम भी अत्यावश्यक है। दिनभरके कड़े परिश्रमके पश्चात् यदि श्रमियोंको पूरा आराम न मिले तो दूसरे दिन वे कार्य करनेमे असमर्थ रहेंगे। इसके लिए ऐसे मकानोका होना परमावश्यक है जिनके प्रत्येक कमरेमें वायु और प्रकाशकी सुगमता हो, फर्श और दीवारें नमीसे बची हो, नालियाँ आदि साफ हों, सारा ग्राम शुद्ध और पवित्र दीखता हो। जिन देशोंमें श्रमियोंके आरामका अच्छा प्रबन्ध होता है, उनके मन-बहलावके लिए पुस्तकालय, नाटकशालायें, सैरगाह आदि होते हैं, विश्रामके लिए पक्के मकान होते है जिनमें स्वच्छ वायु और निर्मल प्रकाशकी कमी नहीं रहती, जहाँ स्थान स्थानपर पार्क और मनोहर बाग-बगीचे लगे होते है, वहाँके श्रमियोमे कर्मशक्तिकी सीमा नहीं होती। इन श्रमियोंमें और उनमें—जहाँ इन बातोका अभाव है—पृथ्वी और आकाशका अन्तर होता है। ये भाग्यवान् श्रमी उन अभागे श्रमियोंकी अपेक्षा—जिन्हें इन सुखोंका सौभाग्य प्राप्त नहीं है—१० या २० गुना अधिक कार्य करते हैं।

इस संसारमें स्वार्थका राज्य है। जिस मात्रामें हमारा हित सधता है उसी मात्रामें हम दूसरोंका काम करना चाहते हैं। जिस काममें निज उन्नति और लाभकी आशा होती है उसे हम मन लगाकर करते हैं— अन्यथा बेगार टालते हैं। मिस्टर आर्थरने सच कहा है कि ' बजर जमीन, यदि किसीको सदाके लिए दे दी जाय, अर्थात् वह उसका मालिक बना दिया जाय तो कुछ ही कालमें वह सुन्दर बाग बन जायगी'—' Magic of property turns sand into gold ' जब श्रमीको यह भय होता है कि अधिक कार्य करनेका लाभ उसे न मिलेगा, अधिक उपजमें उसका भाग न लगाया जायगा, वह उपज या आर्थिक लाभसे वंचित रक्खा जायगा, तो ऐसी अवस्थामें तन मन धन अर्पण करके वह अधिक उत्पत्ति काहेको करने लगा। प्रत्येक श्रमीको श्रमसे उत्पन्न किये गये द्रव्यका पूरा फल न मिलनेसे उसका उत्साह भंग होता है, वह आलसी बन जाता है और उत्पादक शक्तिका ह्रास होता है। और जिस कामको श्रमी अपना समझकर करता है, जिसके करनेमें वह अपनी उन्नति देखता है, जिस कामकी अधिक उत्पत्तिमे अधिक फल पानेकी आशा रहती है, उसे वह निराश श्रमियोकी अपेक्षा कहीं अधिक मात्रामें करता है। अर्थात् उन्नति या लाभकी आशा होनेसे श्रमियोंमें कार्यशक्ति बढ़ती है।

राज्यनियम और जातीय रीति-रिवाज भी उत्पत्ति पर बहुत बड़ा प्रभाव डालते हैं। जिस देशके अभागे निवासी विदेशी राज्यके जूयेंके तले दबे हों, जहाँका राजा प्रजाको परतंत्र रखता हो, जहाँके आय-व्ययमें प्रजाको स्वतंत्रता न मिली हो, जहाँ जात-पाँत, छूआ-छूत आदि अनेक सामाजिक बन्धन हों, वहाँके श्रमी स्वतंत्र देश और समाजके श्रमियोका मुकाबला नहीं कर सकते। स्वतन्त्रता और परिवर्तन–ये दो बडे कारण हैं जिनमे नई बस्ती (colony) वाले, अपने मातृभूमिसे सब बातोंमें बढ़ जाते हैं। अमेरिकाके प्रत्येक बातमें आगे बढ़नेका कारण, वहाँके श्रमियोकी शारीरिक बल तथा बुद्धिकी विशेषताका प्रधान कारण मानसिक आनंद, उत्साह, परिवर्त्तन और स्वतन्त्रता है।

जब एक बालक संसारमे उत्पन्न होता है तब सामाजिक और पैतृक संस्कारोंको लेकर आता है। किन्तु वह अयोग्यता और अविद्या आदिका पुञ्ज ही होता है। माता, पिता, गुरु, पुरोहित आदि शिक्षक उसे उक्त दुरवस्थासे निकालनेमें भाग लेते हैं। जिस मनुष्यको अपनी अनेक शक्तियोंके बढानेका जितना

ही सुअवसर प्राप्त होता है वह उतना ही कार्यकुशल होकर अपने कुटुम्ब, जाति और देशकी सेवा करता है। शिक्षासे विद्यमान पदार्थकी उपयोगिता बढती है, नरनारियोके उपयोगके लिए अधिक लाभकारी वस्तुयें बनती हैं, अर्थात् शिक्षासे सम्पत्तिकी उत्पत्तिमें वृद्धि होती है।

रेल, तार, जहाज, छापेखाने आदि अनेक आविष्कार केवल पदार्थोंके रूपान्तर हैं। इस ससारमें कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती जो पहलेसे विद्यमान न हो। अभावसे भाव अथवा भावसे अभाव नहीं हो सकता, अर्थात् न किसी पदार्थकी उत्पत्ति होती है और न नाश। दोनों अवस्थाओंमें एकमात्र रूपका परिवर्तन होता है। मनुष्य अपनी बुद्धिके अनुसार विद्यमान पदार्थोंमें परिवर्तन करके उनकी उपयोगिता बढ़ा लेता है।

जो वस्त्र आप धारण किये हैं, या जो पदार्थ आप पान किये हैं वे कितने ही मनुष्योंके यत्नसे उत्पन्न हुए हैं। पृथ्वी, प्रकृति, पूँजी, श्रम व्यवसाय आदि अनेक साधनोंसे उनकी उत्पत्ति हुई है। प्रत्येक पुरुषकी बुद्धि तथा शारीरिक बल आदि शक्तियोंके लगनेसे ही आपको वस्त्र और भोजन प्राप्त होता है। किसी भी वस्तुकी उत्पत्तिमें वृद्धि करनेके लिए नाना प्रकारकी शिक्षा आवश्यक है। कृषक, शिल्पकार, व्यवसायी, राजनीतिज्ञ, पण्डित, या वैज्ञानिक सबका लगाव एक दूसरेसे है और सब सम्पात्तिकी उत्पात्ति, वृद्धि और रक्षाके साधन हैं। अस्तु। जिस देशमें जितना ही शिक्षाका प्रचार है, जहाँ जितनी व्यापारिक, व्यावसायिक, रासायनिक, शिल्पीय, खनिज, कृषि आदि अनेक विद्यायें पढ़ाई जाती है, उस देशके श्रमी उतने ही कार्यकुशल होते है और नये नये आविष्कारोसे अपने देशकी उन्नति करते है। जिन अभागे देशोंमे विद्याका अभाव होता है वहाँके श्रमियोंमे कार्यशक्ति भी स्वभावत. कम होती है। 'विद्याविहीन. पशुः'—जिनमें विद्याका अभाव है वे इस संसारमे भूमिके भार होकर मनुष्यके रूपमें पशुओंका काम करते हैं। सुशिक्षित देशका योग्य श्रमी अशिक्षित देशके पशु-श्रमीको कुचलकर मिट्टीमें मिला देता है। विद्वान श्रमी सम्पत्तिमान् होकर उन्नति करता और जीवित रहता है और मूर्ख श्रमी दरिद्र होकर मर मिटता है।

सारांश यह कि अन्य जातियोंके सम्मुख जीवित रहनेके लिए, ससारमें अपना अस्तित्व स्थिर रखनेके लिए, मनुष्यमे मनुष्यका गुण होना चाहिए। मूर्ख और बलहीन मनुष्य देशको लाभ पहुँचानेके बदले हानि पहुंचाते है और

सुयोग्य बननेके लिए पैतृक और सामाजिक संस्कारकी शुद्धता, आचरण या चरित्रकी पवित्रता, निर्मल जल, शुद्ध वायु, पुष्टिदायक भोजन, स्वच्छ हवादार मकान, इन्द्रियनिग्रह, स्वास्थ्यरक्षा और उत्तम चिकित्साशास्त्रका ज्ञान, सर्व प्रकारकी विद्या, और सर्वोपरि स्वतंत्रताकी परम आवश्यकता है।

सभ्य जगतका इतिहास बतलाता है कि मनुष्यको समय समय पर आवश्यकतानुसार सन्तानोत्पत्तिमें न्यूनता या अधिकता करनी पड़ती है। ['The growth of numbers among animals is governed by present conditions, among men it is affected by the traditions of the past and forecast of the future'—*Marshall*] भारतवर्ष सैकड़ों वर्षसे विद्याहीन है। वह प्राचीन सभ्यता, शास्त्राज्ञा आदि भूलकर अनेक दोषों और कुरीतियोंके दलदलमें बेतरह फँस गया है। समयको पहचान कर सभ्य संसारके साथ साथ चलना भारतके लिए असम्भव हो गया है। इस दलदलसे निकलनेकी कोई सूरत भी नहीं देख पड़ती।

भारतमें दरिद्रताकी सीमा नहीं, अकाल या कहत निरन्तर पड़ा करते हैं, विद्यामें उन्नति नहीं हो सकती, सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा तकके लिए द्रव्य नहीं है, मद्यपान और व्यभिचार बढ़ता जाता है—तिसपर भी यहाँके निवासी बिना समझे बूझे, आँख बन्द करके सन्तानोत्पत्ति किये जाते हैं जिसका निश्चित परिणाम मृत्युकी अधिकता, और क्रमशः इस जातिका पृथ्वीसे निर्मूल हो जाना है। इस भारी विपत्तिसे कैसे छुटकारा हो सकता है, इस विषयपर विद्वानोंकी क्या सम्मति है, प्रकृतिका क्या नियम है, आदि बातोंपर आगे विचार किया गया है और सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि भारतवर्षमें विवाहित स्त्रीपुरुषोंकी ऐसी अधोगति है, भावी सन्तान तथा भारतके भविष्यका दृश्य ऐसा हृदयविदारक है कि एकबार उसको देखकर कोई यह विश्वास नहीं कर सकता कि ऐसे भारतनिवासी किसी तरह देशोद्धार कर सकेंगे। ये उलटे देशपर भारस्वरूप होंगे।

भारतवर्षमें मनुष्योंकी संख्या बढ़ानेकी इस समय इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी पुरुषार्थी, शारीरिक और मानसिक बलसे सम्पन्न, देशके प्रेममें रत, देशसेवक वीर उत्पन्न करनेकी है। अतः हम भारतवासियोंका प्रथम और महान् कर्तव्य है कि हम उतने ही बच्चे पैदा करें जितनोंको हम अपने शारीरिक, मानसिक और आर्थिक बलके अनुसार अपनी जाति और देशके लिए

सच्चे सेवक और रक्षक बना सकें। यही देशोद्धारका उचित मार्ग है और यही मार्ग दिखाना इस पुस्तकका मुख्य उद्देश्य है।

इस पुस्तकका यह उद्देश्य नहीं है कि जो विवाह या सन्तानोत्पत्तिके योग्य हैं वे विवाह न करें या सन्तानोत्पत्ति न करें। ऐसे योग्य पुरुषोंहीकी सुयोग्य सन्तानसे देशोद्धार होगा। मेरा आशय केवल यह है कि—

(१) बच्चोंका विवाह न हो। वे पढ़ें, लिखें, द्रव्य उपार्जन करें। जब उनमें अच्छी समझ आ जाय, वे अपना भला बुरा और भविष्य पहचान सकें, तब विवाह करें और अपनी तथा देशकी स्थिति समझकर सन्तानोत्पत्ति करें। माता पिता या अन्य सम्बन्धियोंपर भरोसा करके विवाह न करें।

(२) किसी माता या पिताको कोई हक नहीं है कि वे बालकों और बालिकाओंका विवाह करके उनका भविष्य बिगाड़ें और देशको नीचे गिरावें।

(३) किसी रोगी, अपाहिज या अपनी रोजी कमानेमें असमर्थ पुरुषको अपनी अयोग्यता देखते हुए किसी अबलाका सर्वनाश करनेका कोई हक नहीं है। ऐसे पुरुषोंको क्या हक है कि वे विवाह करके आधे दर्जन बच्चे पैदा करें और सबोंको बिना सहारेके छोड़कर मर जायं, उनकी स्त्रियाँ पेटके लिए वेश्यायें बने और बच्चे मुसलमान और ईसाई बनें।

(४) संसारके किसी स्त्री या पुरुषको कोई हक नहीं है कि अपने स्वार्थके लिए, अपनी हैवानी ख्वाहिश (To gratify animal passion) पूरी करनेके लिए दूसरोंको दुःखका भागी बनावे। अपनी त्रुटि देखते हुए किसीको विवाह करने या औलाद पैदा करनेका कोई हक नहीं है।

(५) ऐसे अयोग्य स्त्री और पुरुषोंको आजन्म पवित्र भावसे अविवाहित रहना चाहिए। विवाहित पुरुषोंको इन्द्रियदमन द्वारा अयोग्य सन्तानोत्पत्ति रोकना चाहिए और यदि यह न हो सके तो किसी न्यू-माल्थूसियन यन्त्र या ओषधिका आश्रय लेना चाहिए।

दूसरा परिच्छेद ।

विषयारम्भ ।

प्रकृतिका नियम ।

'Of all the forces that have worked and are still working to mould the destinies of human race, none certainly is more potent than the manifestation of laws of Nature; and no search has been dearer to the human heart as the study of the stupendous phenomena of Nature.' —*Vivekanand*

मनुष्यके भाग्यको योग्य स्थितिमे लानेके लिए अभी तक जो जो बातें मालूम हुई हैं या हो रही हैं, उनमेसे प्राकृतिक नियमोंको जानने या उनका रहस्य समझनेके समान और कोई बात श्रेष्ठ नही समझ पड़ती। और, मनुष्योंके लिए सृष्टिके भव्य-स्वरूपका निरीक्षण करनेकी अपेक्षा और कोई दूसरी बात प्रिय नहीं जान पड़ती। —विवेकानन्द।

यह संसार किसी अन्ध स्थूल प्रकृतिका स्वेच्छाचारी लीलाक्षेत्र नहीं है। जो आद्य प्रकृति गगनमण्डलमें नक्षत्रोंको दौड़ाती है, जो गौरवपूर्ण विचित्र ब्रह्माण्डको रचनेवाली है, जिसने ठीक समयपर उदय और अस्त होनेवाले सूर्य और चन्द्रको बनाया है, जिसने अग्निमे उष्णता, जलमे शीतलता, पुष्पमे सुगन्ध और अन्य अनेक द्रव्योंमें भाँति भाँतिके गुण रख छोड़े हैं, उस महासृष्टिकारिणी प्रकृतिने सृष्टिके प्रत्येक प्राणीको—एक एक अणु और परमाणुको—नियमबद्ध कर रक्खा है। प्रत्येक वस्तुके लिए उसने एक नियम बना रक्खा है और उस नियमके विरुद्ध वह कार्य नहीं करती।

उसी महती शक्ति—प्रकृतिने मानवजातिको अन्य अनेक दिव्य और अद्भुत विभूतियोंके साथ साथ स्वतन्त्र कार्यशक्ति (Free will) और निर्मल बुद्धि भी प्रदान की है। जिससे यह जाति सजीव संसारके प्रत्येक प्राणी-समूहमे सर्वोत्तम मानी जाती है। इन्हीं दोनो महती विभूतियोंसे विभूषित हो मनुष्य प्रकृति-नियमका ज्ञान प्राप्त करके प्रति दिन उन्नति करता है। जब तक हम प्रकृतिके नियमोंसे अज्ञान हैं, हम पशुवत उनके अधीन रहते है, पर जहाँ हम उन्हें समझ गये वे हमारे गुलाम सेवक बन जाते हैं। हमें प्रकृतिके

नियमोंको बदलने या उन्हें फेरफार कर अपनी उन्नतिके अनुकूल बनानेका अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार हमें प्रकृतिने ही दे रक्खा है, अतः इससे लाभ न उठाना ही प्रकृति-नियमके विरुद्ध चलना है।

मानवीय इतिहास सासारिक घटनाओंकी ऐसी लड़ी है जो टूटना नहीं जानती। वर्तमान और भूतकालमें, कार्य और कारणका सम्बन्ध है और भविष्यकालको इन्हीं दोनोंका परिणाम कहना अनुचित न होगा। ऐसी दशामें भविष्यके सम्बन्धमें भाविष्यद्वाणी करनेमें किसी आतरिक शक्ति अथवा आकाशवाणीकी आवश्यकता नहीं। गत घटनाओंको देखने और उनके प्रभावोंकी भलीभाँति परीक्षा और तुलना करनेसे आनेवाली बातोंकी भी थोड़ी-बहुत खबर मिल सकती है। यह जरूर है कि इन भविष्यद्वाणियोंका झूठ निकलना असम्भव नहीं, परंतु साथ ही यह देखते हुए कि वे गत घटनाओंके एक निश्चित परिणाम हैं हम उनको मिथ्या, भ्रमजनक और अनहोनी भी नहीं कह सकते।

समय समयपर देशोद्धार अथवा देशके कल्याणके लिए अनुभवी और दूरदर्शी महान् पुरुष ऐसी बातें ढूँढ़ निकालते हैं जिनके करने या न करनेपर देश, जाति या संसार मात्रका भविष्य निर्भर होता है। उन्नतिका कोई एक मार्ग बता देना, या यह कह देना कि केवल अमुक कार्य करनेसे ही भविष्य सुधर जायगा, असम्भव है। भिन्न भिन्न समयके लोकहितैषी विद्वान् किसी एक विषयको लेकर उसपर अपना विचार प्रकट करते हैं और अपने ढगपर भविष्य सुधारनेका यत्न बताते हैं। इन्हीं पुरुषरत्नोंकी कोटिमें अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक और तत्त्ववेत्ता माल्थस साहब भी हैं। आपका मत है कि उन्नतिका सबसे बड़ा बाधक कारण है:—" the constant tendency in all animated life to increase beyond the nourishment prepared for it " अर्थात् जीवनधारण करनेके लिए प्रकृतिने जितना आहार प्राणियोके लिए सम्पादित किया है उससे अधिक प्राणिमात्रमें अपनी संख्या बढ़ानेकी चेष्टा है। खाद्य पदार्थ कितने ही अधिक क्यों न पैदा किये जायँ, पर खानेवाले स्वभावतः इतने बढ़ जाते हैं कि वह (खोराक) उनके लिए काफी नहीं होती—प्राणियोकी वृद्धिसे कम ही रहती है। साराश यह कि इस संसारमें सदैवसे खानेवाले अधिक और खोराक कम पैदा हुआ करती है।

अब देखना यह है कि जङ्गम (organic) सृष्टि पर इस विचित्र प्रकृति-नियमका क्या प्रभाव पड़ता है।

तीसरा परिच्छेद ।

वृक्ष और पशु-जगत् ।
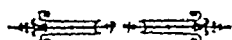
सुप्रसिद्ध फ्रैंकलिन साहबने भलीभाँति विचार कर निश्चय किया है कि "वनस्पति तथा जीवमात्रमें स्वभावहीसे बढ़नेकी अद्भुत शक्ति है। यदि वे एक दूसरेकी वृद्धिको न रोके और उनके बढ़नेके लिए स्थान और आहारका अभाव न होने पावे तो उनके बढ़नेकी कोई सीमा न रहे। यदि इस पृथ्वीपर नाना प्रकारकी वनस्पतियाँ न होतीं, केवल एक ही प्रकारका एक पेड़ प्रकृतिने लगाया होता, तो यह एक वृक्षही अपनी उत्पादक शक्तिसे इतना बढ़ता कि समस्त पृथ्वी भर जाती।"

माननीय लीनियल साहबने हिसाब लगाया है कि "यदि एक वृक्षमे केवल दो वीज प्रतिवर्ष उत्पन्न हो (संसारके किसी वृक्षमे इससे कम वीज पैदा नहीं होते), तो केवल वीस वर्षमे इस एक वृक्षसे दस लाख वृक्ष हो जायँगे।"

गुलाव फारससे, आलू और सुरती यूरोपसे लाकर भारतमे लगाई गई है। ये तीनो विदेशी पौधे हिमालयसे केपकमोरिन तक खूब पैदा होते हैं। भारतका प्रत्येक निवासी किसी न किसी शकलमे इनको काममें लाता है।

जगत्प्रसिद्ध चार्ल्स डार्विन साहव अपनी 'Origin of Species' नामक पुस्तकमें लिखते है,—"निःसन्देह यदि पशु-पक्षियोकी वृद्धि रोकी न जाय, तो केवल एक जोड़ा जानवरके वच्चोंसे सारी पृथ्वी भर जाय।"

पशु-जगतमें हाथी सव पशुओसे कम वच्चा पैदा करता है। हाथीकी आयु ५०० वर्षके लगभग होती है। इसे ३० सालकी उमरमे ९० सालकी उमर तक

करीब करीब ६ बच्चे होते है। फिर भी ७५० वर्षमे एक जोड़ा हाथीसे १८ करोड़ हाथी हो जायँगे !

आस्ट्रेलिया और अमेरिकाके जंगली घोड़े इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कुछ पालतू घोड़े वहाँके जंगलोंमें भाग गये थे। आहार आदिकी सुविधा और स्वच्छन्दता होनेसे उनकी संख्या इतनी और इतने जल्द बढ़ी कि यदि यह आँखकी देखी बात न होती, तो लोगोंको इस आश्चर्य्यजनक वृद्धिपर कदापि विश्वास न होता। डाक्टर रसल लिखते हैं कि " ससारके बहुधा पक्षी ६ से १० तक बच्चे देते हैं और इनकी औसत ६ की पड़ती है। ६ छोड़कर यदि ४ ही बच्चे फी साल रख लिये जायँ, और यदि वे केवल ४ साल तक बच्चे पैदा करें, तो १ सालमें एक जोड़ा पक्षीसे एक करोड़ पक्षी हो जायँगे ! "

कोई कोई पशु एक सालमें चौगुने हो जाते हैं। यदि वे सालभरके बदले ५ सालमें अपनेसे चौगुने हों तो २०० सालमें एक जोड़ा पशुसे २५ लाख पशु हो जायँगे !

बहुतसे वृक्ष ऐसे हैं जिनसे सालभरमें एक हजारसे भी अधिक बीज पैदा होते हैं। इन एक हजार बीजोंसे यदि दो ही नये वृक्ष हरसाल उत्पन्न हो तो १४ सालमे एक वृक्षसे १६ हजार वृक्ष हो जायँगे !

प्रकृतिने वनस्पति, पशु और पक्षियोंको बड़ी उदारताके साथ बढ़ने या अपनी सन्तति बढ़ानेकी शक्ति दी है। किसीमें इस शक्तिकी न्यूनता है और किसीमें अधिकता। यदि बच्चा देनेवाले पशुका केवल एक जोड़ा इस पृथ्वीपर होता, और दूसरे पशु न होते तो पृथ्वी इस एक जोड़े पशुके ही बच्चोंसे भर जाती। ठीक इसी तरह एक जोड़ा पक्षीसे भी इतने पक्षी बढ़ सकते हैं कि सारी पृथ्वी भर जाय। जब ससारमें पशु पक्षी और वृक्षोंकी वृद्धि इतनी अधिकतासे होती है, तब वे अत्यन्त अधिक बढ़ नहीं सकते, इसका क्या कारण है ?

वनस्पति तथा जीवमात्रमें स्वभावहीसे बढ़नेकी अद्भुत शक्ति है। प्रकृतिने प्राणियोंको बढनेकी शक्ति तो बड़ी उदारतासे दी है किन्तु इसके साथ ही उनके बढ़नेके लिए दो अत्यन्त आवश्यक वस्तुओंमें अर्थात् अन्न और आहारमें, बड़ी अनुदारताके साथ कमी कर दी है।

वनस्पतियों और पशुओंमें, मनुष्यकी तरह अपना शुभ या अशुभ विचारनेका ज्ञान नहीं। वे भूत और भविष्य कालके अच्छे और बुरे पर ध्यान नहीं
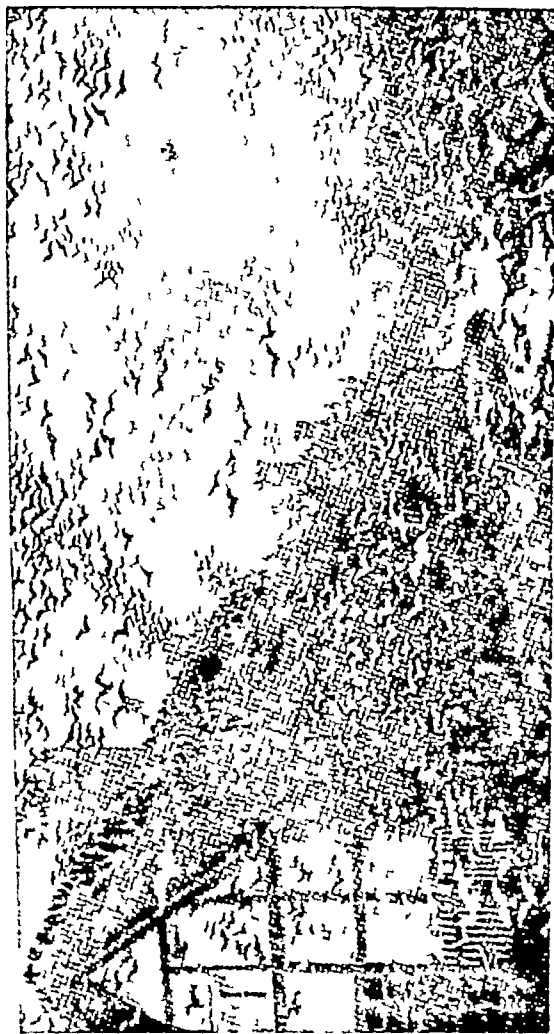
"एक जोड़ा पक्षीसे भी इतने पक्षी बढ़ सकते हैं कि पृथ्वी भर जाय।"

(देशदर्शन पृष्ठ १२)
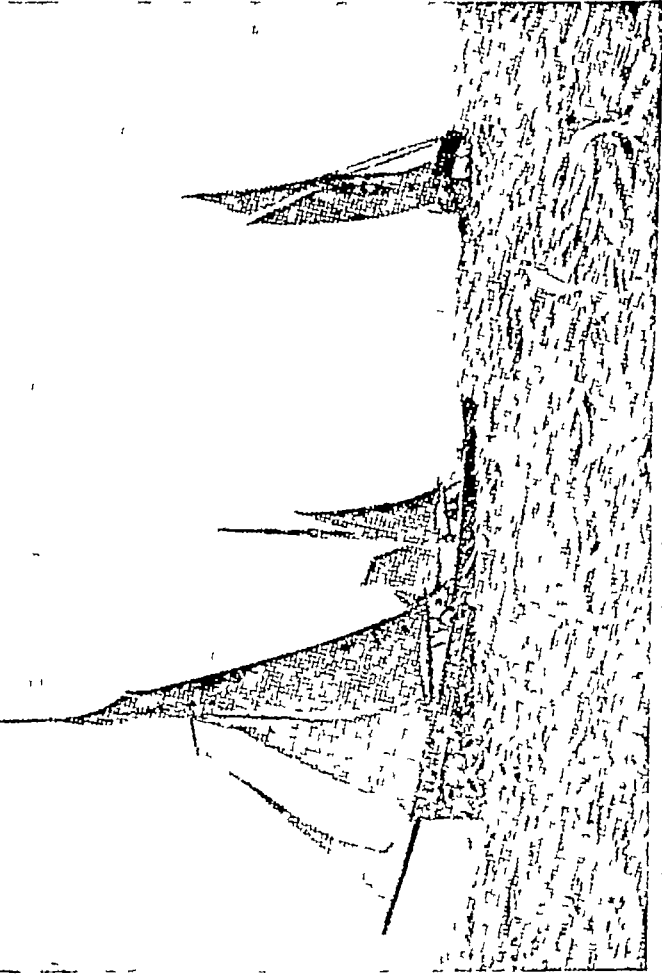
"कोडफीश मछली तीसरे वर्षके बाद ८० से ९० लाख तक अण्डे एक बारमें देती है। ३ वर्षके बाद यदि प्रत्येक उत्पन्न हुई मछली जीती रहे और इसी हिसाबसे बढ़े तो सिर्फ एक मछलीसे ४०,०००,०००,०००,००० की वृद्धि होकर समुद्र भर जाय।"

(देशदर्शन पृ० १३)

दे सकते। उनमें एक प्रकारकी स्थूल बुद्धि होती है, उसकी प्रेरणासे वे अपने समूह या दल बढ़ाते चले जाते हैं। वे इस बातसे कभी नहीं हिचकते कि जिनको वे उत्पन्न करते हैं उनके आहारका क्या प्रबन्ध है। जहाँ स्वच्छन्दता होती है वहाँ बढ़नेकी शक्ति अधिक काम करती है। किन्तु, अन्तमें स्थानाभाव तथा आहाराभावके कारण, प्रकृतिके कठोर नियमोंसे वह वृद्धि कुचल भी डाली जाती है।

प्रकृतिका यह एक विलक्षण नियम है कि वह पशु पक्षी और वनस्पतिके बच्चों और बीजोंको स्वच्छन्दतापूर्वक केवल इस लिए बढ़ने देती है कि भूख, प्यास, नमी या स्थानाभावसे उनका सर्वनाश हो। जब उसे (प्रकृतिको)एक बीज या बच्चेकी आवश्यकता होती है तो वह एक करोड़ पैदा करती है, उसमेंसे चुनकर एकको ले लेती है और बाकीको तड़प-तड़प कर मरनेके लिए छोड़ देती है।

मछली एक ही बार लाखों अण्डे देती है और यदि विघ्न न पड़े तो इन सभी अण्डोंसे मछलियाँ पैदा हो सकती हैं। अर्थात् कुछ ही दिनोंमे सिर्फ एक मछलीसे लाखों मछलियाँ हो सकती हैं। पर ये लाखों अण्डे किसी न किसी तरह नष्ट ही हो जाते हैं। कुछ मनुष्यके, और कुछ जन्तुओंके आहार बन जाते हैं। मुश्किलसे इन कई लाख अण्डोंसे दो चार कोड़ी मछलियाँ बन जाती हैं। फिर भी उनकी जान नहीं बचती—बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको हड़प जाती हैं और कितनी ही मनुष्यके भोजनालयोंमे लाल पीली हुआ करती हैं।

साँपको भी बहुत अण्डे होते हैं, पर बहुधा वे उसी पेटमें चले जाते है जिससे निकलते हैं, अर्थात् साँप अपने अण्डे स्वयं ही खा जाता है।

बरगद और पीपल आदि वृक्षोमें कई करोड़ बीज हर साल पैदा होते है। इनमेंसे प्रत्येक सूईकी नोकके बराबर बीजको यदि काफी नमी, प्रकाश और स्थान मिले तो सबके सब बड़े बड़े वृक्ष बन जायें। पर ये सारे बीज नष्ट हो जाते हैं। कुछ पक्षियोंके पेटमें गल पच जाते हैं, कुछ सूख या सड़कर मिट्टीमें मिल जाते हैं; बाकी दस बीस जो उगते हैं उनमेंसे बड़े और पुष्ट पौधे छोटोंको दबा डालते है, छोटोंकी खोराक—नमी और प्रकाश—बड़े पौधे छीनकर खा जाते हैं, अतः वे बहुधा सूख या सड़ जाते है। अर्थात् लाखों करोड़ों बीजोंकी बरबादीके बाद कहीं एक या दो पौधे बढ़कर दरख्त बनते है।

अन्य अनेक पौधोंका भी यही हाल है। हर पौधेको बढ़नेके लिए काफी नमी, प्रकाश और स्थानका होना आवश्यक है। जब एक ही जगह बहुत पौधे उगकर घने हो जाते हैं, तब बढ़ नहीं सकते। मौसिम भी अक्सर पौधोंके विनाशका कारण होता है। ऋतुके अतिरिक्त कितने ही पौधे मनुष्य और पशुओंके आहारके काम आते हैं, कितने ही काटकर जलाये जाते हैं।

मांसाहारी बड़े पशु और पक्षी, अपनेसे निबल और असहाय छोटोंको खा जाते हैं। मनुष्यके आहारके लिए कई करोड़ पशुओंका नित्य वध होता है।* (मांसाहारी देशोंका क्या पूछना, जब फलाहारी पवित्र भारतमें ही २० करोड़ जन मांसाहारी हैं!) करोड़ोंकी संख्या तकलीफ देनेवाले पशु समझकर मारी जाती है। शेर, चीते, भेड़िये, सूअर, कुत्ते और चूहे मारनेके लिए इनाम दिया जाता है।

पृथ्वीमें पैदा करनेकी अनन्त शक्ति है। इतने अधिक पशु, पक्षी तथा वनस्पति बीजरूपसे पृथ्वीमें छिपे पड़े हैं कि यदि वे स्वछंदतापूर्वक अपने आप बढ़ने पावें तो यही दुनिया नहीं, ऐसी अनेकों दुनियें कुछ शताब्दियोंमें ही

---

* अमेरिकाके एक मात्र शिकागो नगरके एक ही बूचड़खाने (stock-yard) में प्रतिवर्ष सवा करोड़ गायों, बकरों और सूअरोंका वध केवल मासके लिये होता है। इनके अतिरिक्त खाली चमड़ेके लिए भी घोड़े आदि पशु मारे जाते हैं। इनका मूल्य ३३ करोड़ डालर या एक अरब रुपया होता है।

यह बूचड़खाना ५०० एकड़ जमीनमें बना है। इसके भीतर चरनियोंकी लम्बाई २५ मील और पानी पिलानेके नादोंकी लम्बाई २० मील है। इसमें ७५,००० गायों ३,००,००० सूअरों और ५,००,००० बकरोंके रखनेकी जगह बनी है।

इस कारखानेके भीतर कई मीलतक रेलकी सड़क है और आठ ट्रेनें खास इस कारखानेके लिए चलती हैं। यहाँ ३० हजार मनुष्य नित्य काम करते हैं। इनके लिये कारखानेके भीतर ही एक दैनिक समाचारपत्र निकलने तथा होटल आदिका प्रबन्ध है। ऐसे कितने ही बडे बडे बूचड़खाने यूरोपके प्रधान देशोंमें हैं। भारतमें भी मासके रोजगारियोंने बडे बड़े बूचड़खाने खोल रक्खे हैं जहाँ मशीन द्वारा लाखों पशुओंका नित्य वध होता है। आगरा और युक्तप्रदेशमें मैंने स्वयं उन्हें देखा है—ले०।

उनसे भर जायँ । किन्तु प्रकृतिका नियम है कि कोई जीव हदसे ज्यादा न बढ़ने पावे । इसी नियमके अनुसार वह (प्रकृति) खुले हाथों जिन्दगीका बीज बोती है, और हाथ फटकारकर काटती है। वह लाखोंको एक क्षणमें पैदा करती है और तुरन्त ही उन्हें मारकर नष्ट भ्रष्ट कर डालती है। वह करोड़ोंको एक क्षणमें जीवप्रदान करती है और दूसरे ही क्षणोंमें निष्ठुरतासे छीन लिया करती है।

प्रकृतिके इस भयंकर नियमके अनुसार वनस्पति तथा ज्ञानरहित पशुओंको अपनी निःसीम वृद्धि रोकनी पड़ती है। आगे हम देखेंगे कि हजार प्रयत्न करनेपर भी ज्ञानी और चतुर मनुष्यको इस विलक्षण, पर अटल नियमके आगे सिर झुकाना ही पड़ता है।

चौथा परिच्छेद ।

मनुष्य-जगत् ।
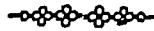
प्रकृतिने मनुष्यको भी पूर्वोक्त नियमके अधीन रक्खा है । मानव जाति भी यदि ज्ञानशक्तिसे काम न ले, स्थूल-पशु-बुद्धिके वशीभूत होकर पशुओंके समान स्वच्छन्दतापूर्वक अपना वर्ग बढ़ाने लगे, तो जनसंख्या इतनी बढ़ जायगी कि उसके भरण-पोषणके लिए काफी भोजन न मिल सकेगा। जितनी आबादीके जीवननिर्वाहके लिए खाद्य पदार्थ पृथ्वी पर उत्पन्न होता है उससे उनकी संख्या अत्यन्त अधिक बढ़ जायगी । किन्तु जीवन धारणके लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है । इस कारण आबादी उस संख्यासे अधिक कदापि न बढ़ने पावेगी जिस संख्या तकके भरण-पोषणके लिए खाद्य पदार्थ पृथ्वी पर उत्पन्न किया जाता हो । यदि कभी उस नियमित संख्यासे अधिक आबादी बढ़ेगी, तो प्रकृति अपने कठोर नियमोंके अनुसार दुर्भिक्ष आदि अनेक भयंकर रीतियोंसे जनसंख्याको नियमित सीमाबद्ध अवश्य करेगी ।

अब यह देखना है कि यदि आबादी स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़ने दी जाय, तो स्वाभाविक तौर पर वह कितनी बढ़ जायगी। इसी प्रकार भूमिकी उपज भी मनुष्यके अधिकसे अधिक प्रयत्न और परिश्रम करने पर और हरएक बात अनुकूल होने पर, किस हिसाबसे बढ़ेगी ।

माल्थस साहबने सप्रमाण सिद्ध किया है कि यदि खाने पीनेकी सुविधा हो तो हर देशकी जनसंख्या हर पचीसवें साल दूनी होती जाती है । भारतकी जनसंख्या सन् १९११ में ३१ करोड़ थी । यदि यहां खानेपीनेकी सुविधा हो और लोग हर तरह सुखी और संतुष्ट हो, तो २५ वर्षके अंतमें अर्थात् सन् १९३६ में यहाँकी जनसंख्या ६२ करोड़ हो जायगी । यदि ये सुविधायें आगे भी कायम रहें तो ५० सालके अंतमें १२४ करोड़, ७५ वर्षके अंतमें २४८ करोड़ और एक शताब्दीके अंतमें यानी २०११ ईसवीमें भार-

तकी जनसंख्या लगभग ५ अरब, अर्थात् समस्त भूमण्डलकी जनसंख्यासे तीन गुनी हो जायगी।

प्रोफेसर हेनरी फासेटने लिखा है कि "बहुत देशोंकी जनसंख्या, जहाँ खाने पीनेकी सुविधा रही है, हर २० वें साल दूनी होती गई है। मनुष्यमे बढ़नेकी ऐसी प्रबल शक्ति है कि यदि यह वृद्धि रोकी न जाय, तो जितने मनुष्य आज इस पृथ्वी पर हैं इससे कहीं अधिक हो जायँ। केवल एक पुरुष और स्त्रीकी सन्तान इतनी अधिक हो सकती है कि उसीसे सारा संसार भर जा सकता है।"

सम्पत्तिशास्त्रवेत्ता जान स्टुअर्ट मिल साहब लिखते है कि "३० साल पहले इस न रुकनेवाली वृद्धि पर विश्वास दिलानेके लिए बढ़े बड़े प्रभावशाली लेखों और प्रबल दृष्टान्तोंकी आवश्यकता पड़ती थी, पर अब इस समय इतने अधिक और प्रबल दृष्टान्त मौजूद हैं कि यह सिद्धान्त अचल और अखण्डनीय माना जाता है। संसारके बीसों महान् पुरुषोंने इसे इतने उत्तम दृष्टान्तोंसे सत्य सिद्ध किया है कि इसके लिए सुबूतकी जरूरत नहीं। अब यह सिद्धान्त स्वयं सत्य (Axiomatic truth) माना जाने लगा है।"

सम्पत्तिशास्त्रके धुरन्धर पण्डित, वाकर लिखते हैं कि "आस्ट्रेलिया, जहाँ यूरोपवालोंने १७७० ईसवीसे बसना प्रारम्भ किया है, इस बातका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि जहाँ खाने पीनेकी सुविधा होगी वहाँकी जनसंख्या हर २५ वें साल या इससे कममे दूनी हो जायगी।"

सुप्रसिद्ध बास्लो साहब लिखते हैं कि "जब जब उद्योगी जन ऐसे नये स्थानोंमें जा बसे हैं—जहाँ कृषिके लिए उत्तम भूमि मिली है और भोजन आदिका सुभीता रहा है—तब तब देखा गया है कि उस बस्तीकी जनसंख्या हर २५ वें या इससे कम वर्षोंमें दूनी होती गई है।"

अमेरिकाकी उत्तरी रियासतोंमे, बस्ती नई होनेके कारण जमीन बहुत उपजाऊ थी। पुरुषोकी सुयोग्यता और परिश्रमशीलतासे खाद्यपदार्थ अधिकतासे उपजते थे। वहाँके निवासियोमें दुष्कर्मकी मात्रा भी बहुत कम थी। विवाहका प्रचार यूरोपसे अधिक था। वहाँकी कुछ रियासतोंमें—जो पीछेसे बसी थीं—आबादीके दुगुनी होनेमें सिर्फ १५ ही वर्ष लगे। कुछ प्रांतोंमें १२ वर्षमें, और किसी किसीमें तो १० ही वर्षमें आबादी दूनी होती हुई देखी गई है।

अमेरिकाकी निम्नलिखित सरकारी रिपोर्टसे प्रकट होता है कि वहाँ ॰ जनसंख्या हर २५ वें वर्ष दूनी होती गई है:—

संयुक्तप्रदेश–अमेरिकाकी जनसंख्या *

सन् १७८० ई०	में	३९, २९, २१४
सन् १८००	”	५३, ०८, ४८३
” १८१०	”	७२, ३९, ८८१
” १८२०	”	९६, ३२, ८२२
” १८३०	”	१, २८, ६६, ०२०
” १८४०	”	१, ७०, ६९, ४५५
” १८५०	”	२, ३१, ९१, ८७६
” १८६०	”	३, १४, ४३, ३२१
सन् १८७० ई० में		३, ८५, ५८, ३७१
” १८८० ”		५, ०१, ५५, ७८३
” १८९० ”		६, २९, ४७, ७१४
” १९०० ”		७, ६०, ८५, ७९४
” १९१० ”		९, १२, ७२, २६६ †

अतः, सिद्ध हुआ कि अधिकसे अधिक २५ वर्षमें, यदि कोई रुकावट न हो तो, जनसंख्या दूनी हो सकती है।

पृथ्वीकी उपज किस हिसाबसे बढ़ेगी, इसका अनुमान करना सहज नहीं है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उपज उतनी तेजीके साथ न बढ़ेगी जितनी तेजीके साथ आबादीकी वृद्धि होगी। एक लाख या एक करोड़ मनुष्योंकी आवादी एक हजार मनुष्योंकी आवादीकी तरह हर २५ वें वर्ष अपनीसे दूनी हो जायगी। किन्तु अधिक सख्याके लिए खाद्य पदार्थ उतनी आसानीसे न बढ़ाया जा सकेगा। यदि यह मान लिया जाय कि संसारमें जितनी उप

---

* Statesman's year book for 1911 page 358
Increase by Emigrants from 1840 to 1909 A. D
4 66, 10 40, 10 83 7 56, 7 29, 10 46, 5 86 respectively.

† और १९१६ मे अमेरिकाकी जनसख्या १०,२०,१७,६१२ थी।—सशोधक।

जाऊ जमीन है सबमें खाद्य पदार्थ उत्पन्न किया जाय तो भी यह असम्भव है कि आबादीके साथ साथ उपज भी हर २५ वें वर्ष दूनी हो जाया करेगी।

इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञानकी सहायतासे नये ढंग पर खेती करनेसे, बिजली, उत्तम खाद और नये नये कल-पुर्जोंके प्रयोगसे वर्तमान उपजसे कहीं अधिक उत्पादिका शक्ति बढ़ाई जा सकती है परन्तु किसी देशकी उपज, मनुष्य चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, हर २५ वें साल दूनी नहीं हो सकती। यह बात सर्वथा असम्भव है। पहले २५ वर्षमें उपजमें चाहे जो वृद्धि हो जाय, पर दूसरे २५ वर्षोंमें उपज कदापि न बढ़ाई जा सकेगी। क्यों कि पृथ्वीकी उत्पादिका शक्ति निरन्तर बढ़ती नहीं, घटती है।

मनुष्यकी वृद्धि ' Geometrical ratio ' से दूनी होती है। अर्थात् वह १ से २, २ से ४, ४ से ८, ८ से १६ और १६ से ३२ हो जाती है। पर अन्न आदि खाद्य पदार्थोंकी वृद्धि ' Arithmetical ratio ' से एक एक करके होती है। अर्थात् अन्न एक सेरसे दो सेर, २ से ३, ३ से ४, ४ से ५, ५ से ६—७—८—९ फिर दस सेर होता है।

यहाँ कल्पना कीजिए कि भारतकी जितनी उपजाऊ जमीन है सब पर नई वैज्ञानिक रीतिसे खेती होती है। भूमिकी उपज हर साल बजाय घटनेके बढ़ती जाती है और यहाँके निवासियोंके भोजनके लिए काफी है। भारत-वर्षकी वर्तमान जनसख्या ३१ करोड़ है। यही आबादी पहले २५ वर्षोंमें बढ़कर दूनी, अर्थात् ६२ करोड़ हो जायगी, और पृथ्वीकी उपज भी २५ वर्षोंमें दूनी होकर इस बढ़ी हुई जनसंख्याके भरण-पोषणके लिए काफी होगी। दूसरे २५ वर्षोंमें आबादी १२४ करोड़ हो जायगी, और उपज सिर्फ (६२+३१) ९३ करोड़ मनुष्योंके लिए पर्याप्त होगी। तीसरे २५ वर्षोंमें आबादी २४८ करोड़ होगी, और खाद्य पदार्थ सिर्फ (९३+३१) १२४ करोड़ जनोंके लिए काफी होंगे। चौथे २५ वर्षोंमें यानी १०० वर्षके बाद आबादी बढ़कर ४९६ करोड़ हो जायगी, और अन्न आदि खाद्य पदार्थ केवल (१२४+३१) १५५ करोड़ जनोंके पोषणके लिए पर्याप्त होंगे। इस तरह कुल एक शताब्दीके बाद ३४१ करोड़ भारतवासियोंके जीवन-निर्वाहके लिए कोई सहारा न रहेगा।

भारतके स्थानपर यदि हम समस्त पृथ्वीको रख लें और पृथ्वीकी वर्तमान जनसंख्या १ अरब मान लें तो भूमण्डलकी जनसंख्या १, २, ४, ८, १६,

३२, ६४, १२८, २५६,–इस हिसावसे बढ़ेगी और भूमिकी उपज के
१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ के हिसाबसे। दो सौ वर्षमें आबादी २
अरब हो जायगी, पर उपज केवल ९ अरबके पोपणके लिए बढ़ सकेगी।
हजार वर्पमें आबादी और उपजमें बेहिसाब अन्तर पड़ जायगा।

ऊपरके उदाहरणसे सुयोग्य पाठकोंको मालूम हो गया होगा कि य
तमाम उपजाऊ जमीनपर खाद्य पदार्थ उपजाये जायँ, जहाँतक सम्भव
जंगल काटकर खेत बनाये जायँ, ऊसर और बंजर स्थान भी मनुष्यके श्र
और उद्योगसे अच्छे उपजाऊ खेत बना लिये जायँ और यथाशक्ति और यथ
सम्भव वैज्ञानिक नवीन उत्तम रीतिसे खेती की जाय, तो भी एक सम
आवेगा और निश्चय आवेगा कि जब मनुष्यकी संख्या उपजसे कहीं अधि
बढ़ जायगी। ×

आबादीकी इस बेहिसाब बाढ़को रोकनेके लिए और आबादीको उ
संख्या तक घटानेके लिए कि जिस संख्या तकके जीवन-निर्वाहके लि
पृथ्वीमें खाद्य पदार्थ उत्पन्न हो रहा है, बड़ी बड़ी दैवी और मानुषी रुकाव
काम किया करती हैं। प्रकृति, किसी तरह भी जनसंख्याको बेहिसाब न बढ़
देगी। हजार सर मारने और प्रयत्न करने पर भी अभिमानी मनुष्यको प्रकृत

× अमेरिका या अन्य नई बस्तियोंमे आबादीका बढाव बराबर ऐसा ही
रहेगा। कुछ ही कालमें वहाँ भी खाद्य पदार्थोंकी कमी हो जायगी और त
वहाँकी जनसंख्या इस शीघ्रतासे न बढ सकेगी।

नई दुनिया या नई बस्तियोंके मुकाबले पुरानी दुनियाकी आबादी बहु
देरमे बढ़ती देखी जाती है। कारण यह कि यूरोप या एशिया आदि देशों
अमेरिकाकासा सुख और चैन नहीं मिलता, इन देशोंकी जनसख्या काफी ब
गई है। डाक्टर डिस्डेलने सन् १८८५ में हिसाव लगाया था कि नारवेकी आ
बादी ३८ वर्षमे, प्रशियाकी ४२ वर्षमे, ग्रेटब्रिटनकी ५२ वर्षमे, रूसकी ६
वर्षमे, फ्रान्सकी १६० वर्षमें और आस्ट्रियाकी १८४ वर्षमे दूनी हो जायगी

१८५१ मे भारतवर्षकी जनसख्या लगभग १८ करोड़ थी। १९११ मे ३१
करोड़ हुई। अर्थात् १८५१ से यदि देखा जाय तो भारतकी आबादी ८५ वर्षमें

के इस अटल नियमके आगे सर झुकाकर अपनी बेहिसाब स्वच्छन्द बाढ़को रोकना पड़ेगा।

जगतकी जंगम सृष्टि—वनस्पति, पशु और पक्षी—सबके लिए प्रकृतिका एक नियम है। संसारमात्रके सजीव प्राणियोंको उसने इस नियमके अधीन कर रक्खा है-कोमल कमल और नर्मदा नदीके तटका विशाल बटवृक्ष, सुन्दर लघु बीरबहूटी और मतवाला हाथी, अथवा सबका राजा अभिमानी मनुष्य—सबको प्रकृतिने उसी एक भयंकर, पर अचल नियमके अधीन कर रक्खा है।

प्रथम खण्डका सारांश।

जंगम सृष्टिमें सम्पादित आहारसे अत्यन्त अधिक बढ़ जानेकी स्वाभाविक चेष्टा है।

प्रकृतिमें पैदा करनेकी अनन्त शक्ति है। पृथ्वीमें पशु, पक्षी और वनस्पति बीजरूपसे इतने अधिक हैं कि यदि वे स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़ने पावें तो कुछ ही कालमें इस भूमण्डलकी तरह कितने ही संसार उनसे भर जायँ। पर प्रकृति उनकी बेदह बाढ़ रोक देती है।

मनुष्यमें भी अपनी खोराकसे अधिक बढ़ जानेकी चेष्टा है।

आबादी हर २५ वें साल दूनी हो जाती है, परन्तु अन्न आदि खाद्य पदार्थोंकी उपज इस तेजीसे नहीं बढ़ सकती।

आबादी अवश्यमेव उसी संख्या तक परिमित रहेगी जिस सख्याके भोजनके लिए अन्न मौजूद है।

जनसंख्या अन्नकी वृद्धिके साथ ही साथ बढ़ेगी।

जनसंख्याकी निःसीम वृद्धिको रोकने और उसे एक नियत सख्याके भीतर रखनेवाले अनेक दैवी और मानुपी कारण काम किया करते हैं।

'The greatest social evil of the day is to marry and beget children whom one cannot support.'

अर्थात् आजकलका सबसे बड़ा सामाजिक दोप विवाह करके ऐसे बच्चे उत्पन्न करना है जिनका भरण-पोषण [illegible]

दूसरा खण्ड।

"what I must do is all that concerns me, not what the people think. It is easy to live in the world after the world's opinion; it is easy in solitude to live after our own; but the great man is he who in the midst of the crowd keeps with perfect sweetness the independence of solitude".

—*Emerson*.

पहला परिच्छेद ।
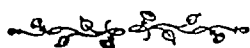
जनसंख्याकी निःसीम वृद्धि कैसे रुकती है ?

प्रकृतिमें पैदा करनेकी अनन्त शक्ति है, किन्तु स्वच्छन्दतापूर्वक वह किसी जीवको हदसे ज्यादा बढ़ने नहीं देती। वनस्पति तथा पशुओंमें ऊपर कहा हुआ नियम बहुत साफ तथा आसानीके साथ देखा जाता है। उनमें मनुष्यकी तरह अच्छे और बुरेका ज्ञान या विवेक नहीं। उनमें एक प्रकारकी स्थूल बुद्धि होती है, उसीकी प्रेरणासे वे अपने समूह या दल बढ़ाते चले जाते हैं। वे इस बातसे कभी नहीं हिचकते कि जिनको वे उत्पन्न करते हैं उनके आहारका क्या प्रबन्ध है।

मनुष्य और पशुओंमें अन्तर यह है कि मनुष्यमें पशुओंके समान स्थूल बुद्धिके अतिरिक्त ज्ञानशक्ति भी है। जब मनुष्य स्थूल पशुबुद्धिके वशीभूत होकर पशुओंके समान अपना वर्ग बढ़ाने लगता है तब ज्ञानशक्ति आकर उससे पूछती है कि जिनको वह उत्पन्न करेगा उनके भरण-पोषणका भी उसने कुछ प्रबन्ध किया है या नहीं। यदि वह ज्ञानशक्तिके इस संकेतकी ओर कुछ ध्यान न देकर ज्ञानरहित पशुओंकी तरह सन्तान उत्पन्न करता चला जाय और इस बातको बिलकुल न सोचे कि उनके भरण-पोषणके लिए काफी भोजन है या नहीं, तो इसका यह फल होगा कि जितनी आबादीके जीवन-निर्वाहके लिए खाद्य पदार्थ पृथ्वीपर उत्पन्न होते हैं उनसे वह अधिक बढ़ जायगी। किन्तु जीवनधारणके लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण आबादी कभी उस संख्यासे अधिक नहीं बढ़ सकती जिस संख्या तकके भरण-पोषणके लिए काफी खाद्य पदार्थका प्रबन्ध किया जा सकता हो। जब जब उस संख्यासे अधिक आबादी बढ़ेगी, तब तब मनुष्य-समाज अनेक क्लेशोंसे पीड़ित तथा जर्जरित होगा। आबादीकी इस बेहिसाब बाढ़को रोकनेके लिए और आबादीको उस संख्या तक घटानेके लिए कि जिस संख्या तकके जीवन-निर्वाहके लिए पृथ्वीमें खाद्य पदार्थ उत्पन्न होता

है, बड़ी बड़ी रुकावटें काम किया करती हैं। जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेवाले अनेक कारणोंके दो भाग किये गये हैं। उनमें एक दैवी और दूसरा मानवी कारण कहा जाता है। अँगरेजीमें इसे पाजिटिव चेक (Positive check) और रेस्ट्रिक्टिव या प्रुडेन्शल चेक (Restrictive or prudential check) कहते हैं। (१) दैवी कारण वह है कि मनुष्य स्थूल पशुबुद्धिके वशीभूत होकर पशुओंके समान अपना वर्ग बढ़ावे और जनसंख्याकी बेहिसाब बाढ़, युद्ध, दरिद्रता, दुर्भिक्ष, और दुराचार आदि अनेक कारणोंसे रुके, और (२) * मानवी कारण वह है, जिससे मनुष्य अपनी स्थिति पर पूर्ण विचार करके एक मात्र योग्य सन्तानोत्पत्ति करे—इन्द्रियदमन या पवित्र ब्रह्मचर्य द्वारा उतनी ही सन्तानोत्पत्ति करे जितनेको वह सर्वथा योग्य बना सके।

हर देश और कालमें ऊपर लिखे हुए अनेक कारणोंमेंसे कोई न कोई कारण सर्वदा विद्यमान रहता है और उस देशकी जनसंख्याकी नि.सीम वृद्धि रोका करता है। जैसे माली अपने बागकी काट-छाँट किया करता है वैसे ही ये सब कारण भी आबादीको काटछाँट कर उसी संख्या तक लानेमें लगे रहते हैं जिस संख्या तकके भरण-पोषणके लिए अन्न मौजूद हो।

---

* यूरोप और अमेरिकावाले न्यूमाल्थूसियन ओषधि या यन्त्रोंद्वारा जनसंख्या रोकते हैं। इन ओषधियों या यन्त्रोंके प्रयोगसे गर्भस्थिति नहीं होती। पश्चिमीय शिक्षित जन, अयोग्य सन्तानोत्पत्ति करनेकी अपेक्षा इन ओषधि या यन्त्रोंसे काम लेना ही अच्छा समझते हैं। सभ्य जगतमें हर जगह इनका प्रचार है।

दूसरा परिच्छेद।

दैवीकारण–युद्ध।

' Peace is the daughter of war '   —*Voltaire*

' Everlasting peace is a dream.. ..... war is a factor in God's plan of the world........ without war the world would sink into materialism '   *Schiller*

[युद्धद्वारा मनुष्यका खूव ही सहार होता है और इस तरह जनसख्याकी वेहिसाव वाढ रुकती है ।]

भगवन्! यह युद्ध क्या विपत्ति है और समय समयपर क्यो छिड़ जाता है? यह १५० लाख (डेढ़ करोड) सेना यूरोपीय महायुद्धमें क्यों एकत्र हुई है? इतने दिनोंसे नित्य १८ करोड़ रुपया युद्धकुण्डमें क्यों स्वाहा हो रहा है? सिकन्दर, चंगेज, तैमूर, जेरक्सीज, हनीवाल, सीजर, सुलादीन और नेपोलियन आदिने मिलकर भी ऐसी खूनकी नदियाँ न वहाई होंगी, जैसी इस वीसवीं शताब्दीमें वह रही हैं! जिस शताब्दीकी सभ्यता-पर मानव जातिको अभिमान था, उसी शताब्दीमें सभ्यताका मुकुट धारण करनेवाली ही जातियाँ ड्रेड्नाट, सबमेराइन, जेपलिन, और हवाई जहाजोंद्वारा एक दूसरेका सर्वनाश कर रही है। संसारमात्रका व्यापार वन्द है। कला, शिल्प, विज्ञान, कृषि आदि सव रुक गया है। केन्टन (अमेरिका) से केन्टन (चीन) तक हाहाकार मचा है। सभ्यताका हृदय तलवार और भालेकी नोक वेधे डालती है। पृथ्वी डावाँडोल है। भूमण्डलका प्रत्येक व्यक्ति थर्रा रहा है। संसारमें प्रलयका कुल सामान एकत्र है—वडे वडे योद्धा कट रहे हैं, विद्वान् मर रहे हैं, और तिस पर भी युद्ध वन्ध नहीं हो रहा है—यह यूरोपीय युद्ध, मानवजातिके विनाशका कारण हो रहा है।

पर, तो भी यह कोई नई वात नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें ही इनके युद्धका भी आरम्भ जान पड़ता है। हमारे वेदोंतकमें शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर-

नेकी प्रार्थनायें अंकित हैं। भारतमें आर्य्योंने आकर अनार्य्य, कोल, भील आदिसे युद्ध कर उनका देश छीन, उन्हें जंगलोंकी राह बताई। क्रोधी परशुरामने अनेकों बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे खाली कर दिया। मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामको दुष्ट रावण आदि अनेक दुःखदायक अत्याचारियोंका दमन करना पड़ पुनः पिता और पुत्रों (लव, कुश) तकमें युद्ध हुआ। भगवान् श्रीकृष्णको महाभारत सा भीषण युद्ध कराना पड़ा, जिसमें भाईको भाईने, मित्रको मित्रने, भतीजेको चाचाने, दादाको नातीने, गुरुको शिष्यने मार कर अपने कुटुंब और साथ ही देशकी जनसंख्याका संहार कर दिया। आज पाँच हजार वर्षोंसे भारतमें निरन्तर खूनकी नदियाँ बह रही हैं, भारत विदेशियोंका शिकार बन रहा है। ग्रीक, सिथियन, हून्स, गजनी, गोर, अफगान, पठान, तुर्क, तातार, मुगल, आदि जिसने चाहा भारतका रक्तपान किया। लाखों बेकसूर कैदियोंको एक ही बार कत्ल करके खूनकी नदियाँ बहाईं। तैमूरलंग, औरंगजेब और नादिरशाहने भारतको कैसा गारत किया, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। दस सहस्त्र वीरबालाओंको भस्म करनेवाली चित्तोरकी चिता आज भी भारतवासियोंके सम्मुख धाँय धाँय करके दहक रही है। युद्ध-यज्ञकी आहुतियाँ पद्मिनी, जवाहिर, तारा, लक्ष्मीबाई और दुर्गावती आदि आज भी भारतमें सच्ची देवियाँ करके पूजी जाती हैं।

भारत ही नहीं, युद्धसे तो भूमण्डलका कोई देश, जाति या काल खाली नहीं रहा है—यूरोप, अमेरिका, एशियाके जिस देश या राष्ट्रके इतिहासको उठाइए युद्धसे भरा पड़ा है। प्राचीन कालके लोगोंको असभ्य कह कर उनके युद्धका वृत्तान्त छोड़ आप अर्वाचीन कालकी सभ्य और सुशिक्षित जातियोको देखें तो ज्ञात होगा कि यह काल भी भयंकर युद्धसे भरा है। अभी थोड़े ही दिनोंके भीतर ट्रांसवाल, रूस-जापान, इटली-रूम, रूम-बालकन आदि अनेक युद्ध हो चुके हैं। इस समय जो भीषण युद्ध छिड़ा है, जिसमें सारे संसारकी महान् जातियाँ एक दूसरेसे भिड़ गई हैं, और जिसमे यूरोपीय जनसंख्याका क्षय हुआ चाहता है, उसका तो कुछ पूछना ही नहीं है।

इस सभ्य और सुशिक्षित समयमें संसार मात्रके कल्याणके लिए अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि (International treaty) हुई, प्रत्येक देशमें प्रत्येक राज्यके दूत

रहने लगे कि उनकी सलाहसे अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत द्वारा झगड़े तै कर दिये जायें। चुनाव द्वारा बड़े बडे धुरंधर दूरदर्शी राजनीतिज्ञ राज-कर्मचारी नियुक्त किये जाने लगे। राजा-प्रजाका द्वेष कम हुआ, मित्रता अधिक हुई। राजाओंने व्यक्तिगत शासनप्रणाली छोड़ साधारण प्रजाकी अनुमतिसे राज्य-प्रबन्ध करना आरम्भ किया। धर्मसुधारकोंका प्रभाव बढ़ा, पोप, पादरी और पण्डितोकी दैवी शक्तिका ऱ्हास हुआ। विद्याकी वृद्धिसे स्वतन्त्र विचारोंकी ओर प्रवृत्ति हुई, लोग परस्पर एक दूसरेका अधिकार और कर्तव्य समझने लगे। स्वार्थसाधनमें कमी और परोपकारमें अधिकता हुई। अमेरिका और यूरोपमें साम्यवादियों (socialists) का बल बढ़ने लगा—राष्ट्रकी सम्पत्ति पर प्रत्येक व्यक्तिका समान अधिकार माना जाने लगा, प्रत्येक व्यक्तिको अपनी योग्यतानुसार अपना सुधार करनेका पूर्ण अवसर दिये जानेका यत्न होने लगा, सर्वसाधारणमें सर्वाङ्ग शिक्षाका प्रचार हुआ। जिस प्रकार रणमूर्ति भगवती दुर्गाको सब देवताओके अंगप्रत्यंगोंकी शक्तियाँ मिलीं, उसी तरह हेगमें शान्तिमन्दिरकी स्थापनामें परस्पर विरोध और मैत्री रखनेवाली अनेक शक्तियोंने मिलकर सहायता की, और वह अनुपम

---

* १८१२ ई० में रावर्ट आवेनने साम्यवाद या समाजस्वत्ववादका प्रचार किया। आजकल अमेरिका, इग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रास और रूसमे इसका बड़ा जोर है। साम्यवादियोका मत है कि किसी राष्ट्रकी सम्पत्ति पर सब व्यक्तियोंका समान अधिकार है, प्रत्येक व्यक्तिको उन्नति करनेका अवसर मिलना चाहिए। थोड़ेसे योग्य मनुष्योंका आवश्यकतासे अधिक सम्पत्ति दवा कर कर ऐशो आराम से जीवन व्यतीत करना और अधिकाश व्यक्तियोंका भूखो मरना, अशिक्षित रहना और नाना प्रकारका दु ख सहना, ठीक नहीं। उनका कहना है कि (१) सर्व साधारणको वलपूर्वक (compulsory) शिक्षा दी जाय, (२) अधिक सम्पत्तिवालो पर अधिक और कम सपत्तिवालो पर कम राजकर लगाया जाय कि जिससे सपत्तिका विभाग प्राय समान हो जाय, (३) जो लोग साहूकारोंसे ऋण लेनेमे असमर्थ हों, उन्हे नाम मात्रके व्याज पर सरकारसे ऋण दिया जाय, (४) सम्पत्ति तथा भूमिके अधिकारके विषयमे धर्मानुकूल वलपूर्वक आचरण किया जाय, और (५) प्रत्येक व्यक्तिका समान धर्म्म है कि जीवनके लिए आवश्यक तथा विशेष सुखकी सामग्रीके उपार्जनमे कठिन परिश्रम करे।

' अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिमन्दिर ' सर्वाङ्गपूर्ण बन भी गया। +

आजसे लाखों वर्ष पूर्व राम-रावण युद्धसे लेकर आजके युद्ध तक, लोग शान्तिपूर्वक झगड़ा निपटानेका यत्न करते आ रहे हैं—रावणको अंगद आदिने कितना समझाया, महाभारतके भीषण युद्ध छिड़नेके पहले दुर्योधनको उस समयके बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंने युद्ध न करनेकी सलाह दी, गुरुजनोंकी भरी सभामें महाराणी गान्धारीने युद्ध न करनेका उपदेश किया, भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंकी ओरसे दूत होकर बिना युद्ध किये ही झगड़ा निपटा लेनेको बहुत कुछ समझाया—

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महीक्षिताम्।
पृथ्वी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव॥

—महाभारत।

पर तो भी युद्ध न रुक सका। जो लोग कि युद्ध न करनेकी सलाह देते थे उन्हीको युद्ध करनेके लिए उत्तेजित करना पड़ा और १८ अक्षौहिणी सेना (४७,२३,९२० सैनिक) कुरुक्षेत्रके मैदानमें कट गई। साराश यह कि अनन्त कालसे लोग चिल्लाते आ रहे हैं कि ' मा युध्यस्व '-युद्ध मत करो, तो भी समय समयपर भीषण युद्ध छिड़ ही जाते हैं और लाखों, करोड़ों

+ इस शान्तिमन्दिरके निर्म्माणके लिए धनकुबेर मिस्टर एण्ड्रू कारनेगीने पहले पहल ३५ लक्ष मुद्रा दिया। डच पार्लियामेंटने आठ लाख ४० हजार भूमिके लिए दिया। नारवे और स्वीडनने पत्थर दिया। डेन्मार्कने वागका फौआरा वनवाया। हालैण्डने ईंटे दीं। इटलीने सगमर्मर दिया। ब्रिटेनने दरवाजोंके लिए रगीन कॉच दिया। ब्रेजिलने लकडी दी और दरवाजे वनवाये। वेल्जियमने लोहेके किवाड दिये। जर्मनीने वाहरका फाटक वनवाया। स्विटजरलैण्डने घौरहरेके लिए घडी दी। फ्रासने रग, पच्चीकारी और चित्रकारी कराई। रूसने दरी विछवाई। आस्ट्रेलिया और हेटीने मेज कुर्सियॉ दीं। रूसने एक वहुमूल्य सगयशवका गुलदान, हगरीने अत्यन्त सुन्दर शामदान, आस्ट्रियाने उसके रखने योग्य वहुमूल्य रकाबियॉ, अमेरिकाने कॉसे और सगमर्मरकी मूर्तियॉ, चीनने उत्तमोत्तम प्याले, और जापानने मनोहर रेशमके चित्र दिये। इस तरह ससारकी सभी शक्तियोंकी अनुमति और सहायतासे शातिमन्दिर स्थापित हुआ (—भारी भ्रम।)

पुरुषोंका संहार हो ही जाता है। सो क्यों ? आखिर युद्ध क्या है ? और होता क्यों है ?

जैसा कि बाइबलमें लिखा है, सृष्टि, एक साथ ही छः दिनमें नहीं बनी। जिस रूपमे आज हम सृष्टिको देख रहे हैं यह करोड़ों वर्षोंके परिवर्तनका फल है। प्रकृतिसे आकाश, आकाशके पश्चात् वायु, वायुके पश्चात् अग्नि, अग्निके पश्चात् जल, जलके पश्चात् पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधि, ओषधिसे अन्न, अन्नसे वीर्य्य और वीर्य्यसे शरीर अर्थात् पुरुष उत्पन्न हुआ।

पश्चिमीय पण्डितों * ने भी यही सिद्ध किया है कि करोड़ों वर्षोंके परिवर्तनसे सृष्टिका आज यह रूप बना है। लाखों वर्षोंमें धीरे धीरे जड़ पृथ्वी, पहाड़नदी आदि बने। फिर बढते बढ़ते वनस्पतियोंकी उत्पत्ति हुई। वनस्पतियोंसे उन्नति करते करते पशु आदि प्राणी उत्पन्न हुए। पशुओमें वानरोंकी दशासे बढ़ते बढ़ते वन-मनुष्यसे साधारण मानव-जाति उत्पन्न हुई।

प्रत्येक देहधारी अपनी जाति बढ़ानेकी प्रबल चेष्टा करता है। पर प्रकृतिका यह भी एक विलक्षण नियम है कि देहधारी अधिक और उनकी खोराक कम पैदा हो। अस्तु। खनिज, वनस्पति, पशु, और सबका राजा मनुष्य, इस तरह समस्त देहधारियोंमें—परमाणु परमाणुमें कठिन संघर्ष स्वभावतः जारी है।

अपनी जाति बढाने और जीवनरक्षाके लिए प्रत्येक देहधारीको आवश्यकतानुसार दूसरोसे लड़ना पड़ता है। सबल, निर्बलको हड़प जाता है, उसका आहार स्वयं हजम कर जाता है। जो अयोग्य है, मूर्ख है, दुर्बल है वह निर्मूल हो जाता है, और जो योग्य है, बुद्धिमान् है, बलवान् है, वह जीवित रहता है, फूलता, फलता, और अपनी जाति बढ़ाता है। (Survival of the fittest) इस स्वाभाविक संघर्ष या रगड़ा-रगडीको जीवनप्रयास कहते हैं—दूसरे शब्दोंमें इसी संघर्ष, रगड़ा-रगड़ी, या जीवनप्रयासको युद्ध कहेंगे।

संसारके अन्य पशुओंके समान मनुष्य भी अपनी जाति बढ़ानेका यत्न करता है। स्त्री और पुरुषके मेलसे सन्तान होती है, जिसे कुटुम्ब कहते हैं। इस कुटुम्बका प्रत्येक व्यक्ति परस्पर एक दूसरेकी सहायता और रक्षा करता है। धीरे धीरे कई कुटुम्ब एक साथ रहना स्वीकार करते हैं। इस परस्परके मेलजोलसे वे भली भाँति अपना कार्य कर सकते हैं और दूसरे ऐसे ही मिले-

* Vide 'Origin of Species' by Darwin.

जुले कुटुम्बोंके आक्रमण और अत्याचारसे अपनेको बचा सकते हैं। इन कई कुटुम्बोंके मेलको फिर्का, कौम, जाति या ट्राइब (Tribe) कहते हैं। जैसे एक कुटुम्बके प्रत्येक व्यक्तिको एक दूसरेके साथ बर्ताव करनेका नियम होता है वैसे ही एक कौमके लोग भी अपने रहने सहनेके अनेक नियम बनाते हैं। एक कौमके लोग उसी कौमके लोगोंको लूट नहीं सकते, एक दूसरेको मार नहीं सकते। क्योंकि ऐसा करनेसे फूट पैदा होती है और तब दूसरी कौमोंसे रक्षा भली भाँति नहीं हो सकती। हाँ, अपनी कौमके बाहर दूसरी कौमकी सम्पत्ति लूटना, उन्हें काटना मारना, सब रवा है।

समीपवासी छोटी छोटी कौमें देखती हैं कि एक दूसरेको लूटनेसे किसी बडी कौमके आक्रमणके समय वे एक दूसरेको सहायता नहीं कर सकतीं। तब जैसे कुटुम्बोंसे कौम बनती है वैसे ही कौमोंके एकत्र होनेसे राष्ट्र (Nation) बन जाते हैं। इस राष्ट्रके लिए अनेक सामाजिक और धार्मिक नियम बनते हैं। स्वभावतः इनका उल्लंघन उस राष्ट्रके लोग नहीं करते, और नियमविरुद्ध चलनेवालोंको दण्ड मिलता है।

प्रकृतिका यह नियम है कि खानेवाले अधिक और खाद्य पदार्थ कम उत्पन्न होते हैं, और मनुष्यमें स्वभावतः अपनी उन्नति करने, अपनी वर्तमान दशाको और अच्छी करने, अपने आराममें सदैव कुछ न कुछ अधिकता करते रहनेका गुण है। वह (मनुष्य) स्थिर नहीं रह सकता, या तो वह आगे बढेगा या पीछे जायगा—Man cannot remain stationary. He must either improve or impair

जनसंख्या बढ़ती जाती है, इसके साथ आवश्यकतायें भी बढ़ती है। नये देशोंमें उपनिवेश करना, नये नये बाजारोंमें अपनी प्रभुता जमाना, नये राष्ट्रोंको अपना मतावलम्बी या अधीन बनाना, धोखेसे, छलसे, बलसे दूसरे राष्ट्रोंकी सम्पत्ति हरना, किसी न किसी तरह अन्य जातियोंका अधिकार हड़प जाना ही इस राष्ट्रका मुख्य उद्देश होता है। एक राष्ट्रके व्यक्तियोंके लिए समाज है, नियम है, धर्म है, कर्म है, पाप और पुण्य सभी कुछ है, पर उस राष्ट्रके बाहर दूसरे राष्ट्रके साथ व्यवहार करनेके लिए केवल स्वार्थ-सिद्धिहीका नियम देखा जाता है। जिसमे स्वार्थ सधे वह कार्य करना परम

है, पाप है, अधर्म है । इसी लिए राष्ट्रनीति या पद्धतिका दूसरा नाम स्वार्थ-सिद्धि है ।

पर दूसरा राष्ट्र यथाशक्ति इस स्वार्थसिद्धिमें बाधा डालता है । उस समय रगड़-झगड़ आरम्भ होती है और अन्तिम परिणाम भीषण युद्ध होता है ।

निज राष्ट्रकी सीमामें लूट न होना चाहिए, ऐसा करनेवालोंको उस राष्ट्रके नेता दण्ड देते हैं, खून न करना चाहिए, नहीं तो खूनीको प्राणदण्ड दिया जायगा, छोटीसे बड़ी कोई ऐसी बात—जिससे उस राष्ट्रके किसी व्यक्तिको कष्ट पहुँचता हो—न करनी चाहिए, क्योंकि वैसा करनेसे उस राष्ट्रमें कमजोरी आती है, पर राष्ट्रकी सीमाके बाहर दूसरे राष्ट्रोंके साथ व्यवहार करनेमें किसी भी बातका निषेध नहीं रह जाता, दूसरे राष्ट्रोंकी धन-धरणी हरना, उनकी सर्व सम्पत्ति लूटना, लुटेरापन नहीं कहाता । अपने राष्ट्रके एक अदना आदमीके मारनेसे फाँसी मिलती है, पर दूसरे राष्ट्रसे लड़ाई छिड़ जाने पर खून करनेसे कोई खूनी नहीं कहलाता । लाखों, करोड़ोंको काल करके खूनकी नदियाँ बहानेसे, विधवाओं और अनाथोंको तड़पानेसे, उस देशमें आग लगा देनेसे और जो कुछ कि हानि मनुष्य मनुष्यको पहुंचा सकता है पहुँचानेसे लोक और परलोक दोनों बनते हैं, निज राष्ट्रमें नाम, मान, और मरने पर हरि-धाम प्राप्त होता है !

मनुष्य, स्वभावतः एक लड़ाका पशु है । जैसे आदमी आपसमें झगड़ते हैं और पुलिस और न्यायालयकी सीमाके भीतर ही पूरी लड़ाई लड़ लेते हैं, इसलिए नहीं कि उस लड़ाईसे कोई धनलाभ होगा किन्तु इस लिए कि अपने समझे हुए अधिकारकी रक्षा करना है अथवा अपने विचारानुसार बुराई करनेवालेसे बदला लेना है और इस तरह क्रोधाग्नि और उबलते हुए खूनको शान्ति करना है, वैसे ही राष्ट्र भी अवश्य लड़ेंगे, कभी स्वतन्त्रताके लिए, कभी बल और अधिकारके लिए और कभी फैलनेके लिए। जहाँ सीमाके दोनों ओरके राजाओंको अपने संकल्प और अधिकारकी सत्यताका विश्वास हुआ कि युद्ध छिडा. ऐसे समयमें क्षमा और सहनशीलताका लोग निरादर करने लगते हैं ।

प्राचीन और अर्वाचीन इतिहाससे ज्ञात होता है कि जो लोग या राष्ट्र लडनेको उद्यत रहते हैं और लड़नेमें सबसे अधिक कौशल दिखाते हैं वे शान्त प्रकृतिवालोंको निकाल बाहर करते हैं, और इस तरह युयुत्सु जाति

ही स्थायी रूपसे बच रहती है। अर्थात् लड़ाकी जातियाँ पृथ्वीकी उत्तराधिकारिणी होती हैं।

कुछ हवामें महल बनानेवाले लोग यह स्वप्न देख रहे हैं कि—"सभ्यताके बढ़ते बढ़ते अन्ततः युद्ध और उसकी प्रचण्डता मिट जायगी।" पर सभ्यता, मनुष्यके युद्धप्रिय स्वभावको नहीं बदल सकती। जबतक मनुष्यका स्वभाव नहीं बदलेगा, तब तक संसारसे युद्धका लोप न होगा। और फिर यदि राज्योंकी दुर्बुद्धि, असावधानी, आलस्य और अदूरदर्शितासे परस्पर संघर्षण न हो जाया करता, तो मनुष्य जातिकी-अवनति हो जाती। युद्ध उन्नतिका एक आवश्यक कारण है। युद्ध वह डंका है जो देशोंको आलस्य निद्रामें नहीं पड़ने देता और सन्तुष्ट मध्यश्रेणीके लोगोंको उदासीनतासे जाग्रत रखता है। व्यवसाय और रगड़-झगड़से ही मनुष्यकी स्थिति है। जिस समय रोम सरीखा शान्ति-सम्पन्न साम्राज्य मनुष्यको मिल जायगा और उसके कोई बाहरी वैरी न रह जायँगे, उस घड़ी मनुष्यके चारो ओर रहनेवाली 'सदा व्यवसायात्मिका बुद्धि' बड़ी जोखिममें पड़ जायगी।

देशाभिमान, उच्चाभिलाषा, निश्छलता, चौमड़ापन, सम्पत्ति, स्वास्थ्य, मेल, बल, विद्या और वीरता आदि अनेक सद्गुण पहले युद्धसे ही प्राप्त हुए और अब भी एकमात्र युद्धसे ही इनकी स्थिति है। युद्धसे ही वीरताके वे गुण आते हैं जो वास्तविक जीवनके कठिन झगड़ोंमे विजय पानेके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

जिस प्रकार झाड़ू देनेवाला कुरूप दिखाई देता है किन्तु बड़ा उपयोगी होता है, वैसे ही युद्ध भयकर तो आवश्यक दीखता है पर मनोदौर्बल्यका शोधक है। आँधीसे हवा शुद्ध हो जाती है, शक्तिहीन निकम्मे पेड गिर जाते हैं और दृढ मूलवाले बलवान् उपयोगी पेड़ बच जाते हैं। युद्धसे राष्ट्रकी राजनैतिक शारीरिक योग्यताकी परीक्षा हो जाती है। जिस राज्यमें सड़ा और खोकलापन आगया है उसका कुछ दिनो तक शान्तिपूर्वक फैलना सम्भव है, किन्तु युद्धमे उसका दौर्बल्य खुल जाता है।

उन्नतिको रोकनेके बदले युद्धने बहुधा उसके मार्गोंको प्रशस्त कर दिया है। अपने अनेक युद्धोंके होते हुए नहीं किन्तु उनके होनेसे ही एथेंस और रोमने अपनेको सभ्यताके शिखर पर पहुँचाया था। इंग्लैण्ड, जर्मन, जापान

और इटली आदि अपने अपने लोहेसे अपना रुधिर बहाकर ही राष्ट्रसूत्रमें बँधे हैं। वाशिंगटनने जिस समय ये शब्द लिखे थे, तब जैसे सत्य थे, वैसे ही अब भी सत्य है और बने रहेंगे कि "स्वार्थके सिवाय और किसी उद्देश्य पर राष्ट्रोंके निरन्तर दृढतापूर्वक आचरण करनेकी आशा व्यर्थ है। अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थका अनुशीलन ही राजपुरुषोंकी गभीर और दूरदर्शी नीतिका एक मात्र आधार है।" हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि राजनीतिमें मित्रता नहीं, सम्बन्ध नहीं, शांति नहीं, विश्वास नहीं, सहनशीलता आदि कोई सद्गुण नहीं है। यदि एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्रके साथ सद्व्यवहार करता दीखता हो तो समझो कि उसके सद्व्यवहारकी ओटमें स्वार्थ अवश्य छिपा है। भारत और ब्रिटेनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक दूसरेके परम शुभचिंतक है। भारतवासी अपने ही सम्राटके राज्योमे अपमानित किये जाते हैं, आस्ट्रेलियामे घुसने नहीं पाते, कैनेडाकी बात ताजी है, नैटालसे भारतवासियोके कारुणिक-रुदनकी हृदयवेधक आवाज अब भी हृदयको कँपाती है, पर ब्रिटिश-साम्राज्य यह सब देखता है, रुदन भी सुनता है किन्तु सहसा इसे मेटनेमें वह असमर्थ है। उधर बेल्जियमका जर्मनीसे पददलित होना ब्रिटेन नहीं देख सकता। बेल्जियमसे किसी तरहका सम्बन्ध न होते हुए भी ब्रिटेन अपने खास नातेदार * जर्मनीके विरुद्ध लडने और बेल्जियमकी सहायता करनेके लिए एक मात्र परोपकारसे प्रेरित हो भयकर युद्धमें आपसे आप कूद पड़ता है।

जिस तरह हम, अपमान सहजानेवाले पुरुषसे घृणा करते हैं उसी तरह हम अपमान सहनेवाले राष्ट्रसे भी घृणा करते है। ससार, कातर और शान्तिके चाहनेवाले मनुष्यको, या राष्ट्रको, आदरकी दृष्टिमे नही देखता।

अन्य राष्ट्रोंके स्वार्थ, अत्याचार या अपमानसे बचनेका उपाय एक मात्र युद्ध है। शान्ति-व्यवस्थासे मनुष्यका काम चल नहीं सकता।

इस संसारमे जिस जातिको सबसे अलग, झगड़ोंसे रहित, आरामसे रहनेका स्वभाव पड़ जाता है, अन्तमें उसे उन जातियोसे जिनकी वीरता, साहस और पौरुषका नाश नहीं हुआ है, नीचा देखना पड़ता है—" It is a law of nature common to all mankind which no time shall ever destroy, that those who have more strength and excellence shall bear rule over those who have less."

---

* जर्मनीके बादशाह कैसर सम्राट् पजमजार्जकी फूफाके लड़के हैं।

जर्मनीके प्रसिद्ध जनरल वर्णहार्डीका कथन है कि "शांतिका आंदोलन विषमय होता है। यदि स्वार्थवश दूसरेका अधिकार छीननेके लिए नहीं, तो अपने देश और राष्ट्रका अधिकार बचा रखनेके लिए ही प्रत्येक राष्ट्रको युद्धके लिए तैयार रहना परम आवश्यक है।"

प्रसिद्ध ग्रेशमने कहा है-" दयाशील और हितैषी राष्ट्रोंका क्रमशः निर्मूलन हो जाता है और लड़ाकी जातिकी दृढता होती है।" यदि दूसरे राष्ट्रोंके साथ मैत्री, विश्वास और सद्भावसे आत्मरक्षाके उपायोंमें हम ढीले हो जायँ, तो इस ढिलाईमें युद्धप्रिय जातियोंको हमपर चढ़ाई करनेका अवसर मिलेगा और सभ्यताके शिखरपर बैठी हुई जातियोंको रणमें हरा कर असभ्य जातियाँ धूलमें मिला देंगी। रोमकी सभ्यता, मिसरका महान् पुस्तकालय, और भारतके अनुपम साहित्यका सर्वनाश न होता, यदि ये राष्ट्र बहशियोंके आक्रमणको रोकनेके लिए तैयार रहते।

अनेक भारतवासियोंका अटल विश्वास है कि महाभारतका युद्ध होनेहीसे भारत गारत हुआ, पर नहीं, भारत गारत हो चुका था इस लिए महाभारत हुआ और फिर महाभारतके हजारो वर्ष पश्चात् विदेशियोंके आक्रमण हुए। क्या तब तक इन छोटे मोटे लुटेरोंका मुकाबला करनेके लिए भारतमें नई शक्ति नहीं पैदा हो सकती थी? क्या महाभारतके बादका भारत नेपोलियनके बादके जर्मनीसे भी गिरा-गुजरा था कि जर्मनी कुल १०० वर्षकी ही तैयारीसे सारे संसारकी सम्मिलित शक्तियोंसे अकेला ही भिड़ सकता है और नाकों दम कर सकता है, पर भारतको अकेले सिकन्दरके सामने सर झुकाना पड़ता है। जापान कुल ४० वर्षोंमें इतना बलिष्ट हो सकता है कि रूस जैसे विशाल देशको परास्त कर सकता है, परंतु भारत ५००० वर्ष बीत जाने पर भी विदेशियोंका शिकार बना रहता है!

A peace that has the prospect of being disturbed every day and week has not the value of peace A war is often less harmful to the public welfare than such peace. *

---

* अर्थात् जो शान्ति जब चाहे तब भंग हो सकता हो उसका कोई मूल्य नहीं है। सर्वसाधारणके उपयोग के लिए ऐसी शान्तिकी अपेक्षा प्राय युद्ध ही कम हानिकारक हुआ करता है।

जिन कारणोंसे महाभारत सा भीषण आन्तरिक युद्ध हुआ, जिस अविद्या, मूर्खता और खुदगर्जीके कारण सिकन्दरने पोरस पर फतह पाया, जिस ईर्षा, द्वेष और फूटसे शहाबुद्दीनने पृथ्वीराजको हराया, या जिस कारण यह अभागा देश आखिरको पश्चिमीय वणिकोंके हाथ आया, वही कारण भारतमें अबतक विराजमान है। भारतका इतिहास बताता है कि भारत जब कभी परास्त हुआ है तो स्वयं भारतवासियोंसे। प्राचीन या अर्वाचीन चाहे जिस कालके भारतीय युद्धका सच्चा इतिहास उठाइए, साफ साफ मालूम होता है कि भारतके हारनेका मुख्य कारण भारत ही है। अँगरेजोंने पहले तो भारतको तलवारके बलसे विजय ही नहीं किया और यदि कहीं इससे काम भी लिया गया तो भारत-सन्तानकी ही तलवारसे। आज भी भारत परदेशियोंके लोहेसे नहीं बल्कि अपनी ही सन्तानकी तलवारके बलसे परतन्त्र है।*

भारतकी पराधीनताका जो कुछ भी कारण हो, उस कारणको सुधारने-हीसे स्वाधीनता प्राप्त होगी। इस संसारमें कोई ऐसी हार ही नहीं जिसका कारण कोई अवगुण, कोई पाप या मनोदौर्बल्य न हो। इस पापको समूल नष्ट करनेके सीधे रास्तेका नाम है ' योग्यता '। हमारा—प्रत्येक भारतवासीका—महान् कर्तव्य है कि हम स्वयं योग्य बने और स्वार्थत्याग कर अपने देशभाइयोंको योग्य बनानेमें तनसे, मनसे, और धनसे हर तरहसे योग दें।

हम अपने कर्तव्यपर ध्यान नहीं देते, अपने अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए शोर मचाते हैं और कुल दोष राजाके ही सिर मँढ़ देना जानते हैं। अब 'यथा राजा तथा प्रजा' का समय नहीं है, आज कल तो 'यथा प्रजा तथा राजा' की चाल है। सबसे पहले स्वतन्त्रता देवीने अमेरिका पर कृपा-दृष्टि फेरी, राजा और प्रजाके बीच भयंकर युद्ध छिड़ा, पर विजय प्रजाकी रही। राजाको अमेरिकासे सदैवके लिए विदा माँगनी पडी। इसके बाद,

* अरकाटके घेरेमें राजभक्त हिन्दुस्तानी माँड पीकर रहते थे और भात अगरेजोंको दे देते थे। प्लासी, मैसूर, मराठा, सिक्ख या अफगान-युद्धमें हिन्दुस्तानी सिपाही ही काम आये थे। इसके पूर्व मुसलमानी राज्यमें भी पृथ्वीराज, राणा प्रतापसिंह, या शिवाजीको दबानेवाले हिन्दुस्तानी ही थे। आज भी भारतकी कुल पुलिस प्राय हिन्दुस्तानी ही है। १,६०,००० वीर सिपाही भारतकी रक्षा करते हैं।

फ्रांसकी प्रजाने सिर उठाया। यहाँ भी राजाकी हार और प्रजाकी जीत रही। दक्षिण आफ्रिका, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, आयर्लैण्ड, चीन, फारस, तुर्किस्तान—हर जगह जीत प्रजाकी रही। लार्ड मार्लेके रिफार्म, बङ्गभङ्गका पुनः संयोग, दक्षिण भारतमें गाँधीका निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive resistance) आदि स्वयं भारतकी घटनायें हैं जो सिद्ध करती हैं कि योग्य होनेपर हमें अधिकार मिलेंगे और अवश्य मिलेंगे। योग्य राष्ट्रको संसारकी कोई शक्ति परतन्त्र नहीं रख सकती और

> 'Freedom's battle once begun
> Though baffled oft, is ever won'

की बात सदैवसे सत्य होती आई है। संसार भरका इतिहास इसका साक्षी है। ब्रिटिश राज्यको कोटिशः धन्यवाद है जिसके साम्राज्यमें भारतका अभ्युदय प्रारम्भ हुआ है। हजारों वर्षोंकी पुरानी खुदगर्जीका पैर उखड़ रहा है। हिमालयसे केप कमोरिन तकके लोग अपनेको एक राष्ट्र मानना सीख रहे हैं। ऐसे शुभ अवसरको यदि हम आलस्य-निद्रामें खो दें तो भारतके पुनरुत्थानकी आशा सर्वथा निष्फल है।

भारतके उद्धारके लिए मनुष्योंकी संख्या बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँके वीर निवासियोंको तन मन धनसे देशके प्रेममें रत कर देनेकी परम आवश्यकता है। यदि ये ३१ करोड़ शारीरिक और मानसिक बलसे परिपूर्ण पुरुषार्थी, देशसेवक वीर बन जायँ तो इनसे जर्मनी सरीखे पांच राज्य बन सकें। योग्यताप्राप्त जर्मनीसे पँचगुनी शक्तिवाले 'नवीन भारत' के सम्मुख कौन शक्ति ठहर सकेगी ?

सुयोग्य प्रजा राजाको भी प्रिय होती है। हमारे शक्तिशाली बननेसे, हमारी देशभक्ति तथा भारतकी इतिहासप्रसिद्ध सदैवकी राजभक्तिसे हमारी सरकारको भी हमसे सब तरहकी सहायता मिल सकेगी।

पर वह सब कुछ करनेहीसे होगा। केवल सुधारके स्वप्न देखनेसे तो आकाश-कुसुम ही हाथ लगेगा। जापानने जो कुछ ४० वर्षोंमें किया है या जर्मनीने जो १०० वर्षोंमें कर दिखाया है वह हम भी कर सकते हैं। ठीक, पर यहाँ तो ७ करोड़ भारतवासियोंके तनसे 'कावे' की बू आती है। लगभग इतने

वाये कूड़ाकरकटकी तरह मारी मारी फिरती हैं। चलिए, आधी जनसंख्या तो यों गई। रही आधी, उसका भी कैसा बुरा हाल है यह बतानेकी आवश्यकता नहीं–पेटके लिए अन्न नहीं, तनके लिए वस्त्र नहीं, शिक्षाके लिए द्रव्य नहीं। बालविवाह और सन्तानोत्पत्तिके रोगोंसे भारतमें २५ वर्षकी स्त्रियाँ बूढ़ी समझी जाती हैं और इससे कुछ ही अधिक आयुवाले पुरुष संसारसे यात्रा करनेकी तैयारी करना आरम्भ कर देते हैं। संसारमें जीवन-प्रयास या संघर्षकी मात्रा दिनोंदिन अधिक हो रही है। अपने राष्ट्रके भीतर तो 'Right is might' का सिद्धान्त सत्य है पर जब दूसरे राष्ट्रोंसे काम पड़ता है, तब Might is right—'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला सिद्धान्त ठीक होता है।

संसारके किसी देशमें सहयोग, आत्मसमर्पण और स्वार्थत्यागकी इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि भारतमें है। इस समय अयोग्य सन्तानोत्पत्तिका प्रश्न तो पूछना ही नहीं है, आवश्यकता इस बातकी है कि यदि हममें अपने दस बच्चोंको सर्वथा योग्य बनानेका सामर्थ्य है, तो हम केवल दो ही सन्तान (अपने स्थानके लिए एक पुत्र, और अपनी स्त्रीके लिए पुत्री) उत्पन्न करें और बाकी शक्ति देशके उत्थानमें लगावें, अन्य सुयोग्य बच्चोंको चुनकर अपनी ही सन्तान मानकर उनकी शारीरिक और मानसिक दशाको ऊँचा करें जिससे वे सत्यवादी, बलवान्, दृढ, पुरुषार्थी, सच्चे देशभक्त और राजभक्त बनकर देशोद्धार कर सकें। भारतका भविष्य भारतकी भावी सन्तानकी योग्यता पर निर्भर है। यदि अन्य जातियोंके सम्मुख हमें जीवित रहना है, यदि हमें अपने राष्ट्रका नाम बचाना है, यदि संसारकी जीवित जातियोंमें सबसे पुरानी हिन्दू जातिका अस्तित्व स्थिर रखना है तो हम प्रत्येक भारतवासीको अन्य जातियोंके साथ जीवन-संघर्ष-प्रयास, रगड़ा-रगड़ी या दूसरे शब्दोंमें युद्धके लिए तैयारी करनी चाहिए। दूसरोंका अधिकार छीननेके लिए नहीं केवल अपना अधिकार पानेके लिए, अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिए, हमें भारतके भावी युद्धकी तैयारी कर रखना परम आवश्यक है। जनसंख्याकी बाढ़ तो रुकेगी और अवश्य रुकेगी। रुकनेका जरिया युद्ध हो चाहे दरिद्रता, दुर्भिक्ष या दुराचार।

राखै सोई जेहिते बनै,
जेहि बल होई सो लेइ।

' Never despair or despond ! go on, thoroughly united-come weal, come woe—never to rest but to persevere with every sacrifice till the victory of Selfgovernment is won '

—*Dadabhai Naoroji.*

' Be God-loving and Man-serving, be Pure, be Brave, be Strong. '

—*Mrs Besant*

' Befit yourself to fight your cause out. The tide is with us All Asia is waking The Isles of the East have made the start . . I hope you will carry the legal fight to the end '

—*Dadabhai Naoroji.*

तीसरा परिच्छेद ।
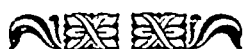
दैवी कारण—दरिद्रता ।

[दरिद्रतासे लज्जा उत्पन्न होती है । लज्जायुक्त अपने अधिकारसे गिर जाता है । अधिकारसे गिरे हुएका अपमान होता है । अपमान और तिरस्कारसे दु ख और दु खसे शोक उत्पन्न होता है । शोकसे बुद्धि हीन होती है और निर्बुद्धि नाशको प्राप्त होता है । इस प्रकार देखा जाता है कि दरिद्रता ही सारी आपत्तियोकी मूल है और इससे जनसख्याका नाश होता है ।]

भारतमें वेदान्तका बड़ा प्रचार है । वेदान्त संसारको असार, मिथ्या, मायायुक्त, इन्द्रजाल या बाजीगरका खेल बतलाता है । ऐसे विचार होनेसे भारतवासी धन तथा धनसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुको घृणित समझते हैं । परन्तु, धन पर ही सभ्यताका आश्रय है । संसारका इतिहास बताता है कि शिकार करनेवाली, पशुओंको चरानेवाली, कृषि करनेवाली जातियोंने क्रमश सम्पत्ति द्वारा ही अपनी उन्नति की है । नर नारी अपनी प्राकृतिक अवस्थासे असन्तुष्ट होकर उच्च होनेका यत्न करते हैं और इस तरह अपनी सभ्यता बढ़ाते हैं ।

धनिकोंकी आवश्यकतायें कम नहीं होतीं, वे प्रायः बढ़ती ही जाती है । उनकी पूर्तिके लिए नित्य नये आविष्कार, कला, कौशल और शिल्पादिकी वृद्धि करनी पड़ती है । क्रमशः एक समय ऐसा उपस्थित होता है कि लोगोको पौद्गलिक या जड़ (Material) चीजोसे असन्तुष्टता हो जाती है । वे इन प्राकृतिक पदार्थों (Materialism) से ऊपर उठना चाहते है । पर ऐसा विचार उसी समय उत्पन्न होता है जब शिक्षा, विज्ञान, कला, शिल्प और सम्पत्तिमें पूर्ण उन्नति हो जाती है । जिस समय भारतमे उपनिषद्, न्याय और दर्शनशास्त्र लिखे जा रहे थे, जब धर्म्म-शास्त्र और वैदिक मन्त्रोंकी रचना हो रही थी, या जब भारतकी आत्मविद्या पूर्णताके सबसे ऊँचे शिखर पर

पहुँच गई थी, उस महान् वैदिक कालमें धर्मपूर्वक धन कमानेकी चाल थी। देश धन, विद्या और अन्नसे परिपूर्ण था। उस समय लोगोंको पेटपूजाकी चिन्ता नहीं थी।

'अति' सब वस्तुओंकी हानिकारक होती है। धन तथा वेदान्तकी अतिसे भारत आत्मरक्षामें ढीला पड़ गया, जगल और पहाड़ोंको हिला देनेवाली, समुद्रको पार करके देश-देशान्तरोंमें व्यापार करनेवाली आर्य्य जाति घोड़ेसे उतरकर आत्मविद्याके सहारे आलस्यके मखमली गद्दे पर ऐसी सोई कि न आप जागी और न कोई इसे जगा ही सका।

जब भारतवर्पमें ऐश्वर्यकी पूर्ण वृद्धि हो गई, च वर्ती राज्यका सुख मिलने लगा, सब प्रकारके भोगोकी प्राप्ति होने लगी, तब वही संघशक्ति—वही बल-वर्द्धक शिक्षा और सम्पत्ति-जिसके आधार पर सब सामाजिक उन्नति तथा समृद्धि हुई थी, बन्धनके समान बोध होने लगी। मनुष्यमें पशुपन अधिक है। वह खुला घूमना चाहता है। आरण्यकोंके लिखनेवाले उपनिपदकारोने आत्मसम्बन्धी विचार प्रकट कर ही दिये थे, वह सामग्री इन स्वच्छन्द और पृथग्भाव (Isolation) वालोंके लिए जरूरतसे ज्यादा काफी हुई।

आध्यात्मिक शिक्षाके सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त—संसारमें शान्ति फैलानेवाले साहित्यरत्न—अनधिकारियोंके लिए नहीं हैं। सर्व साधारण और व्यावहारिक समाजमे जीवन-निर्वाहके भयंकर युद्धके लिए शान्तिके अतिरिक्त तलवारकी भी निरन्तर आवश्यकता रहती है। पूज्य ग्रन्थोसे भारतीय जनताने यथोचित लाभ नही उठाया। यहाँके अनधिकारियोने उनका वास्तविक अभिप्राय न समझा और धीरे धीरे शारीरिक, सामाजिक और राजनैतिक जिम्मेदारियोंकी जडोपर कुल्हाडा चलाकर बिलकुल 'ब्रह्म ही ब्रह्म' बननेका उपदेश दिया। जब सब ही ब्रह्म हो गये तब किसीका हुक्म मानना, किसीके हित या अहितका ख्याल रखना कैसा? बस खुली छुट्टी हो गई, संघशक्तिका बीज नष्ट हो गया।

किसी राज्यको अथवा उसकी सम्पत्तिको सुरक्षित रखनेके लिए वहाँकी प्रजाको खूब सावधान रहना आवश्यक है। यदि वह अपना अस्तित्व, मान और प्रतिष्ठाके साथ कायम रखना चाहती है तो उसे अपने पड़ोसियोंकी उन्नति अवनतिका ध्यान रखना चाहिए। भारतमें यूनानी आये, उन्होने हमें ठोकरें लगाईं; वे हमारे ग्रन्थ, हमारी सभ्यता चुरा ले गये—पर हम अगदा-

इयाँ लेते रहे। अरबके रेगिस्तानमें, एक जबर्दस्त शिक्षकका प्रादुर्भाव हुआ। उसकी शिक्षासे मानो ज्वालामुखी फट पड़ा। एक बड़ा जबर्दस्त भूचाल आया। महम्मदी तूफानी धावोंने भारतको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। वे हमारे ग्रन्थ, हमारे रत्न, हमारा धन क्या, सर्वस्व लूटा किये। महमूद, तैमूर और नादिरकी भाँति सैकड़ों विपत्तियाँ भारत पर आईं, परन्तु सारे भारतीय संकटके इतिहासमें महाराणा प्रताप, गुरुगोविंदसिंह और वीरकेसरी शिवाजी, बस इन्हीं तीन रणपुंगवोंका नाम सामने आता है। एक लीडर मर गया बस किस्सा खतम! दूसरा उसकी पूर्ति करनेवाला खड़ा नहीं होता। क्यों? क्या उस समय भी आर्म्सएक्टने (हथियार-सम्बन्धी कानूनने) लोगोको नामर्द बना रक्खा था?

नहीं, उस समय लोगोकी बुद्धि बिगड़ गई थी। यहाँके विद्वानोके दिमागमे 'गुरुडम'का भूत घुस गया था। ये समझते थे कि हमने जीवनका सबसे उच्च रहस्य जान लिया है, अब किसीसे कुछ सीखनेकी आवश्यकता नहीं। ये सार्वलौकिक स्वार्थ (Common interest) को अलग फेंककर 'पृथग्भाव' (Isolation) के सिद्धान्तके सहारे अपनेको समाजसे अलग कर सारी उन्नतियोंका केन्द्र अपने आपको मान, केवल अपने ही कल्याणकी चेष्टामें रत रहना अपना धर्म समझने लगे। इनके स्कूलोमे 'संसार असार' की शिक्षा दी जाने लगी। कवियोंने उसी पर कविता की, साधुओंने घूम घूम कर इसी विषय पर उपदेश दिया, सारे मतावलम्बियो और आचार्योंने अपने शिष्योको यही सिखाया, लेखकोंने इसी विषय पर बड़े बड़े पोथे लिख मारे, जिस पुस्तकको उठाइए उसमे यही राग अलापा गया है—सब एक स्वरसे कह रहे हैं कि 'ससार मिथ्या है, गृहस्थी सब जंजाल है'। जातिकी जाति इसी रगमे रग गई। यहाँके बच्चे व्यक्तिवादके सूत्र पढकर सब प्रकारके 'बन्धनो' से मुक्त होनेकी चेष्टामे निमग्न रहने लगे। 'संसार' और 'समाज' के प्रति जो भारतजनताके कर्तव्य थे, वे 'बन्धन' समझे जाने लगे। मनुष्यत्व लाभ करनेके उच्च साधनरूप गृहस्थसम्बन्धी सत्रामको 'जजाल' की उपाधि दी गई। संपत्तिका उपार्जन, राजकार्य्य, सेना-साज, किलेबन्दी, युद्धविद्या आदि देशहितकर कार्य जगलीपनकी गणनामे कर दिये गये। भारतजनताका सबसे बड़ा उद्देश्य 'सब नियमोसे रहित' (No Law) अर्थात जीवन्मुक्त हो गया।

चरम सीमा पर पहुंचे हुए इस व्यक्तिवादकी दूषित शिक्षाने भारतकी सब नसें ढीली कर दीं। त्याग और जीवनन्मुक्तिके झूठे गपोड़ोंने भारतको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अप्रतिबन्ध (Non-resistance) के सिद्धान्तोंने सैकड़ों रूप धारण किये और भारतवासी उनके सहारे मस्त सोया किये।

जिस देशमे सैकड़ों वर्षोंतक कायरता, अकर्मण्यता, व्यभिचार आदिको वैराग्य त्याग और जीवन्मुक्तकी उपाधियोसे विभूषित कर आदर्शरूप बना दिया गया हो, उस देशके बच्चे यदि जूतोंसे पिटने पर भी उसको 'माया' या 'दुर्भाग्य' कहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? आज भी उन्हीं गन्दे, लचर, कायरतापूर्ण सिद्धान्तोपर पले हुए लाखों, करोड़ो भारतीय विद्यमान हैं जो स्वयं अपने, अपनी समाज और अपने देशके ऊपर होते हुए लाखों अन्यायोके विरुद्ध एक अंगुली भी नहीं उठायेंगे। अपनी दरिद्रताको, अपनी अशिक्षितताको, काल, कहत, मरी, हैजा, प्लेग, आदि सबको अपनी जिम्मेदारीसे हटा, खोटे भाग्य, ईश्वरेच्छा, और राजाके मत्थे मँढ़ आप अलग हो जायेंगे।

इससे मेरा अभिप्राय अपने पूज्य ग्रन्थो या पवित्र आदर्शोंके प्रति अनादर प्रकट करना नहीं है। हमारा आदर्श जीवन्मुक्ति रहे। हम जो कुछ करें वह मुक्तिके लिए करें। भोजन पेट भरनेके लिए या सुस्वादके लिए न करें बल्कि इस लिए कि शरीर पुष्ट करके निर्मल बुद्धिद्वारा समाज, जाति, राष्ट्र, और संसारकी सेवाद्वारा मुक्तिलाभ करें। हम भोग करें, विषयवासनाके लिए नहीं, बल्कि उत्तम प्रजा उत्पन्न करनेके लिए, जो संसारकी सेवा करके जीवन्मुक्तिके पथको सुगम बनावे। हम तलवार उठावे, युद्ध करें, खूनकी नदियाँ तक बहा डालें, पर उद्देश मोक्ष हो। जो कार्य्य स्वार्थसिद्धिके लिए किया जायगा वह मोक्षके बदले उलटा बन्धनका कारण होगा। पर जो कार्य मोक्षको लक्ष्य मानकर स्वार्थत्याग करके किया जायगा वह स्वतन्त्रता और मोक्षका देनेवाला होगा। समाज और ससारसे पृथक् होनेका नाम त्याग नहीं है। सच्चा त्यागी वही है जो अपने आपको, अपने स्वार्थको त्याग कर समाज और ससारके कल्याणके लिए तप, जप, योग और तपस्या करे। ऐसे ही लोकहितैषी महान् पुरुषोंने आर्य जातिकी नीव डाली थी। ऐसे ही महापुरुषोंने ऋषि, मुनि, त्यागी और वैरागीकी प्रतिष्ठित उपाधि पाई है जिन्होंने भारतीय साम्राज्यको ऐसे उत्तम रीतिसे स्थापित किया कि सहस्रो वर्षोंके अनेक कोपोके आजाने पर भी उस महान साम्राज्यका अस्तित्व स्थिर रहा।

सारांश यह कि सम्पत्तिको घृणित दृष्टिसे देखना, धन पैदा करनेका पूर्ण यत्न न करना ही अधर्म है। प्राचीन आर्य्य, अपने आरम्भिक निवासस्थानको छोड़कर भारतमें आ बसे केवल धनके लिए, दारा, सिकन्दर, महमूद, तैमूर आदिने भारतपर जो आक्रमण किये सो धनके लिए, संसार मात्रमे जो खूनकी नदियॉ बही हैं वे सब धनके लिए। शरीररक्षाके लिए धनकी जरूरत है। विद्या और सदाचारके लिए धनकी जरूरत है। सभ्यताकी उन्नतिके लिए धन आवश्यक है। धर्मकी रक्षाके लिए धनकी जरूरत है। सच तो यह है कि नाना प्रकारके उत्तम गुणोंकी रक्षा और वृद्धि एकमात्र धनसे ही होती है। लक्ष्मी देवीकी भक्ति और श्रद्धासे ही सुखोंकी वर्षा, धर्मकी वृद्धि और सरस्वतीके दर्शन होते हैं।

दरिद्रता, भिक्षा और दासत्व (गुलामी) पापोके फल है। निर्धन दुर्बल होते हैं और इन अभागोकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जिससे प्राय. बहुतसे काम निष्फल जाते हैं। दरिद्र आत्मघात करते है, जंगलोंमें भाग जाते हैं, शत्रुओके वशमें पड़ जाते हैं और क्रमश· नाश हो जाते है। जिस प्रकार मरते हुए पुरुषके मुखपर पसीना, पीलापन तथा कम्पन होता है, उसी प्रकार धनहीन दरिद्रमें भी ये सब लक्षण होते हैं। दरिद्री पुरुप, पक्षरहित पक्षी, सूखे वृक्ष तथा जलरहित सरोवरके तुल्य लोकमें रहता है। दरिद्रताके साथ यदि मूर्खता भी है तो दु खकी सीमा नहीं है। ऐसे धनहीन मनुष्योसे बनी हुई जाति मरी हुई है। निर्धन और मुर्देमें कोई भेद नहीं होता।

भारतमें दरिद्रताकी काली राक्षसीका राज्य है। यह अभागा देश दरिद्रता और मूर्खतासे नष्ट भ्रष्ट हो रहा है, पर तो भी भारतवासी हाथपर हाथ रक्खे अपनेको और अपने देशको धनका केन्द्र माने हुए सन्तुष्ट बैठे है।

इलाहाबादकी १९१०-११ की प्रसिद्ध प्रदर्शनीमें, बाबू महेशचरणसिंह बी० ए०, एम एस० सी० (प्रो० गुरुकुल) मुझसे कहने लगे कि "हिन्दुस्तानकी दशा लोग नाहक बिगड़ी हुई बताते हैं। देखिए प्रायः सभी लोग साफ, सुथरे, सुन्दर कीमती कपडे पहने है। खेल तमाशे खूब देखते हैं। आजकाल प्रदर्शिनीके तमाशेवालोकी प्रतिदिनकी आमदनी लगभग एक लाख रुपये है। यदि भारतवासी सत्य ही गरीब होते तो इस ठाटबाटसे न रहते और न थियेटर और गौहर जानके गानेमें इतना रुपया फेंकते।"

मैंने उत्तर दिया कि " यह बड़े दिनोंकी छुट्टियोंका समय है। यहाँ भारतके बड़े लोग—राजे, महाराजे, ताल्लुकेदार, जमींदार, सरकारी कर्मचारी, वकील मुख्तार आदि धनी और फैशनेबुल जेटलमेन—आये है। एकमात्र इन बड़े आदमियोंसे भारतका अनुमान नहीं हो सकता। आपने बलिया, बस्ती, एटा, इटावा आदिके देहाती रईसोको जो थर्डक्लास स्पेशल ट्रेनमे कसकर भेजे गये हैं नहीं देखा, नहीं तो आप ऐसी बात न कहते।"

बाबूसाहब कहने लगे कि " नहीं जी, देहाती भी बहुत अच्छी हालतमें है। गॅवार होनेसे कपड़ोका कुछ लिहाज नहीं रखते, पर रुपया गाड़कर रखते हैं या जेवर बनवाते हैं।"

यही ख्याल हमारे बहुतसे नवयुवकोका है। उनकी आँखोंकी रोशनी खराब हो गई है। लारेंस एण्ड मेओ कम्पनीके चश्मोसे, वे चीजोंको जरूरतसे ज्यादा चमकीली देखते है। आँखोंके चारों तरफ नकली सुनहरा फ्रेम है, इससे इन्हें देशमें सोना ही सोना दिखाई देता है। 'आप भला तो जग भला' का मामला है।

हमें दिखाना यह है कि हमारी सच्ची दशा क्या है। संसारके अन्य सभ्य देशोकी तरह भारत भी सुख सम्पत्तिसे परिपूर्ण है या दरिद्रता इस देशका सर्वनाश कर रही है।

धन शब्दसे केवल रुपये पैसेका बोध होता है पर सम्पत्तिका अर्थ 'मानवीय आवश्यकताओंको पूरा करनेका साध्य और साधन' है। † इसमे पूँजी, श्रम, शिक्षा, विज्ञान, पशु और प्राकृतिक कारण आदि सभी बातें आ जाती हैं। प्रत्येकका वर्णन करना इस छोटी सी पुस्तकमें असम्भव है। अतः मामूली और मोटी मोटी बातो पर विचार किया जाता है।

हमारा पशु-धन।

प्रत्येक देशमें पालतू पशु देशीय सम्पत्तिका बड़ा भारी अंग है। भारत अन्य देशोके सम्मुख पशु-धनमें भी दरिद्र है। हम नाम मात्रको गोको माता मानते है, पर वस्तुत उन्हे गन्दी जगहमे रखते है, गन्दा पानी पिलाते

---

† Wealth consists of all potentially exchangeable means of satisfying human needs—*Keynes*

अर्थात् मनुष्यकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाले जितने ऐसे साधन हैं जिनका विनिमय हो सकता हो वे सब धन-सम्पत्तिके अंतर्गत हैं।

हैं और आहारका प्रबन्ध नहीं कर सकते। यहाँ अकाल पड़ने अथवा पशुरोग फैलने पर तो ७५ फी सदी तक पशु मरते पाये गये हैं।

सन् १९०० ई० में बंगाल प्रांतका हिसाब तैयार नहीं था। बंगालको छोड़कर सारे भारतके पालतू पशुओंकी कुल संख्या ९०७ लाख थी। आस्ट्रेलियाकी जनसंख्या कुछ ४० लाख है, पर वहाँ उसी सन्में १,१३५ लाख पशु थे।

भारत और आस्ट्रेलियाकी आबादीके हिसाबसे भारतमे २६,२८० लाख पशु होने चाहिए थे, किन्तु थे केवल ९०७ लाख। अर्थात् यहाँ पर २५,३७३ लाख या ढाई अरबसे भी अधिक पशुओकी कमी है।*

भारतमें उपयोगी पशुओंकी संख्या दिनों दिन कम होती जा रही है और उनके दूधकी मात्रा, बल और कद सब घटता जा रहा है और अन्य देशोंमे×

* विलियम डिग्बी सी आई ई।

और इसमें भी विलक्षणता यह है कि यहाँ दिन पर दिन पशु बराबर घटते ी जाते हैं। सन् १८९३-९४ में भारतमे जितने पशु थे उनके हिसाबसे सन् १९०८—०९ मे बुंदेलखण्डमें प्रति सैकड़ा ४, युक्तप्रातमे ३, गुजरातमे १८, दक्षिणमे २०, बरारमे ४, और मदरासमे ४की कमी हो गई, अर्थात् १५ वर्षोंमें सारे भारतमे औसत ७¼ पशु प्रति सैकड़ा घट गये।

× भिन्न भिन्न देशोंमे पशुओंकी सख्याका ब्योरा —

सन् १९१७

देश	घोड़े	गाय बैल	भेड़	बकरी	सुअर	प्रतिमनुष्य पशु
	लाख	लाख	लाख	लाख	लाख	
इग्लैंड	१८ ३/४	१२२	२७८	.	२०	१०
आस्ट्रेलिया	२४ ३/२	९९-	७२८ १/२		८ ३/४	१७०
कनाडा	३४	८०	२३ १/५		३६ ३/४	२३
फ्रांस	२४	१२४-	१०६		४२	१३
जर्मनी	३३ १/५	२१४-	६१ ३/५	४३ १/५	१७२	९
जापान	१५ ३/४	१८		१	३-	२४
अमेरिका	२१२	६४५-	४७६		६४५	२४
भारत सन् १९१२	१७	१५००	२३०	३३६	..	.७

बढ़ता दीखता है। डेन्मार्कमें १८८१ में लाख ९ गायें थीं, १९०८ में इनकी संख्या १३ लाख हो गई। १९१८ में प्रत्येक गाय प्रति वर्ष ४५० गैलन दूध देती थी पर १९०८ में बढ़ कर ५८५ गैलन प्रतिवर्ष प्रति गाय हो गया।

अन्य देशोंमें जहाँ फसलोंकी पैदावार भारतसे कहीं अधिक है, वहाँके लोग पशु और अण्डजोंको वैज्ञानिक रीतिसे पालकर मालामाल हो जाते हैं और भारतनिवासी मूर्खता और दरिद्रतावश पशुओंकी संख्या बढ़ानेके बदले घटाते जा रहे हैं। यहाँ उत्तम वैज्ञानिक पशु-शाला एक भी नहीं है, पर ईदके दिन लाखों गायोंकी एक ही दिनमें नाहक कुरबानी कर दी जायगी।

१९१० में यहाँ ७५,४५८ गोरे फौजी सिपाही और २,६६४ अफसर थे। ये कुल ७८,११२ हुए। इनकी खास गिजा बीफ अर्थात् गोमांस है। यदि प्रतिजन एक पौंड रख लिया जाय तो प्रतिदिन ९४६ मन या प्रति वर्ष ३,४५,२९० मन हुआ। यह भारतवासियोंकी प्रार्थना और अपील करने पर भी आस्ट्रेलिया—जहाँसे सुविधासे आ सकता है—न मँगाया जाकर भारतवर्षसे ही जबरदस्ती लिया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर ६ करोड़ मुसलमान हैं जो दरिद्रतावश बकरीका मांस न खरीद कर टके सेरवाला सस्ता गोमास खाते हैं। मानो गाय मुसलमानोंके बच्चोंको दूध पिला कर पुष्ट नहीं करती और अरबसे ऊँट आकर इनके खेत जोत जाते हैं।

यहाँ पर ३,४५,९३२ कसाई हैं। अन्य देशोंमें भी कसाई है और मास खानेवाले हैं, पर वे यहाँके मासाहारियोंकी तरह अपनी दूध देनेवाली गायोंके

पहले सस्करणमें सन् १९०६–०७ का हिसाव दिया गया था।–सशोधक।

भिन्न भिन्न देशोंके पशुओंकी तुलना करते समय इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि अन्यान्य देशोंमे कृषि आदिका सारा काम प्राय मशीनो आदिसे होता है, पर भारतमें वह सब काम केवल बैलो आदिसे ही लिया जाता है। सन् १९१३ मे यहाँ पर कुल ४ करोड गाये और भैसें थी। ये साल भरतक दूध न देकर आधे साल दूध देती है। यानी ३१ करोड़ भारतवासी केवल २ करोड गाय भैसोंके दूधपर बसर करते है। औसत निकालनेसे १५ जन पीछे एक गाय या भैंस पड़ता है।

गले काटकर देशपर छुरी नहीं फेरते। वहाँ पशु खास इसी गरजसे पाले जाते हैं। उन देशोंके निवासी राष्ट्रकी जड़पर कुठाराघात नहीं करते। *

दरिद्रताके कारण गाय बैल रखनेका रिवाज, उन्हें वैज्ञानिक रीतिसे पालनेकी बात तो उठती जाती है, दरिद्र देहाती किसान और ब्राह्मण जान बूझकर कसाई और कमसरियटवालोंके हाथ गायें वेचते हैं। करें क्या? जब भार नहीं उठा सकते तो यही सही। और दूसरी ओर हमारे मनचले हिन्दू विना कोरमा कबाबके लुकमा नहीं उठाते। इसका परिणाम यह होता है कि दरिद्र मुसलमान बकरीका मांस खरीदनेमें असमर्थ होकर सस्ती गायपर हाथ साफ करते हैं। २० करोड़ मांसाहारी पवित्र भारतमें भी हैं!

हा! वे तपोधन ऋषि कहाँ? सन्तान उनकी हम कहाँ?
थी पुण्यभूमि पवित्र जो हा! आज ऐसा अघ वहाँ!
दीपक-शिखाके धूम जैसे पूर्वजोंके हम हुए,
वे लोकमें आलोक थे, हा! हम भयंकर तम हुए!

हमारा पैतृक और संचित धन।

'Half our agricultural population never know from year's beginning to year's end what it is to have their hunger fully satisfied'

C. A. Elliot, G. S. I.

---

* भारतने १८९९से १९०९ तक दस वर्षोंमे ३२,०८, ८०९ जीवित पशु—जिनका मूल्य २, ०५, ०४, ७३० रुपया था—जलकी राह अर्थात् जहाजद्वारा वाहर भेजे और १५,७५,९२७ जीवित पशु—जिनका मूल्य ९४,७५,५६५ रुपया था—स्थलकी राहसे ईराण, तिब्बत आदि भेजे। अमेरिकाके किसानोंने १८९९ में ४१ करोड़ रुपयेके अण्डज जीव वेचे और ४३ करोड़के अण्डे!

जापानमे १९०४ मे १,६२,५०,००० मुर्गियाँ और ७५ करोड़ अण्डे हुए। इंग्लैण्डने सन् १९१२-१३ मे एक वर्षमें २३ करोड़ रुपया, जर्मनीने ३ करोड़, फ्रान्सने १ करोड़, नार्वेने ७ करोड़ और केनाडाने ११ करोड़ रुपया मछली पकड़कर कमाया।

अर्थात्—'हमारे (भारतके) आधे खेतिहर सालके शुरूसे लेकर सालके अन्त तक यह नहीं जानते कि पेटभर खाना किसे कहते हैं।'

—सी ए एलियट।

'The remaining 40 millions go through life on insufficient food'

Dr W. W Hunter, C I E.

अर्थात्–'बाकी ४ करोड़ पेटभर अन्न न खाकर किसी तरह जिन्दगीके दिन पूरा करते हैं।'

—डाक्टर हण्टर।

'40 millions of people are in a state of chronic starvation, not knowing from January to December, what it is to eat anb be satisfied, the ir worm of hunger dieth not!'

—*William Digby*, C I E.

अर्थात्–'४० मिलियन (४ करोड़) भारतवासियोंको पेटभर अन्न न मिलनेका बहुत पुराना रोग है। वे, जनवरीसे दिसम्बर तक, नहीं जानते कि पेटभर भोजन किस चिड़ियाका नाम है—उनकी क्षुधाकी दाह नहीं बुझती, उनकी भूखका कीड़ा नहीं मरता!'

—विलियम डिग्बी।

'भारतवासियोकी पैतृक सम्पत्तिका मूल्य प्रतिजन १४≡) और इंग्लैण्ड-वालोंका ४,५७० रुपया आँका जाता है। कुछ लोग भारतवासियोंकी पैतृक सम्पत्तिका मूल्य प्रतिजन ७५ रुपया आँकते है, पर यह अत्यन्त अधिक है यदि १४≡) की जगह ७५ रु० ही मान लिया जाय, तो भी कहाँ ४,५७० रु० और कहाँ ७५ रु०! कहाँ राजा भोज और कहाँ गाँगू तेली! *'

भारतकी जातीय सम्पत्तिका अनुमान ५४ अरब रुपया किया जाता है। अमेरिकाकी जातीय सम्पत्तिका अनुमान ३२१ अरब रुपया, जर्मनीका २४० अरब और ग्रेटब्रिटन आयर्लैण्डका २७० अरब रुपया अनुमान किया जाता है।' +

सन् १८५० में प्रत्येक भारतवासीकी आमदनी प्रति दिन ८ पैसे थी, सन् १८८२ मे सरकारी रिपोर्ट द्वारा हमारी आमदनी फी आदमी फी दिन ६ पैसे ठहरी, और सन् १९०० मे डिग्बी साहबके हिसाबसे यह घट कर

* The prosperous British India

+ Sandhurst Economics

कुल ३ पैसे हो गई! भारतवासियोंकी आमदनी फी दिन फी आदमी तीन पैसे, अमेरिकावालोंकी ३० आने, आस्ट्रेलियाकी ३० आने, इंग्लैण्डकी २४ आने और फ्रांसकी २० आने है। +

---

* १०,०००	राजे महाराजे और ताल्लुकेदार जिनकी आमदनीका औसत प्रतिजन प्रति वर्ष ५००० पौण्ड है	५,००,००,०००० पौ०
७५,०००	महाजन, बैंकर, साहूकार आदि जिनकी आमदनी प्रतिजन प्रतिवर्ष १००० पौ० है ...	पौ० ७,५०,००,००० ,,
७,५०,०००	रोजगारी और दूकानदार जिनकी आमदनी १०० पौ० की है ...	७,५०,००,००० ,,
८,३५,०००	जनोंकी वार्षिक आमदनी हुई—	२०,००,००,००० पौ०
	ब्रिटिश भारतकी कुल आमदनीका टोटल	२६,६०,००, ०० पौ०
	देशी राज्योंकी आमदनीका टो० ...	१२,६३,६३,१३८ ,,
	सम्पूर्ण भारतकी कुल आमदनीका टो०	३९,२३,६३,१३८ पौ०

$$\frac{\text{३९,२३,६३,१३८ पौ०—२९,४२,६६,७०२ जन}}{\text{३६५ दिन}} = \text{–पेन्स}$$

अत प्रत्येक भारतवासीकी आमदनी प्रति दिन कुल ३ पैसे होती है। **नोट**—राजे महाराजे और अन्य बड़ी आमदनीवालोंके खर्च भी बेहिसाब होते हैं। यदि उनकी आमदनी निकाल दी जाय तो सामान्य जनकी रोजाना आमदनी कुल २ पैसे रोजकी ठहरती है।

+ १८९४ में प्रतिजनकी आमदनीका ब्योरा —

अमेरिका, प्रतिजन प्रतिदिन . .	३० आने
आस्ट्रेलिया	३० ,,
इग्लैण्ड (U. K)...	२४ ,,
केनाडा	२८ ,,
फ्रान्स	२० ,,

नौकरी पेशेवालोंकी आमदनी ।

'We know that the people of India are virtually debarred from the higher posts in India, except a very small percentage and that Fifteen Millions sterling are annually paid to European officials employed in India, sending all their savings to Europe.—D Smeaton, Member of Lord Curzon's Council.

अर्थात्—'हम जानते हैं कि सिवाय एक तुच्छ संख्याके भारतमें भारतवासियोंको उच्च पदकी नौकरियाँ नहीं दी जातीं। हमें मालूम है कि १५ मिलियन स्टर्लिंग (२२½ करोड़ रुपया) गोरे सरकारी कर्मचारियोंको भारतमें तनख्वाह दी जाती है, जो अपनी सारी बचत विदेश भेजा करते हैं।'

—स्मीटन, (लार्ड कर्जनकी कौन्सिलके मेम्बर।)

' As a matter of fact, however, the bigger appaintments in almost all the branches of the public service are held by Europeans ....'—

—*Hon Surendra Nath Banerjee.*

जर्मनी	१६ ,,
आस्ट्रिया	११ ,,
इटली	१० ,,
भारत	४ ,,

दूसरे सज्जन भिन्न भिन्न देशोकी जातीय सम्पत्तिका अनुमान यह बताते हैं—‡

देश	जातीय धनका अनुमान, पौण्ड	प्रति-पुरुष पौ०	जातीय आय पौ०	प्रति पुरुष आय पौ०	रिमार्क.
इग्लैंड U k.	१५८८२००००००	३५१	२०१६००००००	४४	जातीय सम्पत्ति और भारतवासियोंकी आयका हिसाब भिन्न भिन्न पुरुष भिन्न भिन्न अनुमान करते हैं।
केनाडा	२०७२००००००	२८८	२५९००००००	३६	
आस्ट्रेलिया	१३१२००००००	२८७	१६४००००००	३६	
जर्मनी	१६०००००००००	२५०	१७५०००००००	२७	
अमेरिका	१८०००००००००	२२५	३०००००००००	३७	
भारत	३६०००००००	१०	६०८००००००	२	

‡ The Britannica Year Book 1913
Webb's New Dictionary of Statistics

अर्थात्—' सच तो यह है कि करीब सब ही बड़ी जगहें, हर महकमेंमें ॲंगरेजोंको मिलती हैं। '

—मा० सुरेन्द्रनाथ ब० ।

'.....That the costly foreign agency absorbs a large poriton af the revenue. ... '

—*D. E. Wacha.*

—' विदेशी राजकर्मचारी देशकी मालगुजारीका बहुत बड़ा हिस्सा हजम कर जाते हैं . '

—डी. ई. वाछा ।

सिविलसर्विस-विभाग ।

	यूरोपियन	इण्डियन
इण्डियन सिविल सार्विस	१२३८	५६
अनकावनैण्टेड सिविल सर्वेण्ट्स	११८	४
प्राविन्शियल सिविल सर्वेण्ट्स	७	४०
स्टेचुरी सिविल सार्विस	...	१५

पब्लिकवर्क्स-विभाग ।

	यूरोपियन	इण्डियन
इम्पीरियल एग्जिक्यूटिव और सुपरिण्टेण्डिंग	३०८	४७
इम्पीरियल असिस्टेण्ट इंजिनियर्स	२३६	१३
प्राविन्शियल इंजिनियर्स	५९	११३

पुलिस-विभाग ।

	यूरोपियन	इण्डियन
इन्सपेक्टर जनरल आफ पुलिस	१०	...
डिप्टी और असिस्टेण्ट इन्सेक्टर जनरल	३२	...
सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस	३३०	७
असिस्टेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट्स	३०८	.

शिक्षा-विभाग ।

	यूरोपियन	इण्डियन
इण्डियन एजुकेशनल सर्विस	१८६	४
अनक्लसिफाइड	[illegible]	[illegible]

प्राविन्शियल ५४ ३२३

ऊपरके विवरणसे यूरोपियन और इण्डियन पदाधिकारियोंकी सख्याका पता लग सकता है।

अब तनख्वाहका हिसाब देखिए। पहले हम छोटी तनख्वाहसे शुरू करते हैं।

‡ "एक हजार रुपया साल (या ८३$\frac{1}{3}$ रुपया मासिक) से अधिक तनख्वाहके ३९,००० राजकर्मचारी हैं। इनमेंसे २८,००० गोरे, और ११ हजार हिन्दुस्तानी हैं। २८,००० गोरे फी साल १५ मिलियन स्टरलिंग पाते हैं, जो लगभग २२$\frac{1}{2}$ करोड़ रुपयेके होता है, और ११,००० हिन्दुस्तानी कुल ३ मिलियन पाते हैं, जो लगभग ४$\frac{1}{2}$ करोड़के होता है।"

—सर रमेशचन्द्र दत्त।

५००) रुपये × से अधिक वेतन पानेवाले—

	सन् १८६७ ई०	१९०३ ई०	१९१५ ई०
यूरोपियन	२,०४८	३,२५४	४,३६६
भारतवासी	१३४	६०६	९२४

+ १०,००० रु०, या इससे अधिक सालाना वेतन पानेवाले २,३८८ राजकर्मचारी हैं उनमेंसे कुल ३० हिन्दुस्तानी और बाकी ३,३५८ यूरोपियन

· इम्पीरियल और प्राविन्शियल सर्विसमे बड़ा भेद है। इम्पीरियल वालोंकी तनख्वाह शुरूसे ज्यादह होती है और उसमे हरसाल आपसे आप तरक्की होनेका नियम है और प्राविन्शियल सर्विस हर विभागमें, छोटी तनख्वाहसे शुरु होती है और इसमे तरक्की सिफारिश और अच्छा काम करनेपर निर्भर है, इससे वह बहुत देरमे होती है और तनख्वाह कम होती है।

‡ Extract from a letter Dt. 21st April 1900, to the Editor 'Manchester Guardian'

× Figures taken from the reply of the Government of India, to the enquiry of the Honorable Raja of Degpatia 1912

+ The Hon. Mr G K Gokhale, C I E., on the exclusion of the people of India from high appointments in India

और यूरेशियन हैं। हिन्दुस्तानी १०,२०,०० रुपया पाते हैं और गोरे (यूरोपियन २,३१३ यूरेशियन १५) ४,२२,७७,००० रुपया पाते हैं।

इसके अलावा १०५ अफसर रेलवेमें हैं जो १०,००० रु० सालसे अधिक पाते हैं। ये सबके सब यूरोपियन हैं। इनकी तनख्वाहका जोड़ १६ लाख २८ हजार रुपया होता है।

५,००० से १०,००० तक सालाना वेतन पानेवाले ३,६३७ यूरोपियन और यूरेशियन हैं, और कुल ५३५ हिन्दुस्तानी हैं। गोरोंका वेतन २,७७,२०,००० है और हिन्दुस्तानियोंका वेतन कुल ३६,३१,००० रुपया है।

इनके अतिरिक्त पूर्वोक्त वेतनके २५८ अफसर रेलवेमें हैं। उनमेंसे २४८ यूरोपियन, ८ यूरेशियन और कुल २ हिन्दुस्तानी हैं। यूरोपियन १७,१०,०००, यूरेशियन ५०,००० और हिन्दुस्तानी कुल १२,००० रुपया पाते हैं।

गवर्नमेंण्ट आफ इंडियाको १,२५,३६० पौण्ड या (१८,८०,४०० रुपया) और रेलवे कम्पनीको ५४,५२२ पौण्ड (या ८,१७,८८० रुपया) इंग्लैण्डमें, वहाँके कर्मचारियोंको वेतन देना होता है। और ये सब यूरोपियन हैं।

" इसके अलावा एक भारी रकम पेन्शन और फरलो (छुट्टी) की विलायत जाती है और इसके पानेवाले यूरोपियन हैं। सन् १८९० में ३½ मिलियन स्टरलिंगसे अधिक (सवा पाच करोड रुपया) केवल इसी मद्दमें यूरोपियनोंको इंग्लैंडमें अदा किया गया। इस बड़े खर्चवाली विदेशी एजेन्सीसे केवल आर्थिक हानि ही नहीं है, इससे हममे एक प्रकारकी मानसिक अनुन्नति ऐसी आ रही है कि जिससे सारी नेशन दुर्बलतासे नीचे गिरी जा रही है। हमारे उच्चभाव नष्ट हो रहे हैं। हम हर जगह झुके रहते है और अपनेको अयोग्य समझा करते हैं यहाँतक कि हममें, सबसे योग्य, सुशिक्षित, प्रतापशाली नेताओंको भी झुकना पड़ता है कि विदेशी सतुष्ट रहें।"—माननीय गोपाल कृष्ण गोखले मी आई ई।

स्वर्गवासी महारानी विक्टोरियाकी प्रतिज्ञा है कि—" जहाँतक हो सके हमारी प्रजा चाहे वह किसी भी जाति या फिरकेकी क्यो न हो, उसे उसकी शिक्षा, योग्यता, बुद्धिमत्ता तथा ईमानदारीके अनुसार बिना तरफदारीके स्वतन्त्रतापूर्वक हमारे तमाम महकमोंमे नौकरी दी जाय।'

" And it is our Further will, that so far as may be, our Subjects, of whatever Race or Creed, be freely and impar-

tially admitted to offices in our service the duties of which they may be qualified by their education, ability and integrity, duly to discharge '

स्वर्गवासी महाराज एडवर्डने अपनी पूजनीया माताकी प्रतिज्ञा बराबर पालन की और उनके बाद हमारे वर्त्तमान महाराज माननीय पञ्चम जार्ज, अपने दिल्लीके घोपणापत्र द्वारा भारतवासियोंको विश्वास दिला गये हैं कि वे अपने सुयोग्य पूर्वजोंकी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर भलीभाँति उसका पालन और निर्वाह करेंगे।

What strength, O England, shall be thine
When such prosperity is mine ?
Contentment !—What contentment lies
In that poor slavish heart
That dumb despair, with sunken eyes
That bears its ills and rather dies
A thousand deaths than dare to rise
And play a free man's part

Punch, July. 1901

प्रिय पाठक, सब बातोंका भार अब आप ही पर रहा। यदि आप चाहें तो कमसे कम एक गिरे हुए भाईको, एक निर्धन बहिनको, विद्याध्ययनसे सहायता देकर, ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी बनाकर, नेशनको जरा सा ऊपर उठा दे—जिससे कि आपके बनाये हुए योग्य युवक या युवतियाँ, देशकी सेवा करते हुए, अपना खोया हुआ हक या गौरव पुन प्राप्त करें। अथवा, आप चाहें तो आप भी पुराने लकीरके फकीर बन बैठें और (Eat, drink and be merry) ' खाओ पिओ और मजे उड़ाओ ' के सिद्धान्तको मानें और मरते वक्त एक या अधिक अयोग्य संतानें छोड़ जायँ कि जो मातृभूमिके भार और नेशनको एक इञ्च नीचे ले जानेवाले हों—आप जीते जी ही नरकका घोर दुःख सहन करें और अपने साथ देशवासियोंको भी घसीटते जायँ। जो हो, दोनों बातें आपहीके हाथोंमें हैं।

सन् १९१२ में मिरजापुरकी दीवानी कचहरीकी कुल तनख्वाह ३९०० रुपया मासिक थी। उसमेंसे बूढ़े जज मिस्टर मायर २४००, सब जज ४५०, मुन्सिफ २००, मुन्सरिम २००, मुतराज्जिम १०० रु० पाते हैं और बाकी

५३० रुपयेमें ७२ अन्य अहल्कार अपना निर्वाह करते हैं।× इनमेंसे कुछ प्यादे ५ रु० पाते हैं, कुछ मुंशी १०, बाजे १५ या इससे अधिक पाते हैं, पर सबोंकी औसत निकालनेसे ८ रुपया मासिक फी अहल्कार पड़ती है। जजको छोड़ सभी अमले चपरासी तक बाल-बच्चेवाले हैं। सभीको अपने पेटके अलावा घरके अन्य प्राणियोंकी सहायता करनी पड़ती है। फिर ये ८ रुपयेकी औसतवाले जीते कैसे हैं? किस तरह अपनी और अपने बालबच्चोंकी उदरपूर्ति कर सकते हैं? इसका जवाब बहुत सहल है, सिर्फ एक शब्दमें काम निकल जायगा, उसे ' रिश्वत ' कहते हैं।

मुहाफिज दफ्तरके बड़े लड़के (रजिस्ट्रेशन क्लार्क) अभी ३ महीने तक रिश्वतके मुकदमेमें मुअत्तल थे। दूसरे छोटे लड़के चुंगीमें मोहर्रिर थे, उनको ६ महीनेकी सजा हो गई। कायममुकाम नाजिरको कुछ ऐसे ही मामलोंके कारण इस्तीफा देना पड़ा—आदत कब छूटती है, या यों कहिए कि बालबच्चोंकी सख्त जरूरत कब छोड़ती है। आप मिरजापुरसे इस्तीफा देकर बनारस स्टेटमें आये। वहाँ आपने एक बड़ी रकमको गबन किया। गिरफ्तार हुए, माल बरामद हुआ और वे आजकल कारागारका सुख भोग रहे हैं। पुराने नाजिरजीका लड़का उसी नाजिरातमें ५ रु० का चपरासी है।

मुन्सरिम साहब रँडुए हैं, रोटी अपने हाथसे बनाते हैं, और काम, कचहरीके खुशामदी प्यादे कर देते हैं। बडे लड़के पुलिसमें किसी एक पद पर हैं और छोटे चुंगीके मुलाजिम हैं। सबजज साहबके पास गाड़ी है, घोड़ा नहीं है, कचहरी पैदल जाते हैं। मुन्सिफ साहबके पास दोनो चीजें नहीं हैं। मेले तमाशोंमें या किसी दावतमें अपने आधे दर्जन लड़कोंके साथ, शहरके महाजनोंकी गाड़ीपर दिखाई देते हैं। यह दुर्दशा तो उन अमलोंकी है जो अच्छी तनख्वाहवाले कहे जाते हैं। अब छोटोंकी दशा देखिए—

मुंशी रामजियावनलाल, मोहरिर सिविल कोर्ट, वेतन १५ रु० मासिक, साकिन अमिलहा, (मिरजापुर) जीवित हैं। नौकरीके सिवा आमदनीका कोई दूसरा जरिया नहीं। आपको २६ लड़के हुए। एक अधमुए सूरजनारा-

× Through Mr K N Khandelwal B A. LL B the then Central Nazir.

यनको छोड़कर सब मर गये। (और नहीं तो क्या जीते रहेंगे ? १५ रुपयेमें स्त्री पुरुष और लड़के यानी २८ प्राणी बसर करेंगे ?)

इस छोटेसे ग्रन्थमे एक एककी मुसीबत लिखना असम्भव है। आप स्वयम् विचार सकते हैं कि २० रु० तनख्वाह, महीना ३० दिनका, घरमें बूढ़ी माँ, बेवा बहिन, सूखी स्त्री और चौथाई दर्जन रोगी लड़के। ५ वर्षोंकी कड़ी मेहनत और खुशामदके बाद ५ रु० की तरक्की हुई, तब तक ईश्वरने दो बालिकायें और ढकेल दीं, और हालहीमें आधा दर्जन पूरा हो जानेकी उम्मीद है। लड़कोंके पालन पोषणका प्रबन्ध ठीक हो ही नहीं सकता, उनकी शिक्षा कैसे होगी, लड़कियोंका ब्याह किस तरह होगा—यह सोच दिन दिन बढ़ता ही जाता है। यह चिन्ता उन्हें चिताकी तरह फूँक फूँक कर राख किये देती है। अब दूसरी तरफ देखिए।

मिरजापूरमें कुल एक दर्जन अँगरेजोमेंसे आधे दर्जन बिना ब्याहे हैं—और कौन ? जज, कलेक्टर, प्रिन्सपल।

मिस्टर विण्डम, वेतन २२०० रु० मासिक, आयु ४५ वर्ष, बिना ब्याहे हैं।
मिस्टर मायर, वेतन २४०० रु० मासिक, आयु ४०-४५ वर्ष बिना ब्याहे हैं।
मिस्टर लागमैन, वेतन ४०० रु० मासिक, आयु ५० वर्ष, बिना ब्याहे हैं।
मिस स्पेन्स वेतन २०० रु०, आयु ४० वर्ष, कुमारी अर्थात् बिना ब्याही हैं।
जजसाहबकी दो बहनें, वृद्धा, कुमारी हैं।

और उधर मुंशी रामजियावनलालका हाल आपने सुन ही लिया है। २२००) पानेवाले ब्याह तक न करें और १५ रु० मासिक पानेवालेको २६ लडके हों, तो इसका फल क्या होगा ? बतानेकी जरूरत नहीं है।

जो दशा मिरजापुरके एक शहरकी है—करीब करीब वैसी ही दशा हिन्दुस्तानके बहुतसे जिलोकी है, इससे सारे हिंदुस्तानका अन्दाजा हो सकता है।

इस देशमें कचहरीके मुंशी, डाकके पोस्टमास्टर, स्कूलके मास्टर, रेलके बाबू, या रोजगारियोंके क्लार्क, इतनी कम तनख्वाह पाते हैं कि उनकी जरूरतोंका रफा होना मुश्किल है और गृहस्थीका भार उठाना उनके लिए असम्भव है। पर करें क्या, किसे छोड़ें, किसको घरसे निकाल दें—बूढ़ी माँको, बेवा बहिनको या उस दुखिया औरतको जो उनके गलेमें १३ वर्षकी उमरमें बाँध दी गई थी ? उस पर आफत यह कि हर दूसरे साल एक नई मुसीबत

ईश्वर गिरा देता है–एक संतान हर दूसरे साल पैदा होकर घोर कष्टकी आगमे ईंधनका काम देती है।

ये बेचारे सुबहस शाम तक किसी दफ्तर या कारखानेमे कसकर काम करते हैं, जहाँ न तो उनकी आमदनी बढ़नेका कोई आशा है और न उस काममें उनका कोई खास फायदा या मतलब है, कि जिसकी वजहसे उनका मन लगे या वे प्रसन्न चित्तसे काम करे। भूखे, प्यासे, थकावटसे चूर घर आते हैं, पेट भर रुचिके अनुसार भोजन नहीं पाते। बालबच्चोंका रुदन, घरके झगडे और माता या स्त्रीकी दु:खकी कहानी सुनते सुनते सो जाते है। थकावट दूर करनेको काफी आराम नहीं मिलता, सुबह हो जाती है। ऑख खुलते ही चिन्ताका पहाड़ ऊपर गिर पडता है। प्रात कालकी प्रार्थना, ईश्वरका ध्यान, हरिचरणोंमें प्रेमकी जगह पर पेटपूजा कर्ज और बीमारीका असह्य दु ख वज्र सा गिर पड़ता है और सद्भावोका नाश कर देता है। ऐसे हृदयवेधक क्लेशोंको वे ही अनुभव कर सकते हैं जिन्हे ऐसे क्लेशोके सहनेका दुर्भाग्य प्राप्त हुआ हो। ऐसी अवस्थामे ईश्वरकी भक्ति कहा तक बाकी रहती है? लोग कहते हैं कि दु:खमे दुखिया ईश्वरको याद करते हैं—नहीं, हमेशाका भारी कष्ट ईश्वरको, कोंशियस (conscience) को, सत्य और असत्य या भले और बुरेकी पहचानको भुला देता है। सिर्फ एक बात याद रहती है–परिवारकी प्राणरक्षा कैसे हो—बस।

निराश और लाचार, फिर वही नित्यका धन्धा शुरू करते है। जब तक बस चलता है, ताकत रहती है, काम किये जाते है। आखिर कोई अग बेकार हो जाता है, आख, हाथ पेट या दिमाग जवाब दे देता है, धुन्ध, राशा, संग्रहिणी, खप्तान या और कोई राजरोग ग्रस लेता है, और ये दुखिया, स्त्री और आधे दर्जन बच्चोको सर्वथा अनाथ छोड कर सुरपुर सिधार जाते हैं। हाय हाय! ये शान्तिपूर्वक मर भी नहीं सकते। मुझे वह दृश्य कभी न भूलेगा जब मेरे एक युवा मित्र, ब्रजकिशोर मरते समय चारपाईमे झुकी हुई सुन्दरी (धर्मपत्नी) के गलेमे हाथ डाल कर हिचकियां लेने लगे। धीमी, पर दर्दनाक आवाजसे कहने लगे—" प्रिये, मै बडा पापी हूं, मैने बडा अन्याय किया, दरिद्रताके कारण तुम्हे मेरे साथ सदैव दु:ख ही भोगते बीता, और अब मैं तुम्हारे तीन बच्चोको सर्वथा अनाथ छोडे जाता है। मै

अवश्य नरकमें जाऊँगा। देवि, मेरे अपराधको क्षमा करो।" यह कहते कहते उन्होंने प्राण त्याग दिया।

३० वर्ष पहले आपके पिता ४ अविवाहित लड़कियाँ और २ छोटे लड़के छोड़कर मरे थे। रिश्तेदारोकी सहायतासे किसी तरह दिन कटा। एक भाई मर गया। आपने होश सँभालते ही ब्याह कर लिया, उसका परिणाम आपने देख लिया। आपकी वृद्धा माता, युवती स्त्री, दो बालक और एक बालिका, अब पब्लिक चारिटी (सार्वजनिक दान) पर बसर करती हैं।

ऐसे कई करोड़ ब्रजकिशोर भारतको गारत कर रहे हैं। यदि आप स्वयं एक ब्रजकिशोर नहीं है, तो आपका भाइ–बगलका पड़ोसी, नजदीकी रिश्तेदार–ज़रूर है। केवल ऑख खोल कर देखिए तो पता चल जायगा।

कहिए, ऐसोकी संख्या घटानेकी आप दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं, या आप भी विवाह करके एक नये ब्रजकिशोर बनना चाहते हैं ?

जिन बच्चोका तोतलाना भी नहीं छूटा है, वे टोपी, खिलौने और फलादि बाजारोमें बेचते हैं, चिलम पिलाते हैं और नौकरी तक करते हैं। माता पिता उनका असह्य दु.ख देखते हैं, पर दरिद्रता उनका हृदय कठोर कर देती और वे बेचारे कमानेके लिए मजबूर किये जाते हैं।

२० दिसम्बर १९१० ई० को इलाहाबादके एक प्रेसमें मैं एक जरूरी प्रूफ देख रहा था, उसे उसी दिन छपाना था। सामने ही एक आठ वर्षका सुन्दर बालक, प्रेससे छपे हुए कागज उठा उठा कर गिन गिन कर रखने, और १०० कागज पर एक निशान लगा देनेका काम कर रहा था।

नुमाइशकी वजहसे जरूरी कामोकी भरमार है। कल आधी राततक प्रेस खुला था और आज ९ बजेसे फिर लडका अपनी जगह पर मौजूद है। वह ओंघ ओंघ कर गिर रहा है। स्याही देनेवालेने कई बार चपत देकर जगाया, पर उससे काम नही चलता, और काम करनेवालोका हरज होता है। लाचार, मैनेजर साहबसे शिकायत हुई। मैनेजर (Mr. Lyne) लपक कर उसके पास गये, उन्होंने बच्चेको झूमता पाया। एक चाँटा मुँह पर इस जोरका दिया कि वह चीख कर अपनी ऊँची जगहसे पत्थरकी फर्श पर आ गिरा, फिर फुल बूटकी एक भरपूर ठोकर उसकी पसलीमें इस जोरकी लगी कि वह ढनगनी खा कर बेहोश हो गया। मैंने दौड़कर उसे उठा लिया, उसके मुँह और नाकसे खून

बहने लगा। प्रेसवाले एक बार मृतकतुल्य बेहोश बालककी ओर देखकर अपना अपना काम करने लगे और मैनेजर साहब गाली देते हुए अपने कमरेमे चले गये।

बहुत देरमें होश आनेपर मैंने उसे घर पहुँचानेको कहा। वह मेरे गलेसे लिपट गया और फूट फूट कर खूब रोया। फिर हिचिकियाँ लेता हुआ डरी जबानसे कहने लगा–" मुझे घर न ले चलो, बिना प्रेस बन्द हुए घर चलनेसे, बाबूजी मुझे मारेंगे और मेरा खाना बन्द कर देंगे। वे बड़े बेदर्द हैं, बहिनको भी बहुत मारते हैं, माको...... " इतना कहकर वह फिर बेहोश हो गया।

बहुत कुछ कोशिश की, पर होश न आया। लाचार, प्रेसवालोंसे घरका पता पूछ कर उसे, उसके घर ले गया। उसका किरायेका छोटासा कच्चा मकान मोहतशमगंजमें था। देखा तो वहाँ और ही गुल खिल रहा है। वृद्ध पिता, और युवा बड़ा भाई दोनों ही सख्त बीमार हैं। किसीमें यह सामर्थ्य नहीं कि उसकी खबर ले सकें। १५–१६ वर्षकी एक कुमारी बहिन उनकी सेवा करती है। घर और वस्त्रादिसे घोर दरिद्रता प्रकट होती है। मुंशीजी पुराने मुख्तार है, पहचानमें गलती होनेसे दो वर्षकी सजा हो गई थी, तबसे बेचारो पर बड़ी मुसीबत है। लड़केकी बहिनसे कुल हाल कहकर, उसे कालविन अस्पताल (Colvin Hospital) ले गया, और मिस्टर सूर्य्यकुमार मुकर्जीके सुपुर्द कर आया।

एक आर्टिकल पायोनियर, और दूसरा लीडरमें, हर तरफसे अपनी रग बचाता हुआ दे दिया—और बस छुट्टी पाई।

हमारा व्यापार।

India, the mine of wealth ! India in poverty ! Midas starving amid heaps of gold does not afford a greater paradox yet here we have India, Midas—like, starving in the midst of untold Wealth ! !"—*Molesworth*

प्रसिद्ध मोलसवर्थका कथन है " भारत भूमि धनकी खान है। इसमें नानाप्रकारके खेती, खनिज और उद्योगके लिए प्राकृतिक सामान है–उत्तम कोयला है, उमदा मिट्टीका तेल है, लोहे और लकडीकी उत्तमतासे इंग्लैण्डवालोंके मुंहमें पानी आ जाता है, सोना, चाँदी, ताँबा, टीन तथा अन्य अनेक रत्नोंकी भी कमी नहीं–तिस पर भी भारत भूखों मरे ! "

हालैण्डसाहबने सच कहा है कि "भारतवर्ष खनिजके कामोंमें ... उद्योगका अपरिमित स्थान है। प्रकृतिने इस देशको सब कुछ दिया है। ये ... केवल इस देशके लिए ही काफी नहीं हैं, बल्कि संसारभरके बाजारोंमें ... और लाभके साथ बेचे जा सकते हैं। पर जब तक हम ऐसे उच्च भा... नवयुवकरत्न न पैदा करें जो वकालत और नौकरीके पेशेकी तरह इस उद्यो- गमें भी तन्मय हों तब तक वह भारतका असीम धन गुप्त ही रहेगा *।" बाल साहबका कथन है कि "यदि भारतवर्ष संसारके अन्य देशोंसे अलग कर दिया जाय, या इसकी उपजकी रक्षा की जाय तो यह निश्चित बात है कि एक सुशिक्षित सभ्य जातिकी सर्व आवश्यकताओंको भारत अपने ही अन्दरकी उपजसे पूर्ण कर सकता है।"

भारतके भी दिन थे जब इसका शिल्प-सामान रोम, यूनान, मिश्र, ईरान, अरब, जापान, चीन और इंग्लिस्तानमें धड़ाधड़ जाया करता था। उस समय इस देशमें दुर्भिक्षकी अधिकता नहीं थी। यह देश लक्ष्मीसे परिपूर्ण था किन्तु भारतने समय पहचान कर काम नहीं किया। आत्मरक्षामें ढील होनेसे मुसलमानी राज्यमें ही इसके व्यापारको धक्का लगा और अँगरेजोंके पधारते ही, इनकी सत्ताका सूत्रपात होते ही, भारतके व्यापारमें भयंकर परि- वर्तन होना आरम्भ हुआ। विदेशी हुकूमत, कूट-नीतिज्ञोंकी पालिसी और अभागे भारतकी अन्धकारमय मूर्खतासे इस देशके व्यापारकी जड़में कुठारा- घात होता गया। कलाकौशल और उद्योग-धन्धोंके साथ साथ लक्ष्मी भी खिसक कर इग्लैण्ड पहुँच गई। ब्रिटेनने भारतीय व्यापारको हर लिया, इस देशको कला-कौशल्य तथा सम्पत्तिहीन कर डाला। होश आने पर भी अभी हम अँगडाइयाँ ले रहे हैं।

सच तो यह है कि भारतका कुल व्यापार विदेशियोंके हाथमें है। भारतके व्यापारका लाभ विदेश जाता है। रेल, तार, ट्रामवे, सोना, चांदी आदिकी खाने, मिट्टीके तेलके कारखाने, कोयला, सन, ऊन, नील, चाय, कहवा, ... कागज आदि सभीके कारखानोंके मालिक अँगरेज हैं। भारतवासी या तो एजेण्ट हैं या दलाल। आटा पीसना, रुई दबाना हमारा काम है और उस...

* T H Holland, Director—General of the Geological Survey of India

लाभ उठाना अँगरेजोंका। आगे छपी हुई सूचीसे व्यवसायोंके मालिकोंका पूरा ज्ञान होगा।

प्रधान प्रधान व्यवसायोंके मालिक। ‡

नाम व्यवसाय।	भारतवासियोंके हाथमें।	अँगरेजों या अन्य विदेशियोंके हाथमें।
बंगाल।		
चायके खेत और कारखाने	३६	२४०
सनके कारखाने	०	५०
सनके दबानेवाले कारखाने	५२	५७
कलाके वर्कशाप	७	३०
कोयलेकी खाने	४९	६०
विहार और उड़ीसा।		
नीलके खेत या प्लान्टेशन	१४	१०५
कोयलेकी खाने	११०	८६
लाखके कारखाने	४६	२
संयुक्त प्रांत।		
लाखके कारखाने	७५	१३
छापेखाने	८०६	१५०
कालीनके कारखाने	९३	१०
कपासी कारखाने	७२	५
बम्बई।		
रेलवे वर्कशाप	०	१३
कलाके वर्कशाप	२	९
छापेखाने	२९	१७
कपासी कारखाने	३९६	७९
मदरास।		
कहवेके खेत	१७	८६

---

‡ Moral and Material Progress Reports

नाम व्यवसाय।	भारतवासियोंके हाथमें।	अँगरेजो या अन्य विदेशियोके हाथमें
रेलवे वर्कशाप	०	२३
छापेखाने	३६	१५
पंजाब।		
रेलवे वर्कशाप	०	१९
छापेखाने	२२	६
अजमेर, मारवाड़, आसाम, मैसोर आदि		
सोनेकी खानें	०	६
रबरका काम	०	१०
चाय	६०	५४९

भारतवर्ष कम्पनियोंके लिहाजसे सब देशोंसे बहुत पीछे है। सब व्यापार विदेशियोंके हाथमें होते हुए भी अन्य देशोके सम्मुख यहाँका व्यापार एकदम गया गुजरा है। *

* देश।	कम्पनियोंकी सख्या।	वसूलशुदा सरमाया या पूजी, पौण्ड।
इँगलैण्ड (U K.)	४०,९९५	२,०००,०००,०००
जर्मनी	५,०६१	६,८५,०००,०००
फ्रास	६,३२५	५,४०,०००,०००
रूस	१,४७७	२,६०,०००,०००
बेल्जियम	१,३५८	१,१५,०००,०००
नेदरलैण्ड्स	४,७४५	१,१०,०००,०००
जापान	४,२१६	८७,०००,०००
स्विटजरलैण्ड	२,७४५	८०,०००,०००
हगेरी	१,८९६	४४,०००,०००
डेनमार्क	१,८२३	३३,०००,०००
भारत	२,५८८	७४,०००,०००

जिस आवादीमे भारतमें ६६ लाख कपासके तकले है उसी आवादीके अन्य देशोमे ११ करोड तकले हैं।

अमेरिकन फौलाद ट्रस्टकी पूँजी १५० करोड़ डालरकी है। (डालर ३ रु० दो आनेका होता है) अमेरिकन तबाको कम्पनीकी पूँजी १५ करोड़ डालरकी है।

भारतवर्षमें १९०५ में १,७२८ कम्पनियाँ थीं, उसी समय इँग्लैंडमें ४०,९९५ थीं। भारतकी कम्पनियोंका सरमाया (पूँजी) २,८०,००,००० पौण्ड और इंग्लैण्डकी कम्पनियोंका सरमाया २,०००,०००,००० पौण्डका था। अर्थात् इँग्लैण्डमें भारतसे १४ गुना अधिक कंपनियाँ हैं और उनका सरमाया भारतसे ७१ गुना अधिक है। (देशोंकी जनसंख्या पर भी ध्यान देना आवश्यक है।) इन बड़े देशोंकी तो बात ही निराली है, छोटे छोटे देश जैसे बेल्जियम, नीदरलैण्डस, स्विटजरलैण्ड, डेन्मार्क और कलके उठे हुए जापानसे भी भारतका व्यापार गया गुजरा है।

आजकल हर बातमें (Survival of the fittest) सुयोग्य और अयोग्यका झगड़ा चल रहा है। व्यापारी संसारमें भी जीवन-संघर्षका रगड़ा जारी है। रेल, तार और जहाजके जमानेमें सारे संसारका मुकाबला है। सभ्य देशोंमें प्रत्येक जाति (Nation) में बड़ी सख्त और बेढब मुकाबलेकी मुठभेड़ है। अयोग्य शीघ्र ही सुयोग्योंको अपना स्थान दे देता है। निर्बल, मूर्ख और अयोग्यकी मौत है।

भारतके अयोग्य व्यवसायपतियोंकी मृत्यु सिर पर नाच रही है। यूरोपके सुयोग्य व्यवसायपति सस्ते माल बनाकर यहाँ धड़ाधड़ भेजते हैं और हम अपनेको सारे संसारसे अधिक अनुभवी, साहसी, बुद्धिमान्, शासनमे निपुण, सत्यवादी और सबके उपर धनवान् व्यापारी समझे हुए मस्त सो रहे हैं।

जरा आप विचार तो करें कि जब भारतमें कलाओंसे पदार्थ उत्पन्न करनेकी रीति नहीं, जब भारतके श्रमी, कारीगर, सेठसाहूकार अपठित हैं, तब वे ऐसे देशोका क्या मुकाबला कर सकते हैं जिनके एक एक कारखानेमें पाँच पाँच लाख श्रमी काम कर रहे हों। जो दो दो लाख घोड़ोकी ताकतवाले इंजन चलाते हों। जो ४० हजार टन कैलसियम कार्बाइड पैदा कर सकते हों। जो एक दिनमें १०००० टन गंधक तैयार कर सकते हो! जो १५० रसायनवेत्ता एक कारखानेमें परीक्षाओके लिए रखते हों! क्या ऐसी जातियोंके जीवन-संघर्षके मुकाबलेके लिए हम तैयार हो रहे है और अपने देशके बच्चोको तैयार कर रहे है? खूब याद रहे कि यह मुकाबला जिंदगी और मौतका है। यदि अब भी हम कारणको सुधारकर कार्य सिद्ध करनेमें कमर नहीं कसते तो हमारी मृत्यु निश्चित है।

हमारे कृषक ।

भारतवासी मान बैठे हैं कि—

उत्तम खेती मध्यम बान। निखिद चाकरी भीख निदान॥

और आलसी लोगोंके लिए है भी यही ठीक, क्यों कि व्यवसाय, व्यापार, शिल्पकारीमें कृषिकी अपेक्षा बुद्धि और हुनरकी ज्यादा जरूरत पड़ती है। मन्द-बुद्धि, पुरानी रीतियोंके प्रेमी, अनुत्साही और भाग्यपर धन्ना देकर मरनेके लिए तैयार रहनेवालोंको कृषिसे उत्तम कोई काम नहीं हो सकता।

"जो देश केवल साधारण खेतीमें लगे होते हैं, उनमें मनकी मन्दता, शरीरका भद्दापन, पुराने रीति-रिवाजों, विचारो और उत्पत्तिकी विधियोंके प्रति प्रेम और सभ्यता, वैभव, समृद्धि, स्वतन्त्रताका अभाव पाया जाता है। दूसरी ओर जो देश व्यापारमे लगे हैं उनमें मानसिक और शारीरिक गुणोंकी उन्नतिके, निरन्तर उद्योगी बने रहनेके, मुकाबला करनेके और स्वतन्त्रताके भाव पाये जाते हैं *।"

शिल्प-कला-कौशल और व्यापार ही जहाजी बेड़ोंकी मौलिक नीव हैं। व्यापारिक बेड़ोंकी रक्षार्थ सैनिक बेड़े बनाये जाते हैं। शिल्पीको माल बेचने तथा उसके लिए कच्चा माल प्राप्त करनेके अभिप्रायसे नये देश, नई बसतियाँ, और नये नये बाजारोंपर अधिकार जमानेके लिए युद्धकी तैयारी करनी पड़ती है। अत· व्यवसायप्रधान देश सब प्रकार उन्नति करता रहता है। किन्तु कृषि-प्रधान देश अवनतिके गहरे गढ़ेमें जा गिरता है। इंग्लैण्डने व्यवसायकी वृद्धि करके ही सर्व जातियोंमे उच्च स्थिति प्राप्त की है और भारतने कृषिके साथ व्यापारको भी न करते रहकर एक मात्र कृषक बन जानेके कारण अधोगति देखी है।

किसानोको अलग अलग रहना पड़ता है, गाँव, वन, पहाड़ और घाटियों मे जीवन व्यतीत करना पड़ता है, जिससे उचित शिक्षामें बाधा पड़ती है। किसानोको भ्रमण करनेकी जरूरत कम पडती है। वे अपने पैतृक खेतोंके कीड़े बने रहनेहीमे मस्त रहते हैं। प्रवास और ससार-भ्रमणसे उत्साह, नवीनता, ज्ञान, वीरता और स्वाधीनताकी वृद्धि होती है। कृषक राष्ट्रीय संस्था-

---

* National System of Political Economy by F List of Germany

ओंके तत्त्वको नहीं समझते और शासन, न्याय, स्वतन्त्रता तथा निज अधि-
कारकी रक्षाकी गूढ़ बातोंमें अपना मस्तिष्क नहीं लगाते। प्रत्येक देशमें एक
मात्र कृषिमें लगी हुई जातियाँ सदा दासत्वमें रही हैं। स्वेच्छाचारी राजे,
सरदार या ब्राह्मण आदि सदा इन्हें पददलित करते रहे हैं। दासत्वका भाव
लोगोंके रग व रेशोंमें भर जाता है। निदान वे इसीसे प्रेम करने लगते हैं
और इससे उद्धार पानेका यत्न करना भूल सा जाते हैं!

व्यवसायसे आत्मविश्वास बढ़ता है। नित्य नये लोगों, नये व्यापारों, और
नये अविष्कारोंका मुकाबला करके विजयके यत्नमें तत्पर रहना पड़ता है, किन्तु
कृषक ऋतु, वर्षा, ओला, बाढ़, और टिड्डी तूफ़ानके अधीन रहते रहते प्रारब्धका
अंधविश्वासी बन जाता है। सांसारिक उन्नतिमें बाधा डालनेवाले वेदान्तके भक्त
तथा दैववादी उजड़े हुए भारतको कृषि खूब भली मालूम होती है। छोटे
छोटे खेतिहरोंके इर्षा-द्वेषसे भारत भस्म होता जाता है, तिसपर भी यहाँ
कृषकोंकी संख्या बढ़ती ही जा रही है।

अमेरिका और जर्मन भी कृषि-प्रधान देश हैं. पर वहाँ—वहाँ ही क्यों सारे
सभ्य संसारमें—कृषिकी पैदावर बढ़ रही है और कृषकोंकी संख्या कम होती
जा रही है। अमेरिका और जर्मनीने व्यवसायको तिलाञ्जुली देकर एकमात्र
कृषिका आश्रय नहीं ले लिया है। वहाँ कृषि तथा व्यापार दोनोंकी उन्नति
है। उन देशोंमें व्यवसायी अधिक और कृषक कम हैं। भारतमें कुल कृषक
ही होते हैं*। जैसे कालेजसे निकले हुए ग्रेजुएटोंको वकालत छोड़ दूसरा
पेशा नहीं मिलता, वैसे ही दरिद्रताकी डिगरी लिये हुए साधारण भारतवासि-
योंको खेती छोड़ कोई दूसरा काम ही नहीं मिलता। भारतमें प्रति सैकड़ा
७१, इंग्लैण्डमें ८, जर्मनीमें २८, और अमेरिकामें ३५ किसान हैं।

* देखिए, और और देशोंमें प्रति सैकड़ा कितने कितने आदमी
किन मुख्य मुख्य पेशोंके करनेवाले है —

	कृषि	शिलपव्यवसाय	व्यापार
इंग्लैण्ड	१२·६६	५८	११·३९
अमेरिका	३५	२४	१६
जर्मनी	२२·६	३७	११·५
भारत	७१	१२	[illegible]

सन् १७९० में अमेरिकामें प्रति सैकड़ा ८८ कृपक थे, किन्तु १९०० इनकी संख्या घटकर ३५ रह गई। जर्मनीकी भी यही अवस्था है। १८८' में यहाँ प्रति सैकड़ा ४२ कृपक थे, पर १९०७ में ये घटकर २८ हो गये। इंग्लैण्डमे १८४१ में ३० आदमियोंका (प्रति सैकड़ा) निर्वाह खेती पर होता था, पर १८७७ मे ये घटकर १३ और १९०१ में कुल ८ हो गये। प्रशंसनीय बात तो यह है कि इन देशोंकी खेतीकी उपज खूब वढ़ी है और यहाँके कृपक लाभ भी खूब उठाते हैं। उलटे, भारतमे कृपकोंकी संख्या भी दिनोंदिन वढ़ती जा रही है और उधर खेतीकी पैदावार घट रही है—और कृपक भूखों मर रहे हैं। १९०१ में १२ प्रति सैकड़ा कृपक वढ़े और १९११ की मनुष्यगणनाकी रिपोर्ट देखनेसे विदित होता है कि १४ प्रति सैकड़ा कृपक वढ़े। भारतके प्रत्येक प्रान्त, राज्य, रियासत और कोने कोनेमें यह दुरवस्था वर्तमान है। आगे दी हुई सूचीसे यह भली भाँति विदित हो जायगा।

भारतके तीन चौथाई निवासी गाँवोमें रहते हैं। यहाँके गाँवोंकी संख्या लगभग ८ लाख है और कसवों तथा शहरोंकी संख्या कुल २३ हजार है। २ लाख या उससे अधिककी आवादीके शहर भारतमें कुल १० और इँग्लैण्डमें १४ हैं। एक लाख या अधिककी आबादीके शहर भारतमें ३०, इँग्लैण्डमें ४४, पचास हजार या अधिकके भारतमें ७७, इँग्लैण्डमें ९६। स्मरण रहे कि भारतकी आवादी ३१$\frac{1}{2}$ करोड़ और इँग्लैण्डकी कुल ३$\frac{1}{2}$ करोड़ है।

कृषिमें लगे हुए मनुष्योंकी संख्या फी हजार।*

नाम प्रान्त	सन् १८९१	१९०१	१९११
आसाम	८६३	८५५	८६०
वगाल	७०७	७६६	७६२
विहार	६९४	७४४	७८७
मध्यप्रदेश	६७४	७०६	७८७
वम्बई	६१३	६०७	६७३
वर्मा	६३५	६७१	७०३
कुर्ग	७४७	८२४	८२५
मदरास	६००	६९१	७०१

* All India Census Reports 1901 & 1911

पंजाब	५४१	५८५	६०१
युक्तप्रांत	६९०	६९१	७३३
बरोदा	६००	५२९	६५४
मध्यभारत	४८१	५३०	६३४
हैदराबाद	४७८	५१६	६१९
काश्मीर	६८१	७६५	७९६
मैसूर	६७३	६९३	७३०
राजपूताना	५४०	६०१	६४७
समस्त भारतवर्ष	६४५	६७५	७१६

Agriculture is increasing. The number of both Zamindars and tenants has risen in the last decade—A I. C. R. 1911.

भारतके ताल्लुकेदार या जमींदारोंका नाम तो कृपकोंकी संख्यामे आ नहीं सकता। ये लोग कृपक तो केवल उसी स्थान तक कहे जा सकते है जहाँ तक 'सीर' या 'खुदकाश्त' करते हैं, अन्यथा ये तो सरकार और काश्तकारके बीचके जाबिर कमीशन एजेण्ट हैं। इनका काम तो केवल काश्तकारोको लात जूते लगा कर लगान वसूल करना है—बस! काश्तकारोको उजाड़ देना ही इनका काम है। बेचारे सच्चे काश्तकारोके पसीनेकी कमाई पर भारतसरकार और इसके एजेण्ट मजे उड़ाते हैं और ये अनाथ सब कुछ पैदा करके दूसरोंके हवाले करके आप जिन्दगीके दिन गिनते है। इनकी दुर्दशाका सक्षिप्त वृत्तान्त लिखते हुए भी कलेजा फटा जाता है।

×एक कुरमी काश्तकार।

जर्जर कमजोर, चेहरेसे जान पड़ता है कि उसे पेटभर अन्न नहीं मिलता। एक फटे बिछौने (कथरी)के सिवा घरमें कोई गरम कपड़ा नहीं है। लगान दे देनेपर जो कुछ अन्न बच गया है उसका हिसाब लगानेपर सालभरके खर्चेके लिए काफी न होगा।

एक अहीर कृपक।

कोई गरम कपड़ा घरमे नहीं है। उसने दो रुपये सैकड़ा मासिक सूद पर १४ रुपये कर्ज लिये है। साल भरमें अदा हो जानेकी आशा है।

× From Prosperous British India page 428

घोसी काश्तकार।

काश्तकारी और चरवाही करता है। उसके खेतमे अनाज १२ रुपये ।(
आनेका उपजा और १४ रु० उस खेतका लगान है। यह पूछने पर कि फिर खेत क्यों जोतता है उसने कहा कि मवेशियोंके चारेके लिए।

लोनियाँ।

उमर ३० वर्ष, काश्तकारी करता है। लगान हमेशा कर्ज लेकर अदा क देता है और अफीमकी दादनी मिलनेपर कर्ज अदा कर देता है। ५ वर्ष पहले एक कुआँ बनवाया था। अच्छा तन्दुरुस्त है और औवल नम्बरका काश्तकार समझा जाता है। पूछा गया कि बैलोंको दाना क्यों नहीं देते? जवाब दिया कि आदमियोंको मिलता नहीं बैल कहाँसे पावें?

कलवार।

कोई गरम कपड़ा नहीं है। कहता है कि दिनको अकसर भूखा रहता हूँ, रातको पेट भर खाता हूँ।

पासी।

चौकीदार और काश्तकार। कोई गरम कपड़ा नहीं है। कहता है कि १० मन गल्लेका खर्च मेरे घरमें है। अर्थात् उसके यहाँ आमदनीसे ज्यादा खर्च है।

चमार।

चमारी और काश्तकारी। उमर ५० वर्ष। छः पुश्तसे उसी गाँवमें खेती करता है। आज कल पेटभर खाना नहीं मिलता, सिर्फ फसल कटनेपर पेट भरता है। फसल कटनेके दो महीना पहलेसे खानेमें कमी पड़ जाती है। दुबला और दरिद्री दिखाई देता है।

इस तरह ३० काश्तकारोकी जाँच करनेपर २२ काश्तकार ७९७ रुपयेके कर्जदार निकले। इस पर सूद २०२ रुपया हुआ (अर्थात् १६ असल और ४ सूद–सवाई हुण्डी)। इनके खान्दानोंकी आमदनी मिलाकर औसत निकालनेसे १० रुपया साल प्रति जन होता है। १७ खान्दानोमें कुछ बचत हो जाती है, १३ में खानेकी कमी पढ जाती है।

* इसी तरह मिस्टर गार्टलनने १३ काश्तकारोंकी जांच करके उनकी आमदनीकी औसत प्रति जन प्रति वर्ष ८ रुपया बताई है। उस समयके अन्नके

* Prosperous British India page 428—430

भावसे एक युवाके खानेका खर्च २३॥) और बच्चेका १४) रु० होता है। इससे साफ जाहिर है कि उनको पेटभर अन्न नहीं मिलता था।

× १८८८ ई० में जब अन्नका भाव रुपयेमें १७ सेर था, मिस्टर क्रुक कलेक्टर बहादुर एटाने लिखा है—"एक काश्तकार—जिसके पास एक जोड़ी बैल है, और एक कूआँ है—५१/२ एकड़ जमीन जोतता बोता है। उसका हिसाब यह है,—

	रुपया—आना—पाई
कुल अन्न आदिका मूल्य खरीफकी फसलमें	१२९—८—०
,, ,, ,, ,, रबीकी फसलमें	८४—८—०
जोड़	२१४—०—०
खेतका लगान दिया, ...	७५—०—०
खेत बोनेके लिए बीज खरीदा, ...	१३—०—०
जोताई, सिंचाई, कटाई आदि, ...	७९-१०-०
कुल खर्च	१६७—१०—०

आमदनी	२१४—०—०
खर्च	१६७—१०—०
बाकी	४६—६—०

हाथमें रहा ४६—६—०"

एक छोटा खान्दान ५ आदमियोंका अर्थात् स्त्री पुरुष और ३ बच्चोंका मान लिया जाय, तो उनके सालभरके खानेका खर्च पूर्वोक्त अन्नके भावसे ५४ रु० होता है। और हैं सिर्फ ४६ रु० ६ आने। वस्त्र और गृहस्थीका कुल खर्च छोड़ दिया जाय तो भी खानेमें ७ रु० ५ आनेकी कमी होती है। काश्तकारोंपर आक्षेप किया जाता है कि वे नये ढंगसे खेती नहीं करते, साइन्सकी रूसे खाद नहीं डालते। उन पर तोहमत लगाई जाती है कि वे खाद (गोबर) से रोटी बनाते है, उसे जलाकर आग तापते हैं, बैलोंको पेटभर खिलाते नहीं, उनसे ज्यादा काम लेते हैं, खेत हरसाल बोते हैं, यदि एकआध सालका नागा देकर बोयें तो पैदावार बढ़ जाय। इन्हीं सब कारणोंसे खेतीकी पैदावार बढ़नेके बदले यहाँ घट रही है।

× Prosperous British India

" संयुक्तप्रान्तमे जहाँ गेहूं अव भी बहुत होता है, अकवरके वक्तमें फी एकड़ ११४० पौण्ड पैदा होता था, परंतु अब वहीं फी एकड़ कुल ८४० पौण्ड पैदा होता है। इंग्लैंडकी पैदावारका औसत फी एकड़ १७०० पौ० है और भारतवर्पका कुल ७०० पौ० ‡।"

यह सर्वथा सत्य है, पर क़ुसूर किसका है? क्या आप उन जाहिल काश्तकारोंसे यह उम्मीद रखते हैं कि विज्ञान (Science) के मुताविक खाद डालेंगे, जिनके पास इतना पैसा नहीं है कि लकड़ी खरीद कर जलावें और मामूली गोबरकी खाद बचाकर खेतोंमें डालें? ७ रु० १० आनेकी कमी अभी खानेहीमें है,* २५ फीसदी सूदका कर्ज महाजनका है, फिर वे दामी नये औजार और कल पुर्जे कैसे खरीदेंगे? इन्हींसे क्या आपकी आज्ञा पूर्ण होगी कि अमेरिका और जर्मनीकी तरह विजलीके पावरसे खेती हो? आप कह सकते हैं कि वड़े बड़े जमींदार इसे क्यों नहीं करते? पर उनमें भी तो प्राय: सभी अनपढ़ हैं। फिर उनका काम खेती करना नहीं है; वे तो सरकार और काश्तकारोंके बीचके कमीशन एजेण्ट हैं। काश्तकारोंको सताकर लगान वसूल कर लेना उनका काम है, वे चाहे मर जायँ, या भाग जायँ इससे कुछ मतलब नहीं। केवल मदरास प्रांतसे २ लाख काश्तकार भाग कर नैटाल आदि चले गये हैं +। १९००-०९ में भारतसे १,३३,१२६ कुली विदेश गये ×। काश्तकारोंके सुधारके लिए पचासों बरस चाहिए। उन्हें पढ़ाना है, उनका कर्ज अदा करना है, उनको जरूरतके माफिक नये नये औजार देना है, कुसमय पर उन्हें कपड़ा और खाना देना है, उन्हें हर तरहपर यह जता देना है कि उनका पूछनेवाला, उनकी सहायता करनेवाला कोई मौजूद है। जमींदार और देशके राजा, जब

‡ Hon M M Malaviya 1

*(1) See special legislation in the Punjab to prevent money-lender becoming universal land-owner.

(2) " In 1900, in Surat, 85 per cent of the year's revenue was paid to the Government direct by the money-lenders "–Pros. British India.

+(3) Protector of Emigrants

×(4) S. A B. I. 1899 to 1910 pages 2–7.

हर तरह पर उन्हें उठानेका यत्न करेंगे तब सुधार होगा। और नहीं तो जो दशा इस समय काश्तकारोंकी है, वही दशा यदि कुछ दिनोंतक और रही तो अवश्य ही इस जातिका सर्वनाश हो जायगा, और यहाँ विदेशी लोग आकर बसेंगे ।

मजदूर ।

देहातोंमें पैसेके बदले अन्न मजदूरीमें दिया जाता है ।

“ ताल या बाँधसे दोग्ला चलाकर खेत सींचनेवालेको १॥—२॥ सेर तक, कुएँपर मोट चलानेवालेको १॥—२, निरानेवालेको १॥—२ सेर और खपड़ा छानेवालेको ५ पैसेसे ८ पैसे तक मिलता है । औरत और लड़कोंको मर्दोंकी आधी मजदूरी मिलती है * । ”

दिनभर काम करनेवाले मर्दकी खुराक २४ घण्टेमें १ सेर, स्त्रीकी ३ पाव और लड़केकी २ पाव रक्खी गई है ।

दुखिया, देहाती मजदूर है । ३ लड़के और एक स्त्री मिलकर ५ प्राणियोंका उसका परिवार है । वह पुरवट हाँकता है, उसकी स्त्री मोट उलटती है, और बड़ा काम करनेलायक लड़का, खेतोंमें कियारी काटकर पानी पहुँचाता है । सब मिलकर ४ सेर अन्न रोज कमाते है । २ सेर खाते हैं, एक सेरसे नमक, तेल, तम्बाकू और गोदके बच्चेके लिए दूध मोल लेते हैं, बाकी एक सेर बचाते हैं ।

देहातोंमें हमेशा काम नहीं मिलता, फसल फसल पर मिलता है । वे ८ महीने काम करते हैं, चार महीने बैठे रहते हैं । सालभर खानेके लिए १०८० सेर अन्न चाहिए और ये कमा सकते हैं सिर्फ ९६० सेर, अर्थात् १२० सेरकी कमी पड़ती है । ४० दिनके खानेका सामान घटता है । इसकी पूर्ति यों होती है कि ८० दिन वे आधा पेट खाकर बसर करते है ।

बोझा ढोनेवाले कुली ३ से ४ आने रोज कमाते हैं । ठेला खींचनेवालोंकी आमदकी भी यही औसत है । लोहार, सोनार, बढ़ई, दर्जी, हजाम किसीकी आमदनीकी औसत ४ आने रोजसे ज्यादा नहीं पड़ती । बाज बड़े शहरोंमें शायद इससे कुछ ही ज्यादा औसत पड़ती हो, पर उसके साथ ही वहां रहनेका भी खर्चा ज्यादा है ।

---

* Prosperous British India P 424

दो रुपये महीना और खाना पाकर खिदमतगार खुशीसे काम करते हैं। ५ रुपये महीनेमें ५ फीट ६ इंचका लम्बा जवान २४ घण्टे हाजिर रहेगा। देहाती चौकीदारोंकी तनख्वा २॥|) रु० है। सिवा हिन्दुस्तानके और किसी भी देशमें बेगारका दस्तूर नहीं है। अर्थात् आप जितने आदमी चाहिए पकड़ लीजिए, उनसे काम कराइए और मजदूरी एक पैसा न दीजिए। पुलिसवाले, तहसीलवाले, दौरेपर जानेवाले अमले हमेशा बेगारका काम लेते हैं।

मर्दोंकी तो यह दशा है, अब औरतोंकी तरफ आइए। कहारिन गहरे कुएँसे पानी खींचकर घरघर पहुँचानेके लिए (एक हण्डा रोज) एक आना महीना पाती है। ३० हण्डा पानीकी मजदूरी एक आना हुई। कोई औरत ३० हण्डे रोजसे ज्यादा नहीं खींच सकती, तब एक आना रोज पड़ा। मालिन घर घर फूल पहुँचानेके लिए एक आना महीना पाती है। इसी एक आनेमें ३० पुड़िया फूलोंकी कीमत भी शामिल है। आटा पीसनेवालीको १ पैसेमें २ सेर गहूं पीसना होता है। कण्डे और लकड़ी बेचनेवालीं, ५–६ मीलसे लकड़ियाँ ढोकर लाती हैं, तब ४–५ पैसे नफेके मुश्किलसे बचते हैं। तरकारीवालीको यदि किसी दिन ४ पैसे बच जायँ तो बहुत हैं। भंगिन नेहायत गन्दा काम करती है, और आँधी पानीमें नित्य आती है, फिर भी इस गन्दी और कड़ी मेहनतके लिए, फी आदमी दो पैसे महीना पाती है।

सरकारी रिपोर्टद्वारा मजदूरीकी शरह।

सन् १९०४ ई०।

खेतका काम करनेवाला मजदूर।	मैमार, बढ़ई, लोहार।
पटना,—५॥) रु० महीना।	११ रु० महीना।
कानपूर,—३॥|) से ७) तक।	७॥) से १५ रु० तक।
फैजाबाद,—४) रु० महीना।	५॥) से ७॥) रु० तक।
मेरठ,—४॥) रु० महीना।	१०) रुपया महीना।
जबलपूर,—३) से ४) रुपया महीना।	१०)से १५) रुपया महीना।

आगेके पेजमें छपे हुए नकशेसे मामूली तौर पर काम करनेवालोंकी संख्याका पता चलेगा।

"लोधा, आयु ६२ वर्ष, आमदनी १६ रुपये साल। उसकी लड़की आटा पीसकर ११ रुपये ४ आने साल कमाती है। लड़कीकी शादीमें ६ रुपये खर्च पड़े। गरीबीकी वजहसे उसे डोला (लड़कीको लड़केके घर ले जाकर वहीं ब्याह देना) देना पड़ा।"

—विलियम डिग्बी।

" पाँच रुपये महीनेमें ५ फीट ९ इंच लम्बा जवान २४ घंटे हाजिर रहेगा। "

(देशदर्शन पृ० ७४)

J A P. W.

" जिसकी पोटलीमें एक टुकड़ा गुड़का बँधा है वह
दूसरे लड़कोंको अभिमानसे दिखाकर खाता है। "

(देशदर्शन पृ० ७८)

" १७३ जनके लिए घरमें सिर्फ १० कम्बल, १६ रजाई और २४ बिछावन, अर्थात् १४७ के लिए ओढ़नेका कोई उचित वस्त्र नहीं—और जाडा कड़ा।"

" ७१ जनके लिए ८ कम्बल, २ रजाई और ५ बिछावन।" मि० गर्टलन।

" १७७ आदमियोंमें ९९ चारपाईयाँ थी और दूसरी जगह ७१ आदमियोंमें ३२ थीं।"

—मि० गर्टलन।

काम करनेवालोकी संख्या।

नाम पेशा	काम करनेवालोंकी सख्या		काम करनेवालोके परिवारकी सख्या जिनका निर्वाह उसी पेशेकी आमदनीसे होता है
	स्त्री	पुरुष	
सरकारी दफ्तरोके बाबू	१४०	१०८५७३	३८२७११
रेलवे नौकर	३३२५	२०७८१५	५०३९९३
डाक, तार और टेलीफोन	१७२	५८४४६	१५५३७३
शिक्षाविभागमें मास्टर आदि	११९७९	१८०५२३	४९७५०९
कांस्टेबल आदि	६९९	३००५०९	७८४७४५
गाँवके सरकारी चौकीदार आ	५३५६	१२४३१३	४१८३०९
जमींदार (Rentreceivers)	६१५१९३३	१४३७७९६५	४५८१६७३
काश्तकार (Rent Payers)	११००८३५८	३४०२६९२८	१०६८७३५७५
काश्तके मजदूर और नौकर	९४५४७३४	१०६७४०८१	३३५२२६८२
हज्जाम	१७३९७४	८४९९५८	२२३१५९८
पानीभरनेवाले कहार	२५५१३९	३८७०२	१०४८५७५
खिदमतगार	५२१६६८	११३३४१२	२९४३८८१
धोबी	४७८९७६	६३०२८८	२०११६२४
भंगी	२९९२४८	४८१०८१	१५१८४२२
आटा पीसनेवाले, धान कूटनेवाले	९११९०१९	९११९१	१५१८९१८
गोबरके कण्डे और जलानेकी लकड़ी बेचनेवाले	२५७६९१	१८३८१३	७२५०९६
चूडी सिंदूर मिस्सी बेचनेवाले	१००६६१	१७३४२१	५२८८३९
पण्डे और पुरोहित वगैरह	१७८६५६	९७८८६९	२७२८८१२
भीख माँगनेवाले फकीर	८६०६३६	१५७२४७९	४२२२२४१

" औरतोंकी दशा, कपड़ोंके वास्ते और भी बुरी है। १०० मेंसे ९० औरते बिना चद्दरके दिखाई देती हैं। वे एक सूती लहँगा, उसपर एक छोटी ओढ़नी और एक चोली पहनती हैं और इसीसे जाड़ेकी रातें भी काट लेती हैं।"

—विलियम डिग्बी।

मिस्टर वोवायज कमिश्नर साहब सीतापुरने एक गाँवके २० खान्दानोंकी जाँच करके सिद्ध किया है कि एक युवा पुरुषके खानेका खर्च १४ रुपये ८ आने और लड़केका ७ रुपये २ आने है। संयुक्त प्रान्तके सेन्ट्रल जेलमें खिलानेका खर्च १८ रु० १ आना पौने नौ पाई, डिविजनल जेलमें २४-६-१० और डि० जेलमें १५-८-११ ॥। है। इसीसे वे लिखते हैं कि " हमारे कैदियोंका स्वास्थ्य जेलखाना छोड़नेके वक्त ज्यादा अच्छा रहता है, बनिस्बत उसके कि जब वे जेलमें दाखिल होते हैं। " और ठीक भी यही है। इसी लिए हिन्दुस्तानी गुण्डे जेलको ससुराल कहा करते हैं। कैसा अन्धेर है। चोर, और बदमाश जेलमें पेटभर अन्न पावें, और दिनभर मेहनत करनेवाले मजदूर तथा आटा पीसनेवाली औरतें शामको आधा पेट खाकर सो रहें! शोक!

हम पहले दिखला चुके हैं कि भारतवासियोंकी आय प्रतिजन और प्रतिवर्ष १३ शिलिंग है। इसी १३ शि० में खाना, कपड़ा, शादी, गमी आदिके कुल खर्च सालभर चलाने पड़ते हैं।

भारतसरकारको कैदखानेके कैदियोंको खिलानेमें २ पौण्ड १३ शि० ५ पैन्स प्रतिजन खर्च करना पड़ता है। नौकराना (Establishment) छोड़कर वस्त्रादि और खानेका खर्च प्रति कैदी ३ पौ० १६ शि० है।*

अर्थात् कैदी और स्वतन्त्र (Free men) हिन्दुस्तानियोंके खर्चमें तीन पौण्ड तीन शिलिंगका फर्क है। तब किसका स्वास्थ्य अच्छा रहेगा—कैदियोंका या स्वतन्त्र भारतवासियोंका? उनका, जिनके लिए प्रतिवर्ष प्रतिजन ५७ रुपये खर्च होते हैं, या उन कगाल अभागोंका जिन्हें पौने दस रुपयेमें साल वितानी पड़ती है? इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नीचे मौजूद है:—

मृत्युसंख्या प्रति १००० जन ‡।

* Statistical Abstract British India 1899—1909, Page 44

‡ S A. B I., 1899—90, pages 42 and 228 to 237.

	१९०४,	१९०५,	१९०६,	१९०७ ई०
स्वतन्त्र लोग	३३.०५	३६.१४	३४.७३	३७ १८
परतन्त्र, जेलके कैदी	१८	१९	१९	१८

पायनीयर (Pioneer) लिखता है–" British people who are living in extreme poverty. . . at one hundred millions. " अर्थात् " दस करोड़ भारतवासी निहायत दर्जेके गरीब और कंगाल हैं। "

फिर वही पेपर मि० ग्रीयर्सन (Grierson) के नोटपर रिमार्क लिखता है–" जिला गयामें करीब करीब सब मजदूरोको और १० फी सदी काश्तकार या कुल ४५ फी सदी मनुष्योंको पेटभर अन्न और ठीक वस्त्र नहीं मिलता। गयाके जिलेमें कोई खास त्रुटि नहीं है। जो हालत गया जिलेके मजदूरोंकी है, वही समस्त भारतकी। इस हिसाबसे भी यह सिद्ध हुआ कि १० करोड़ भारतवासी भूखों मरते हैं *। "

दुनियाँका सबसे प्रसिद्ध मेडिकल जर्नल, लेन्सेट (The Lancet, June 1901) लिखता है–" पिछले दस वर्षोंमें भारतमें एक करोड़ नब्बे लाख आदमी भूखसे और दस लाख आदमी प्लेगसे मरे हैं। "

सारी दुनियाँमे सफर करके नोट लिखनेवाले जगद्विख्यात माननीय मिस्टर कालिन्स (Collins) न्यूजीलैण्डके घोर दरिद्र वहशियोंकी गिरी हुई दशा दिखाते हुए कहते हैं कि–" वे ऊँचेसे ऊँचे दरख्तपर शहदके लिए या छोटी छोटी चिड़ियाँ पकड़नेके लिए चढ़ जाते हैं+। " इसी तरह प्रसिद्ध पर्यटक कैप्टन कुक (Capt. Cook) ने लिखा है कि–" वे कोई चीज खराब नहीं गिनते। बाज जहाजपर आकर कूड़ेखानेसे हड्डी ले जाते हैं कि उसे उबालकर शोरवा बनावें। "

इन वहशियोंको हिन्दुस्तानके कोल भील और मुसहरोंसे मिलाइए और देखिए कि किसकी दशा अधिक शोचनीय है।

शहद निकालना तो यहाँ कोई बात नहीं है, ये ८० फीट ऊँचे ताड़के दरख्तसे नित्य ताड़ी उतार लाते हैं। मैंने इन्हें साँपका सर काटकर बाकी धड़

* P B I, page 84

+ Collins' Account of N S W, Page 549

भून कर खा जाते देखा है। एक बार एक कोलिनको एक सड़ी भीगी लकड़ीसे लम्बे कीड़े निकाल कर और उन्हें भून कर लड़केको खिलाते हुए देखा है। पूछनेसे मालूम हुआ कि बच्चा २४ घण्टेसे भूखा है और उस अभागिन कोलिनको तीन दिनसे किसी तरहका आहार नहीं मिला है—उसे कीड़े मकोड़े भी न मिले कि भूखकी दाह बुझावे ! याद रखिए कि यह कहतका या अकालका काल नहीं था।

एक ब्रिटिश कर्नलने टाइम्स आफ इण्डियामें लिखा था कि—"हिन्दुस्तानमें कहतके जमानेमें मैंने अपनी आँखो एक तरहका पत्थर पीसकर भारतवासीयोंको खाते देखा है। इससे वे बीमार हो जाते थे और मर भी जाते थे, पर किया क्या जाय, वहाँ खानेकी वस्तुका अभाव था*।"

माननीय केयर हार्डी धनाढ्य बनारसेके देहाती मदरसोंमें मोटर द्वारा एकाएक पहुँच कर देखते हैं कि एक मदरसेमें प्रधान मास्टर एक अत्यंत मैली धोती, आधी पहने और आधी ओढ़े हैं, जो कई जगहसे फटी है। आप भोजन करने जा रहे हैं। सामने खाना निकाला गया। पूछनेसे मालूम हुआ कि बाजरेका भात, मटरकी दाल और आँवलेका चोखा बनाया है। दिनरातमें एक बार खाते हैं, सुबह और रातको कुछ दाना आदि खा लेते हैं। दूसरे स्कूलमें पानी पीनेकी छुट्टी हुई है। लड़के मैली पोटलीमेंसे कुछ निकाल कर खा रहे हैं। यह सब वह अन्न है जो पक्षी या पशु खाते हैं। जिसकी पोटलीमें एक टुकड़ा गुड़का बंधा है वह दूसरे लड़कोको अभिमानसे दिखा कर खाता है !

दावतोंमें पत्तलों पर जो कुछ जूठी चीजें बच जाती हैं, उन्हें बारी या हज्जाम ले लेते हैं। खाली पत्तलें सड़कपर फेंकते ही कुत्ते और भुकमरे दोनों एक साथ टूटते हैं, और भुकमरे कुत्तोंके मुँहसे रोटीके टुकड़े छीन लेते हैं ! रेलके प्लेटफार्मसे गाड़ी खुलने पर भी यही दृश्य देखनेमें आता है। कुत्ते तेजीसे दौड़कर रबडी या दही लगे हुए दौने चाटने लगते हैं तबतक भिखमंगे पहुँच कर उनसे लड़कर उसे स्वयं बड़ी चाहसे चाटते हैं ! क्या दशा है ! कुत्ते और दरिद्र हिन्दुस्तानी बराबर हैं ! जो ब्राह्मण पूज्य थे, जिनके चरणोंकी रज लोग माथे पर लगाते थे वे ही अब भोजके दिन बिना बुलाये दर-

---

* P. B. I. 117
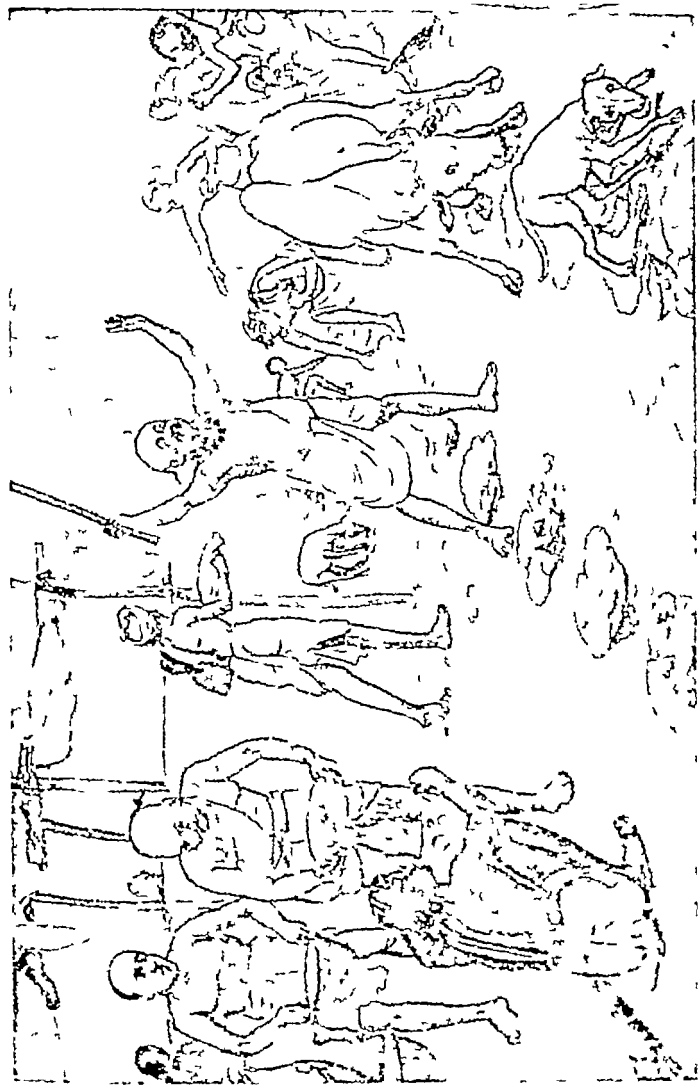
"खाली पत्तलें सड़क पर फेंकते ही कुत्ते और भुखमरे दोनों एक साथ टूटते हैं और भुखमरे कुत्तोंके मुँहसे टुकड़े छीन लेते हैं।"

(देशदर्शन पृ० ७८)

"हर शहरमें मिशन अनाथालय हैं, हजारों बच्चे पादरियोंको मुफ्त सौंपे जाते है।"
ईसाई होनेके लिए एकट्ठा हुआ दरिद्र गुजरातियोंका एक दल।

(देशदर्शन पृ० ७३)

चाजेपर आकर खानेके लिए धन्ना देते हैं। कोई कोई तो सिर पटक कर और रुधिर बहाकर खाना लेते हैं।

हर शहरमें मिशन-अनाथालय हैं। हजारों बच्चे हर साल पादरियोंको मुफ्त सौंपे जाते हैं। हजारों बच्चे बिक जाते हैं। किस लिए? माता पिता सिर्फ पेटके दुःखसे, अपने हृदयखण्डोंको अपने जीते जी अलग कर देते हैं।

पूर्वोक्त बहुतसी बातें आगे अकालके साथ दोहरा कर दिखाई गई हैं, पर इसके लिए मैं पाठकगणसे क्षमा न माँगूगा,—

> Once printing may not suffice,
> Though printing be not in vain,
> And the memory failing once or twice,
> May learn, if we print again

अभिप्राय यह कि यदि किसी विषयका दोबारा लिखना व्यर्थ न हो तो उसका एक बारका लिखना ही काफी नहीं है। यदि हम उसे दोबारा लिख दें तो एक दो बार पढ़कर भूल जानेवाली स्मरणशक्ति उससे लाभ उठा सकती है।

आप कह सकते हैं कि हिन्दुस्तानी आलसी होते हैं। वे यदि मेहनत करके काम करें तो अवश्य सुखी रहें। बात ठीक है, लेकिन अधिक हिन्दुस्तानी मेहनतसे भी कभी नहीं डरते। मजदूर सुबहसे शामतक कसकर मेहनत करते हैं, सारा दिन खेतकी मिट्टी खोदा करते हैं, तिस पर भी उन्हें शामको रूखी रोटी और शोरबेके बदले माड़ यानी वह पानी जिसमे चावल उबाला जाता है मयस्सर नहीं होता। यहाँ काम करनेवालोंकी या मेहनतकी कमी नहीं है, कमी कामकी और पूँजीकी है।

विलायतमें मजदूर और छोटे दर्जेके लोग काम करके इतना पैदा कर लेते हैं कि खर्चेके अलावा अच्छी रकम बचा लेते हैं, किन्तु हिन्दुस्तानी लोग कड़ी मेहनत करके भी पेटभर खा तक नहीं सकते।

एक अच्छे सालमें जब पानी समय समय पर अच्छी तरह बरसा है और टिड्डियाँ पत्थर आदि किसी चीजसे खेतीमें विघ्न नहीं पड़ा है, उस सालमें— हिन्दुस्तानकी कुल कटी हुई फसलका मूल्य २५८ करोड़ रुपया अर्थात १७२, ०००, ००० पौण्ड हुआ है। इंग्लैंडके कुली, मजदूर और औसत दर्जेके फ्राक

आदिकी बचत, जो उन्होंने घरके अलावा बेंकमें जमा की ३२,२१,४६, ४२३ पौंड है। यानी इंग्लैंडवालोंकी बचत हमारे कुल काश्तकारोंकी सम्पत्तिसे भी अधिक है। *

विलायतमें मजदूर १०० रु० से अधिक और अमेरीकामें २०० रुपये तक कमा लेते हैं। प्रोफेसर *महेशचरणसिंहजी जब अमरीकामें* पढ़ते थे तब दिनको कुछ घण्टे काम करके इतना कमा लेते थे कि वहींकी कमाई हुई रकमसे पढ़ते थे, और अपना सारा खर्च चलाकर माताके पास घर भी कुछ भेज देते थे।

विलायतमें काम करनेको आदमी नहीं मिलते। बड़े बड़े लोगोंको अपना कुल काम खुद करना पड़ता है, ठीक उसीका उल्टा यहाँ है कि दो रुपये महीने पर आपका बहुतसा काम हो जाय, चाहिए तो मुफ्तमें भी काम करा लीजिए। इससे ज्यादा और क्या चाहिए ?

इससे क्या सिद्ध हुआ ? यह कि यहाँपर काम करनेवाले ज्यादा और काम कम है। काम करने और करानेवाले दोनों महादरिद्र हैं। काम करानेवाला ज्यादा दे नहीं सकता और काम करनेवाला जितना पाता है उसीको गनीमत जानकर, टूट पड़ता है।

यहाँपर ५० लाख भिखमंगे है, जो काम कुछ नहीं करते, सिर्फ भीख माँगकर खाते है। विलायतमें यदि कोई इस तरह पर भीख माँगे तो उसको सजा हो जाय। *अमरीकामे कोई विना ३०० रुपया दिखाये जहाजसे उतर* नहीं सकता, इस लिए कि ऐसा न हो कि वह भीख माँगना शुरू कर दे।

हिन्दुस्तानकी ऐसी तो दुर्दशा है कि यहाँपर मजदूर बेगार यानी मुफ्तमें काम कर सकते है, दो रुपये महीनेपर काम करनेवाले नौकर मिल सकते हैं, यहाँकी आमदनी फी आदमी दो पैसे रोजकी है, ५० लाख आदमी भीख माँगते हैं, १० करोड़ काश्तकार आधा पेट खाते हैं और ४ करोड़ भूखोंसे मरते है, तिसपर भी यदि लड़का पैदा होनेपर शहनाई न बजे तो ताली पिट जाय, बड़ी हतक हो जाय। जब हम, हिन्दुस्तानकी आबादी २ करोड़ बढ़ी देखते हैं तो प्रसन्न हो जाते हैं, फूले नहीं समाते, मानो यह बढाव, हमारे

---

* P B I foot-note, Page 65

अभ्युदयका मुख्य चिह्न है।—कुल तकलीफ मिट जायगी, दुःख-दारिद्र्य सब दूर हो जायगा।

पर विचारपूर्वक देखा जाय तो उल्टा ही ज्ञात होता है। ये नये दो करोड़ हवा खाकर तो जीवेंगे नहीं। दूध, अन्न, वस्त्र आदि सभी चीजें इनके लिए भी अवश्य चाहिए। तब आबादी बढ़नेके मुताबिक, उसी हिसाबसे, खाने-पीनेकी चीजें भी जरूर महंगी होंगी। काम नहीं बढ़ा, काम करनेवाले बढ़े, इससे जहाँ बीस रुपयेकी एक जगह खाली होनेपर ५० अर्जियाँ पड़ती थीं, वहाँ अब ७० पड़ेंगी। ५० लाख भीख माँगकर खाते थे, तो अब एक करोड़ भीख माँगेगे। जहाँ १० करोड़ पेटभर अन्न नहीं पाते थे, वहा अब १२ करोड़ हो जायँगे। यदि पहले ४ करोड़ भारतवासी भूखो मरते थे तो अब ६ करोड़ मरेंगे।

जब इस देशकी ऐसी भयानक दशा है, ऐसी शोचनीय अवस्था है, तब यदि पवित्र भारतमें व्यभिचार, जुर्म और नशेबाजी बढ़ती जाती है तो इसमें आश्चर्यकी बात क्या है? जब अन्न महँगा है और मजदूरीकी दर इतनी नीची है कि दिनभर काम करनेपर भी पेटभर अन्न नहीं मिलता, बीमार होनेपर कोई पूछनेवाला नहीं मिलता, दवा देनेवाला नहीं रहता, तो उसका फल और क्या होगा? जुर्म बढ़ेंगे। जैसे खाली बोरा सीधा नहीं खड़ा रह सकता, वैसे ही खाली पेटवाला सदाचारी नहीं रह सकता। मनुष्यसे नित्यकी भूखका क्लेश नहीं सहा जा सकता, मौका पानेपर भूख उससे सौ तरहकी बुराईयाँ करा लेती है।

जब बच्चे ऐसी गन्दी जगहमें पैदा हो रहे हैं, जहांकी वायु बिगड़ी हुई है, जहाँके लोग दरिद्रताके कारण नाना प्रकारके पाप और रोगोंसे जकड़े हुए हैं, जहां शारीरिक और मानसिक कष्ट बढ़े हुए हैं, जहाँ बच्चे शुरूसे कुसंगमें पलते हैं, बुरी और कम गिजा खाते हैं जिससे उनका दिलो-दिमाग कमजोर और अगोपांग ढीले पड़ जाते हैं वे तुच्छ स्वभाव, और नीच प्रकृतिके हो जाते हैं; तब ऐसी अवस्थामें, ऐसी दुर्दशामें आश्चर्य तो यह है कि हिन्दुस्तानी और क्यों न गिर गये! हमारी खराब हालत और अबतर और निकम्मी क्यों न हो गई! गरीबोकी मुसीबतका साया समस्त भारतवासियोंके हृदयपर पड़ रहा है। प्रेतकी तरह ये सब अमीरोंकी खुशियोंमें आ मिलते हैं और उनके राग-रंगमें भंग डाल देते हैं। इनका असह्य क्लेश सारे भारतका ध्यान आक-

र्पित कर रहा है। इन्हीं गरीबोंकी आह और अनाथोंके रोदनने भारतवर्षको जगा दिया है, चारों ओर प्रकाश फैला दिया है।

दरिद्रता और कंगालीने हमे पुश्तैनी गुलाम बना रक्खा है। हम गुलामीकी जंजीरोंसे ऐसे मजबूत जकड़े हुए हैं कि हिल तक नहीं सकते। हम स्वार्थवश अयोग्य संतानोत्पत्ति करके उनको भी जबर्दस्ती गुलाम बनाते जाते हैं। हम या हमारी संतान उस स्वतंत्रताका सुख स्वप्नमें भी नहीं जानती जिसकी प्रशंसा जगतके विद्वान् कवियोने की है।

विलायतमें बूढे, लाचार या रोगी गरीबोके लिए अनाथालय बने है। वहां आरामकी सभी चीजें मौजूद रहती हैं, पर वे इन चीजोंको लात मारते हैं-लाख बुलाने और समझाने पर भी नहीं जाते। कहते हैं कि वहाँ मैनेजरके अधीन रहना होगा। बस इसी लिए नहीं जाते। बागमें किसी वृक्षके नीचे पड़े रहते हैं और मर जाते हैं, पर जीते जी अपनी स्वाधीनताको कदापि नहीं खोते।

यह दरिद्रता, हमें जानवरोंसे भी बदतर बनाये डालती है और हमारे ऊँचे ख्यालों, पवित्र भावों और सद्गुणोंको मिट्टीमें मिला रही है। यह बेबसी, लाचारी और नाउम्मेदीकी कंगाली है, जो मनुष्यको मनुष्यत्वसे खाली किये देती है, स्त्रीजातिका सतीत्व नष्ट किये डालती है, बच्चोंतककी बाल्यावस्थाका पवित्र सुख और आनन्द छीने लिये जा रही है।

यह भयंकर दरिद्रता, मांस या कीमा बनानेकी बेरहम मेशीनकी तरह सारे हिन्दुस्तानको पीसे डालती है।

यह पुरानी दरिद्रता है जो दुर्भिक्ष, हैजा और प्लेगका भयंकर रूप धारण करके भारतको गारत किये डालती है। दरिद्रता जनसंख्याको भारी धक्का देती है और उसके बढ़ावको रोकती है।

हमारा जल और स्थलका वाणिज्य और व्यवसाय कुल विदेशियोंके हाथ जा चुका और चला जा रहा है *। लोग दरिद्रताके कारण बिना पूँजीके खेतिहर या काश्तकार बने जा रहे हैं। जमींदार और काश्तकार दोनों बढ़ गये हैं और उनकी संख्या अधिक होती जाती है। +

---

* Vide, History of Indian Shipping and Maritime Activity by Professor Radha Kumud Mukhopadhyaya, M A.

+ All India Census Report for U P. 1911, page 386

हमारी शिल्प-कला और लगभग सारे उद्योग-धन्धे विदेशी वस्तुओंका उपयोग होने लगनेसे लोप हो गये और होते जाते हैं † । सन् १७८७ ई० में खाली इँग्लैंडको ३० लाखका ढाकेका मलमल गया था। भारतके बने जहाज सन् १८०० के बाद तक विलायत जाते थे ×। पर अब सारे जहाज विदेशी-योंके हैं और मालिक भी विदेशी हैं। इस व्यापारका कुल नफा विदेशियोंकी जेबमें जाता है।

चाय, कहवे और नीलकी खेती विदेशियोंके रुपयोसे होती है और इसका नफा हिन्दुस्तानके बाहर जाता है। इन चीजोंके लहराते हुए बगीचोंके मैनेजर तक विदेशी हैं।

कुल उद्योग, कुल व्यापार, प्रायः विदेशियोंके रुपयोंसे होता है और इस लिए नफेका बहुत बड़ा हिस्सा विदेश चला जाता है। राज्यके कुल बड़े बड़े पदोंपर विदेशी कर्मचारी नियुक्त हैं, उनके वेतनका बहुत बड़ा हिस्सा, और बचतका कुल रुपया विदेश जाता है।

और काश्तकारोंका पेट नहीं भरता, वे भूखे ही सो रहते हैं—गांवके गॉव खाली-पेट सो रहते हैं, जब गॉव अन्नसे खाली है तो पेट क्यों न खाली रहे? सोने और चांदीके जेवर गायब हो गये, अब उनके एक मात्र धन, पीतल आदिके वर्तन भी गिरवी रक्खे जा रहे हैं। शोक!

आस्ट्रेलिया और भारतकी आमदनी और खर्चका मिलान करनेमे भारतकी दरिद्रता और भी साफ दिखलाई देने लगती है।*

आस्ट्रेलियाके प्रत्येक मनुष्यकी वार्षिक आमदनी ६०० रुपये है और बचत (खर्च जाकर) ३१३॥ रु०। अर्थात् वहाके लोग खूब मजेसे खा पीकर तीन सौ रुपयेसे ऊपर प्रति वर्ष बचा लेते हैं, परन्तु भारतवासियोंके भाग्यमें बचाना तो कहाँ, भर पेट खाना भी नहीं लिखा है। यहांके प्रत्येक मनुष्यकी वार्षिक

† James Cotton's Treatise on 'India'

× 1 Lieutenant Colonel A Walker's "Considerations on the Affairs of India"—1811

2 1800 Governor-General's Report

3 East India Co's fourth report, pages 23—24

* भारत तथा अन्य देशोंके प्रत्येक मनुष्यकी वार्षिक आमदनी सन् १९०९ ई० के अनुसार इस प्रकार है —

आमदनी १६ रुपये १४ आने है, पर बहुत ही जरूरी और मामूली खर्च ३० रुपय है। अर्थात् प्रत्येक आदमीके लिए १३ रुपये २ आनेकी कमी पड़ती है।

ऐसी दशामें बे-समझे-बूझे सन्तान उत्पन्न करते चले जानेका परिणाम क्या होगा? कष्ट बढ़ेंगे, भुखमरे बढ़ेंगे, दरिद्री बढ़ेंगे, उत्साहशून्य पुरुष और अभागी औरतोंकी अधिकता होगी, निरपराधी बच्चोंकी मौतें होगी और इस तरह देशकी दुर्दशाका पार न रहेगा। और इसका उत्तरदाता कौन होगा?—हम और आप।

जागो! उठो! सदाके लिए इस गिरी दशामें मत पड़े रहो!

भारतवर्षकी (हरपेशेकी) आयकी तो यह दशा है, अब जरा अन्नके भावकी ओर देखिए:—

अन्नका भाव * सन् १७०० से १९१८ ई० तक।

सन् ई०	चावल बढ़िया	चावल मोटा	दाल	चना	गेहूँ	जौ	बाजरा	जुआर	गुड़	घी	तेल
१७००	४०	७०	६०	७०	३०	..		.	४०	४	१०
१७२६	४०	४५	३०	५०	२२	..	.	.	४०	४½	६
१७५०	४०	५०	४५	६५	२८				.	२½	९
१७७५	२३	२७	३६	५७	३६			.		२½	७½
१८०२	३५	३८	५८	३३	,,				.	,,	
१८२५	३५	४०	५५	७०	,,			.		,,	
१८५०	२८	३०	६०	७०	४५	७८	७५	८१		,,	.
१८७५	१५	१८	३५	४०	२१	३०	२८	२५		,,	
१९००	१०	१३	१८	२०	१२	१८	१८	१४		,,	
१९१५	६	८	८	१०	८	१२	१२	१३	६	१	२
१९१८	३॥	५	४	६	४॥	६	४॥	६	६		२

ऑकड़े सेरके हैं और भाव फी रुपया है। जैसे सन् १७०० में चावल १ रुपयेमें ४० सेर।

सन् १८०२ ई० तक नोट किया गया From 'The Industrial Organization of an Indian Province' by Theadore Morrisson.

* अन्नके भावके घटनेका कारण जनसख्याके अतिरिक्त टकसाल mint और अन्नका बाहर भेजा जाना भी है।

भारतके और दूसरे दूसरे देशोंके प्रत्येक मनुष्यकी वार्षिक आमदनी ।

[सन् १९०९]

४५ पौं० स्काटलैण्ड
४० पौं० आस्ट्रेलिया
३९ पौं० अमेरिका
३७ पौं० बेलजियम
२७ पौं० फ्रान्स
२६ पौं० कैनाडा
२२ पौं० हालैण्ड
२२ पौं० जर्मनी
२० पौं० नार्वे
१९ पौं० स्विट्जलैण्ड
१६ पौं० स्पेन
१५ पौं० आस्ट्रिया
१२ पौं० इटली
११ पौं० रूस
१ पौण्ड भारतमें

५० पौं०
४० पौं०
० पौं०
पौं०
पौं०
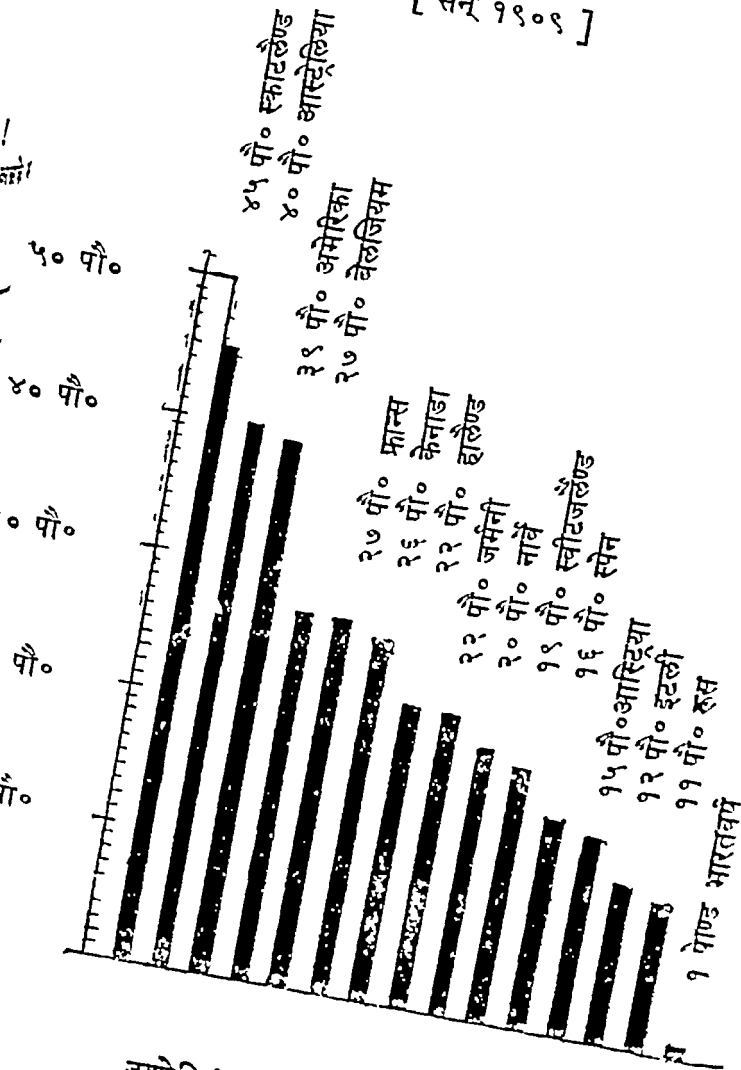
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ॥

आस्ट्रेलिया और भारतवर्षके आयव्ययका मुकाबला

आस्ट्रेलियाके प्रत्येक मनुष्यकी वार्षिक आमदनी ४० पौण्ड और बचत २० पौण्ड १८ शिलिङ्ग है। अर्थात् वहाँ पर खर्चसे आमदनी अधिक है। नीचे दिये हुए चित्रसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी। इसका प्रत्येक काला कोठा बचतके पौण्डोंको बतलाता है और धारीवाला कोठा आमदनीके पौण्डोंको।

आस्ट्रेलिया।
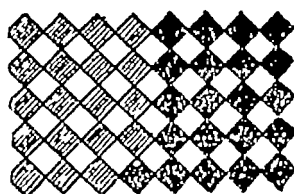
भारतवर्ष।

खर्चमें कमी।

आमदनी।

खर्च।

भारतके प्रत्येक मनुष्यका बहुत मामूली खाने कपड़े आदिका वार्षिक खर्च २ पौण्ड—अर्थात् ३० रुपया—या ढाई रुपया महीना है, परन्तु आमदनी है केवल १ पौ० २ शि० ८ पैन्स—अर्थात् १७ सत्रह रुपया। इस हिसावसे यहाँके प्रत्येक मनुष्यको निर्वाहके लिए १३ रुपयेकी कमी पड़ती है।

आगे नकशा नं० १ में जिन देशोंके नाम दिये हैं, वे देश अपने खर्चके लिए काफी गेहूं रखकर दूसरे देशोंको भी भेज सकते हैं। नकशा नं० २ वाले देशोको दूसरे देशोंसे गेहूँ खरीदना पड़ता है। इन नकशोंमें दिये हुए देशोंके अलावा कुछ देश ऐसे भी हैं, जो न तो बाहरसे गेहूं मोल लेते हैं, न अपना गेहूँ दूसरे देशोको बेचते हैं, अतएव उन देशोंका नामोल्लेख करनेका प्रयोजन नहीं। अमुक देशसे गेहूं बाहर जायगा अथवा नहीं, यह बात उस देशकी गेहूंकी पैदावार और जनसंख्या पर अवलम्बित है। इसमें भी एक बात और देखनी पड़ती है, वह यह कि अमुक देशमें प्रत्येक मनुष्य पीछे साधारणतः कितने गेहूँकी आवश्यकता रहती है। उदाहरणार्थ, इंग्लैड, कैनाडा, आस्ट्रेलिया इत्यादि देशोमें फी आदमी तीन हंड्रेडवेट अर्थात् ११८ सेर गेहूंकी आवश्यकता होती है। यदि भारतवर्षकी ३१॥ करोड़ प्रजा इसी प्रमाणसे गेहूं खर्च करे, तो हमारे देशसे गेहूंका एक दाना भी बाहर नहीं जा सकता। इतना ही नहीं वरन् दुनियाकी सारी गेहूंकी पैदावार अकेला भारतवर्ष खा जायगा। यहाँ साधारणतः फी आदमी ४० सेर गेहूं पैदा होता है, इसमे भी करीब $\frac{1}{7}$ हिस्सा दूसरे देशोंको रवाना हो जाता है।

---

* Maryada, October 1915

Enquiry into the Rise of Prices in India, Vol. I. Page 115, by K. L. Datta, M. A., F. R. A. S.

गेहूँकी पैदावारका नकशा न० १ *।

देशका नाम।	जनसख्या।	गेहूँकी पैदावार।	प्रति मनुष्य पीछे पड़ता
अमेरिकन सयुक्त रियासतें	१०,२०,००,०००	२७,८९,००,०००	हड्रेडवेट २
रूस	१८,२२,००,०००	२६,००,००,०००	१ [illegible]
भारत	३१,५०,००,०००	२०,३१,६०,०००	६
फ्रान्स	४,००,००,०००	७,८४,६०,०००	१
अर्जेण्टाइन	८५,७४,०००	४,२१,२०,०००	४
इटली	३,६५,००,०००	७,६२,००,०००	२
कनाडा	८३,६१,०००	१०,००,००,०००	१५
हगरी	२,०८,८६,०००	८,११,१०,०००	३
रूमानिया	७५,००,०००	३,६०,००,०००	४
आस्ट्रेलिया	४९,००,०००	७,६७,००,०००	१५
मिस्र	२५,००,०००	१,९८,८०,०००	१
स्पेन	००,००,०००	७,७६,६०,०००	३
बलगेरिया	४४,३२,०००	२,०८,००,०००	४
चिली	३८,७०,०००	९६,६९,०००	२
युराग्वे	१३,७८,०००	२९,३३,०००	२

* The Statesman's Year Book 1918

गेहूँकी पैदावारका नकशा न० २।

देशका नाम।	जनसंख्या।	गेहूँकी पैदावार।	प्रति मनुष्य पीछे पड़ता।
ग्रेट ब्रिटेन	४,५२,५०,०००	३,९०,००,०००	८६
जर्मनी	६,५०,००,०००	९,५०,००,०००	१·४६
आस्ट्रेलिया	३,०४,००,०००	३,६५,००,०००	१·२
जापान	५,००,००,०००	१,५०,००,०००	·३
हालैण्ड	६०,००,०००	३३,५०,०००	५५
नार्वे	२४,००,०००	१,७०,०००	०७
स्वीडन	५५,००,०००	६५,००,०००	१·१८
डेन्मार्क	२८,००,०००	२५,००,०००	९
पोर्तुगाल	५५,००,०००	६५,००,०००	१·१८
ग्रीस	२७,००,०००	३५,००,०००	१ ६
स्विट्जरलैंड	३८,००,०००	३०,००,०००	५

[ऊपर दिये हुए आँकडे सन् १९१४ के हैं और हड्रेटवेटमें हैं।]

चौथा परिच्छेद ।

दैवी कारण—दुर्भिक्ष या अकाल ।

स्वर्गीय सर रमेशचन्द्र दत्तने कहा है कि—

" The immediate cause of famines in almost every instance is the failure of rains; but, if we honestly seek for the true causes, without prejudice of bias, we shall not seek in vain The intensity and the frequency of recent famines are greatly due to the resourceless condition and the chronic poverty of the cultivators .... the poorest and most miserable peasantry on earth "

अर्थात्—" जब कभी दुर्भिक्ष पडता है, तब प्राय· सदा ही उसका कारण पानीका न बरसना होता है। पर, यदि हम सत्य भावसे इसका खास कारण ढूँढें, तो हम निराश न होंगे। इस तरफ जो इतने कड़े और इतने अधिक अकाल पड़े हैं, उनका कारण किसानोंका सम्पूर्ण निर्धन होना और बहुत पुरानी दरिद्रता है। ये किसान दुनियाभरमें सबसे अधिक निर्धन और विपत्तिग्रस्त हैं। "

" The real cause of Indian Famines is, the extreme, the Abject, the Awful, Poverty of the Indian People."—*the New England Magazine, September 1900.*

अर्थात्—" हिन्दुस्तानमें दुर्भिक्षका मुख्य कारण भारतवासियोंकी अत्यन्त नीचे दरजेकी, भयंकर दरिद्रता है। "—

" They can save nothing in years of good harvest, and consequently every year of draught is a year of famine "—*Open letter to Lord Curzon by R. C Dutt.*

अर्थात्—"वे अच्छी फसलमेंसे कुछ बचाकर नहीं रख सकते, और इसका फल यह होता है कि जिस साल पानी ठीक तरह पर न बरसा, बस अकाल पड़ा।"

".. That he finds starvation invariably staring him in the face, if any disorder overtakes that little crop which is the only thing which stands between him and death "—*Prosperous British India, page 166.*

अर्थात्—"किसान कराल कालको हर वक्त अपनी ओर घूरता देखते हैं। जब कभी कुछ गड़बड़ी उनकी छोटीसी खेतीमें पड़ जाती है, जो कि उनके, और मौतके बीचमें खड़ी रहती है, तो भयंकर काल उनके गले पर सवार हो जाता है।"

सर विलियम हण्टर, मिस्टर ए. ओ हिउम, सर आक्लैण्ड काल्विन, सर चार्ल्स एलिएट, लार्ड क्रोमर, सर हेनरी काटन, मिस्टर केयर हार्डी, मिस्टर सण्डरलेण्ड और सर जेम्स कार्ड आदि सभी सज्जन एक स्वरसे कहते हैं कि भारतमें दुर्भिक्षका प्रधान कारण भारतवर्षकी घोर दरिद्रता है।

अँगरेजीके दो इतिहासज्ञों और दो भारतवासियोंने—जिनमेंसे एक स्वाधीन राज्यके दीवान थे—मिलकर और भलीभाँति जाँच करके एक सूची तैयार की है जिससे मालूम होता है कि ग्यारहवीं शताब्दिमें २, तेरहवींमें १, चौदहवीमें ३, पन्द्रहवीमें २, सोलहवींमें ३, सत्रहवीमें ३ और अठारहवीं शताब्दिमें सन् १७४५ तक ४, इस तरह लगभग साढ़े सात सौ वर्षोंमें यहाँ सब मिलाकर अठारह अकाल पड़े थे। और वे सब प्रायः लोकल या स्थानीय थे। उनका प्रभाव बहुत विस्तृत क्षेत्र पर न था।

अठारहवीं शताब्दिमें सन् १७६९ से लेकर १८०० तक तीन अकाल पड़े—एक बंगालमें सन् १७६९–७० में, दूसरा बम्बई और मद्रासमें सन १७८३ मे और तीसरा उत्तर हिंदुस्तानमें सन् १७८४ में।

इसके बाद १९ वीं शताब्दिमे अकालोंका जोर बढ़ने लगा। १८०० से १८२५ तक ५ अकाल पड़े जिनमे लगभग १० लाख आदमी मरे, १८२६ से

---

* देखो प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया, पृष्ठ १२३।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दिके अकाल।

नाम सूबे जब अकाल पड़ा	१७६९	१७७०	८१	८३	९०	९१	९१	१८०१	०३	०५	१२	२३	३२	३७	५४	६०	६५	६८	७३	७७	८५	८९	९०	९१	९७	१९००
बंगाल प्रांत	...	अ	...	. .	...	. .	...	.		. .		.		..	. .	...	अ	...	अ		अ	.	.	अ	अ	
बिहार	..	अ	..		...		..	...	...	.	.	.	.	...	. .	...	अ	..	अ	. .		अ			अ	
उड़ीसा	.	.	..		.		.	..		. .			..	..	..	...	अ	...	...			अ	.		.	
अवध	..	...	...	अ	..		.	...		..		. .	.	.		...	...	..	.	अ		..	अ		अ	
एन्०डब्लू०पी०	...	...	.	अ	..		.	.	अ		अ	..	...	अ	..	अ		अ	अ	अ			अ		अ	.
पंजाब	..	.	.	अ	..	..	.	.	.	.			.	...	..		...	अ	..	...					अ	अ
सेंट्रल प्राविंसेज	...	.	.		...	.	..			...			. .	..	.	...	...	अ	.	.					अ	अ
सेंट्रल इंडिया	.	.	...	अ				..		..			..	...	. .	.	.	अ	...	.	.				अ	अ
राजपूताना	.	...	. .	...	..	..	.	.		...	अ		.	...	.	...	...	अ	...		.	.			अ	अ
सिंध	..	...	...		....	.	..			.	.		...	...	...	...	...	...	...			...		.		अ
गुजरात		.	..	.	..	अ	.	अ	अ	..	...		...	...	. .	...	.	...	...	.		. .	.			अ
बम्बई	...	...	.	...		अ	...	अ	.	...	अ	..	...	..	...	...	.	अ	. .	अ				अ	अ	अ
बरार		..	..	.	...	..	...	.	...				अ	...	अ	...	...	...	..						अ	अ
हैद्राबाद		...		.		अ	..	अ	...	अ		अ	अ	...	अ	..	अ	...		अ					अ	अ
मद्रास	अ	...	अ	..	अ	..	अ						...	...	...	...	.	...	..	अ	अ	अ			अ	.
मैसोर	...	...			.	..	..			. .			...	...	...	..	..	.	...	अ					.	
बर्मा प्रांत			..	.		.							...	...	...	..	.	...	...					अ	अ	
कितने प्रांतोंमें अकाल पड़ा	१	२	१	४	१	३	१	३	२	१	३	१	२	१	२	१	४	६	३	६	२	३	२	३	१३	९

१८५० तक दो अकाल पड़े ५ लाख मरे, १८५१ से १८७५ तक ६ पड़े १५० लाख मरे, और १७६ से १९०० तक १८ पड़े जिनमें अनुमानत. २ करोड़ ६० लाख आदमी कालके गालमें चले गये !

मि. डब्ल्यू. एल. हरेने १८ वीं और १९ वीं शताब्दिके अकालोका एक प्रातवार नकशा बनाया है जो पिछले पृष्ठमें दिया गया है।

अकालोंसे कितनी हानि होती है इसका अनुमान करनेके लिए सन् १८७७–७८ के एक अकालकी हानिका हिसाब नीचे दिया जाता है:—

१	सरकारी खर्चमें हानि	८०,००,०००	पौंड
२	मालगुजारीमें घटी	२५,२०,०००	,,
३	खेतीकी हानि	३,७८,००,०००	,,
४	मादक वस्तुओंके टैक्समें हानि	२,८५,०००	,,
५	चुंगीकी आमदनीमें घाटा	४,७९,०००	,,
६	नमकके टैक्समें हानि	२,७३,०००	,,
७	जेवरोंकी हानि	९८,८०,०००	,,
८	खानेकी चीजोंकी गिरानीसे	१,३०, ००,०००	,,
९	पशुओंकी हानि	४७,४९,५००	,,
१०	मजदूरीकी हानि	२७,५०,०००	,,
११	कर्ज देनेवालोंकी हानि	२०,००,०००	,,
१२	व्यापारियोकी हानि	१०,००,०००	,,
	जोड़	८,२७,३६,५००	पौण्ड

इस तरह एक सालके अकालसे ८,२७,३६,५०० पौण्डकी हानि हुई, उसके साथ ही ५०,००,००० आदमी भी मरे। इन ५० लाख आदमियोकी हानिके लिए कितना रक्खा जाय, इसका उत्तर पाठक खुद सोचे। दुनियाके किसी भी सभ्य देशमें न इतने लोग भूखे रहते हैं और न कहीं इतने अकाल पडते हैं। जर्मन, फ्रांस, अमेरिका आदि देशोमें तो लोग अकालका नाम ही भूल गये हैं। पर दरिद्रभारत–जिसे कि अब तक लोग 'सुखी भारत' कहते हैं–अकालोंके मारे मरा मिटता है।

* सन् १८८० और १८९८ के फेमीन कमीशनकी रिपोर्टोंसे प्रकट होता है कि छोटे अकालोंके छोड़कर सन् १७७० ई० से १८७८ तक १८ बडे अकाल पड़े। इनमें यदि १८८९, १८९२, १८९७ और १९०० के अकाल जोड़ दिये जायँ तो कुल २२, घोर अकाल होते हैं जिनका पूर्ण वृत्तान्त सुनकर विदेशियोंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और कलेजा कॉप उठता है।

* १ बंगालका अकाल सन् १७७१–बंगाल प्रान्तको सरकारी नौकरोंने तवाह कर दिया था। लोग अत्यन्त दरिद्र और दुखी हो गये थे। कोर्ट आफ डायरेक्टर्सने अपने १७ मई सन् १७६६ के पत्रमें अपने नोकरोंके अत्याचार पर शोक प्रकट किया था—" The corruption and rapacity of our servants " सरकारी कर्मचारियोंमें घूम घूम कर जॉचा तो मालूम हुआ कि बंगाल प्रान्तके एक तिहाई लोग उस अकालमें मर गये। मृत्युसख्या १ करोड़।

२ मद्रासका अकाल सन् १७९२–मृत्युका ठीक अन्दाजा नहीं किया जा सका।

३ उत्तरी हिन्दुस्थानका अकाल सन् १७८४—बहुत बड़ा अकाल पड़ा, गॉवके गॉव उजड़ गये। वनारस राज्यमें इतने लोग मरे कि वहाँकी एक तिहाई खती बन्द हो गई। मृत्युका ठीक अन्दाजा नहीं किया जा सका।

४ वम्बई और मद्रासका अकाल सन् १७९२—मृत्युका अन्दाजा ठीक नहीं किया जा सका, पर अकाल वहुत बड़ा था।

५ बम्बईका अकाल सन् १८१३—वम्बई सरकारने दूरसे अन्न मँगाकर एक खास दरपर सर्वसाधारणके हाथ बेचा और बहुत लोगोंकी रिलीफ वर्कद्वारा सहायता की। मृत्युकी संख्या ठीक मालूम नहीं हुई।

६ उत्तरी हिदुस्तानका अकाल सन् १८१४ ई०—सरकारने बड़ी सहायता की, वहुतसी मालगुजारी माफ कर दी, काश्तकारोंको कर्ज दिया, और वनारस, इलाहावाद और कानपुरको जो अन्न गया उस पर कुछ वाउण्टी (Bounty) या एक प्रकारकी सहायता दी।

७ मद्रासका अकाल सन १८१७—अकाल वहुत वड़ा था। सरकारने अन्न खरीद कर उसे सस्ते भाव पर वेचा, और लोगोंके प्राण बचानेमें सहायता दी।

* R. C. Dutt

* Famines in India

८ बम्बईका अकाल सन् १८२३—सरकारने अन्न पर कुछ बाउण्टी या एक प्रकारकी सहायता दी।

९ मद्रासका अकाल सन् १८२३—सरकारने कुछ सहायता दी।

१० मद्रासका अकाल १८३३—गंटूर जिलेके ५ लाख आदमियोंमेंसे २ लाख मर गये। मदरासकी गलियोंमें और निलोरकी सड़कों पर आदमियोंकी लाशें छितरी रहती थीं!

११ उत्तरी हिन्दुस्तानका अकाल सन् १८३७—कानपुर, फतहपुर और आगराके शहरोंमें लाश फेंकनेवालोंका खास इन्तजाम करना पड़ा कि जो लाशें सड़को पर पड़ी हों वे फेंक दी जावें। कभी कभी लाशें सड़को पर ही पड़ी रह जाती थीं और जंगली जानवर आकर उन्हें खा जाते थे। ८ लाख मौतें हुईं।

१२ मद्रासका अकाल सन् १८५४—९ महीने तक रिलीफ वर्क जारी रहा।

१३ उत्तरी हिन्दुस्तानका अकाल सन् १८६०—३५,००० आदमियोंको रिलीफ वर्क और ८०,००० को खैराती मदद ९ महीने तक मिली, तिसपर भी २ लाख आदमियोकी मृत्यु हुई।

१४ उड़ीसाका अकाल सन् १८६६—४२,००० आदमियोंकी मदद १६ महीने तक की गई, तिस पर भी ४॥ लाख आदमी मरे। सरकारने दो लाख ८० हजार मन गल्ला पहुंचाया, तो भी उड़ीसामें १० लाख आदमी मरे।

१५ उत्तरी हिन्दुस्तानका अकाल १८६९—६५,००० आदमी रिलीफ वर्क पर काम करते रहे और १८,००० को खैराती मदद सिर्फ उत्तर पश्चिम प्रान्तमें दी गई। तो भी १२ लाख आदमी मरे।

१६ बंगालका अकाल सन् १८७४—७,३५,००० आदमी रिलीफ वर्कसे और ४½ लाख आदमी खैराती सहायतासे ९ महीने तक पले। इस अकालमें ऐसा अच्छा सरकारी प्रबन्ध था कि अकालके कारण एक भी आदमी न मरा।

१७ मद्रासका अकाल सन् १८७७,—यहाँ पर बंगाल प्रान्तसे उलटा प्रबन्ध हुआ। सर रिचर्ड टेम्पुलने यह कहकर मजदूरी घटा दी कि सरकारका फर्ज पेट भर अन्न देना नहीं है। वह उतना ही अन्न देगी जिनसे लोगोंका पेट न भरे, पर प्राण बच जायें। आखिर २,७१,८०० आदमियोंको अधपेटी सहायता दी गई और ५० लाख आदमी मरे।

१८ उत्तरी हिन्दुस्तानका अकाल सन् १८७८—१२,७५० आदमियोंकी अनाथालयोसे और ५७,००० की रिलीफ वर्कसे सहायता की गई। प्रबन्ध ठीक न होनेके कारण १२॥ लाख आदमी मरे।

१९ मद्रासका अकाल सन् १८८९,—सहायता दी गई, पर लोग बहुत मरे।

२० मद्रास, बंगाल, बर्मा और अजमेरका अकाल सन्, १८९७—यह अकाल बहुत बड़ा था, सहायता दी गई, बंगालमें मृत्यु नहीं हुई पर मद्रासमें बहुत लोग मरे।

२१ उत्तरपश्चिम प्रान्त, बंगाल, बर्मा, मद्रास और बम्बईका अकाल सन् १८९७—जितने अकाल हिन्दुस्तानमें पड़े थे, यह उन सबसे भयंकर और कठोर था, और सारे हिन्दुस्थानमें इसका असर था। ३० लाख आदमियोंको सहायता दी गई। मध्यप्रदेशके सिवा सब जगह प्रबंध अच्छा था। इससे अकालके बड़े होनेके मुकाबले मृत्यु अधिक नहीं हुई।

२२ पञ्जाब, राजपूताना, मध्यप्रदेश, और बम्बईका अकाल सन् १९०६ ई०—यह भी हिन्दुस्तानके अकालोंमें बहुत बड़ा अकाल था। ६० लाख आदमी रिलीफ वर्क पर थे, तो भी मृत्यु बहुत हुई।

स्वर्गीय बाबू रमेशचंद्रदत्तने लिखा है कि-"जब किसी देशमें राज्यपरिवर्तन होता है, मुल्क जीत कर कोई दूसरा राजा आता है, तो लड़ाई और बदइन्तजामीके कारण अकाल पड़ना ठीक है। पर हिन्दुस्तानमें इस कुसमयको बीते बहुत दिन होगये। सन् १८५८ में राज्यकी बागडोर माननीया महारानी विक्टोरियाको सोंपी गई। तबसे आजतक, हिन्दुस्तानके भीतरी भागोमें कभी लडाई नहीं छिड़ी। यहाँकी प्रजा शान्तचित्त और राजभक्त है, मेहनती और किफायतशारीसे रहनेवाली है, अँगरेज अफसरोंकी कई पीढ़ियाँ, यहाँका काम करते और अनुभव प्राप्त करते बीत गई, फिर भी अकाल पड़ना बन्द नहीं हुआ। ४० वर्षके हिन्दुस्तानमें १७ अकाल पड़ चुके और उनमें एक करोड ५० लाख आदमी मर चुके। पृथ्वी पर किसी सभ्य देशकी, जहाँके राजा सभ्य है, एसी भयंकर और शोकपूर्ण दशा नहीं है।"

"It is a melancholy phenomenon, which is not represented in the present day by another country on earth enjoying a civilised administration."—R C D

पिछली सदीके आखिरी २५ वर्षोंमें अकालजन्य मृत्युकी औसत निकालनेसे प्रतिवर्ष १०लाखसे अधिक हिन्दुस्तानी कालके ग्रास बने हैं! अर्थात् प्रति महीना ८६ हजार, प्रति दिन २,८८०, प्रति घण्टा १२०, प्रति मिनिट २ हिन्दुस्तानी बराबर २५ वर्ष तक मरते गये हैं। और कैसे मरे? पहले, यदि घरमे गाय है तो बेच डाली, फिर हलके बैल बेचकर बच्चोंका प्राण बचाया, उसके बाद गृहस्थीकी छोटी छोटी चीजे—जो एक गरीब किसानके घरमे होती हैं बर्तन, कपड़े या और कोई चीज—जिसका ग्राहक मिला, और जिस वे एक आने तकमें भी बेच सकते हैं या जिसके बदले एक मुट्ठी मटर पा सकते है छोड़ नहीं रखते। आखिर, हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं। बच्चोकी ऑखें भूखसे बैठती जाती हैं। अब यह साहस भी बाकी न रहा कि पानी लाकर, सॉय सॉय करते हुए अपने हृदयके टुकड़े प्यारे पुत्र या प्यारी पत्नीके मुँहमे—जिसका दम टूट रहा है,—जल डालें।

माताने प्राण त्याग दिया, बच्चा भूख और प्याससे तड़प तड़प कर अचेत या मृतक माताके स्तनोको चूसता है और निदान निराश तथा हताश होकर उसी सीनेपर पड़ा पड़ा मर जाता है! यही हृदयवेधक दृश्य देखते हुए, या यदि न देखा गया तो पीछेके खेतमे जाकर, लोग प्राण त्याग कर देते हैं और इनकी लाशोका संस्कार गॉवके श्रृगाल या कुत्ते करते है।
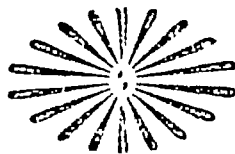
पाँचवाँ परिच्छेद ।
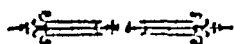
दैवी कारण–रोग और मृत्यु ।

वृक्ष-जगत् ।

सेठ अमीरचन्द्र और आनरेबल बाबू मोतीचन्द्रके पास पास मुकाबलेके मनोहर बाग है । सुन्दर वनस्पतियाँ, नाना प्रकारके अनोखे फूल, पत्तियाँ और कोमल लतायें लाखों रुपयोंके खर्चसे दोनों ही बागोंमें लगाई गई हैं । एक बागकी पत्तियाँ मुर्झा रही हैं, लतायें कुम्हलाई जाती हैं, और दूसरेमें ठीक वही वनस्पतियाँ हरी भरी लहरा रही हैं और लतायें कोठीका कँगूरा छूना चाहती हैं । क्या ? इसलिए कि एक बागमें उनकी रक्षा ठीक तरह पर नहीं की जाती, समय पर जल और खाद आदि नहीं दिया जाता और दूसरी जगह इन सब बातोंका अच्छा प्रबन्ध है ।

पुष्प-प्रदर्शिनी और पुष्प-पारितोषिक (Flower show and flower prizes) इस बातको सिद्ध करते हैं कि जितनी अधिक देख भाल वनस्पतियोंकी होगी वे उतनी ही पुष्ट होंगी और वैसे ही बड़े फूल या फल देंगी ।

यह ठीक है कि अबतक कोई फूल बढ़ानेवाला लाख कोशिशोंके बाद भी बड़ी गोभीके फूलके बराबर गुलाबका फूल न दिखा सका, पर साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि कोई यह नहीं कह सकता कि यह फूल दुनियामें सब फूलोंसे बड़ा है और इस फूलसे बड़ा कोई फूल न हो सकेगा । मतलब यह कि आज जो सबसे बड़ा गुलाबका फूल है, यत्न करनेसे उसी पेड़से उससे भी बड़ा फूल निकल सकता है । अतएव न यही कहा जा सकता है कि गुलाबका फूल बड़ी गोभीका फूल हो जा सकता है और न यही कहा जा सकता है कि अमुक गुलाबके फूलसे बड़ा फूल नहीं हो सकता ।

पशु-जगत् ।

विलायतके विद्वान्‌ ग्वाले कहते हैं कि–" आप जितना अच्छा पशु चाहे हम धीरे धीरे तैयार कर दे सकते हैं। "

लेसिस्टर शायरके मशहूर ग्वालोंके एक दलने यह यत्न करना प्रारम्भ किया कि एक भेड़को घोड़ेके बराबर किया जाय और दूसरे दलने यह किया कि एक भेड़को चूहेके बराबर छोटा कर दिया जाय। पर दोनों दलोंका यत्न निरर्थक गया। भेड़ न तो घोड़ेहीके बराबर बढ़ सकी और न चूहेके बराबर छोटी ही हो सकी। पर साथ ही यह भी कहा जाना चाहिए कि उनका यत्न किसी दरजे तक सफल भी हुआ, अर्थात् एक दलकी भेड, यत्नद्वारा साधारण ऊंचाईकी भेड़ोसे बहुत बढ़ गई और दूसरे दलकी बहुत छोटी हो गई।

इस तरह प्रायः सभी पशु उत्तम जोड़ेसे पैदा किये जाने, भली भाँति खिलाये जाने और ठीक तरह पर काममें लिये जाने पर बड़े कदवाले, अधिक काम करनेवाले और ज्यादा दिन जीनेवाले बनाये जा सकते हैं।

In short, careful distinction should be made between reasonable and unlimited progress अर्थात् उचित और अनुचित उन्नतिकी सीमाका अन्तर बहुत चतुराईसे देखना चाहिए।

मनुष्य-जगत् ।

प्रकृतिने मनुष्यमात्रकी उन्नति भी पूर्वोक्त नियमके अधीन रक्खी है। मनुष्यका दीर्घायु या अल्पायु होना, आरोग्य या रोगी होना, बलवान् या निर्बल होना, भिन्न भिन्न देशोकी अच्छी या बुरी आबोहवा पर, अच्छे या या बुरे आहार पर और पुण्य या पापमय जीवन व्यतीत करने पर निर्भर है। जिस देशमें इन वस्तुओका जैसा सुभीता होता है, वहाँके निवासी वैसे ही आरोग्य, बलवान् और दीर्घायु होते हैं, और जहां जितना अभाव होता है, वहाँके लोग उसी हिसाबसे रोगी, निर्बल और अल्पायु हुआ करते हैं।

मनुष्यकी आयुका निश्चय करना और उसके लिए एक सीमा बाँध देना असम्भव जान पड़ता है। पीटर मेफसने भारतके इतिहासमें लिखा है कि नुमीस डे सन् १५६६ ई० मे मरा, उस समय उसकी आयु १७१ वर्षकी थी। टामस डारकी आयु १५२ वर्षकी थी। इफिन्वम १४४ वर्षकी उमरमें मरा। गोसाईं लक्ष्मण पुरी, इमलहा (मिर्जापुर) ११९ वर्षके होकर मरे।

आप बालब्रह्मचारी थे और आयुपर्यन्त ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करते रहे। गोवर्धन गंडेरिया (चकिया बनारस स्टेटके समीप) आयु ११६ वर्ष, अभी जीवित हैं, सब अंग ठीक हैं, अभी कोसों चल सकता है। कहता है कि मैं बहुत दिनोंसे केवल दूध और जंगली फल आदि खाकर रहता हूं। तलाश करनेसे हर शहरमें, हर गांवमें अभी सौ वर्ष या उससे अधिक आयुवाले मिलेंगे। कठिन स्वदेशव्रतधारी, निज-सुख-सम्पत्तिकी आहुति देनेवाले माननीय दादाभाई नौरोजी मनुष्यके दीर्घायु होनेके प्रत्यक्ष प्रमाण थे। माननीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कहते हैं कि, "गत १६ वर्षोंसे मैंने प्रत्येक नित्यके कामके लिए एक समय निश्चित कर लिया है, उसी समय पर खाता हूँ, और आफिस जाता हूँ। इस नियममें एक दिन भी गड़बड़ी नहीं पड़ने पाई। फल यह हुआ कि गत सोलह वर्षोंसे मैं एक दिनके लिए भी बीमार नहीं हुआ।"

अनुकूल, शुद्ध, सात्विक भोजनसे, निर्मल जल और पवित्र वायु-सेवनसे, स्वच्छ हवादार कमरोंमें रहनेसे, बल और पौरुषको हानि न पहुंचानेवाली दिनचर्यासे, शारीरिक बल और पराक्रम बढ़ानेवाले व्यायाम (कसरत) से, नेशन या राष्ट्रीयताका क्षय करनेवाले दो प्रधान कारण—घोर दरिद्रता और अत्यन्त अधिक धनाढ्यता—का सम्पूर्ण विनाश कर देनेसे, ब्रह्मचर्यके पश्चात् योग्य और आरोग्य सन्तानोत्पत्तिसे, स्वास्थ्यरक्षा और उत्तम चिकित्साशास्त्रके ज्ञानसे, स्त्री और पुरुषकी सामाजिक और मानसिक दशा बराबर ऊँची करनेसे, देशके सुखी होनेसे, और शातिमय पवित्र जीवन व्यतीत करते रहनेसे, मनुष्य चाहे अजर और अमर न हो जाय, पर उसके जन्म और प्राकृतिक मरणके बीचका समय अर्थात् आयु, बहुत बढ़ जायगी और बराबर बढती ही रहेगी। इस बढ़ावकी सीमा न होगी।

".. Man may not become quite immortal, yet the duration of life between birth and natural death will increase without ceasing, will have no assignable term, and may properly be expressed by the word 'indefinite', a constant approach to an unlimited extent without ever reaching it or an increase in the immensity of ages to an extent greater than any assignable quantity"

अर्थात् "मनुष्य अमर तो नहीं हो सकता, परतु उसके जीवनके दिन स्वाभाविक मृत्युके दिनोसे बढ़ सकते हैं और फिर यह कोई नहीं कह सकता

कि अमुक पुरुषकी अवस्था इतने ही दिनोंकी होगी। धीरे धीरे अवस्थामें वृद्धि होते होते सेकड़ों वर्षोंमें मनुष्य ऐसा दीर्घजीवी बन सकता है कि उसकी उमरका कोई अंदाज नहीं कर सकता * ।"

"मनुष्यके मस्तकमें ग्रे सब्स्टन्स (grey substance) नामकी एक वस्तु होती है, उसीसे विचारशक्ति पैदा होती है। बच्चोंके दिमागमें ग्रे मैटर (grey matter or substance) बहुत कम होता है, इससे उनकी विचारशक्ति भी कमजोर होती है। ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता है ग्रे मेटर भी बढ़ता है और उसी हिसाबसे लड़केकी बुद्धि भी बढ़ती और पुष्ट होती है। युवावस्थामें इस वस्तुकी अधिकता और वृद्धावस्थामें कमी रहती है। उसीके अनुसार बुद्धिमे भी विशेषता और कमी हो जाती है। चोट लगनेसे, क्लोरोफार्म सुँघानेसे अथवा शराब पिलानेसे ग्रे मेटर पर असर पडता है, अतएव बुद्धि भी खराब हो जाती है। जहाँ ग्रे मैटर है वहीं बुद्धि है। यह वस्तु दिमागमे जितनी अधिक और जितनी स्वच्छ हो उतनी ही तीव्र और पवित्र बुद्धि भी होती है। जहाँ ग्रे मैटरका अभाव है वहा बुद्धिका भी अभाव है, अर्थात् ग्रे मैटर ही बुद्धि है + ।"

ठीक इसी तरह जीवनका दूसरा नाम रक्त (Blood) है और रक्तका दूसरा नाम आक्सिजन और आहार है। रक्त एक घण्टेके अन्दर बारह बार सारे शरीरमें घूमकर हृदयमें आता है, और फिर तुरत शरीरके अन्य भागोंमे घूमनेको निकल जाता है।

इसी तरह दिन, रात, सोते, जागते, हर वक्त रक्त चक्कर मारा करता है और जिस मिनटमें इसकी चाल बन्द हो जाती है उसी मिनटमे शरीरसे प्राण निकल जाता है। जब तक रक्त ठीक है आदमी आरोग्य है, जहाँ इसमें गड़-बड़ी पड़ी कि बस आदमीका स्वास्थ्य बिगड़ा। साँपके काटनेसे मृत्यु क्यों हो जाती है? इस लिए कि रक्त बिगड़ जाता है। किसी तरह पर रक्त निकल जा-नेमे, या रक्त कम हो जानेसे, आदमी कमजोर हो जाता है या मर जाता है। अनुकूल आहार और शुद्ध वायुसे नया रक्त बनता है और मनुष्य आरोग्य रह-ता है। विरुद्ध आहारसे रोग उत्पन्न होते है।

---

* M Condorcet's 'Problem of life'

+ 'Proofs of the existence of the soul', by Mrs Besant

आप बालब्रह्मचारी थे और आयुपर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत पालन करते रहे। गोवर्धन गॅडेरिया (चकिया बनारस स्टेटके समीप) आयु ११६ वर्ष, अभी जीवित है, सब अंग ठीक है, अभी कोसों चल सकता है। कहता है कि मैं बहुत दिनोसे केवल दूध और जंगली फल आदि खाकर रहता हूं। तलाश करनेसे हर शहरमें, हर गाँवमें अभी सौ वर्ष या इससे अधिक आयुवाले मिलेंगे। कठिन स्वदेश-व्रतधारी, निज-सुख-सम्पत्तिकी आहुति देनेवाले माननीय दादाभाई नौरोजी मनुष्यके दीर्घायु होनेके प्रत्यक्ष प्रमाण थे। माननीय सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी कहते है कि, " गत १६ वर्षोंसे मैने प्रत्येक नित्यके कामके लिए एक समय निश्चित कर लिया है, उसी समय पर खाता हूँ, और आफिस जाता हूँ। इस नियममें एक दिन भी गड़बड़ी नहीं पड़ने पाई। फल यह हुआ कि गत सोलह वर्षोंसे मैं एक दिनके लिए भी बीमार नहीं हुआ। "

अनुकूल, शुद्ध, सात्विक भोजनसे, निर्मल जल और पवित्र वायु-सेवनसे, स्वच्छ हवादार कमरोंमे रहनेसे, बल और पौरुषको हानि न पहुंचानेवाली दिनचर्यासे, शारीरिक बल और पराक्रम बढ़ानेवाले व्यायाम (कसरत) से, नेशन या राष्ट्रीयताका क्षय करनेवाले दो प्रधान कारण—घोर दरिद्रता और अत्यन्त अधिक धनाढ्यता—का सम्पूर्ण विनाश कर देनेसे, ब्रह्मचर्यके पश्चात् योग्य और आरोग्य सन्तानोत्पत्तिसे, स्वास्थ्यरक्षा और उत्तम चिकित्साशास्त्रके ज्ञानसे, स्त्री और पुरुषकी सामाजिक और मानसिक दशा बराबर ऊँची करनेसे, देशके सुखी होनेसे, और शांतिमय पवित्र जीवन व्यतीत करते रहनेसे, मनुष्य चाहे अजर और अमर न हो जाय, पर उसके जन्म और प्राकृतिक मरणके बीचका समय अर्थात् आयु, बहुत बढ़ जायगी और बराबर बढती ही रहेगी। इस बढावकी सीमा न होगी।

"...Man may not become quite immortal, yet the duration of life between birth and natural death will increase without ceasing, will have no assignable term, and may properly be expressed by the word 'indefinite', a constant approach to an unlimited extent without ever reaching it or an increase in the immensity of ages to an extent greater than any assignable quantity "

अर्थात् " मनुष्य अमर तो नहीं हो सकता, परतु उसके जीवनके दिन स्वाभाविक मृत्युके दिनोसे बढ़ सकते हैं और फिर यह कोई नही कह सकता

कि अमुक पुरुषकी अवस्था इतने ही दिनोंकी होगी। धीरे धीरे अवस्थामें वृद्धि होते होते सेकड़ों वर्षोंमें मनुष्य ऐसा दीर्घजीवी बन सकता है कि उसकी उमरका कोई अंदाज नहीं कर सकता * ।"

"मनुष्यके मस्तकमें ग्रे सब्स्टन्स (grey substance) नामकी एक वस्तु होती है, उसीसे विचारशक्ति पैदा होती है। बच्चोके दिमागमें ग्रे मैटर (grey matter or substance) बहुत कम होता है, इससे उनकी विचारशक्ति भी कमजोर होती है। ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता है ग्रे मैटर भी बढ़ता है और उसी हिसाबसे लड़केकी बुद्धि भी बढ़ती और पुष्ट होती है। युवावस्थामें इस वस्तुकी अधिकता और वृद्धावस्थामें कमी रहती है। उसीके अनुसार बुद्धिमें भी विशेषता और कमी हो जाती है। चोट लगनेसे, क्लोरोफार्म सुँघानेसे अथवा शराब पिलानेसे ग्रे मैटर पर असर पड़ता है, अतएव बुद्धि भी खराब हो जाती है। जहाँ ग्रे मैटर है वहीं बुद्धि है। यह वस्तु दिमागमें जितनी अधिक और जितनी स्वच्छ हो उतनी ही तीव्र और पवित्र बुद्धि भी होती है। जहाँ ग्रे मैटरका अभाव है वहाँ बुद्धिका भी अभाव है, अर्थात् ग्रे मैटर ही बुद्धि है + ।"

ठीक इसी तरह जीवनका दूसरा नाम रक्त (Blood) है और रक्तका दूसरा नाम आक्सिजन और आहार है। रक्त एक घण्टेके अन्दर बारह बार सारे शरीरमें घूमकर हृदयमें आता है, और फिर तुरंत शरीरके अन्य भागोंमें घूमनेको निकल जाता है।

इसी तरह दिन, रात, सोते, जागते, हर वक्त रक्त चक्कर मारा करता है और जिस मिनटमें इसकी चाल बन्द हो जाती है उसी मिनटमें शरीरसे प्राण निकल जाता है। जब तक रक्त ठीक है आदमी आरोग्य है, जहाँ इसमें गड़-बड़ी पड़ी कि बस आदमीका स्वास्थ्य बिगड़ा। साँपके काटनेसे मृत्यु क्यों हो जाती है? इस लिए कि रक्त बिगड़ जाता है। किसी तरह पर रक्त निकल जा-नेसे, या रक्त कम हो जानेसे, आदमी कमजोर हो जाता है या मर जाता है। अनुकूल आहार और शुद्ध वायुसे नया रक्त बनता है और मनुष्य आरोग्य रह-ता है। विरुद्ध आहारसे रोग उत्पन्न होते हैं।

---

* M Condorcet's 'Problem of life'

\+ 'Proofs of the existence of the soul', by Mrs Besant

चरक, सुश्रुत, हारीत, शार्ङ्गधर आदि आयुर्वेदके ग्रन्थोंकी सम्मति है कि विरुद्ध आहार और विहारसे ही रोग उत्पन्न होते हैं।

× जगत्प्रसिद्ध डाक्टर लुई कूने दुनियाके सब रोगोंकी उत्पत्तिका एक कारण बताते हैं और उसी एक कारणको दूर करके उन्होंने सब प्रकारके रोगियोंको आराम और आरोग्य कर दिखाया है। उनकी भी यही सम्मति है कि विरुद्ध आहार और विहारसे मलाशयमें कुछ मल एकत्रित हो जाता है और फिर वही मल शरीरके अनेक भागोंमें जाकर नानाप्रकारकी व्याधियां खड़ी कर देता है और उन व्याधियोंका लोग भिन्न भिन्न नामोंसे परिचय देते हैं। ज्वर क्या है? पहले मल पेड़ूके चारों तरफ जमा होता है और किसी समय अधिक सरदी या गरमी अथवा और किसी विरुद्ध आहार-विहारसे उबल पड़ता है। शरीरके प्रत्येक भागमें पहुंचकर, मलके छोटे छोटे टुकड़े आपसमें टकराकर गरमी पैदा करते हैं और सारे शरीरको गरम कर देते हैं।—यही ज्वर है। अथवा, ये मलके परमाणु रक्तके मार्ग पर पहुँचकर आवश्यकताके अनुसार रक्त नहीं जाने देते, कुछ देरके लिए रक्तकी चाल ढीली कर देते हैं। बस सारा शरीर या वह भाग—जहांका रस्ता रुका है—बरफसा ठण्डा हो जाता है।—यही सरदीका ज्वर है।

डाक्टर गोल्साल्चि (Golsehlich) गवर्नमेंण्टकी ओरसे हैजेके रोगकी जाच करके लिखते हैं कि—" People carry the germs of cholera in their intestines for months " * अर्थात् " हैजेके कीड़े मनुष्यके मलाशयमें महीनों पड़े रहते हैं। "

" It was discovered long ago in England that the main sources of fever, cholera, and other diseases are —

1 Want of ventilation,
2 Over-crowded house,
3 Bad and defective drain, and
4 The drinking water containing impurities "

In London, 200 years ago, the average annual mortality per thousand was 70, by 1865 it had lessened to 30 and

---

× The New science of Healing by Louis Kohne

* Government Report on Sanitary Measures in India 1904-5, page 88.

now with greatly increased population it has diminished to 15 per thousand *

अर्थात् कुछ दिन पहले लन्दनमें प्रति सहस्र सत्तर जन मरते थे। सन् १८३५ में मृत्यु-संख्या ३० हो गई और अब पहलेसे आबादी बहुत बढ़ जाने पर भी मृत्युका हिसाब प्रति सहस्र कुल १५ जन हो गया है। इस घटनेका कारण यह हुआ कि वहाँके लोगोंको मालूम हो गया कि ज्वर हैजा आदि अनेक रोगोंकी उत्पत्तिके ४ प्रधान कारण हैं:—१ मकानोंमे साफ हवाका अभाव, २ बहुतसे लोगोंका एक साथ एक ही मकानमें रहना, ३ बुरी और गन्दी नालियाँ और ४ ऐसा खराब पानी पीना जिसमे बुरे परमाणु मिले हो।

इन चार बातोंका सुधार करनेसे वहाँ रोग कम ही नहीं हुए बल्कि उस देशसे निकल भागे। केवल इंग्लैण्डमें ही नहीं बल्कि दुनियाके किसी भी सभ्य देशमें अब उन बीमारियोंका जोर नहीं है।

अब देखना चाहिए कि अभागे भारतकी क्या दशा है–यह सभ्य देशोके मुकाबले दीर्घायु है या अल्पायु।

क्या भारतकी आबादी घनी है ?

इस देशमें लोगोंका यह ख्याल है कि भारतवर्ष इतना बड़ा और विस्तृत देश है कि यहाँ पर न स्थानका अभाव है और न कभी होगा। भारतकी जनसंख्या और क्षेत्रफलके हिसाबसे यहाँकी आबादी पाश्चिमीय सभ्य देशोके मुकाबले घनी नहीं है। जबानी जमा खर्च कर देना आसान है, पर इस बातको सप्रमाण साबित करना कठिन काम है। देखिए:—

आबादीके लिहाजसे भारतवर्ष सारी दुनियामे दूसरे नम्बरका देश है। अर्थात् चीनको छोड़कर भूमण्डलके सभी देशोंसे यहाँकी जनसंख्या अधिक है। क्षेत्रफल भी यहाँका बहुत बड़ा है। भारतका ब्रिटेनसे अथवा फ्रास या जर्मनीसे मुकाबला करना–जहांकी न तो जनसंख्या बराबर है न क्षेत्रफल—भूल है। समस्त भारतकी जनसंख्याकी सघनताको आबादीके मुकाबले कम देखना केवल भ्रम है। हाँ, भारतके प्रत्येक प्रान्तकी जनसंख्या और क्षेत्रफल यूरोपके अनेक देशोंकी बराबरी करते है। अतएव, यदि संयुक्त प्रान्तका मुकाबला ब्रिटेनसे, बंगालका जर्मनीसे और मद्रासका फ्रांससे किया जाय तो ठीक पता चल सकता है।

* Sanitary Commission Report for 1865, Page 82

नीचे टिप्पणीमें दी हुई संख्याओंसे मालूम होता है कि संयुक्त प्रान्तकी आबादी विलायतसे, बंगालकी जर्मनीसे और मद्रासकी फ्रांससे अधिक घनी है ×। भारतके किसी किसी प्रांतमें तो इससे भी अधिक सघन वस्ती है। ट्रावनकोर राज्यमें प्रति वर्गमील ४१६ और कोचीनमें ५९६ मनुष्य बसते हैं।

साफ और हवादार मकानोंका अभाव।

भारतमें रहनेके मकानोंकी संख्या, ५,५८,४१,३१५ है। इनमेंसे ४, ३४,७४,७४८ ब्रिटिश भारतमें हैं और बाकी १,२३,६६,५६७ देशी राज्यों में। ब्रिटिश भारतके मकानोंमें २३,२०,७२,८३२ जन रहते हैं, जिनमें ११, ७८,९७,४३७ पुरुष और ११,४१,७५,३९५ स्त्रियाँ है। राजधानियोंके मकानोंमें कुल ६,२२,८८,२२४ मनुष्य निवास करते हैं, उनमेंसे ३,०२,५४, ३८७ पुरुष और ३,०२,३२,८३७ स्त्रियां हैं।

अब देखना है कि ये मकान कैसे हैं। साफ सुथरे हवादार हैं या गन्दे और रोगोंके उत्पादक।

× यूरोपके देशोंसे भारतके प्रान्तोंका मुकाबला।

देश और प्रांत	क्षेत्रफल वर्गमील	जनसंख्या लाख	प्रतिवर्गमील जनसंख्या
संयुक्त प्रांत	१,०७,२६७	४७१	४४०
ग्रेटब्रिटेन	१,२१,६३३	४५५	३७६
बंगाल	७८,६९९	४५४	५७८
जर्मनी	२,०८,७८०	६४९	३१०४
मदरास	१,४२,३३०	४१४	२९१
फ्रांस	२,०७,०५४	३९६	१८९५
बिहार और उड़ीसा	८३,१८१	३४५	४१५
इटली	१,१०,६३२	३६१	३२६५

* The Statesman's Year Book 1918

पहले संस्करणके पुराने आँकड़े बदल कर इस संस्करणमें नये आँकड़े दे दिये गये हैं।

* " The mud huts of the people favour the spread of plague, but they are built of mud because that is generally the only material, the builder can obtain. "

अर्थात्—" मिट्टीके कच्चे मकानोंसे प्लेग फैलनेमें सहायता मिलती है, लेकिन किया क्या जाय, बेचारोंको सिवाय मिट्टीके दूसरी कोई वस्तु, मकान बनानेको, प्राप्य ही नहीं होती। "

‡ "...He inhabits a mud hovel in the middle of a crowded village, surrounded by dunghills and stagnant pools, the water of which latter is not seldom his only drink "

अर्थात्—" भारतवासी, घनी वस्तीवाले गांवके बीचमें, एक एक मिट्टीकी झोपड़ीमें रहते हैं, जिसके चारो तरफ गोबर आदि खादका पहाड़ लगा रहता है, और पास ही गन्दे पानीकी गढ़ी या तलेया भी होती है। अकसर इसी तलैयाका पानी पीनेके काममें भी लाया जाता है। "

+ " The populous houses lie close together and breed disease "

अर्थात—" मकानात एक दूसरेसे सटाकर बनाये जाते हैं और उनमें ज्यादा आदमी रहते हैं। इससे बीमारियाँ होती है। "

× " The ordinary house contains a small court-yard, with a sitting room opening off it which is used by males only, while further back, worse ventilated and darker is the inner room in which females sleep Deep pit-sunk privy which is never cleared, the nightsoil being consumed by the pit, occupies the other corner of the unpaned wet court-yard Stagnant drain with all its usual filth rots away into the court-yard or at best, ends into a small pit dug at the foot of the female compartment. "

---

* Government Report on Sanitary Measurers in India 1904-5, page 96

‡ Prosperous British India

+ Sanitary Measures in India 1903, pages 93 and 96.

× Sanitary Measures in India

अर्थात्—" मामूली मकानोंमे एक छोटासा आंगन होता है और बाहरकी कोठरी होती है, जो मर्दोंके बैठनेके काम आती है। अन्दर जाकर बाहरकी कोठरीसे अधिक खराब, जिनमे न तो हवा आती है न रोशनी, दूसरी कोठरियां होती है जिनमे औरतें सोती है। इसी कच्चे सीड़से भरे आंगनके, एक कोनेपर संडासी पैखाना होता है। यह कभी साफ नहीं किया जाता। मैला, उसी कोठरीके गहरे गढ़ेमें खप जाता है। नाबदानका सब मैला, इसी आगनमें सड़ा करता है, या जनाना कोठरीके बगलके एक छोटेसे गढ़ेमे खतम होकर सड़ा करता है।"

आइए, अब आपको भारतके उस शहरकी सैर करावें, जो ब्रिटेनके झण्डेके नीचे दूसरे नम्बरका, और सारी दुनियाके शहरोंमें बारहवें नम्बरका शहर है, जो महलोंके शहर (city of palaces) के नामसे मशहूर है, जो धनी व्यापारियोंका केन्द्र है और जहां, अभी कुछ ही समय पहले, भारतकी राजधानी थी।

पाठकगण, इस समय मैं आपको हवड़ा स्टेशनसे, पञ्जाबमेलके फर्स्टक्लास रिजर्व कम्पार्टमेण्टसे, उतार कर, मोटरमें बैठाल कर, सेठ दुलीचन्दकी कोठीमें न ठहराऊँगा, एडेन, जुलाजिकल या बुटानिकल गार्डेनकी हवा न खिलाऊँगा, आनरेबुल मिस्टर मुकरजीके बंगलेकी सजावट, राजेन्द्र मल्लिकके कमरेकी एक एक लाखकी तसवीरें, कीमती शीशे और प्रतिमूर्तियाँ (Statue) न दिखलाऊँगा, जड़ाऊ मन्दिर, जौहरियोकी झकाझक दूकानें, चौरंगीके आलीशान सौदागरोंका मनोहर सामान, आस्लर (Osler) की काँचकी घड़ियाँ, बिजलीके पंखे, झाड़ फानूस और फव्वारे, इविङ्ग कम्पनीकी बेलबूटेदार छतें या बर्ड कम्पनीके यहांका सुन्दर फर्शका सामान न दिखाकर आपको एक दूसरी ही ओर ले जाऊँगा। आपको कलकत्तेकी सच्ची, भीतरी दशा, मध्यम स्थितिवालोंके मकान, और ऐसे स्थान, जिनमें कलकत्तेके अधिकांश लोग वास करते हैं, दिखाऊँगा।

बड़ा बाजार।

हरिसन रोडकी चौड़ी सड़क पर एक निहायत खूबसूरत, छोटा, पर शानदार मकान है। ३० फीट लम्बा और २० फीट चौड़ा है। इसमें ११ कमरे हैं और १८ भिन्न भिन्न परिवारोके ११३ जन रहते हैं। कुल किराया

नीचेके खण्डमें दो पैखाने, एक नहानेका कमरा और तीन पानीके नल है। नीचे, सुबह शाम भीड़ लग जाती है। निपटनेवालोंमें हर वक्त 'कहा-सुनी' हुआ करती है। मकानमें सीड़ बहुत है और बदबू सीड़से भी अधिक है।

सडक पर तीन दूकाने हैं। एक दूकानमें दो मारवाड़ी किरायेदार रहते हैं और दोनों साझेमें दही बड़े बेचते हैं। उनके दोनों कुटुम्बोंमें दस प्राणी है। मचान पर स्टोर है। उसके नीचेकी जगह दिनको रसोईघरका और रातको सोनेके घरका काम देती है। दूसरे किनारे, एकके नीचे एक, इस तरह दो खटोले लटकते हैं, उनपर तीन बच्चे झूला करते हैं। सेठ सेठानी और दोनोके सयाने लड़के और लड़कियो एक ही फर्श पर रातको सोती हैं। चोरीके भयसे दरवाजा बन्द रहता है। ऊपरके झरोखोंसे सिर्फ प्राण बचाने योग्य हवा आया करती है।

दूसरी दूकानमें एक खोमचेवाला हलवाई रहता है। अंगरेजीमे एफ ए. फेल है। बोर्डिङ्ग हाउसोंमें मिठाई बेचता है। इसका एक भाई आढ़तमें अनाज तौलता है और दूसरा भाई कालेजमें पढ़ता ह। तीनो ब्याहे है। सब मिलाकर ९ प्राणी हैं जो इसी कोठरीमे रहते हैं। भट्टी, पानी, मिठाई बनानेका सामान, सब इसी कोठरीमे है और सब लोग इसी एक कोठरीमें सोते भी हैं।

तीसरी कोठरी सबसे छोटी है। अन्दर जानेकी राह और सीढ़ी इसीमे पड़ती है। एक कलवार, अपनी प्रेमिका एक चमारिन और उनके ४ बच्चोके सहित इसमें रहता है। मिरजापुरमे लाखका काम फेल हो जानेपर, उसने यहा आकर इसी कोठरीमे मास, मछली, कटलेट, चाय आदिकी दूकान कर ली है। चमारिन, सुबह शाम तो पराठे बनाकर दूकानमें रख देती है, और दूसरे समयमे सामने ही पान लगाकर बेचती है। कुल ६ प्राणी इसमे रहते हैं। दूकान भी इसीमे होती है।

सबसे ऊपरके खण्डमें केवल एक बड़ा कमरा, एक बाजूका कमरा, एक छोटीसी दालान और उसके आगे जरासी खुली छत है। एक प्रसिद्ध बैकिङ्ग कम्पनी (Agrawala Insurance & Banking Co) के खजांची, दलाल और हेडक्लार्क उसमे मिल जुल कर रहते है। खजाची महाशयके साथ उनकी धर्मपत्नी और दो बालक, एक युवती विधवा भाभी, एक चची और उसकी एक युवती कन्या, कुल सात प्राणी रहते हैं।

दलाल महाशयकी अभी शादी हुई है । आपके साथ अर्धाङ्गिनी, एक वहिन, वृद्ध पिता, और छोटा पर बड़ा खोटा भाई, कुल ५ आदमी हैं ।

हेडक्लार्क महाशयके साथ घरका कोई नहीं है। सिर्फ एक कहारका लड़का साथमें घरसे आया है । आप दिनको बासेमें, और शामको उपर्युक्त पराठेवालीकी दूकानके पराठे आदि खाते हैं । खजाची और दलालकी रोटी दालानमें अलग अलग बनती है । असबाव, सन्दूक और गृहस्थीका अन्य सामान बाजूके कमरेमें रहता है । बड़े कमरेमें एक डोर बांध कर एक परदा लटका दिया गया है । एक तरफ मर्द और दूसरी ओर औरतें और बच्चे बैठते और सोते हैं । जरूरतके मुताबिक और परदे लगा दिये जाते हैं और उनसे उक्त बड़े कमरेमें कई कोठरियाँ बना ली जाती हैं । इसमें तीन दरवाजे हैं । जिनमेंसे दो पर स्त्रियोंका अधिकार है । हेडक्लार्क महाशयके, उन्हींके उमरके दो नवयुवक मित्र हैं जिनमें एक वैश्य और दूसरे ब्राह्मण हैं। आप लोगोंको यह स्थान ऐसा भला मालूम होता है कि समय पाते ही आप इस कमरेमें उपस्थित हो जाते हैं । हेडक्लार्क महाशयके मेहमान बनकर पराठावालीकी दूकानके पराठे उड़ाते हैं, और ताश खेलनेमें देर हो जानेसे वहीं सो भी जाते हैं—और खामखाह देर हो ही जाती है ! एक कमरा, १४ सोनेवाले, और तिसपर दो मेहमान और फिर नित्य ! अर्थात् एक ही कमरेमें, तीन भिन्न भिन्न जाति और स्थानके तीन परिवार रहते हैं । युवा पुरुष और पराई युवती स्त्रियाँ, एक साथ सोती बैठती हैं । एक दूसरेको स्नान करते, वस्त्रादि बदलते और शृङ्गार करते देखते हैं ।

कालेज स्ट्रीट ।

एक चार मंजिला ऊँचा मकान है । नीचेके खण्डमें कालेजके लड़के रहते हैं, और इसे ब्रदर्स लाज (Brothers' Lodge) कहते हैं । इसमें पाँच पक्के कमरे हैं । कोई कमरा आठ वर्ग फीटसे ज्यादा बड़ा नहीं है । इसमें ३० लड़के रहते हैं । प्रत्येक कमरेमें तीन चारपाइयां नहीं बिछ सकतीं, अतः एव ये जमीन पर ही विश्राम करते हैं । सीड़से छत तकका चूना भींग गया है । रोशनी किसी कमरेमें नहीं है । इनमें धूप, सालके किसी महीनेमें या किसी समय नहीं आ सकती । लड़कोंने नेप्थलीन आदि छिड़क रक्खा है तो भी बदबू बहुत है ।

चीना बाजार।

चितपुररोडपर एक कमरेमे दिनको मोची जूता बनाते है, और रातको उसीमे चारपाइयां डाल दी जाती हैं। एक पर बाप, मॉ, और एक लडका, साथ सोते है, दूसरी पर ६ बड़े बड़े बच्चे सोते हैं; तीसरी चारपाई पर तीन स्त्रियाँ और चौथी पर तीन लड़के सोते हैं। बगलका दूसरा कमरा बहुत छोटा है, उसमें एकसे अधिक तखता नहीं पड़ सकता, अतएव चतुर चीनी कारीगरने एक टेबुल ऐसा बनाया है कि दिनको उसीसे मेजका काम निकल जाता है, और रातको कुछ लकड़ियोंको उधर उधर कर देनेसे उसमें तीन दर हो जाते है। पहले दरमें, स्त्री पुरुष और एक छोटा बच्चा, दूसरेमें बालक और बालिकायें पाँच अदद, और तीसरेमें चार अदद भाई बहिन कसे रहते हैं। सब १२ से १८ वर्ष तकके है। मेजर मेटकाप लिखते हैं:—"एक छोटेसे कमरेमें एक बेवा बगालिन, अपने ६ बच्चोके साथ एक ही तख्ते पर सोती थी। एक रातको दो बच्चोंका अन्त हो गया। उनकी मृत्युका कारण, बुरी हवा और बिछौनेकी गन्दगी थी।" कलकत्तेके एक सफाईके दारोगा लिखते है—' एक छोटीसी कोठरीके आधे हिस्सेमे पत्थरका कोयला रक्खा है। उसी कोठरीके आधे हिस्सेमें एक बंगाली बाबू, उनकी स्त्री और दो लड़के सोते हैं।" "एक सीढीके नीचे एक औरत अपने चार बच्चोंके साथ जमीन पर सोती है।"

बस, इस शहरका अन्दाज करने भरको यह वृत्तान्त काफी है। यहांकी अधिकांश आबादी किस तरह पर रहती है, सो मालूम हो गया। अब चलिए, हम लोग काशीकी यात्रा करें। इस शहरकी लोग बडी तारीफ करते हैं और इसे 'छोटा कलकत्ता' कहा करते हैं। बस, इसे भी देखना आवश्यक है। पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि यहाँ भी आप राजा मुशी माधोलालकी भूलनपुरवाली कोठीमे या अजमतगढ़ पैलेसमे न ठहर कर, नन्दनसाहु स्ट्रीटमें किसी रईसके मेहमान बनिए, जहांसे आप अपना कार्य अच्छी तरह कर सकें।

बनारस-म्यूनीसिपैलिटीमें कुल मकानोंकी संख्या ५०,११३ है। उनमें १,९९,९६८ जन बास करते हैं—१,०३,१२६ पुरुष और ९६,७४२ स्त्रियां। चौक और दशाश्वमेधके वार्ड (ward) मे अधिक घनी बस्ती है। दोनों

वार्डोंमें सब मिलाकर १७,७७० मकान हैं और उनमें ६६,६७४ जन बसते हैं*।

इस हिसाबसे फी मकान, ३.७ यानी ४ जनसे भी कमकी औसत पड़ती है। ये चार आदमी तो चौमंजिले मकानोंके लिए बहुत कम हैं। भला, यहाँ मकानोकी तकलीफ क्या हो सकती है? यहाँ तो रहनेवाले कम और मकान ज्यादा हैं। मकानदार चाहते होंगे कि कोई मुफ्तमें आकर उनके साथ रहे,-घरकी सफाई हुआ करेगी, घरमें चिराग जला करेगा। और शायद पक्के महालके कुञ्जगली अथवा बंगाली टोलेमें मकानोका किराया बिल्कुल न लिया जाता होगा, यदि लिया भी जाता होगा तो नाममात्रका। चीजोंकी जरूरतके मुताबिक उनकी कदर होती है, दाम बढ़ता है, अतएव मकान और जमीनकी चाह कम होगी। पर जाँच करनेसे दूसरी ही बात मालूम होती है। यहाँ एक एक फुट जमीनके लिए लोग जान देनेको तैयार हो जाते हैं। लक्खी चबूतरा एक फुटसे अधिक चौड़ा न होगा, पर उसके लिए एक लाख रुपया खर्च हुआ। जिस मुलाकातीसे पूछिए मकानकी बड़ी तकलीफ बताता है। मकानका किराया, और जमीनका दाम मामूली लोगोंके आराममें फर्क डाल रहा है। जिस मकानको देखिए, आदमियोंसे खचाखच भरा है। नीचेकी कोठरियाँ, जहाँ न रोशनी है और न हवा बल्कि बदबूसे नाक फटी जाती है, भरी पड़ी हैं। लखपती महाजनोकी बैठकें ऐसे ही अँधेरे कमरोंमें हैं। उनके लड़के उन्हींमें पढ़ते हैं। बड़ी बड़ी दूकानें हैं। मुनीम गुमाश्ते और धनाढ्य मालिक ऐसे ही कमरोंमें बरसातकी सड़ी गरमी पड़ने पर भी, बारह बजे राततक बहीखाते लिखा करते हैं—क्यों? यदि फी घर चार ही आदमी रहते होते, तो ये इतना कष्ट क्यों सहते? इसका कारण वही कोठी बता देगी, जिसमें आप ठहरे हुए हैं। देखिएगा, महल्लेकी आधी जमीन और मकान उस कोठीमे शामिल है। जिसमें सिर्फ एक कुटुम्ब और बाकी आधेमें, सारा महल्ला गुजर करता है। गोपालमन्दिरके मकानोंमें ५०० जन और इसी तरह अनेक धनी महाजनोंके घरोंमें किसीमें २०० या किसीमें १०० जन भलीभाँति रह सकते हैं, पर ऐसा न होकर उनमें एक ही एक कुटुम्ब वास करता है और उन्हींके पड़ोसके दूसरे घरोंमें लोग नीचेसे ऊपर तक कसे रहते हैं।

* Census Statistics of Benares 1911

जैसे एक बड़ा वृक्ष अपनी ही जातिके, पास उगे हुए कमजोर पौधोंका आहार स्वभावसे ही खुद छीन लेता है और वे बेचारे कमजोर पौधे अपने हिस्सेकी नमी, गरमी और वायु न पाकर पूर्णरूपसे बढ़ने नहीं पाते–समयके पहले ही नष्ट हो जाते हैं, ठीक इसी तरह अधिक धनाढ्य, अपने पड़ोसियोंको आराम देनेकी चेष्टा रखते हुए भी, उनके हिस्सेकी आक्सिजन और सूर्य्यकी गरमी जिसपर शरीरकी आरोग्यता निर्भर है, खुद हजम कर जाते हैं। (Survival of the fittest) जीवन संग्रामकी बात है। आप जिस कोठीमें ठहरे हैं, देखिएगा, उसमें शुद्ध वायुका अभाव है। नीचेके दो खण्डोंमें धूप ही नहीं पहुँच सकती। चारों ओर दूरतक लगातार ऊँचे मकानोंकी कतार है। मकानोंके छज्जे और सायबान आमने सामने एक दूसरेको छूआ करते हैं, अतएव गलियोंमें प्रकाश और शुद्ध वायुके झोंके आने ही नहीं पाते जो अन्य कमरोंकी वायुको शुद्ध रखनेमें सहायता दे सकें। गलियाँ ऐसी तंग हैं कि तीन आदमी कन्धेसे कन्धे मिला कर नहीं चल सकते। सामूली लोगोंके मकानोंकी कौन कहे, करोड़ों रुपयोंके धनिकोंकी कोठियोंके सामने या बगलमें भी जरासी जगह नहीं देखिएगा। और यदि कहीं किसी कारणविशेषसे, वहाँ, किसी कविराज या कविरत्न महाशयकी पालकी लाकर रख दी जाय, तो बेचारी चार फीटकी चौड़ी गली, घण्टोंके लिए रास्ता रोके रहे। ऐसी तंग गलियोंके रहनेवाले रईसोंके यहाँ कविराज और डाक्टरोंका आगमन प्रायः ही देखा जाता है। इससे यह साफ मालूम होता है कि सम्पत्तिवान् होते हुए भी शुद्ध वायु और प्रकाशके अभावसे ये लोग आरोग्य नहीं रहते।

यहीं एक तहसीलदार महाशयका एक संगीन मकान है। तीन तरफ तङ्ग गलियाँ हैं। दरवाजेके सामनेवाली गली ऐसी तंग और अँधेरी है कि दिनको भी टटोल कर चलना पड़ता है। दरवाजेके भीतर घुसते ही बदबूसे दिमाग परेशान हो जाता है। अंधेरा इतना रहता है कि अनजान आदमीको रास्ता ही न मिलेगा और रोजके आने जानेवालोंको भी दरवाजा टटोलना होगा। इसकी बनावट ऐसी है—चौकके तीन तरफ दालान और उनके पीछे अँधेरी कोठरियाँ, दूसरे और तीसरे खण्डमें इसी तरह तीन ओर दालान और कोठरियाँ और एक तरफ सीढ़ी और पैखाना। खुली छत किसी खण्डमें नहीं है कि उसका सुख उस खण्डके रहनेवाले भोग सकें। सबके ऊपर कुछ खुली छत है। नीचेका आँगन और ऊपरकी छत पब्लिक प्रापर्टी है, अर्थात् सब लोग इसे

इस्तेमाल कर सकते हैं। अतः गरमीके महीनोंमे एक दूसरेसे सटकर बीसों बिछौने एक साथ बिछते है। यहां न आपसमें परदा निभ सकता है न लाज। नौ भिन्न भिन्न कुटुम्बोके स्त्रीपुरुप एक साथ रहते हैं—पेखाना हर एक खण्डमें है। ये नये ढंगके स्वयं वह जानेवाले नहीं हैं। इस पर ये साफ भी नहीं किये जाते। मालूम नहीं, मैला, कहां गायब हो जाता है! हॉ, बदबू चौथे खण्डमें भी है। धूप सिवाय ऊपरके एक खण्डके किसी दरजेमें नहीं जाती। सबसे ऊपरवाले किरायेदारको १५) रु० मासिक किराया देना पडता है, और सिर्फ तीन रहने लायक कमरे हैं, अतएव पॉचरुपया फी कोठरी किराया ठहरा और १५) रु० मासिक डाक्टरकी फीस और दवाका दाम पड जाता है। यह भी बता देना आवश्यक है कि ये सामान्य किरायेदार नहीं हैं, इन्हें आप निर्धन न समझें। इनमेंसे प्रत्येक रहनेवालेका खर्च डेढ़ सौ दो सौ रुपये महिनेका है और ये बीसो बरसके पुराने किरायेदार हैं।

नम्बर १०५ ब्रह्मनाल।

इस मकानके सबसे ऊपरके दरजेमें, सातवें आसमान पर, मिस्टर जयराम फोटोग्राफर एण्ड आर्टिस्ट रहते हैं। आपके यहाँ जाना नरकमें जाना है। इस मकानमें ऑगन भी नहीं है और मिस्टर जयराम, किसीको ऊपरकी छत पर आने नहीं देते। आने क्यों दें? छोटीसी छत इन्हीं भरको काफी नहीं होती, फिर और लोग कहाँ रह सकते हैं? इस ढंग पर इस ऊँचे मकानमे लगभग ५० आदमी रहते है। आते जाते स्त्रियां देख पड़ती हैं। सभीका स्वास्थ्य अत्यन्त बुरा है। युवती स्त्रियोंको, क्षयरोगसा हुआ जान पड़ता है और बच्चोंकी दशा तो अत्यन्त ही शोचनीय है।

यह अवस्था एक या दो खास घरोंकी नहीं है। काशीके अधिकाश लोग इसी तरह रहते हैं। यहांके गरीबोंकी कौन कहे, लखपती महाजन भी इन्हीं घरोमें रहते हैं। सोना, चॉदी, बरतन, रेशम, बनारसी कपड़े आदिकी कुछ बड़ी बड़ी दूकाने, इन्हीं और ऐसे ही मकानोंमें हैं। जब गरमी या बरसातमें शामके वक्त इन मकानोंमे जाने या कुछ वस्त्रादि खरीदनेमे अधिक समय बिताना पड़ता है, तब प्रलय हो जाती है। जिन्हें आप कोठी कहकर पुकारते हैं, उनमे जानेसे सॉसकी कोठी, बन्द होने लगती है। बेचारी ताड़की पंखी, कितनी हवा दे सकती है? और फिर क्या वह कहींसे दूसरी हवा लावेगी? हवा तो वही

बिगड़ी हुई रहेगी, केवल चेहरे पर झोंकेसे लगेगी। बहुतसे कोठीवालोंके कमरोंमें गैसका पंखा दिनरात खुला रहता है। उससे कुछ शान्ति तो जरूर मिलती है पर सचमुच गैससे कमरेकी वायु अधिक खराब होती है, और अन्तमें उससे हानि ही होती है।

यह दशा भारतके उस शहरकी है जो पापनाशी, पवित्र काशीके नामसे भारतवर्षमें विख्यात है, जहाँके लोग सचमुच भारतके अन्य शहरवालोंसे अधिक सफाईसे रहते हैं, जहाँ फर्स्टक्लास म्यूनीसिपैलिटी है, जहाँ विद्याका अधिक प्रचार है और जहाँके अधिकांश जन धनी हैं।

बस, अब कानपुरकी अत्यन्त गन्दी गलियोंमें और दिल्ली या लाहौरके (काशीके मुकाबले) गन्दे लोगोंके मकानोंमें लेजाकर आपका समय लेना व्यर्थ है। केवल कलकत्ते और काशीसे सारे भारतका अन्दाजा हो सकता है।

देहाती मकान जहाँ न म्यूनीसिपैलिटी है, न नालियाँ, न धन, और न विद्या, मकानके नामको बदनाम करते हैं। दरिद्र देहातियोंके कच्चे झोपड़ोंसे घोड़ोंके तबेले अच्छे होते हैं। इन मकानोंमें अँगरेज अपने घोड़े भी न रहने देंगे, और यदि रक्खें तो शायद उनका अन्त भी जल्द ही हो जाय।—घोड़ोंकी कौन कहे, उनमें वे अपने सूअर तक न बन्द करेंगे !

पर, ऐसे ही मकानोंमें, २६,५१,१६,८३५ मनुष्य वास करते हैं और इन्हीं झोपड़ियोंमें १४,४४,०९,२३२ अभागी भारतीय स्त्रियाँ कैद रहती हैं *।

गोहुआँ, जिला आरा।

बाबू गुलाबसिंह १८ गाँवके जमींदार हैं। आपके गाँवमें परदेका बड़ा कडा रिवाज है। जो बहू या बेटी जितने ही कठिन परदेमें रहे, उसका उतना ही नाम है, उसकी उतनी ही इज्जत है। यहाँ तक कि इस गाँवका बड़प्पन और ठकुराई, उसके घरके परदेके मुताबिक आँकी जाती है न कि धन या विद्यासे। ईश्वरकी दयासे बाबू गुलाबसिंहकी इज्जत गाँवमें सबसे अधिक है। आपके घर यह रिवाज है कि बहुओंको न कोई फरागत जाते देखे, न खाते और न नहाते, और कब तक? जब तक कि वे स्वयं घरकी मालकिन न हो जायँ—उनकी सासका परलोकवास न हो जाय !

बूढ़ी सास आदिको आँगनमें धूप लेने आनेके पहले ही बहुओंको नित्यके शौचादि कर्म्मसे निपट कर, अपनी अपनी कोठरियोंमें बन्द हो जाना चाहिए।

* Statistical Abstract, British India, 1899—1909

खानेके समय या और दूसरे जरूरतके वक्त, मालकिन हट जाती है, तब कहीं बहुयें खा पी कर जल्दीसे उसी कमरेमें भाग आती हैं। इसके बाद, दिन रातमें जो कुछ उन्हें करना हो अपनी कोठरीमें करें। हर कोठरीमें दो तीन पीकदान और चिलमची रक्खी रहती हैं और एक एक बहूकी खिदमतमें दो दो लौण्डियाँ रात दिन हाजिर रहती हैं। पर, मालूम नहीं क्यों, न तो बहुओंका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और न शहरकी लड़कियाँ, वहाँ आकर जीती हैं। बड़े भाई, बाबू व्रजकुमारसिंहके चार व्याह हो चुके, उनमेंसे तीन बहुओंका अन्त हो गया। अभी आपकी आयु कुल ३० वर्षकी होगी। बाबू गुलाबसिंहकी स्त्री जब तक गोहुआँमें रहती है, बीमार ही रहती है, और यदि वह सालभरमें कमसे कम चार महीने अपने चचा इंजीनियर साहबके साथ कैम्पमें न रहने पावे तो उसका अन्त ही हो जाय। इस लगातार बीमारी और मृत्युका कारण यह बताया जाता है कि समीपवासी हरसू ब्रह्मका शाप है कि इस गाँवके ठाकुरकी बहू-बेटियाँ सुखी न रहें। पर बाबू गुलाबसिंहकी खास बहिन मेरे बड़े भाई साहबको ब्याही हैं। उनका स्वास्थ्य मेरे घर बहुत अच्छा, बल्कि जरूरतसे ज्यादा अच्छा रहता है। मेरे घर वे कमरेमें बन्द नहीं रहतीं, अकसर गङ्गास्नानको पैदल भेजी जाती हैं। हर मंगलको दुर्गाजी पैदल ही जाना होता है। लौटते समय चाहे सवारी दे दी जाय, पर जाना पैदल ही पड़ता है। इससे प्रातःकालका व्यायाम हो जाता है।

बाबू गुलाबसिंहके घर चाहे परदेका रिवाज बहुत कड़ा हो, और लोगोंके घरसे ज्यादा हो, पर इस कुरीतिमें तो सारा भारत पड़ा है। खास कर संयुक्त प्रान्तमें इसका इतना बुरा रिवाज है कि बेचारी असहाया स्त्रियोका सर्वनाश ही हुआ जाता है। गत दस वर्षोंमें इनकी संख्या बढनेके बदले घट गई है। १९०१ में, सयुक्त प्रान्तमें २,३४,६२,८८४ स्त्रियां थीं और १९११ में, ये २,२९,४०, ८०९ रह गईं। अर्थात् ५,२२,०७५ स्त्रियाँ कम हो गईं। *

" In the last decade, there has been a very great loss of women The loss is general and wide-spread and so severe that the province is worse off for females than it has been for 30 years "

अर्थात्—" गत दस वर्षोंमें स्त्रियोंकी बड़ी मृत्यु हुई है। ये बेचारी आम तरह पर मरी हैं, और चारों तरफ मृत्यु खूब हुई है। इतनी अधिक मृत्यु हुई है कि औरतोंकी ३० वर्षकी खराब हालत और अवतर हो गई है।"

* All India Census Report 1911 for U. P.

"Fever as a whole is more fatal to females than males."

"The causes of the loss of females are plague and malaria."

"It appears that mortality is always highest among females"*

अर्थात्—"ज्वर स्त्रियोंके लिए ज्यादा प्राणघातक होता है।"

"स्त्रियोंकी मृत्युका कारण ज्वर और प्लेग है।"

"देखा जाता है कि (भारतमें) स्त्रियाँ सबसे अधिक मरती हैं।"

मृत्युसंख्या आदि दिखानेके पहले हम आपको एकबार फिर याद दिलाते हैं कि विरुद्ध आहार-विहारसे रोग उत्पन्न होते हैं और रोगसे मृत्यु हो जाती है। वायुके बिगड़नेसे या काफी शुद्ध वायु न मिलनेसे भी रोग उत्पन्न होते हैं और मृत्यु हो जाती है।

हम भलीभाँति दिखा आये हैं कि भारतवर्षमें आहारका और रहनेके स्थानका कैसा बुरा हाल है। विलियम डिग्बी साहब कहते हैं कि "He is born in sickness and dies almost like a beast of the field, with only such rude care as his neighbour's rude ignorance can afford." अर्थात्—"भारतवासी रोगी ही पैदा होते हैं और रोगसे ही जानवरोंकी तरह मर जाते हैं। उनकी चिकित्सा उतनी ही होती है जितनी कि उनके अज्ञानी पड़ोसी कर सकते हैं।"

अब इस तरह पर जीवन व्यतीत करनेका परिणाम सुनिए। आप कह सकते हैं कि मरना भी क्या कोई आश्चर्यकी बात है? यदि मरे तो क्या हुआ? क्या अन्य देशोंमें लोग नहीं मरते? पर देखना यह है कि भारतवासियोंकी औसत उम्र क्या है, भारतमें क्या अकालमृत्यु अधिक होती है, और क्या यहाँ पर और देशोंके मुकाबले मृत्युकी संख्या अधिक है। +

भारतवासियो और अँगरेजोंकी आयुका मुकाबला करनेसे मालूम होता है कि अँगरेज हमसे १७ वर्ष अधिक जीते हैं। अर्थात् उनकी औसत आयु ४० वर्षकी और हमारी कुल २३ वर्षकी है।

---

* All India Census Report 1911 for U P.

+ देखिए, मृत्युसंख्याका विवरण पृष्ठ ११७।

भारतवासियोंकी और अँगरेजोंकी आयुका मुकाबला।
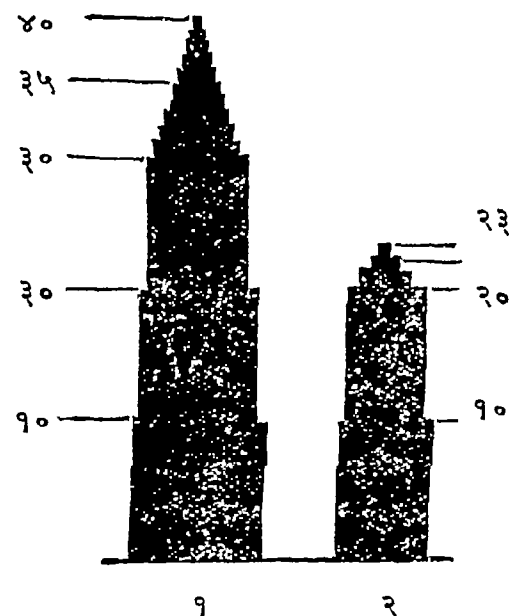
१ अँगरेजोंकी औसत आयु ४० वर्ष।

२ भारतवासियोंकी औसत आयु २३ वर्ष।

आपको शायद यह माननेमें तो एतराज न होगा कि ४० वर्षके पहले मरना अकालमृत्यु कहा जा सकता है।

प्रति सहस्र कितने आदमी अकाल-मृत्युसे मरते हैं ?

स्त्री या पुरुष	१ वर्षके नीचे	१ से ५ तक	५से१०	१०से१५	१५से२०	२०से३०	३०से४०
स्त्री	२४१.४०	६४ ५५	१७ ००	१२.१६	१७ ७५	१९ ६६	२१ ६०
पुरुष	२४९ ६४	६७.२९	१८.७६	१२ ३४	१५ ८	१८ ५२	२२ १४

मृत्युसंख्या।

मृत्यु	पुरुष मरे	स्त्रियाँ मरी	कुल मृत्यु	फी हजार मृत्यु	ज्वरसे	हैजेसे	प्लेगसे	Remarks
१८९९	३३९४२३६	३०४२१५०	६४३६४१३	३०.०१	४०८५४५५	१६९२३७	१०२३६९	सरकारी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि भारतमें रोग वढते ही जाते हैं। हैजा, प्लेग आदिसे मृत्युसख्या प्रतिवर्ष वढ रही है।
१९००	४४१०७७५	३९२३३८०	८४३४१५५	३८.९१	४८९१४७७	८०९१७९	७३५६७	
१९०१	३४४२७१२	३१५३९६५	६५९६३७७	२९.४५	४१८६४५६	२७१२०९	२३४६७२	
१९०२	३६६४०८८	३३९८३२९	७०६२४१७	३१.६७	४२७३५५९	२२४०७८	४४५२९३	
१९०३	४०२३५८५	३७९५५०८	७८१८१८३	३४.९१	४४३७२०७	३०९९६७	७०१८९३	
१९०४	३७५७९०६	३६२२८९५	७३८०८०१	३३.०५	४०७२९७४	१९२३२७	९३८०१८	
१९०५	४११८२४२	३९३३९८८	८०५२२३०	३६.१४	४३९७९२७	४३९९५०	९४०१७४	
१९०६	४०५२५८४	३७९९७४६	७८५२३३०	३४.७३	४४५२८४२	६९०५२१	३००३५५	
१९०७	४३१४०४९	४४८९५७४	८३९९६२२	३७.१८	४४६४८८१	४०८१०२	११६३२७३	
१९०८	४४६२४५१	४१९०५५६	८६५३००९	३८.२१	५४२४३७२	५९१७२५	११३८८८	

भारतवर्ष और सारी दुनियाकी मृत्युसंख्याका मुकाबला।

सन् १९१६ *

नाम देश	मृत्युसंख्या प्रतिहजार	नाम देश	मृत्युसंख्या प्रतिहजार
बंगाल	२७·३७	न्यू जीलैण्ड	१०·५
संयुक्त प्रान्त	२९·५०	आस्ट्रेलिया	११·३
पंजाब	३०·७०	स्वीडन	१४·१
मध्यप्रदेश	३९·९५	इंग्लैण्ड	१४·९
बम्बई	३३·३२	अमेरिका	१३·५
मद्रास	२१ ९	क्वीन्सलैण्ड	८ १५
विहार और उड़ीसा	३२·८	तसमानिया	१० ७२
आसाम	२८·६९	विक्टोरिया	१२·६
कुल भारत	२९·१०	डेन्मार्क	१३ ५
		नार्वे	१४·८

इससे साफ मालूम होता है कि भारतवर्षमें सारी दुनियासे अधिक मृत्यु होती है।

† सबसे अधिक मृत्युसंख्या प्रति हजार, जो निम्नलिखित प्रान्तोंमें हुई:—

	१९०७	१९०८			
बङ्गाल	९५·९५	९४·२५	पञ्जाब	११४·३१	१२१·४१
संयुक्त	१४२·८७	११४ ५३	बम्बई	८२ ३६	५९·२९
			मद्रास	६६· ४	७०· ८

* Statesman's Year Book, 1916

† Sanitary Measures in India, 1908-09, page 169

छठा परिच्छेद ।

विवाह ।

(क)—विवाह-संस्कार ।

'Nowhere in the whole world, nowhere in any religion, a nobler, beautiful, a more perfect ideal of marriage than you can find in the early writings of the Hindus.'

—Annie Besant.

अर्थात्-भूमण्डलके किसी देशमें, संसारकी किसी जातिमें, किसी धर्ममें, विवाहसंस्कारका महत्त्व ऐसा गम्भीर, ऐसा पवित्र नहीं है जैसा कि प्राचीन आर्य्यग्रंथोंमें पाया जाता है ।

विवाहपद्धातिके संक्रमणका इतिहास * बड़ा मनोरंजक और शिक्षादायक है । उसके देखनेसे यही बात सिद्ध होती है कि मानव जातिकी बाल्यावस्थामें न किसी प्रकारकी राज्यव्यवस्था थी और न समाज या कुटुंबव्यवस्था । स्त्रीपुरुषोंका सम्बन्ध और माता, पिता, पुत्र आदि नाते, मूलस्थितिमें रहनेवाले मनुष्योंमें उसी तरह अनियमित होते थे जिस तरह कि पशुओंमें पाये जाते हैं । स्त्रीपुरुषोंका नियमित सम्बन्ध राज्यव्यवस्था और सभ्यताके साथ साथ स्थिर होता आया है । †

---

* भिन्न भिन्न देशोंके पुराणग्रन्थोंमें कुछ ऐसी कथाये पाई जाती है जिनसे उक्त सिद्धातोंका बहुत मेल मिलता है । श्वेतकेतु और दीर्घतमा ऋषियोंकी कथासे यही बोध होता है कि अति प्राचीन कालमें स्त्रीपुरुषोंका सम्बन्ध अनियमित था ।—

अनावृता किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने ।
कामचारविहारिण्य स्वतन्त्राश्चारुहासिन ॥—महाभारत ।

† Spencer

अनेक देशोंके इतिहाससे पता चलता है कि समाजकी प्रथम अवस्थामें लोगोंकी प्रवृत्ति युद्धकी ओर अधिक थी। विजयी जातिके लोग पराजित जातिवालोंकी स्त्रियोंको पकड़ लाते थे और उन्हें निजकी संपत्ति समझते थे। उनके साथ विवाह करते, उन्हें दासी बनाते, बेच डालते या दान कर देते थे। स्त्रियोंको कुटुम्बके प्रधान पुरुषोंकी अधीनतामें रहना पड़ता था। समाज और राज्यव्यवस्थामें ज्यों ज्यों सुधार होता गया त्यों त्यों स्त्रियाँ भी दासत्वसे मुक्त होती गईं।

स्वाधीनताके साथ साथ स्त्रियोंकी योग्यता बढ़ने लगी। उनके विषयमें प्रेम, आदर और अवलाभिमानके उच्च भाव प्रकट होने लगे। स्वयम्वरकी प्रथा निकली, धीरे धीरे विवाहको धार्मिक विधिका स्वरूप प्राप्त हुआ और विवाह एक परम आवश्यक संस्कार माना जाने लगा।

समाजशास्त्रवेत्ता स्पेन्सरका कथन है कि विवाहका मुख्य उद्देश यही है कि इससे समाज और राष्ट्रकी उत्कर्षावस्था चिरकाल तक बनी रहे जिससे दम्पतिका, भावी संततिका और देशका कल्याण हो। जिस विवाहसे इन बातोंकी सिद्धि न हो वह समाजके लिए हितदायक नहीं हो सकता। सुप्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू (Aristotle) ने कहा है कि "स्त्रियोंकी उन्नति या अवनतिपर राष्ट्रकी उन्नति या अवनति निर्भर है। यूनानी (Greeks) अपनी स्त्रियोंको दासीके समान नहीं रखते थे, किन्तु उन्हें राष्ट्रोन्नतिका सहायक समझते थे—उनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नतिमें दत्तचित्त रहा करते थे। यही कारण था कि यूनानी बारवेरियन जातिको अपने अधीन कर सके।"

इतिहासकार गिबन लिखता है कि "रोमन राष्ट्र अपनी स्त्रियोंके साथ, ग्रीक जातिकी अपेक्षा अधिक अच्छा बर्ताव करता था। इसी कारण रोमन राष्ट्र ग्रीससे अधिक बलवान् हो गया और ग्रीकको रोमके सम्मुख सिर झुकाना पड़ा।"

यह एक प्रसिद्ध बात है कि रोमने एक छोटेसे शहरसे बढ़ते बढ़ते सारी दुनिया पर अपना प्रभुत्व फैला लिया। जिस तरह रोमराष्ट्रकी उन्नति विस्मयकारक है उसी तरह उसकी अवनति भी अत्यन्त हृदयद्रावक है। सुयोग्य टैसिरस इतिहासकार बताता है कि "रोमन जातिके उत्कर्षके समय रोमन स्त्रियोंमें पातिव्रत्य, स्वावलम्बन, स्वार्थत्याग, धैर्य आदि जो अनेक सद्गुण देख पड़ते थे वे सब उसकी अवनतिके समय नष्ट हो गये थे। इन अच्छे गुणोंके

स्थानपर दुराचार, अज्ञान, कलह आदि दुर्गुणोंका साम्राज्य स्थापित हो गया था *। इसी कारण जर्मन जातिने रोमन लोगोंको दबा डाला। बनोंमें रहनेके समय भी जर्मनोंकी कुटुम्बसंस्था बहुत अच्छी थी।"

भारतका इतिहास उठाकर देखनेसे शरीर कॉप उठता हैं और ऑखें बन्द हो जाती हैं। इस अभागे देशकी सुदशा तथा उन्नतिके दिन, अति प्राचीन भूतकालकी अँधेरी छायामें ढॅक से गये हैं। बालविवाह और स्त्रियोंकी पराधीनताकी ऐसी गिरी हुई दशा सभ्य संसारमें किसी भी देशकी नहीं है। स्वभावतः भारत ही एक ऐसा गया गुजरा देश पृथ्वीपर नजर आता है जो निरन्तर इतने दिनोंसे विदेशियोका शिकार बनकर पददलित किया जा रहा है। महाभारत होनेसे ही भारत गारत नहीं हुआ बल्कि भारत गारत हो चुका था इस लिए महाभारत हुआ।

विवाह-संशोधन तथा अन्य सामाजिक सुधारोंका प्रस्ताव करनेके लिए हमे इस बात पर विचार करना होगा कि वर्तमान समयमे स्त्रियोकी क्या दशा है, यह दशा कबसे चली आ रही है, प्राचीन और अर्वाचीन विवाहपद्धतिमें क्या दोष या गुण उपस्थित हो गये हैं, आदि।

---

* महाभारत होनेके कुछ दिनो पूर्वसे रोमसाम्राज्यके समान भारतमे भी स्त्रियोंकी अवनतिकी झलक दीखती है। (१) कुमारीपनमे गङ्गादेवी (बादको भीष्मकी माता) का पुत्रविसर्जन, (२) अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्यके विवाहके लिए काशीनरेशकी पुत्रियोको—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिकाको—भीष्मका बलपूर्वक हरना और उनका अनादर, (३) धीवरकी कुमारी कन्या सत्यवतीके साथ महर्षि पराशरका सम्भोग, वेदव्यासका जन्म और बादको सत्यवतीका राज-कुलमे व्याह, (४) कुन्तीके कुमारीपनमे कर्णका जन्म और नदीमें बहाया जाना, इस घटनाका छिपाना और फिर राज-कुलमें विवाह, (५) द्रौपदीका पाँच पुरुषोकी एक साथ ही पत्नी बनना, आदि अनेक घटनायें महान् राजाओं और ऋषियोंके घरोंकी हैं। सामान्य प्रजाकी क्या दशा रही होगी, इसका पाठक स्वय अनुमान कर सकते हैं।

" उस वैदिक समयमें, जब भारतकी विद्वता बहुत बढ़ी चढ़ी थी, जब उपनिषद्, न्याय और दर्शनशास्त्र लिखे जा रहे थे, जब धर्मशास्त्र और वैदिक मन्त्रोंकी रचना हो रही थी, जब भारतकी आत्मविद्या पूर्णताके सबसे ऊँचे शिखरपर पहुँच गई थी, स्त्रियाँ पुरुषोंकी बराबरी करती थीं, उस समय स्त्री-पुरुषमें समानताका सद्व्यवहार था। स्त्री और पुरुषोंके सामाजिक और आत्मिक अधिकार बराबरके थे। "

In that age of splendid achievements and lofty spirituality, women were equals of men–trained and cultured and educated to the highest point

" उस महान् उन्नतिके समय स्त्रियाँ, पुरुषोंके बराबर पढ़ी लिखी हुआ करती थीं, उनकी योग्यता पुरुषोंके समान रहा करती थी और उनकी शिक्षा पुरुषोंके समान बड़े ऊंचे दरजेकी हुआ करती थी।"

" इतिहाससे पता चलता है कि वैदिक समयमें स्त्रियोंकी ऐसी अधोगति नहीं थी, जैसी आजकल है। आज स्त्रियाँ शूद्र कही जाकर मानसिक तथा धार्मिक उन्नतिसे वंचित रहती हैं। वे वेदमन्त्र सुन तक नहीं सकतीं, पर वैदिक समयमें ऋषिकन्यायें वेदमन्त्र रचती थीं, जिनका आज पुरुष पाठ करते हैं। हाय! हमारी बहनें और कन्यायें उन वेदमंत्रोंका अध्ययन नहीं करने पातीं जिन्हें हमारी माताओंने रचा है।"

" अब स्त्रियाँ मानसिक और धार्मिक उन्नतिसे वंचित रक्खी जाती हैं, वे सूत्र नहीं धारण कर सकतीं, उनके लिए सब धार्मिक संस्कार बन्द कर दिये गये हैं। "

पर, हारीतने अपने धर्मशास्त्रमें लिखा है कि,

द्विविधाः स्त्रियाः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च, तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाऽध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्य्या।

अर्थात्—दो प्रकारकी स्त्रियाँ होती है ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू। इनमेंसे ब्रह्मवादिनी स्त्रियोंके लिए, उपनयन, अग्नीन्धन, वेदाध्ययन और निज घरमें भिक्षाचर्य्या विहित है। सद्योवधू स्त्रियोंके लिए ऐसी विधि नहीं है। इससे साफ जाहिर है कि स्त्रियोंका भी धार्मिक संस्कार पुरुषोंकी तरह होना चाहिए।

" पूर्वकालमे बालिकायें उपनयन-संस्कारकी अधिकारिणी थीं। वे वेद पढ़ सकती थीं और गायत्री जप सकती थीं। पिता, पिताके भाई या बालिकाके भाईको पढ़ानेकी आज्ञा थी, इनके अतिरिक्त कोई अन्य पुरुष उन्हें नहीं पढ़ा सकता था *।"

कन्याऽप्येवं पालनीया शिक्षणीयाऽतियत्नतः।

अर्थात्—कन्याको भी पुत्रकी तरह यत्नपूर्वक पालना और पढ़ाना लिखाना चाहिए।

पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते। †
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥

अर्थात्—प्राचीन मर्यादानुसार स्त्रियोंका भी उपनयन होता था, उन्हें गायत्रीका उपदेश दिया जाता था और वे वेदोंको भी पढ़ती थीं।

" वैदिक समयमें स्त्रियाँ विवाह करनेके लिए मजबूर नहीं की जाती थीं। मानसिक और धार्मिक योग्यतानुसार वे बालब्रह्मचारिणी रह सकती थीं और मोक्षकी प्राप्तिके लिए संन्यास लेकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकती थीं ‡।"

बालब्रह्मचारिणी सुलभा, ब्रह्मविद्या पर सम्वाद करते हुए राजर्षि जनकसे यो कहती है:—

साहं तस्मिन्कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥

अर्थात्—" मैं क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न हुई हूं। मुझे अपने गुण कर्म और स्वभावके अनुसार योग्य पति नहीं मिला, इसी लिए विनीत भावसे मैंने मोक्षकी प्राप्तिके लिए संन्यास ले लिया है। +"

गार्गी और अन्य अनेक ब्रह्मचारिणीयोंने जीवनभर विवाह नहीं किया। उन्हे वैदिक शिक्षानुसार पितृ-सम्पत्तिका भाग मिला था और धार्मिक शिक्षा मिली थी। पवित्र भावोका संचार हो जानेसे वे अपने आपको देश और मनुष्यमात्रकी सेवाके लिए समर्पित कर सकती थीं। वैदिक समयमें विवाह-

* 'Wake up India,' page 55, by Annie Besant
† सत्यार्थविवेक—दयानद (सनातनधर्म्मी)।
‡ 'Wake up India' by Annie Besant
+ K. shastri of Kashi

प्रणालीका ऐसा सुन्दर आदर्श मिलता है कि जिसे देखकर भारतकी प्राचीन सभ्यताका, स्त्रियोंके आदरका और उनके अद्भुत स्त्रीत्वका पता चलता है। भारतकी नारियोंके लिए वही समय सर्वोत्तम था। उन्हें सृष्टिके नियमोंके खोजनेका अधिकार था। वे स्वतन्त्रतापूर्वक साहित्य तथा विज्ञानको पढ़ती थीं। वे वेदोंके अध्ययनमें सचेष्ट रहती थीं। वे ब्रह्मविद्यामें निपुण थीं। वे राजनीति जानती थीं और पुरुप उनसे सलाह लेते थे। वे रणक्षेत्रमें जाकर युद्ध तक करती थीं। सारांश यह कि प्राचीन समयमें स्त्रियोंके लिए किसी कार्य्यके करनेमें कोई रुकावट नही थी, जो अधिकार पुरुषोंके थे, वे ही स्त्रियोंके भी थे। देखिएः—

१ बालब्रह्मारिणी गार्गीने याज्ञवल्क्य ऋषिसे कैसा अच्छा शास्त्रार्थ किया था। उसने उच्चशिक्षा और गहरी ब्रह्मविद्याके ज्ञानसे तथा अपनी आश्चर्यजनक योग्यतासे ऋषिवर याज्ञवल्क्यकी जबान बन्द करके उन्हें परास्त कर दिया था।

२ मैत्रेयीने गृहस्थाश्रम व्यतीत होनेपर मानसिक और धार्मिक योग्यतापर विचार करके अपने पतिदेवतासे ब्रह्मज्ञानके उपदेशके लिये प्रार्थना की और उसे वह ज्ञान दिया गया।

३ महाराणी कैकेयी रणक्षेत्रमें जाकर लड़ी थीं।

४ महाराणी गान्धारी, राजाओं और श्रेष्ठ राजकर्मचारियोंकी भरी सभामें-जहाँ विचार हो रहा था कि सन्धि हो या युद्ध—उस गम्भीर राजनैतिक विषयपर विचार करनेके समय जिसपर समस्त भारतकी जय या क्षय निर्भर थी-इसलिए बुलाई गई थीं कि वे अपने पुत्र दुर्योधनको इस राजनैतिक विषय पर उपदेश देकर उन्हे युद्ध करनेसे रोकें। और सचमुच ही बड़ी योग्यतासे उन्होने उपदेश दिया था।

क्या आज भी हमारी मातायें गम्भीर राजनैतिक विषयोंपर विचार कर सकती हैं? क्या आज आप किसी लड़केको असावधानीसे राजनैतिक भूल करते देखकर उसकी मातासे सदुपदेश करा कर उसे हानिसे बचा सकते हैं? या आप शर्मसे सिर झुकाकर कहेंगे कि "भला स्त्रियोको राजनीतिसे क्या सम्बन्ध?"

Woman, however loving, self-sacrificing & sincere, has but little power in the council of men. You cannot appeal to her, because you do not care to share her feelings

in Politics or in the affairs of country. She is not born ignorant, you have rather bred her ignorant

अर्थात्—स्त्रीजाति कितनी ही पतिव्रता, स्वार्थत्यागिनी तथा सत्यवती क्यों न हो, परन्तु मनुष्यसमाजमें उसका कोई सम्मान नहीं है। आप उससे राजनैतिक तथा देशसम्बन्धी कामोंमें सलाह लेना नहीं चाहते। क्योंकि आपको उससे कुछ हार्दिकता नहीं है। वह जन्मसे अज्ञान नहीं है परन्तु आपने उसे शिक्षण न दे अज्ञान बना रक्खा है।

महाराणी कुन्तीने युद्धके समय कहा था, "क्षत्राणियाँ समरमें लड़नेहीके लिए गर्भ धारण करके पुत्र उत्पन्न करती हैं, इस लिए जाओ और युद्ध करो।" एक कुन्ती ही इस तरहकी वीर क्षत्राणी नहीं थी, अनेक स्त्रियाँ उस समय इसी रसमें पगी थीं। यह ईस्वी सन्से ३,००० वर्ष पहलेकी या पश्चिमीय विद्वानोंके हिसाबसे १५०० वा १००० वर्ष ईस्वी सन् पूर्वकी बात है।

रूस-जापान-युद्धके समय एक जापानी स्त्रीके कुल पुत्र लड़ाईमें मारे जानेपर वह रोती हुई पाई गई। लोग उसे दिलासा देने लगे और उसके सब पुत्रोंकी मृत्युपर दुःख प्रकट करने लगे। इसपर उस विदुषीने घूमकर लोगोंसे कहा कि "मैं इसलिए नहीं रो रही हूँ कि मेरे सब पुत्र मारे गये, मुझे रुलाई इस लिए आ रही है कि मेरे और पुत्र नहीं हैं जिन्हें मैं मातृसेवाके निमित्त भेट कर सकूँ"।

कुन्ती ऐसी ही माता थी, द्रौपदी ऐसी ही पत्नी थी, उत्तरा ऐसी ही वहिन थी और शिखण्डी ऐसी ही वीर-कन्या थी। याद रहे कि शिखण्डीने पुरुष-वेष धारण करके महाभारत जैसे भयकर युद्धमें भीष्म, कर्ण और द्रोणाचार्यके सम्मुख घोर संग्रास किया था।

'Two things are closely joined together, the education, the training and development of women, and the greatness of a nation When these women were the Indian Mothers, heroes and rishis were born, and now out of child-mothers cowards and social pigmies come forth—cause and effect. Still in your power to change '

अर्थात्—दो वातोंका एक दूसरेसे घनिष्ट सम्बंध है—(१) स्त्रियोंकी शिक्षा, मानसिक, धार्मिक तथा शारीरिक उन्नति और (२) किसी जातिकी बड़ाई। जब भारतमें योग्य मातायें थीं तब वे रत्न-गर्भा होकर योद्धा और

ऋषिरत्न उत्पन्न करती थीं, पर अब मूर्खा बाल-माताओंसे प्रायः कायर और कलंकित कुपुत्र उत्पन्न होते हैं। कारण और कार्य्य!—कारणको सुधारकर कार्य्य सिद्ध करना, अब भी हमारे हाथ है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

जहाँ स्त्रियोंका सत्कार होता है वहाँ ही देवताओंका वास होता है, जहाँ इनका मान नहीं, वहाँकी सभी क्रियायें निष्फल सिद्ध होती हैं।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥

जिस गृहमें स्त्रियाँ दुखित हैं, वह शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है, और जहाँ वे सुखी हैं वहीं कल्याण और आनन्द होता है।

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

जहाँ पुरुषसे स्त्री और स्त्रीसे पुरुष संतुष्ट हो, उसी घरमें निश्चित ही कल्याणका निवास होता है।

(ग)—विवाह-संस्कारकी अधोगति।

'The positive checks to population are extremely various, and include every cause whether arising from misery, evil custom, immorality or vice which in any degree contributes to shorten the natural duration of human life'— Malthus.

जनसंख्याकी नि.सीम वृद्धि अनन्त दैवीकारणोंसे रुकती है। जिस किसी भी कारणसे मनुष्यके स्वाभाविक दीर्घायु होनेमें बाधा पड़े—बाधाका कारण चाहे दरिद्रता हो, चाहे बुरे रीतिरिवाज और चाहे व्यभिचार या व्यसन—उसकी गणना दैवी कारणोंमें की जायगी।—माल्थस।

उस परम पुनीत वैदिक समयसे अत्यन्त पतित कालमें भारत प्रवेश कर रहा है। इस समय घोर अंधकार फैलना आरंभ हुआ, अविद्याने भारतको जकड़ लिया, और भारतके गौरवको धूलमें मिला दिया। नाना प्रकारकी बाधायें और उपद्रव उपस्थित हुए और भारतको गारत करने लगे। स्त्रियोके आदर-

सत्कार और स्वतंत्रतामें कमी शुरू होने लगी। पुरुषोंने निर्दयता और निष्ठुरतासे उनका अधिकार छीनना शुरू किया। उन्हे शूद्रकी निन्दनीय पदवी दी गई। मानसिक, धार्मिक या आत्मिक उन्नतिसे वे वञ्चित की गईं। पवित्र संस्कार, यज्ञोपवीत, गायत्री, वेद-पाठ आदि सबसे अच्छे मार्ग उनके लिए बन्द कर दिये गये। वेदमंत्रोंके अर्थ बदल गये दिये, नये नये ग्रन्थ गये रचे, नई नई स्मृतियाँ बनाई गईं, अनेक नये नये श्लोक मनुस्मृतिमें जोड़ दिये गये और कलंकित बाल-विवाहकी कुरीति भारतमें फैल गई।

वेदोंमें चुननेका अधिकार स्त्रीजातिको दिया गया है। प्राचीन इतिहास और स्वयम्वरसे भी यही बात पुष्ट होती है। सीता, दमयन्ती, रुक्मिणी, द्रौपदी और अन्य अनेक देवियोके विवाह स्वयम्वरकी ही मर्यादानुसार हुए थे। हमारी अधोगतिके मन्द दिनोंमें भी संयोगिताका विवाह पृथ्वीराजके साथ स्वयम्वरकी मर्यादानुसार हुआ था। (यह ईस्वी सन् ११८२ अर्थात् अभीसे कुल ६३४ वर्ष पहलेकी बात है।) स्वयम्वर तब ही रचाया जा सकता है, जब कन्याकी मानसिक तथा शारीरिक उन्नति हो; और वह अपने गुण, कर्म, तथा स्वभावानुसार जीवनयात्राके निमित्त अपने साथीको चुनने और वरनेके योग्य बन गई हो।

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
ऽयष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्म्मे सीदति सत्वरः॥

मनुके उक्त श्लोकके अनुसार ३० वर्षका पुरुष बारह वर्षकी कन्याको और २४ का ८ वर्षकी कन्याको ब्याहे। परन्तु–" एक झरनेसे एक ही समय मीठा और खारा पानी एक साथ नहीं निकल सकता। अतएव मनुष्योंमें सबसे ज्ञानी स्मृतिकार भगवान् मनु यह नहीं लिख सकते कि ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण करके २४ वर्षका पुरुष ८ वर्षकी कन्यासे और ३० वर्षका पुरुष १० वर्षकी कन्यासे विवाह करे। मुझे विश्वास है कि यह मनुजीकी आज्ञा नहीं है। धूर्त लोग अपना काम साधनेको श्लोक घटा बढ़ा देते हैं। अतएव, किसी औरने यह श्लोक मनुस्मृतिमें लिख दिया होगा * ।"

बौधायनने सबसे पहले विवाहकाल-मर्यादाको शिथिल किया। उन्होंने श्लोकका अर्थ किया कि—

* Mrs Besant

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यार्तुमती सती ।
ऊर्द्ध्वंतु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥-मनु ९-९०।

अर्थात्—"*कन्या रजस्वला होनेके अनन्तर तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे।* यदि उसके माता पिता उस समय तक उसका विवाह न करें, तो वह स्वयं अपना विवाह करनेमें स्वतन्त्र है।" पर इतनी दया की कि यह भी लिख दिया कि कन्या ब्रह्मचारिणी तथा 'नग्निका' हो। बौधायनके मतसे जब कन्या १६ वर्ष या इससे अधिक आयुकी हो और पुरुषसे संसर्ग कर सके, उस समय उसे नग्निका कहेंगे। सत्यवर्त और शौनिकने भी यही अर्थ किया है।

सातवीं शताब्दीके लगभग बने हुए अमरकोषमें नग्निकाका अर्थ 'अनागतार्तवा' अर्थात् जिस कन्याका अभी तक रजोदर्शन नहीं हुआ हो, किया है। इसके अनुसार लगभग १२ वर्षकी कन्या नग्निका हुई।

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम् ॥ २२ ॥

—यमस्मृति ।

अर्थात्—यदि १२ वर्षकी कुमारी कन्या घरमें बैठी रहे, तो उसका पिता उस कन्याका रज पीता है।

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ६७ ॥

—सवर्त्तस्मृति ।

अर्थात्—पिता, माता और ज्येष्ठ भ्राता, ये तीनों नरकमें जाते हैं, यदि वे कन्याको रजस्वला होता हुआ देख लें।

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥

—सवर्त्तसहिता ।

अर्थात्—आठ वर्षकी कन्या गौरी और नौ वर्षकी कन्या रोहिणी कहलाती है। दस वर्षमें उसे कन्या कहते हैं और दश वर्षके अनन्तर उसका नाम रजस्वला हो जाता है।

उद्वहेदष्टवर्षामेव धर्मो न हीयते ...॥ ८७ ॥ अ० ९।

—दक्षस्मृति (कुल्लूकभट्टकृत)।

अर्थात्—आठ वर्षकी कन्याका विवाह कर दे, इससे धर्मकी कुछ भी क्षति नहीं होती।

" विवाहप्रशस्तकालमाह, सप्तेति.. ...। "

—निर्णयसिंधु परिच्छेद ३ ।

अर्थात्—विवाहका उत्तम समय सात वर्ष है। यह समय गर्भकी तिथिसे गिनना चाहिए। इस प्रकार जन्मकी तिथिसे ६ वर्ष और ३ मासकी आयु ही विवाहका ठीक समय है।

स्मृतियोंकी संख्या १८ बताई जाती है, किन्तु प्रचलित स्मृतियोंकी संख्या कहीं अधिक है। इनमेंसे बहुतोंमें उस समयकी आवश्यकतानुसार पुत्रियोंके विवाह-कालको घटानेहीकी चेष्टा की गई है। दुर्भाग्यवश इन स्मृतियोंकी रचना उस समय हुई जब हिन्दू धर्म्म बहुत गिरी दशाको पहुँच चुका था और देशमें अविद्या और अराजकताका घोर अंधकार छा गया था।

अब हमें देखना चाहिए कि इस बालविवाहका बुरा रिवाज देशमें क्यों फैलाया गया, इस कुरीतिकी ओर स्मृतिकार क्यों झुके, आखिर इसकी जरूरत ही क्या थी? बिना जरूरतके कोई चीज पैदा नहीं की जाती। रीतिसे ग्रन्थरचयिता पैदा होते हैं न कि ग्रन्थरचयितासे रीति।

इस विनाशकारी और अधम रीतिके तीन प्रधान कारण हुए:—

१ महाभारतका युद्ध और देशमें हर तरफ लड़ाई झगड़ोंका होना।

२ विदेशियोका लगातार आक्रमण करना और प्राय. विजयी होना।

३ स्त्रियोंका आदर्श गिरना—उनके मानसिक और आत्मिक अधिकारोंका छिन जाना।

जब देशमें घोर अंधकार फैलने लगा, खुदगर्जी और अविद्याने जब जड़ पकड़ ली, छोटे छोटे जमींदार राजा बन बैठे और आपसहीमें एक दूसरे पर हाथ साफ करने लगे, जब किसीकी जान और मालके बचनेका कोई ठीक प्रबंध न रह सका तब, भारतमें यह जरूरत जान पड़ी कि बालिकाओंको ब्याह देकर पिताके अतिरिक्त उनके लिए नया संरक्षक विवाह द्वारा बना दिया जाय। यदि बालिकाओंके पिता रणभूमिमें प्राणत्याग करें तो वे अनाथ न हो जायँ, अपने नये घर (सुसराल) की शरण ले सकें।

* 'Wake up India' by Annie Besant

भारतवासी जबतक किसी भी कार्य्यको अपना धर्म्म न समझ ले तबतक उसको करना कभी अंगीकार नहीं करते। वे अधर्म करनेके बदले मर जाना ही उचित समझते हैं। इस लिए नये नये धर्म्मग्रन्थ रचे गये और यह दिखाया गया कि बाल्यावस्थाहीमें विवाह-संस्कार कर देना चाहिए। उसका परिणाम यह हुआ कि लोग वेदोंके उच्चादर्शको भूल गये और नये नये विवाहसम्बन्धी धर्मग्रन्थोंके उपदेशोंको अपना परम पवित्र और पुरातन धर्म समझने लगे। लड़कियोंकी आयुके साथ साथ लड़कोंकी आयु भी कम होने लगी और दोनोंके ब्रह्मचर्यका खुल्लमखुल्ला नाश किया जाने लगा। इन नये धर्म्मशास्त्रोंने हमारी मातृशक्तिकी दुर्गति कर डाली। वैदिक समयकी अत्युत्तम विवाह-प्रणाली नष्ट भ्रष्ट हो गई और भारतकी पुण्यमय पवित्र भूमि अपवित्र बन गई। इन्हीं नये धर्म्मशास्त्रोंके प्रचारसे वैदिक समयकी २४, २१ और १७ वर्षकी विवाहकी आयु पौराणिक कालकी १२, १०, ८, और ६ वर्षकी आयुमें बदल गई। स्त्रीजातिकी अधोगति पाँच प्रकारसे हुईः—

१ स्त्रियोंका अविवाहित रहना निषिद्ध कर दिये जानेसे।

२ उनके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अधिकारोंके छिन जानेसे।

३ धर्मग्रन्थो या उपदेशको द्वारा मातापिताओंको यह समझाया जानेसे कि वे बाल्यावस्थासे पूर्व ही अपनी पुत्रियोको विवाह दें और ऐसा न करनेसे नरक आदिका भय दिखाया जानेसे।

४ स्वार्थसिद्धिके लिए स्थान स्थान पर नवीन श्लोक बनाकर मिला दिये जाने और

५ निन्दासूचक शूद्रादि शब्द स्त्रियोके लिए प्रयोग किये जानेसे।

बस, अधोगतिका आरम्भ हो गया, जीवनशक्तिका लोप हो चला। प्राचीन कालकी विदुषी देवियाँ अधोगतिकी गहरी कन्दरामें जा गिरीं। हमारी विवाह-प्रणाली हमारी सभ्यताके लिए एक लज्जास्पद और निन्दनीय कार्य्य बन गई और भारतमें बाल-विवाह चल निकला। आज इस अभागे देशमें बालपत्नियोकी संख्या एक करोड़से अधिक है। इन निरी बालिकाओंमेसे अनेकोने तो अभी माताका दूध पीना भी नहीं छोड़ा है और उनकी आयु कुछ महीनोकी ही है।*

*—आयु।	बाल-पत्नी।	बाल-विधवा।
० से १ वर्ष	१३,२१२	१,०१४
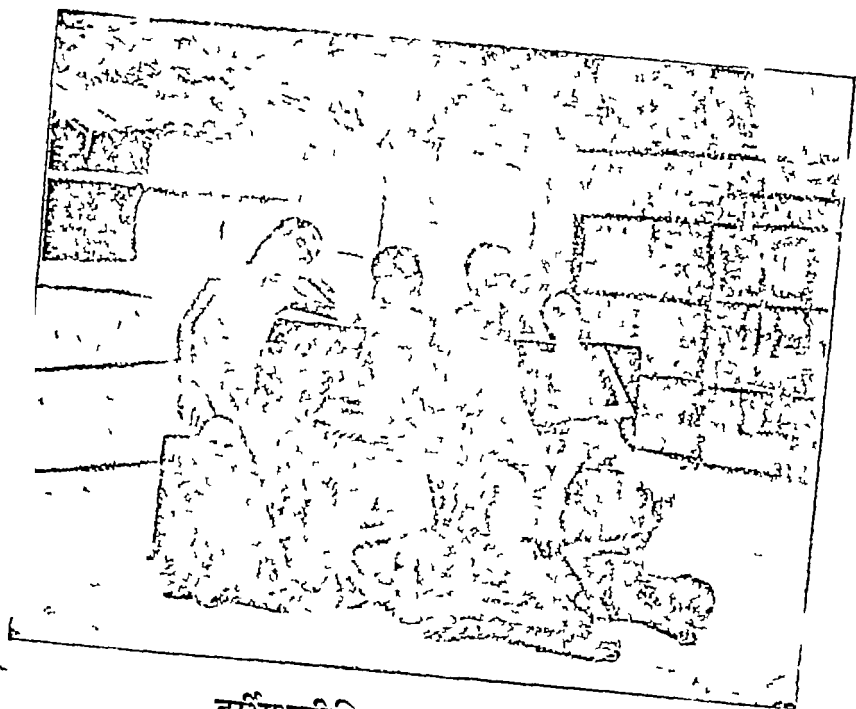
दुर्भिक्षपीड़ित भारतवासी।

दुर्भिक्षपीड़ित भारतवासी।

(देशदर्शन पृ० ९१)

आठ वर्षकी बाल वधू।

आठ वर्षकी व्याही हुई लड़की।
आज इस अभागे देशमें बालपत्नियोंकी संख्या एक करोड़से अधिक है। (देशदर्शन पृ० १२२)

इस निन्दनीय दूषित विवाहप्रणालीका निश्चित परिणाम भारतमें विधवाओंकी अधिकता है। इंग्लैण्ड और जर्मनी दोनों देशोंकी विवाहित स्त्रियोंकी जो संख्या है, उससे अधिक भारतमें विधवाओंकी संख्या है। +

स्त्रियोंके विवाहकी अवस्था घटनेके साथ पुरुषोंके भी विवाहका समय दिन दिन कम होने लगा और लोग मनमाना विवाह करने लगे। जैसा जिसको अच्छा मालूम हुआ वैसा ही विवाह उसने किया। आश्चर्य तो यह है कि इस बीसवीं शताब्दिके पढ़ लिखे लोग भी प्राचीन वैज्ञानिक नियमको छोड़ कर निन्दनीय प्रकृतिविरुद्ध विवाह किया करते हैं।

बाबू अमीचन्द और बाबू घनश्यामदास कालेजके सहपाठी मित्र हैं। बाबू अमीचन्दको एक लड़का है और घनश्यामदासको एक लड़की। दोनों मित्रोंने कालेजमें ही तै कर लिया है कि उनके बच्चोंका विवाह एक साथ होगा। बड़ी धूमधामसे १२ वर्षके केदारनाथ १० वर्षकी चन्द्रमुखीके साथ ब्याहे गये। बाबू अमीचन्द इसी साल M. A की परीक्षामें उत्तीर्ण होकर डिप्टी कलक्टरीके पद पर नियुक्त हुए हैं। केदारनाथका शुभ विवाह हुए कुल अढ़ाई वर्ष बीते हैं। आज फिर घरमें मङ्गलोत्सव हो रहा है। महफिलमें काशीकी नामी नामी रण्डियाँ आई हैं। सारे शहरमें धूम मच गई है। लोग बाबू अमीचन्दके भाग्यकी सराहना कर रहे हैं। स्त्रियाँ ईर्षासे गुड़ियासी अति सुन्दरी चन्द्रमुखीको देखकर कहती हैं–"परमेश्वर तू धन्य है। जिस पर परमेश्वर प्रसन्न होता है, उसे इसी तरह हर तरह सुख सम्पत्ति देता है। देखो न कहाँ चन्द्रमुखी और कहाँ गोद भराई! अभी तो अमीचन्दकी पतोहू लड़कीसी लगती है, पर वाह रे भाग्य! वाह रे ईश्वरकी देन कि

१–२ वर्ष	१७,७५३	८५६
२–३ ,,	४९,७८७	१,८०७
३–४ ,,	८७,५०८	६,५५३
४–५ ,,	१,३४,१०५	९,२७३
५–१० ,,	२२,१९,७७८	९४,२४०
१०–१५ ,,	६५,५५,६२८	२२३,०४२

+ भारतमें सब मिलाकर २६८,२१,२६२ विधवायें हैं। All-India Census Report, 1911

आरोग्य नहीं रह पातीं; बल्कि प्रसूत क्षय या और किसी असाध्य रोग द्वारा उनका अन्त अवश्य ही हो जाता है।

+ ५ पचीस बाल-गर्भवती स्त्रियोंकी जॉच की गई जिससे मालूम हुआ कि ५ लड़कियोंका गर्भ गिर गया, ३ बच्चा जननेके वक्त मर गईं, ६ को जननेके समय अत्यन्त कष्ट हुआ और उनके पेटसे बच्चे औजारोंके जरिये निकाले गये, ५ को बच्चा जननेके बाद पुराना मूत्ररोग हो गया, २ बच्चा पैदा होनेपर प्रसूति-रोगमें पड़कर और अत्यन्त निर्बल होकर मर गईं, ३ दूसरी बार बच्चा जनने पर मर गईं, २ तीसरी बार बच्चा जनते समय मर गईं और १२ अत्यंत कष्ट उठा कर मरनेसे बच गईं, पर उनकी तंदुरुस्ती जन्म भरके लिए बिगड़ गई। अर्थात् कुल २५ मेंसे १० तो मर गईं और १२ जन्मरोगिणी हो गईं, केवल २ लड़कियाँ अच्छी रहीं। ×

६ बालमाताओंको असह्य कष्ट होते हैं। जैसे गर्भ गिर जाता है और उनकी आत्माको दुःख पहुँचता है। मरा हुआ बच्चा पैदा होता है, इससे भी उनको कष्ट उठाना पड़ता है। जिन्दा पैदा होकर तुरंत मर जाता है और मरना बिना तकलीफके नहीं होता। बच्चा इतना कमजोर पैदा होता है कि दूध नहीं पी सकता। बच्चा कुछ दिनोंतक जिन्दा रहता है, पर उसका शरीर क्षीण होता रहता है और जल्द ही मर जाता है। बच्चा सब आपत्तियोंसे बचकर बड़ा होकर निर्बल स्त्री या पुरुष होता है और जिन्दगी भर कष्ट भोगता रहता है।

गत मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि बाल्यावस्थाका गर्भ अक्सर गिर जाता है। पहले दो तीन बच्चे जो बालमाताओंसे उत्पन्न होते हैं अक्सर मर जाते हैं और ऐसे बच्चे कमजोर, नाटे, दुर्बल, आयुपर्यन्त रोगी और अल्पायु होते हैं। एक हजार बच्चोंमें ३३३ बच्चे एक वर्षकी आयुमें मर जाते हैं, अर्थात् हर तीन बच्चोंमेंसे एक बच्चा मर जाता है।

भारतके प्रायः सभी नवयुवक, पेशाब, पेचिश या बुखारके रोगसे दुखी रहते हैं। यहाँ पेशाबकी बीमारियोंसे सारी दुनियाँसे अधिक लोग मरते हैं। फी सैकड़ा १५ नवयुवक इन रोगोंके ग्रास बनते हैं।

+ Dr D C Shome, Medical Congress, Calcutta

× यहाँ २५ का जोड़ न मिलेगा। कारण यदि एक ही लड़कीको ३ बार भिन्न भिन्न रोग हुए हैं तो वह तीन बार गिनी गई है। इससे जोड़ बढ़ गया है।

* Dr Albut's System of Medicine
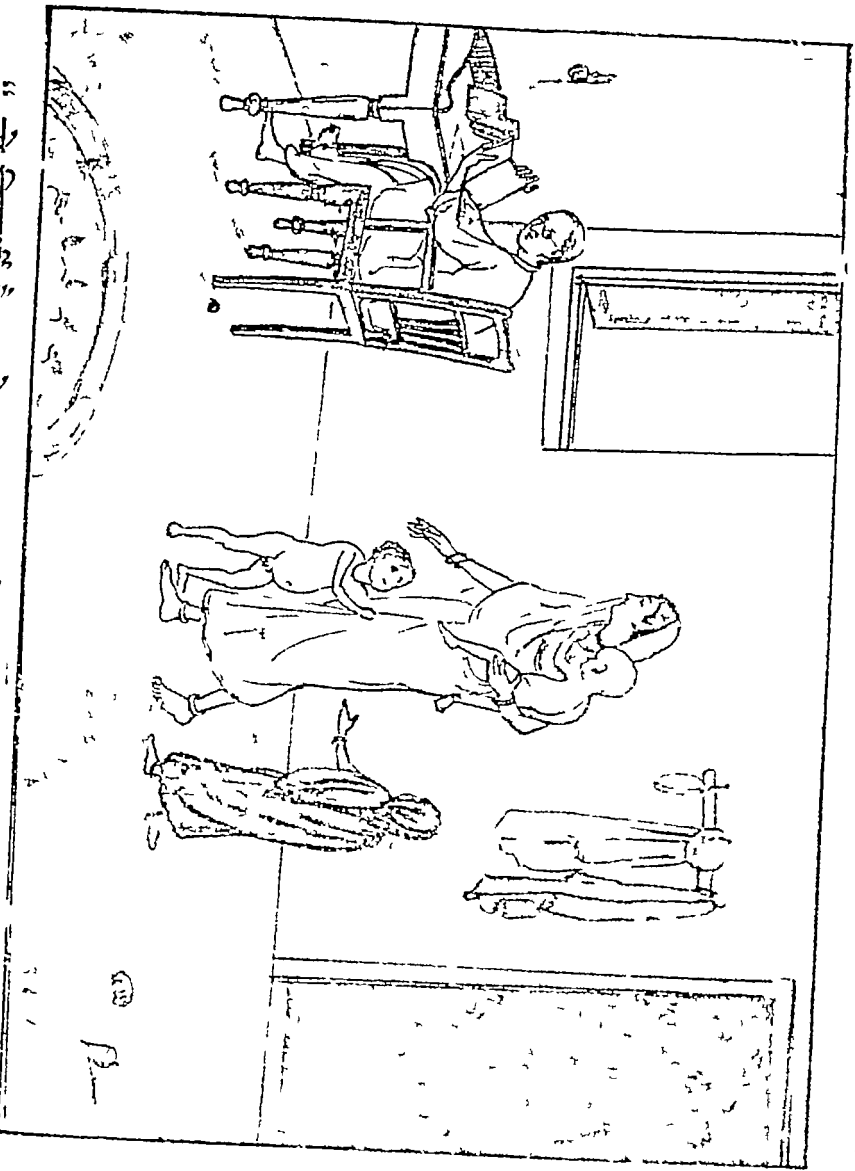
" जो विद्यार्थी है उनको स्कूल या कालेजके भारके ऊपर बच्चोंका कठिन भार भी उठाना पड़ता है।"

विद्यार्थी महाशय और उनकी पत्नी। पढ़ते समय उनकी स्त्री लड़कीको लाकर कहती है कि लीजिए यह आपकी प्यारी सरस्वती है।

भारतके प्रधान प्रधान डाक्टरोंने निश्चय किया है कि भारतवासियोंकी तंदुरुस्ती ३०–४० वर्षमें खराब हो जाती है । इसका कारण यह है कि लड़कपनकी शादीसे उनका शरीर क्षीण हो जाता है और फिर जल्द ही बालबच्चोंकी चिन्ताका बोझ उन पर आ पड़ता है । इससे उनको अत्यंत मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है और उसका नतीजा यह होता है कि उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है ।

जो विद्यार्थी हैं उनको स्कूल या कालेजके भारके ऊपर बालबच्चोंका कठिन भार भी उठाना पड़ता है । इस दोहरे बोझेको सँभालना उनके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है और उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है । ×

सारांश यह कि बाल-विवाहसे भारत गारत हुआ जाता है । यदि अब भी हम सावधान न हुए तो हमारी सब आशायें धूलमें मिल जायंगी और हमारी जातिका सर्वनाश एक निश्चित विषय (Settled fact) हो जायगा । यद्यपि भारत-ललनाओंको हमने विद्या और विज्ञानसे वञ्चित रक्खा है तो भी परमात्माकी दयासे, अन्य राष्ट्रोंकी स्त्रियोंके सम्मुख उनका सिर ऊँचा ही है— सुशीलता, सुन्दरता, पवित्रता, नम्रता, पातिव्रत्य और स्वार्थत्यागमें ये अब भी बाजी मारे हैं । शिक्षासे वंचित रक्खे जाने पर भी ऐसे पवित्र विचार ! गुलामीमें जकड़ी रहने पर भी ऐसा उत्तम—ऐसा उच्च स्वभाव ! बाल-माता बनाई जाने पर भी ऐसा सुन्दर और मनोहर शरीर ! बाल-विवाहकी कुप्रथा नवीन भारतके लिए अत्यन्त लज्जास्पद है, इसको निर्मूल करना भारतसन्तानका सबसे प्रथम और महान् कर्तव्य है ।

× इतिहासकार टाल वाईस व्हीलर लिखते हैं कि "जबतक भारतवासी छोटी छोटी बालिकाओंका विवाह छोटे छोटे बालकोंसे करते रहेंगे, तबतक उनकी सन्तान छोटे बच्चोंसे अधिक अच्छी दशामें कभी न पहुँच सकेगी । स्वाधीनता और स्वराज्यके आन्दोलनमें वे निस्तेज और बलहीन सिद्ध होंगे और राजकीय उन्नतिका उपयोग करनेके लिए वे किसी भी प्रकारकी शिक्षासे समर्थ नहीं हो सकेंगे । इसमें संदेह नहीं कि शिक्षाके प्रभावसे उनकी बुद्धिमें गम्भीरता आ जायगी और वे किसी गम्भीर तथा प्रौढ़ मनुष्यके समान बातें करने लगेंगे, परन्तु सब कुछ होते हुए भी उनका आचरण असहाय बालकोंहीके समान बना रहेगा । "

* 'Wake up India,' by Annie Besant

(ङ)–बालविवाहका कारण भारतकी उष्णता नहीं है।

हमारे नये धर्म-शास्त्रोंने भारतवासियोंके हृदय पर ऐसा सिक्का जमा लिया है कि आज बीसवीं शताब्दीके उच्च शिक्षित—अनेक एम. ए., बी. ए.-यह मान बैठे है कि भारतकी आबोहवामें यह तासीर है कि यहाँ लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं। भारत ऐसा गरम देश है कि यहाँ कन्यायें बहुत जल्द रजस्वला हो जाती हैं और बंगालकी १२–१३ वर्षकी बाल-मातायें इसके सुबूतमें पेश की जाती हैं। लोगोंको दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि सारे भारतमें नही तो बंगप्रान्त और उसके बाद संयुक्तप्रान्तमें प्रकृति दस वर्षकी लड़कियोंको विवाहके लिए बल्कि माता बननेके लिए योग्य बना देती है। दस वर्षकी लड़कियोंको गर्भ रह गया है, उनमेंसे बहुतोंने ठीक समय पर सन्तान प्रसव किया है और दोनों जीते जागते रहे हैं।

डाक्टर चक्रवर्ती लिखते हैं कि "मैं एक लड़कीको बाल्यावस्थाहीसे भली-भाँति जानता हूँ जिसे दस वर्षकी उमरमे लड़का पैदा हुआ।" डाक्टर राबर्ट्सन कहते हैं कि "एक कारखानेमें काम करनेवाली लड़की ११ वर्षकी आयुमें गर्भवती पाई गई।" डाक्टर वेली लिखते हैं कि "कलकत्तेके एक रईसकी ११ वर्ष ५ महीनेकी लड़कीको लड़का पैदा हुआ।" कई अन्य सभ्य रईसोंसे डाक्टर साहबने उसकी सच्ची अवस्था दर्याफ्त की और सभीने उसकी आयु ११ वर्ष ५ महीने बताई। डाक्टर ग्रीन कहते हैं कि "ढाकेमें मैंने एक लड़कीको १२ वर्षकी आयुमें गर्भवती पाया। लड़का पैदा होते वक्त बेचारी लड़की मर गई।" डाक्टर कन्हैयालाल दे कहते है कि "बंगालमें आम तौर पर बारह वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती पाई जाती हैं।"

इस प्रकार एक दो नहीं, आजकल सैकड़ों हजारो बाल-मातायें भारतमें मौजूद है। अब देखना यह है कि भारतके उष्णदेश होनेसे–यहांकी जलवायुकी विलक्षणतासे–यहाँ कुमारियां जल्द ऋतुमती होती हैं, या इसके कुछ और कारण हैं और अन्य देशोंमें प्रकृतिका क्या नियम है।

---

* 'Medical Jurisprudence for India' by R Chevers, Page 673

जगत्प्रसिद्ध डाक्टर हालिक लिखते है—" जाँचे करने पर जहाँतक मालूम हुआ है संसारकी सब जातियोंमे कन्यायें लगभग एक ही उमरमे रजस्वला होती हैं । यदि आफ्रिका जैसे गर्म देशकी हबशी लड़की और यूरोप जैसे ठण्डे देशकी गोरी लड़की एक ही ढँगसे परवरिश पावे तो दोनों एक ही साथ ऋतुमती होंगी । "+

यद्यपि इँग्लैण्डके मुकाबले भारतमें लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती है, पर यह सन्देहकी बात है कि भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न समय पर लड़कियाँ सयानी हों × ।

मिस्टर राबर्ट्‌सनने खूब जाँचकर निश्चय किया है कि भूमण्डलके सब देशोंमें लड़कियाँ लगभग एक ही आयुमें रजस्वला होती हैं । वे बतलाते हैं कि भारतमें प्राकृतिक नियमानुसार बालिकाये रजस्वला नहीं होतीं, वे कुरीतियों और बुरे व्यवहारोंसे, जबर्दस्ती सयानी बना दी जाती हैं। वे लिखते है कि "भारतकी राजनैतिक तथा सामाजिक दशा ऐसी बिगड़ी हुई है, यहाँके क़ानून, यहाँके रीतिरिवाज ऐसी बुरी अवस्थामें हैं, भारतमे स्त्रियाँ ऐसी मूर्खा बना दी गई हैं, वे ऐसी सख्त गुलामीमें जकड़ी हुई है, यहाँकी विवाह-सम्बन्धवाली धार्मिक पुस्तकें ऐसा बुरा उपदेश देती हैं कि भारतकी कन्याये प्रकृति-नियमके विरुद्ध जल्द सयानी हो जाती है । यदि अमेरिका या इंग्लैडकी यही दशा रहती तो वहाँकी लड़कियाँ भी इतनी ही जल्द सयानी होतीं । अमेरिकामे भी बेचारी असहाया, समाजसे गिरी हुई ११–१२ वर्षकी लड़कियाँ (Prostitutes) बाज बातोंमें १७–१८ वर्षकी स्त्रियोकीसी जान पड़ती हैं । और किसी भी देशकी लड़की हो वह यदि उसी बुरी तरह पर रक्खी जायगी तो उन गिरी हुई बाजारू लड़कियोंकी ही तरह बहुत जल्द सयानी हो जायगी। देहातोंके मुकाबले शहरोंमें हर देशमे लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती है, क्योंकि शहरोमे इन लड़कियोंके उभाड़नेके सामान ज्यादा पाये जाते है ।

जवानी जल्द बुलानेके लिए कोई और चीज उतना काम नही करती जितना कि प्रेमकी बातें करती हैं । बेहूदे किस्मे और खेल, या बच्चोको यहाँ

+ ' The Origin of life ' page 363

× ' Annuals of Medical Science

* ' The Origin of Life,' by F. Hollick, page 378

याद दिलाते रहना कि वे अब जवान हो गये, या यह कि उनकी युवा अवस्था अब निकट है, ये सभी जवानीके आमन्त्रणके सामान हैं।

भगवान् धन्वन्तरि सुश्रुतमें बताते हैं कि भारतमे " कन्या बारह वर्षकी आयुमें रजस्वला होती है और यह रजोधर्म पचास वर्षकी आयुमे अकसर वन्द हो जाता है। "

भूमण्डलके अन्य देशोंमें भी रजस्वला होनेका यही नियम है। अत्यन्त ठण्डे इँग्लैण्डमें भी इसी आयुमे लड़कियाँ रजस्वला हुआ करती हैं। वहाँ पर भी १२ से १७ वर्षमें, और कभी कभी नौ वर्षकी आयुमें ही लडकियाँ रजस्वला हो जाती हैं और ४५–५० वर्ष तक हुआ करती हैं।*

इॅग्लैण्डके 'मेंचिस्टर लाइंग इन' अस्पतालमें ३४० लड़कियोंकी परीक्षा ली गई, तो उनमेसे १० लड़कियाँ ग्यारह वर्षकी आयुमें, १९ बारह वर्षकी आयुमें, ५३ तेरह वर्षमें, ८५ चौदहमें, ९७ पन्द्रहमें और ७६ सोलह वर्षकी आयुमें रजस्वला हुईं।

भारतमें २७ गोरी लड़कियोंकी जाँच हुई, उनमेंसे—

४	लड़कियाँ	१२—१३ वर्षके बीचमें,
८	"	१३—१४ के बीचमें
९	"	१४—१५ में,
५	"	१५—१६ में और,
१	"	१६—१७ में रजस्वला हुईं ×।

डा० हटक्लिन्स कहते हैं कि " दो गोरी लड़कियाँ इतनी जल्द रजस्वला हुईं कि वे ग्यारह वर्ष सात महीनेकी आयुमें मातायें बन सकती थीं +।" डा० राबर्टसन कहते हैं कि " भारत और इॅग्लैण्ड दोनों जगह नौ वर्षकी लड़कियाँ रजस्वला हुआ करती हैं या हो सकती हैं †।"

* The origin of Life', Page 363

× Dr Fayrer, Calcutta European Female Orphan Asylum

+ 'Medical Jurisprudence', by R. Chevers, pages 672 692

† 'Medical Jurisprudence", by R Chevers, pages 672–692

इन महान् पुरुषोंके वाक्योंसे प्रकट होता है कि दुनियामें रजस्वला होनेका समय प्रकृतिने एक सा रक्खा है। अब यह देखना है कि क्या अन्य देशोंमें भी कभी बाल-विवाहकी चाल थी और क्या उन देशोंमें भी बाल-मातायें हुआ करती थीं।

बालविवाहका रिवाज लगभग सब देशोंमें था जबतक कि वे देश असभ्यावस्थामें थे, यहाँ तक कि इंग्लैण्डमें भी अट्ठारहवीं शताब्दीके शुरू तक यह कुरीति जारी थी। फ्रांसके राजा फिलिपने इंग्लैण्डकी राजकुमारीको १२ वर्षकी छोटी आयुमें ब्याहा था। दूसरी राजकुमारीका विवाह नौ वर्षकी आयुमें हुआ। जब इंग्लैण्डके राजा रिचर्डका विवाह फ्रासकी राजकुमारीसे हुआ उस समय राजकुमारीकी आयु कुल आठ वर्षकी थी। श्रीमती एलिजाबेथ हार्डविकका विवाह १३ वर्षकी आयुमे हुआ। आडरे (सौथ एम्पटनके अर्लकी लड़की) का विवाह हो चुका था जब १४ वर्षकी अवस्थामें उसकी मृत्यु हुई। इंग्लैण्डके राजा हेनरी सातवेंके अत्यन्त निर्बल होनेका कारण यह था कि उनकी माता लेडी मार्गरेटका विवाह कुल नौ वर्षकी अवस्थामें हुआ था और जब हेनरीका जन्म हुआ तब लेडी मार्गरेटकी आयु कुल दस वर्षकी थी। इंग्लैण्डके उच्च श्रेणीके लोगोंकी प्रायः यही हालत थी, वे अत्यन्त छोटी अवस्थामें विवाह करते थे। *

इंग्लैण्डकी रेस्क्यू सुसाइटीने सरकारसे प्रार्थना की थी कि समाजसे गिरी हुई दससे सोलह वर्षकी लड़कियोके लिए घर बनाना चाहिए, क्योंकि ऐसी कम उमरकी लड़कियोंकी दर्ख्वास्तें उन लोगोको हमेशा नामंजूर करना पड़ती थीं।

मारिस (Maurice 23, Lord Berkly, Edward I) का विवाह आठ वर्षकी आयुमें हुआ और १४ वर्षके पहले ही उन्हें लड़का हुआ। वरजीनियो नगरमें एक १३ वर्षकी लड़कीके बिना किसी अधिक कष्टके लड़का पैदा हुआ ×। इंग्लैण्डमे एक युवती स्त्री एक दस वर्षके लड़केके साथ सो रही थी। उसके हृदयमे पाप समाया और उसने यह सोचकर कि उस लड़केके

* 'Medical Jurisprudence for India', by R Chevers, page 692

× Philadelphia Medical Examiner, April 1855.

साथ विषय-सेवन करनेसे गर्भका भय नहीं है, भोग किया । पर उसे गर्भ रह गया और जिल्लत और शर्म उठानी पड़ी † । एक दस वर्ष १३ दिनकी लड़कीके लड़की पैदा हुई । उसका वजन ७ पाउण्ड था ‡ ।

टेलरसाहबका कथन है कि "किसी भी देशमें नौ वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती हो सकती हैं । अर्थात् ऐसा हो जाना असम्भव नहीं है। " +

जगत्प्रसिद्ध डाक्टर हालिक लिखते हैं—" मैंने एक सात वर्षके लड़केका अंग, विषय-संभोग करने योग्य पाया है । प्रकृतिका नियम इस विषयमें बड़ा बेढंगा है । सात वर्षका लड़का संभोग और गर्भस्थिति कर सकता है * ।"

उपर्युक्त कुल बातें ठण्डे देशोंकी हैं जहाँ भारतकी तरह गरमी नहीं पड़ती, पर रजस्वला होनेका समय अथवा बाल्यावस्थामें गर्भवती हो जाना उक्त देशोंमें भी वैसा ही है जैसा भारतमें है।

मुसलमानोंमें भी यह कुरीति थी और है। इनके कानूनकी किताबोंसे पता चलता है कि सात वर्षके ऊपरकी आयुवाली लड़कियोंके साथ संभोग करना जायज है ✓ । मुसलमानोंके नबी मुहम्मद साहबने आयेशासे सात वर्षकी आयुमें विवाह किया और जब वह आठ वर्षकी हुई तब उसके साथ संभोग किया × । यदि किसी नौ या दस वर्षकी लड़कीमें युवावस्थाके कोई चिह्न प्रकट हों तो वह बालिग समझी जाती है = ।

इन अनेक देशो और जातियोंके उदाहरणोंसे यह सिद्ध हुआ कि यदि भारतमें छोटी अवस्थामें लड़कियाँ रजस्वला होती हैं तो इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि भारतके जल-वायुमें ऐसी उष्णता है कि लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं । सारांश यह कि भूमण्डलके प्रत्येक देश और प्रत्येक जातिमें इस बारेमें प्रकृतिका एक ही नियम है और भारतके जल वायुमें कोई विशेषता अथवा न्यूनता नहीं है । जब देशकी अवस्था खराब

---

† 'The Origin of Life ', Page 456

‡ Transylvania Journal, Vol VII page 447

+ 'Medical Jurisprudence, by R Chevers, page 673

* ' The Origin of Life ', page 456

✓ Notes on Muhammedan Law by Khan Bahadur M T Khan.

× ' The Origin of Life ', Page 458

= Macnaghten's Muhammedan Law, pages 228 & 266

होती है और लोग ज्ञानहीन रहते हैं तब वे बालविवाहकी बुरी चालमें फँस जाते हैं।

प्रकृतिका अद्भुत रहस्य।

अभी हम दिखा चुके हैं कि नौ वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती होकर बच्चा जनती हैं और दस या इससे कमके लड़कोंद्वारा स्त्रियाँ गर्भवती हो गई हैं। अब दूसरी ओर देखिए—

टामस पार १५२ वर्ष तक जीये। उन्होंने १२० वर्षकी आयुमें विवाह किया और १४० वर्षकी आयुमें उन्हें लड़का पैदा हुआ ×। फ़ेलिक्स प्लेटर बतलाते हैं कि उनके दादाको १०० वर्षकी आयुतक बराबर लड़के होते रहे *। सीज नगरके बड़े पादरी लिखते हैं कि " सीजमें एक ९४ वर्षके पुरुषने एक ८३ वर्षकी स्त्रीसे विवाह किया। स्त्री गर्भवती हुई और उसे पुत्र उत्पन्न हुआ। +" मारशल डी एस्ट्रीने अपनी दूसरी शादी ९१ वर्षमें की। मारशल डी रिचलने, मैडम डीराथके साथ ८४ वर्षकी उमरमें शादी की। सर स्टीफेन फ़ाक्सकी शादी ७७ वर्षकी आयुमें हुई और उन्हें चार लड़के हुए— पहला ७८ वें वर्षमें, दूसरी बार दो एक साथ और चौथा ८१ वें वर्षमें। मिमायर्स डी आर्मोनरर (Memoires be Armonrer) ने ८० वर्षकी आयुमें विवाह किया और उसे तन्दुरुस्त लड़के पैदा हुए। बेगन साहब बतलाते हैं कि " मेरे एक मित्र ७५ वर्षकी आयुमें एक स्त्रीकी मुहब्बतमें फँस गये और उन्होंने उसके साथ विवाह किया ! "

(च)—विज्ञानद्वारा विवाह-काल-निर्णय।

" God's law in Nature is higher than the written word of man, however it is claimed to be inspired, and that when it comes to a contest between the two then it is

---

× Reference given in three books (1) Philosophical Transaction, (2)The Origin of Life, and (3) The conjugal relationship

* 'The Conjugal Relationship as to health', by K Gardner, page 159-167.

+ History of the Academy of Science

the law that cannot be forged that should be followed-that law of Nature which is supremely and undeniably the Law of God."
—*Annie Besant.*

परमात्माका बनाया हुआ प्रकृतिका नियम मनुष्यके बनाये हुए नियमोंसे सदैव अधिक माननीय है, फिर वे नियम चाहे कैसे ही ब्रह्मज्ञानी मनुष्यके बनाये हुए क्यों न हो। और जहाँ इन दोनों नियमोंमें मतभेद हो वहाँ वही नियम नियम माना जाना चाहिए जिसे कोई दोष दूषित न कर सकता हो। ऐसा अभेद, अटल, और अमिश्रित केवल प्रकृतिका नियम है, जो कि निःसंदेह परब्रह्म परमात्माका नियम है। —एनी बीसेंट।

हम ऊपर दिखला चुके हैं कि जन्मके कुछ ही वर्षोंके बादसे मरणके कुछ वर्ष पहले तक स्त्री और पुरुष दोनोंहीमें संभोगकी शक्ति रहती है। अतएव, अब विचार इस बात पर करना है कि इस शक्तिसे काम लेनेके लिए कौन उचित समय है, किस आयुमें स्त्री और पुरुषको विवाह करनेसे हानि न होगी।

तरुणता या जवानी उस अवस्थाका नाम है जब अंगोकी प्रौढ़ता प्रारम्भ होती है। संसारके सब देशोंमें, भूमण्डलकी प्रत्येक जातिमें, यह अवस्था पुरुषमें सोलह वर्षकी आयुसे और स्त्रीमें बारह वर्षकी आयुसे शुरू होती है जन्मसे इस अवस्था तक केवल जीना और बढ़ना था, पर अब जीवकी बाढ़ शक्तिका काम हड्डी और पट्ठोको पुष्ट करनेके अतिरिक्त अपनी सब शक्तियोंकी उन्नति तथा संतानोत्पत्ति शक्तिकी वृद्धि करना हो जाता है।

शरीरकी सातो धातुओंमें—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रमें—नया चमत्कार आ जाता है। शुक्र या वीर्य जो अबतक मंद था एक नये भावसे अपनी प्रधानता प्रकट करके शरीररूपी नगरका राजा बन जाता है। जैसे ईखमें रस, दहीमें घी और तिलमें तेल है उसी तरह समस्त शरीरमें वीर्य है। तरुणतामें वीर्यवृद्धि और पुष्टता होती है, चेहरा चमकने लगता है, सुडौल हो जाता है और सारे शरीरमें एक खास तरहकी खूबसूरती आ जाती है।

यद्यपि तरुणताके प्रारंभिक चिह्न पुरुषोंमें १६ और स्त्रियोंमें १२ वर्षकी उमरमें क्रमानुसार दिखाई देने लगते हैं, पर वीर्य और इन्द्रियोंकी पुष्टिमें अभी पूरे दस वर्ष और बाकी रहते हैं। यह समय अकंटक बीत जाने पर सर्वाङ्ग पुष्ट हो जाते हैं; शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंमें प्रकाश

आ जाता है, शरीरमें बल और पराक्रमकी थाह नहीं रहती। मनमे उमंग, फुर्ती और चेहरेसे आनन्दकी झलक दीखती है। अर्थात् पुरुषोंके वीर्य और शरीरके पुष्ट होनेके लिए जन्मसे २६ वर्ष और स्त्रियोको २२ वर्ष चाहिए।

इस अवस्थाके जितने ही पहले और जितने ही अधिक कच्चे शरीरसे वीर्य निकलता है, शरीरकी पूर्ण पुष्टि और मानसिक आदि सब शक्तियोंके लिए वह उतना ही अधिक हानिकारक होता है।

अतएव विज्ञानद्वारा विचार करनेसे पुरुषोंके लिए २६ से ३२ तककी और स्त्रियोंके लिए २२ से २८ तककी आयु, विवाहके लिए सर्वोत्तम जान पड़ती है।

संसारकी सारी सुशिक्षित और सभ्य जातियोंमें लगभग इसी अवस्थामे विवाह हुआ करते है।

डाक्टर एफ. हालिक कहते हैं:—"यूरोप और अमेरिकामे आम तौर पर विवाह करनेका समय पुरुषके लिए २८ से ३१ वर्ष तक और स्त्रीके लिए २३ से २८ वर्ष तक होता है। पर उन लोगोंकी संख्या, जो और देरमें विवाह करते है या वे स्त्रीपुरुष जो जीवनपर्यन्त विवाह करते ही नहीं, बढ़ती जा रही है।"

(छ)—क्या भारतकी प्राचीन विवाहप्रणाली विज्ञानके प्रतिकूल है?

बाल विवाहके पक्षपाती कहा करते हैं कि ऋतुमती युवतीका विवाह शास्त्रनिषिद्ध है और भारतवर्षमे कभी प्रचलित नहीं था। किन्तु ऐसी गिरी अवस्थामें भी जिन मन्त्रोंसे विवाह-संस्कार कराया जाता है, उनसे साफ साफ मालूम होता है कि प्राचीन समयमें स्त्री और पुरुष विवाहके समय युवती और युवक होते थे, न कि बालक और बालिका। विवाह-सम्कारके आरम्भमें अग्निहोत्र और गायत्रीके पश्चात् कन्याका पिता कहता है:—

> प्रत्वा मुंचामि वरुणस्य पाशायेन त्वावध्नात् सविता सुशेवः,
> ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वां सह पत्या दधामि।
>
> —ऋ० मं० १०, अ० ७, सू० ८५, मं० २४।

अर्थात्—हे कुमारी ! आज हम तुम्हें (कुँवारेपनके) प्रेमके बन्धनसे जिससे सूर्य्यने तुमको हमारे साथ बांध रक्खा था, छुड़ाते हैं। हम तुम्हें तुम्हारे पतिके साथ ऐसे स्थानमें रखते हैं जो सचाई और पुण्यका घर है। तुम प्रसन्नतापूर्वक वहाँ वास करो।

तब वर कन्याका हाथ थामकर और अग्निको साक्षी देकर कहता है:—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः
भगोऽर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।

—ऋ० म० १०, अ० ७, सू० ८५, म० ३६।

अर्थात्—हम तुम्हारा हाथ सुख और सौभाग्यके लिए पकड़ते हैं। बुढ़ापे तक हमारी पत्नी बन कर रहो। कृपालु सविताने तुम्हें हमको सौंपा है कि हमारी गृहिणी बनो और घरके कार्यके लिए सदा तैयार रहो।

तुभ्यमग्रे पर्य्यवहन्त् सूर्य्यां वहतुना सह
पुनः पतिभ्यो जायां दाऽअग्ने प्रजया सह।

—ऋ० म० १०, अ० ७, सू० ८५, म० ३८।

अर्थात्—परमात्मन् ! तू इस सौभाग्यवती कन्याको मुझे देता है। यह मेरे प्रेमालिंगनको सप्रेम और सादर ग्रहण करे और मेरे लिए प्रजा उत्पन्न करे। हे अग्निदेवता ! आप मुझे यह पत्नी देते हैं। इसके साथ मुझे धन और सन्तान प्राप्त हो।

सातवीं भाँवर फिरनेके समय पति पत्नीको सम्बोधन करके कहता है.—

सखे सप्तपदा भव सखायौ सप्तपदा बभूव सख्यन्ते गमेयं सख्याते मायोपं सख्यान्मे मा योष्ठास्सम याव संकल्पावहै सप्रियौ रोचिष्णु सुमनस्वमानौ। इह भूर्जेम मिसवं सानौ सन्तो मनांसि सव्रता। सुभच्चित्तान्याकरम्। सात्वमस्य भूहलभूहमस्मि सात्वं द्यौरहं पृथ्वी त्वं रेतोऽहं रेतोभत् त्वं मनोऽमास्मि वाक् त्वं सामाहमस्मृक्त्वं सामामनुव्रता भव पुंसे पुत्राय वेत्तवै श्रियै पुत्राय वेत्तवा एहि सूनृते॥

—ऋ० म० १०, सू० ८५।

अर्थात्—हम लोगोंने सात भाँवर फिर लिया है। अब हम एक दूसरेके परम सखा हो गये। न हमारा तुमसे कभी वियोग हो और न तुम्हारा हमसे। हम दोनों एक हों। हम लोग प्रसन्नहृदय और परस्पर प्रेमके साथ एक दूसरेकी सलाह लें। अब हम दोनोंका मन, कर्तव्य और इच्छा एक है। तुम ऋक् हो

हम साम हैं, हम द्यौः हैं तुम पृथ्वी हो, हम रेतः हैं तुम रेतःकी धारण करनेवाली हो, हम मन हैं तुम वाणी हो। हमारी अनुगामिनी होओ, जिसमे पुत्र और धनकी प्राप्ति हो। मिष्टभाषिणी! आओ।

पाठकवृन्द! आप विचारें तो सही कि क्या ये वचन 'अष्टवर्षा गौरी' द्वारा कहे जानेके योग्य हैं।

तब पत्नी कहती है.—

आनः प्रजां जनयतु प्रजापति राजरसाय समनक्त्वार्यमा।

अर्थात्—सृष्टिकर्ता परम पिता प्रजापति हम लोगोंको सुख और संतति प्रदान करें और हम लोग वृद्धावस्था तक एक दूसरेके साथ रहें।

तब कन्याका पिता कहता है:—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्व सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमावदाथः।
सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव
ननांदरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञीऽअधिदेवृषु।

—ऋ० मं० १०, अ० ७, सू० ८५, म० २७-४६।

अर्थात्—तुम्हें सन्तानोत्पत्तिसे सुख हो। तुम अपने घरका कामकाज सावधानीसे करना। तुम अपने शरीरको पतिमें लीन कर देना। वृद्धावस्था तक अपने घरमें प्रभुत्व करना। तुम अपने ससुरकी, सासकी, ननदकी और देवरकी सम्राज्ञी बनो, अर्थात् ये सब लोग तुम्हारे अधीन रहे।

इसके बाद वरका पिता कन्याको सबोधन करके कहता है:—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतं।
क्रीडंतौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।

—ऋ० म० १०, अ० ७, सू० ८५, म० ४२।

अर्थात्—हे बहू! तुम अपने पतिके साथ सदैव रहो, कभी अलग मत होओ। आजन्मके लिए पतिसे मिल जाओ। अपने घरमे प्रसन्नचित्त रहो और आनन्दके साथ अपने पुत्र और पौत्रोके साथ खेलो।

इसके पीछे पति और पत्नी दोनो कहते हैं·—

समजतु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥

—ऋ० म० १०, अ० ७, सू० ८५, म० ४७।

" We came to enjoy, we are being enjoyed. We came to rule, we are being ruled. We are caught though we came to catch (enjoyment) We want to enjoy the plea sures of life and they eat into our very vitals "

यदि विचार कर देखिए तो समस्त भारतमे गिनतीके ही विवाहित स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे सन्तुष्ट पाये जायँगे। कहीं स्वभाव नहीं मिलता, प्रतिदिन अनबन रहती है, कही दरिद्रताके कारण सुखका लोप ही गया है और दुःख-सागरमें डूब रहे है, कहीं पुरुष रोगी और स्त्री आरोग्य, और कहीं इसका उलटा, एक दूसरेसे असन्तुष्ट। जिस घरमे जॉच करके देखिए यही हालत नजर आती है। ऊपरी नजरसे सबके देखनेमें तो यही आता है कि अमुक दम्पति सा सुखी कदाचित् ही अन्य कोई हो, पर भीतरी दशा कुछ और ही हुआ करती है। ऐसी छिपी हुई बातें आम तौर पर सब लोगोंको मालूम नहीं हो सकती, कुछ दिनो तक लगातार जॉच करनेसे, और यह भी उस समय जब उस स्थानके लोगोंसे अच्छा परिचय हो, पता चल सकता है।

नीचे लिखे २५ विवाहित पुरुषोंसे मै भलीभॉति परिचित हूं। कई वर्षोंसे मै इनकी जॉच कर रहा हू। उस जॉचका परिणाम नीचे दिया जाता है। विदित रहे कि इन पुरुषोंको मैंने चुनकर नहीं रक्खा है, जॉच करते समय ये स्वयं मेरे रास्तेमे पड़ गये हैं और देवसंयोगसे इनका कच्चा चिट्ठा खुलता गया है। इस जॉचके अलावा मैंने सात भिन्न भिन्न स्थानोंमे भी जहॉ मेरे घनिष्ट मित्र रहते हैं–इसी प्रकारकी जॉच कराई है और उसका परिणाम भी इसीसे मिलता-जुलता प्रकट हुआ है। मैंने उन सब मित्रोंसे प्रार्थना की थी कि वे अपनी जान पहचानके पचीस पचीस विवाहित पुरुषोकी भीतरी दशा जॉचकर लिखें। उन्हें स्पष्ट रूपसे लिख दिया गया था कि किसी खास स्त्री या पुरुषकी छिपी हुई हालत न लिखकर वे केवल उन लोगोंकी सच्ची दशा लिखें जिन्हे वे जानते हो और जिनकी जॉच वे भलीभॉति कर सकते हों, जैसे पड़ोसी, घनिष्ट मित्र या सम्बन्धी। इस तरह २०० विवाहित पुरुषोंकी जॉच की गई है, पर स्थानके अभावसे और आपका समय बचानेके लिए तथा आप पर स्वय ऐसी जॉचका भार डालनेकी इच्छासे, मै केवल अपनी ही जॉचका फल प्रकाशित करता हूः—

पाँच राजा-महाराजा ।

१ खुद मुख्तार महाराज (Ruling chief) । घोर व्यभिचारी, रानीसे अनबन, राजा सुखी, रानी पतिव्रता पर राजाके अन्यायसे सदैव दुःखिनी ।

२ राजासाहब नपुंसक हैं, पर उन्होंने अपनी दशा छिपानेके लिए पाँच विवाह किये । पाँचों रानिया जीवित हैं और व्यभिचारिणी हैं । राजा दुखी रानियाँ सुखीं । रानियों द्वारा खर्च अत्यन्त अधिक, स्टेट कर्जदार ।

३ राजा महलमें नहीं जाते । दस्तकारीसे विशेष प्रेम रखते हैं । रानियां दो, एक व्यभिचारिणी दूसरी पतिव्रता । तीनों दुःखी । व्यभिचारिणी रानीको खर्च कम मिलता है, बड़ी बेइज्जतीसे रक्खी जाती है ।

४ राजा प्रकृति-विरुद्ध-व्यभिचारी । दशहरेमें रामलीलाकी मंडली आने पर उसके सुन्दर लड़कोको माफी जमीन दान दे दी जाती है, और वे बसा लिये जाते हैं । रानी पतिव्रता पर अत्यत दुःखिनी । राजा रोगग्रसित, दुखी ।

५ राजा निर्बल, रानी मोटी ताजी । दोनोंमें अनबन । राजाकी युवावस्थामें एकाएक मृत्यु । रानीका खुल्लमखुल्ला व्यभिचार । राज्यके खजानेकी लूट और रियासतका सत्यानाश । दोनों दुखी ।

पाँच धनाढ्य महाजन ।

१ पुरुप देवता, स्त्री देवी, दोनोंमें प्रेम और दोनों सुखी ।

२ पति निर्बल रोगी, पत्नी बलवती । एक दूसरेको दिखानेके लिए प्यार करते हैं । पतिको पत्नीके छिपे व्यभिचारकी खबर है, पर उससे वे अधिक रुष्ट नहीं होते । पति दुखी, पत्नी सुखी ।

३ सेठजी, आयु २६ वर्ष, व्यभिचारी । सेठानी व्यभिचारिणी । सेठके अत्याचारसे तग आकर एक प्यादेके साथ एक लाखका जेवर पहिन कर चल दी, गिरफ्तार हुई और फिर घरमें स्वतन्त्रतापूर्वक रहने लगी । दोनों बेहया, पर सुखसे रहते है ।

४ पति शक्तिहीन, पत्नीके कई गुप्तप्रेमी । दोनो सुखी । न उसे उसकी परवा और न उसे उसकी ।

५ पुरुप अर्ध-शक्तिहीन, स्त्री पगली । कभी इनमें निर्बलता और उसका मिजाज ठीक, और कभी इनका स्वास्थ्य ठीक और वह पगली । दोनो दुखी ।

पाँच वकील।

१ पति पत्नीका स्वभाव परस्परविरुद्ध, दोनोंमें अनबन, दिनरात लड़ाई झगड़ा, दोनों दुखी।

२ पतिने घरकी कहारिनको रख लिया है। वे उसे लाड़ प्यारसे उसी घरमें रखते हैं। पत्नी दिनरात डाहसे भसम हुआ करती है। पति सुखी, पत्नी दुःखिनी।

३ पति शक्तिहीन, पत्नी अत्यन्त दुःखिनी। वह अपने मैके नहीं जाने पाती कि कहीं किसीसे कुछ कह न दे। लिखना पढ़ना नहीं जानती कि पत्र-व्यवहार भी कर सके। कई वर्षों तक सतीत्व निबाहा, पर आखिर भंग हो गया। लडके हुए, पर वकील साहबको इसकी परवा नहीं। वे अपनी निर्बलता छिपाना चाहते हैं—बस, अब दोनो सुखी हैं।

४ पति घोर व्यभिचारी, पत्नी अत्यन्त दुःखिनी।

५ पति पत्नी दोनों स्वच्छन्द, एक दूसरेकी स्वतन्त्रता पर ध्यान नहीं देते। दोनों एक दूसरेकी चालनचलन पर शक करते हैं, पर दोनो ही इसकी परवा नहीं करते और आनन्दपूर्वक सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।

इसी तरह पॉच नौकरी पेशा और पॉच मजदूरी पेशेवालोंकी जॉचसे मालूम हुआ है कि दसोंमें कुल एक जोड़ा सुखी है और बाकी नौ, पतिपत्नी दोनों, दुखी हैं। अर्थात् राजासे लेकर रंक तक २५ विवाहित स्त्री पुरुषोंमें कुल ३ ऐसे पाये जाते है जो सब प्रकार एक दूसरेसे सुखी हों। यदि मेरे मित्रोंकी रिपोर्ट भी इसमें मिला ली जाय तो कुल दो सौकी जॉच हो जाती है। इन २०० सुख भोगनेके अभिलाषियोंमें केवल तीस जोडे तो सुखी पाये गये और बाकी १७० दुखी। अधिकाश विवाहित जन नाना प्रकारके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कष्ट भोग रहे हैं।

अच्छा, विवाहके पश्चातका दु ख तो 'कार्य' है, अब देखना यह है कि इस घोर विपत्तिका 'कारण' क्या है। अधिकाश विवाहित जन दु.ख क्यों पाते हैं? उनकी सुखकी आशायें भग क्यो हो जाती हैं? आनंद और प्रेमकी जगह कष्टदायक झगड़े क्यो होने लगते हैं? इस शुभ कार्यके अशुभ कार्यमें बदल जानेका कारण क्या है?

इस प्रश्नका उत्तर है—'अयोग्यता।' शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक अयोग्यता ही अनेक दुःखोकी प्रधान कारण है। जिसमें किसी प्रका-

६० वर्षके बूढे दादा अपनी पोतीकी आयुकी कन्यासे विवाह कर लेते है।

(देश दर्शन पृ० १५३)

कुमारी स्नेहलता ।

(देशदर्शन पृ० १६०)

रकी न्यूनता है, जो विवाहके योग्य नहीं, उसका विवाह हो जानेसे विवाहका पुनीत सुख, दुःखमें बदल जाता है, हर्षकी जगह विषाद होने लगता है। लोग आँखोंमें पट्टी बाँध कर वृक्ष तो बबूलका लगाते हैं और आमके मीठे फलकी आशा करते हैं, पर चुभ जाता है काँटा। तब भी आँख नहीं खुलती, वे अपने आपको, अपने कियेका दोष न देकर ईश्वरको, दुर्भाग्यको, और पूर्वजन्मके संस्कारको कोसा करते हैं।

(ञ)—विवाहितजनोंके दुःखके प्रधान कारण।

' Man sees with scrupulous care the character and pedigree of his horse, cattle, and dogs, before he matches them, but when he comes to his own marriage, he rarely, or never, takes such care ' Darwin.

मनुष्य, अपने गाय, बैलो, घोड़ों और कुत्तोंका जोड़ा लगानेके पूर्व, उनके कद, नसल और बल आदि अनेक गुणों पर बड़ी सावधानीसे विचार करते है और जाँच कर जोड़ा स्थिर करते है। किन्तु, जब अपने या अपनी संतानके विवाहका समय उपस्थित होता है, तब वे इन सब उत्तम विचारोंको भूल जाते हैं। —डारविन।

१ अविद्या। सृष्टिनियमोंका न जानना, शारीरिक शक्ति और आर्थिक दशा पर विचार न करके विवाह करना, जो विवाह करने योग्य नहीं है मूर्खतावश उनका विवाह करना और उसी अंधकारमें बिना सोचे समझे संतानोत्पत्ति करना।

२ बालविवाह। इसका वर्णन पहले हो चुका है।

३ वृद्धविवाह। अन्य देशोंमें यदि कभी ऐसे विवाह होते हैं, तो वृद्ध पति, वृद्ध पत्नी खोज लेते हैं। यह नहीं कि ६० वर्षके बूढे दादा, अपनी पोतीकी आयुकी कन्यासे विवाह कर लें। किन्तु अभागे भारतमें ऐसे हृदयवेधक विवाहोंकी कमी नही है। पंडित सीताराम मुनीम मेरे किरायेदार थे। इस समय वे स्वर्गमें है या नरकमें, वे ही जानें। यह मकान मेरे रहनेके मकानसे मिला हुआ है, बल्कि एक दरवाजा खोल देने पर दोनों मकान एक हो जाते हैं और लोग आ जा सकते है। उन्होंने ५० वर्षकी आयुमें दो सौ रुपये देकर एक कुलीन ब्राह्मणके घरकी युवतीसे विवाह किया। यह अभा-

गिनी युवती अबतक है और मेरे ही मकानमें हैं। इस अभागिनी युवतीमें सब गुण रानियोंके से हैं। यह अत्यन्त सुन्दरी, मृदुभाषिणी और धर्मकी पक्की है। जिस समय मुनीमजी थे, घरमें उनके सिवा और कोई नहीं रहता था। मुनीमजी बारह बजे राततक बाजारकी दुकानोंमें काम करते रहते थे और यह गरीब युवती मेरे घर, स्त्रियोंमें मन मलीन किये बैठी रहती थी। जिन बातों पर साथकी बैठी हुई स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँसती थीं, उन्ही बातोंसे इसके नेत्रोंसे टपाटप आँसुओंकी बड़ी बड़ी बूँदें टपक पड़ती थीं। दिनरात अपने भाग्यको धिक्कारा और रोया करती थी। विवाहके चार वर्ष बाद मुनीमजी मर गये। इस समय इस दुखिया विधवाकी आयु १९-२० वर्षके लगभग है। पवित्र भावसे मेहनत मजदूरी करके बेचारी अपना जीवन व्यतीत करती है।

बताइए, इस पापमय कार्यके कारण, सीताराम और इस दीन बालिकाके मातापिता हैं या स्वयं यह जन्मदुःखिनी अनाथा? दोष किसका है?-जीवित मनुष्योंके इस जन्मके कार्यका या उस अबलाके दुर्भाग्यका और उस जन्मके संस्कारका?

४ धन-हीन, पुरुषार्थ-हीन पुरुषोंका विवाह। संसारके सभी सभ्य देशोंमें, लोगोंके आरामका, रहनेके ढंगका, एक समय और एक नियम हुआ करता है। जबतक उनकी आमदनी इतनी नहीं हो जाती कि वे एक खास स्टैण्डर्ड पर रह सकें, विवाह नहीं करते। पर भारतकी दशा विचित्र है। यहाँ इन सब बातोंसे कुछ मतलब नहीं। आमदनी हो या न हो, परिवार भर चाहे भूखों मर रहा हो, पर सबसे छोटे लड़केका भी विवाह कर देना, उस खानदानके मालिकका कर्तव्य है। कहा जाता है कि जब सभी अपने अपने भाग्यका खाते हैं, तब नई बहू भी अपना भाग्य अपने साथ लायगी। पर होता क्या है? जहाँ घरके दस प्राणी भूखो मरते थे, वहाँ ग्यारह मरने लगते है। जहाँ सौका कर्ज था, वहाँ दो सौका हो जाता है, और मजा यह कि अपने आपको दोष न देकर बेचारी नई बहूके भाग्य पर धब्बा लगाया जाता है और लोग उसीको कोसने लगते हैं।

५ शक्ति-हीन पुरुषोंका विवाह। यह भी एक विलक्षण बात है। अन्य देशोंमे जहाँ स्त्रियोंको कुछ अधिकार है, जहां पत्नी, पतिको त्याग कर सकती है, तलाक दे सकती है, वहाँ पुरुष अपनी तुच्छसे तुच्छ न्यूनता पर विचार

करते है। पुरुष डरा करते हैं। क्योंकि स्त्रियाँ बेधड़क कह बैठती हैं कि " तुमने किस बिरते पर मुझे वरनेका साहस किया था ?—How dare you marry me ? " पर यहाँ क्या, चाहे जैसीं और चाहे जितनीं अपने घरमें डाल लीजिए। कोई कुछ कहनेवाला नहीं और वे बेचारीं कर ही क्या सकती है !

एक वकील साहब मेरे मित्र हैं। बाँकीपुर-काग्रेसके लिए हम दोनों एक ही साथ गये थे। वहाँ आपकी तबीयत एकाएक खराब हो गई—गश आ गया। पास ही मेरे एक डाक्टर मित्रका खेमा था। वे तुरन्त आये और खूब अच्छी तरह देख भालकर मुझसे बोले कि ये महाशय शक्तिहीन हैं और यह इनका पुराना (chronic) रोग है। मूर्च्छा दूर होने पर मैंने और भी तीन डाक्टरोंको बुलाकर उनकी परीक्षा कराई, पर सबकी एक ही तशखीश हुई। सबोंने बताया कि उनमे पुरुष-शक्ति नहीं है।

लौट कर, समय समय पर मैंने, प्राइवेट तौरसे उनकी स्त्रीकी दशाकी जाँच कराई। मालूम हुआ कि घरमें उसका अनादर है, न वह किसीसे बोलती है और न उससे कोई बोलता है। अकसर अकेलेमें बैठकर रोती रहती है, सो भी खुल कर नहीं चुपचाप; नहीं तो लोगोंमें चर्चा होने लगेगी। वह पगली बदमिजाज और कुरूपा कह कर बदनाम है। इसीलिए मेरे मित्र वकील साहब उसे नहीं चाहते। भारत, तू धन्य है !

६ भयंकर-रोग-ग्रस्त पुरुषोंका विवाह। जिन्हे क्षय होगया है, जिन्हे मिरगी आती है और जिन्हें गरमी या सुजाककी बीमारी हो चुकी है, ऐसे लोगोंका असर स्त्री पर तुरन्त पड़ता है, और उसको जीवनपर्यन्त क्लेश भोगना पड़ता है। पर भारतमें ऐसे सभी रोगी, बिना रोक-टोक विवाह किया करते हैं। मुझे अभी तक कोई अविवाहित भारतवासी नहीं मिला, जिसने ऐसे रोगोंके कारण विवाह न किया हो। काशीके एक बी० ए० महाशय मिरगीके कारण कुछ काम धाम नहीं कर सकते उन्हे हफ्तेमें कई बार बड़े जोरके फिट आ जाते हैं, पर गत आठ वर्षोंके भीतर उनके पाँच विवाह हुए और हर शादीमें ऊपरसे दहेज मिला ! मालूम नहीं उनकी स्त्रियाँ क्यों नहीं जीतीं। इस तरहके और भी अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

इन रोगियोंको कौन झींखे, यहाँ तो अपाहिज और कोढ़ियों तकका विवाह हो जाना आवश्यक समझा जाता है। यदि इनका विवाह न हो तो इनकी

खिदमत दूसरा कौन करे ? भारतमें ६,६८,६३२ अपाहिज और कोढ़ी हैं * जिनमें २,६२,८५८ स्त्रियाँ हैं और इनके विवाहके प्रत्यक्ष फल १,१६,३६१ अपाहिज लड़के हैं, जिनकी आयु १५ वर्षसे कम है। दस वर्षसे १५ वर्षकी आयुके ५३,५०९, पाँचसे दस वर्षके ४५,३६३ और पाँच वर्षसे कम अर्थात् दूध पीनेवाले १६,४९१ हैं।

मुझे याद है कि क्रिश्चियन कालेज इलाहाबादके प्रो० हिगिन बाटम (Higgin Bottom) एक ८ वर्षके सुन्दर बालकको इसलिए उठा लाये थे, कि यदि वह अपने कोढी मातापिताके साथ रहेगा तो अवश्य उसे भी वही रोग हो जायगा, अलग रखनेसे शायद वह बच जाय। पर यह पैतृक रोग है। कुछ ही दिनोंके पश्चात्, उसे भी वह रोग हो गया और फिर वह भी उसी गृहमें घुल घुल कर मरनेके लिए भेज दिया गया। पूछनेसे मालूम हुआ कि एक पुरुपको पुरुप-व्यभिचारके कारण गरमीका रोग हुआ और फिर इससे उसका खून खराब हो गया। इसी समय स्त्रीका देहान्त हो जानेके कारण उसने दूसरा विवाह किया और इस दूसरी स्त्रीसे पूर्वोक्त लडका पैदा हुआ। विवाहके ६ वर्ष बाद दूसरी स्त्रीको भी कोढ़ हो गया और इस लडकेकी बारी आई। हा भगवन् ! यह कैसा अन्याय है ! ऐसे लोगोंको क्या हक है कि ये किसी अबलाको इस प्रकार कष्ट दें ? मिरजापुरके एक प्रसिद्ध साहुको गलित कोढ़ है, पर विवाहित हैं। उनके पुत्रको भी यह पैतृक सम्पत्ति मिली है, पर विवाह करनेसे वह भी बाज न आया। उसके छोटेसे छ महीनेके बच्चेका खून ऐसा खराब हुआ कि बेचारेको उस छोटी अवस्थाहीमें एक ही दिन १९ नश्तर भिन्न भिन्न स्थानोंमें लगवाने पड़े ! इसका सारा ही शरीर फोडा बन गया था। साहुजीका छोटा लड़का कालेजमें पढता है। ईश्वर न करे कि यह रोग उसे भी हो, पर स्वास्थ्य उसका भी अत्यन्त बुरा है। विवाह उसका भी बड़ी धूमधामसे कर दिया गया है। बारातमें मैं भी गया था। नाच रङ्ग सभी चीजें थीं, और क्यों न हों ? दहेज भी तो अच्छा मिला था।

हाय ! हाय ! उस अबलाकी दीन दशा पर ध्यान दीजिए, जिसे ऐसे घरोंमें ऐसे रोगियोंके साथ आयु पर्यन्त रहना है। निर्दोप, असहाय अबलाको

---

* ८०,००० कोढियोंकी सहायता भारतमें क्रिश्चियन मिशनरीज करती हैं।

अब ऐसे लोगोंकी सेवा शुश्रूषा करनी है, जिसे हम आप देख तक नहीं सकते; ऐसे वस्त्र धोने हैं, जिनके छूनेमे घृणा होती है, ऐसी जूठी थालीमे खाना है, जिनके हाथका पान भी हम और आप न खायेंगे, और सबके ऊपर भय है कि शायद इस अभागिनीको भी गलगलकर मरना पड़े। आज उँगली कटी, कल अँगूठा गायब, परसों नाक नदारद !–एक एक इंच मास कटकटकर गिरनेके पश्चात् कहीं मृत्यु होगी।

(ञ)–दहेजकी कुप्रथा।

अन्य देशोंमें स्त्री-रत्न पानेके लिए युवक क्या क्या नहीं करते ! कुमारियाँ किस इज्जतसे रक्खी जाती हैं ! पुरुष उनका कैसा आदर और सत्कार करते हैं ! यदि किसी दरिद्र घरकी कुमारी, गुण और सौन्दर्य्यसे पूर्ण हो तो बड़ेसे बड़े लोग उसका पैर चूमनेको तैयार रहते है। उस कुमारी पर प्रभाव डालनेके लिए अनेक कुमार यत्न करते हैं। खतरनाक खेल तमाशोंमें जान लड़ाकर विजयी बनना चाहते हैं, भयंकर युद्धमें घोर संग्राम करके मर जाते है, या नाम पैदा करते हैं।—क्यों ? इसलिए कि वह प्रेमिका एक फूलोंका हार उनके गलेमें डाल दे, इसलिए कि वीरता पर प्रसन्न होकर कदाचित् उनको गले लगाना स्वीकार कर ले–उनसे विवाह कर ले।

पर भारतमें इन बातोंकी जगह लाटरी (Lottery) से काम लिया जाता है। घरके पुरोहित, गुरु घण्टालजी और चालाक हज्जाम मिल कर कन्याओंके जन्मका फैसला करते हैं। ज्योतिषीजी विश्वास दिलाते हैं कि इस कन्याको सुख उसी घर मिलेगा जहाँसे उनको कमीशन (पचातर यानी दहेजका पाँचवाँ भाग) के अलावा कुछ और वसूल हो सके। बस फिर क्या है, कुमारियाँ वहीं झोक दी जाती हैं। वरकी योग्यतासे कुछ मतलब नहीं, आगेका सुख या दुःख कन्याको उसके भाग्यसे प्राप्त होगा।

यदि कुमारीके पिताके पास धनकी कमी नहीं है और ज्योतिषीजीने कुण्डलियोकी चिट्ठी डाल कर किसी ऐसे वरसे विधि मिलाई कि जिसे नीलाममें अधिक धन देकर खरीदा जा सके तो खैर, कुमारी कदाचित् अच्छे घर जा रहे, नहीं तो जिस घरमें, जिस वरसे कुण्डलीकी विधि मिल जायगी कुमारीको वहीं जाना होगा—वर चाहे लूला हो, लँगड़ा हो, अन्धा अपाहिज या कोढ़ी हो, कुमारी उससे व्याह दी जायगी।

लड़कोंके नीलाम (दहेज) करनेकी ऐसी बुरी चाल समाजमें घुस पड़ी है कि जिससे निर्धन अथवा सामान्य आमदनीके पुरुषोंको अत्यन्त क्लेश उठाना पड़ता है।

दुःख अमीर और गरीब दोनोंहीको होता है। क्योंकि जो जिस दर्जेका धनी है वह वैसे ही धनी घरमें बेटी दिया चाहता है और उससे उसी हिसाबसे अधिक दहेज मॉगा जाता है। फल यह होता है कि कुमारियॉ सदैव अपने मुकाबले निर्धन घरोंमें ब्याही जाती हैं। इसका दु:ख तो यहीं खतम हो जाता है कि अपने रुतबे और मरतबेसे कमवालेको बेटी देना पड़ा, पर मुश्किल उन गरीबोंकी है, जिन्हें लड़कियॉ हैं पर धन या जायदाद नहीं है। उनके पास इसका भी ठिकाना नही कि किसी दरिद्र तकको लड़की देकर गला छुड़ावें। जहॉ जाते हैं वहीं रुपयेकी पुकार सुनते हैं। पहला प्रश्न यही होता है कि " कितना दहेज दोगे ? " एक तो यह चिन्ता कि लडकी दरिद्र घरमे जाती है और दूसरे उस घरमें झोंकनेके लिए भी दहेज चाहिए, कैसे काम चले ? यह उन्हें चिताकी अग्निके समान भस्म कर देती है। लडकी पैदा होनेके साथ ही यह चिन्ता भी हृदयमे समा जाती है और उसी समयसे पेट काटकाटकर धन एकत्रित करना शुरू किया जाता है+और इसमे परिवार भरके लोगोंको क्षयकी बीमारी होने लगती है। बहुतसे लोग लाचार होकर विषद्वारा अपने कष्ट और सामाजिक अनादरका अंत कर देते हैं। बहुतसी कुमारियॉ छिपा कर मार डाली जाती हैं और उनकी मृत्युका कारण कोई रोग बता दिया जाता है।

ऐसी घटनायें अनेक हो चुकी हैं जिनमें परिवारके परिवारने विष खाकर प्राण दे दिये हैं। बंगालकी साक्षात् देवी स्नेहलताके आत्मयज्ञका वृत्तात पढ़कर कलेजा हिल जाता है:—

+ 'एक राजपूत सरदार १६ लाख रुपया दहेज देनेके लिए मजबूर किया गया, दूसरा १० लाख और तीसरा इससे भी ज्यादा—।' शिवर साहब।

'मुन्शी प्यारेलालके हृदय पर इस अमानुषी, अत्याचारी रीतिका—जबर्दस्ती दहेज वसूल करनेके रिवाजका—बडा प्रभाव पडा और उन्होंने ३०० स्थानो पर सभाकरके इस रस्मको उठानेका प्रयत्न किया'—M. T P. Page 172.

बाबू हरेन्द्रकुमार मुकर्जी कलकत्तेके एक सामान्य सज्जन हैं । आप वहाँ दलाली करते हैं। आपकी पुत्री स्नेहलता, प्रेमकी मूर्ति और साक्षात् देवी थी। उत्तम शिक्षा और सदुपदेशों द्वारा उसके हृदयमें बड़े ऊँचे भाव उत्पन्न हो गये थे। लता १५ वर्षकी हो गई। हरेन्द्र बाबूको उसके विवाहकी बड़ी चिन्ता थी, विवाहके लिए उनसे २००० रु० दहेज माँगा जाता था। इतना धन देनेकी उनकी शक्ति नहीं थी, पर साथ ही किसी अयोग्य पात्रको वे स्नेहलताको दान नहीं दिया चाहते थे कि कम खर्चसे गला छूट जाय। अतः उन्होंने अपने एक मात्र पैतृक धन मकानको बेच कर स्नेहलताका विवाह करना निश्चय किया।

स्नेहलता बुद्धिमती लड़की थी। उसमें विचारशक्ति आगई थी और बड़े ऊँचे ख्याल पैदा हो गये थे। स्वभावत. अपने सुखके लिए पिता तथा अन्य कुटुम्बियोंको दुःखमें डालना उसे रुचिकर न हुआ। उसने अपने आत्मयज्ञसे भारतके इस कलंकित पापको किसी अंशमें भस्म करना ठान लिया। वह घरके काम-काजसे छुट्टी पाकर दोपहरको श्रृंगार करके घरके कोठे पर चढ़ गई और उसने धोतीको तेलसे तर करके उसमें आग लगा ली। सामने एक मंदिर था। वहाँके पुजारीने एक बालिकाको प्रसन्नचित्त जलते देख कर शोर मचाया। लोगोंने दौड़ कर आग बुझाई और वे उसे अस्पताल ले गये। पर उसी दिन सूर्यास्त होते होते उसकी पवित्र आत्मा भी अस्त हो गई।

मृत्युके पहले वह अपने पिताके नाम एक पत्र लिख चुकी थी। उसमें उसके स्नेहमय विचार प्रकाशमान हैं। यह पत्र भारतके १८–१९ फरवरी १९१४ के कुछ समाचारपत्रोंमें छपा है। उसका अनुवाद यह है —

" पूज्य पिताजी,

" मेरे विवाहके लिए आप अपने पूर्वपुरुषोंकी कमाईका घर न बेच दीजिए। इस घरमें बाहरके लोग आकर रहें यह मैं न देख सकूँगी। अब आपको घर रेहन रखनेकी आवश्यकता न पड़ेगी। कल पौ फटनेके पहले ही आपकी अभागी लड़की परलोक चली जायगी।

" आपने और माँने प्रेमपूर्ण जीवनसे इस स्नेहलताको बढ़ाया, अपने हृदयमें फैलनेका स्थान दिया। राजभवनमें रहनेवाली राजकुमारियोंसे भी बढ़कर मैं यहाँ सुखी थी। क्या मैं इस प्रेमका बदला इसी तरह देती कि आप

और मेरे भाई वहिन घरसे निकाल दिये जायँ ? आप दरिद्रता और दीनतासे जीवन व्यतीत करें ?

" पिताजी, सबेरे शहर भर घूमकर जब आप दोपहरको घर आये और निराश होकर बोले कि ' काम बिगड़ गया ! ' आपका उस समयका चेहरा अब भी मेरी आँखोंके सामने है। आपके वे शब्द अब भी मेरे कानोंमे गूँज रहे है। मेरा विवाह कैसे हो, इस चिन्तासे आपकी छाती जल रही है। १५ वे वर्ष तक मेरा विवाह नही हुआ। लोग आपकी निन्दा करते हैं। इस विषयमें आपने सिर ऊँचा करनेका बहुत प्रयत्न किया है।

" सचमुच मुझे, विवाहका हौसला क्या हो सकता है ? आपकी चिन्ता दूर हो इस लिए मैं विवाह करना चाहती थी, परंतु नहीं, मेरा विवाह होना असम्भव है।

" उस दिन बर्दवानकी बाढ़में बहुतसे उदार और लिखे पढ़े लोगोने अनाथोंकी सहायता की, कई लोगोंने विदेशी वस्तुओंका त्याग किया, कितने ही युवकोंने दक्षिण आफ्रिकावासियोंके लिए दर दर भीख माँगकर रुपया इकट्ठा किया। ईश्वर इन दयालु और उदार पुरुषोंकी सदा रक्षा करे। परन्तु, इन युवकोंका ध्यान अपने देशकी दुर्दशा पर क्यों नहीं जाता ?

" रातको जगन्माताने दर्शन देकर मुझे अपनी ओर बुलाया है। आप लोगोंको मेरे विवाहके कारण दुःख न भोगना पड़े, इसलिए मैंने माँ भवानीके पास जानेका निश्चय किया है।

" संसारयात्रा समाप्त करनेके लिए अग्नि, जल अथवा विष इनमेंसे किस वस्तुकी शरण लेनी चाहिए, इसपर मैंने कुछ देर तक विचार किया, अन्तमें अग्निहीकी शरण लेना निश्चय किया। अब मैं अपने शरीरमे आग लगा दूँगी, जिससे देशके सब लोगोंके अन्त.करण पिघल जायँ और उससे दयाका स्रोत वह निकले, यही ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है।

" मेरे जाने पर आप लोग अश्रुपात करेंगे, परंतु घर न बिकेगा। उसमें आप और मेरे भाई आदि रह सकेंगे। पिताजी, अब अधिक लिख नहीं सकती। आत्मयज्ञका समय निकट आ रहा है। अब मैं उस महान् निद्रामें निमग्न हूँगी जिससे फिर जागना न होगा। माँ दुर्गाके पास अब मैं आपकी और माँकी बाट जोहती हुई जा बैठती हूँ। —आपकी अभागिनी कन्या

स्नेहलता। "

(ट)—हम अपने भाग्यके आप मालिक हैं।

' Nature's laws are not commands, they are statements of inviolable sequences. We are not helpless in the hands of Nature. We are helpless so long as we are ignorant, and when we understand them, they become our slaves ! By knowledge we can master them, change or turn them to our own purpose '

Annie Besant.

' प्रकृतिके नियम कोई आज्ञायें नही हैं वरन् अनुल्लघनीय परिणाम दिखानेवाली बातें हैं। हम असहाय होकर सृष्टिनियमोंके अधीन नहीं हैं। केवल जबतक हमे उन नियमोंका भलीभाँति ज्ञान नहीं होता, तभीतक हम असहाय स्थितिमें रहते हैं। एक बार उनको अच्छी तरह समझ लेने पर वे हमारे दास बन जाते हैं। पूर्ण जानकारी होने पर हम उनपर अपना अधिकार जमा लेते हैं। इतना ही नहीं हम उनको बदल सकते हैं, उन्हें उलट-पलट कर अपना हित साधनेमें उपयोगी बना सकते हैं। '

—एनी बीसेण्ट।

भारतमें तीन अन्य आश्रमोंसे गृहस्थाश्रम अधिक उपयोगी है। इस आश्रमसे अन्य तीन आश्रमोंकी सहायता हुआ करती है। और सच भी यही है कि गृहस्थ ही अन्य तीन आश्रमावालोंका जीवनाधार है। वही इन तीनोको पालन करता है। अतः गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना कोई हँसी खेल नहीं है। लोग बहुत सोच विचार कर इसमें प्रवेश करते थे। * किन्तु आजकल तो इस आश्रममें लोग आँख मूँदकर प्रवेश करते हैं। भारतमें विवाहकी ऐसी दुर्गति, ऐसी भरमार, और ऐसी बुरी चाल हो गई है कि ' कसे बाशद'– चाहे जो हो, विवाह अवश्य होना चाहिए—लूला हो, लँगड़ा हो, अपाहिज हो, वृद्ध हो, दरिद्र हो, कोढ़ी या कलकी हो, विवाह अवश्य करे। और किससे ? जिससे कृत्रिम कुण्डलीकी विधि मिल जाय, जिससे पुरोहितजीकी कमीशनकी लालच कुछ अधिक द्रव्य कमा सकती हो, जिस अभागिनीके पिता अधिक धन दहेजमें देनेमें असमर्थ हो। चाहे वह राजकुमारी हो, चाहे परम सुन्दरी हो, चाहे साक्षात् देवी ही हो, चाहे उसके गुण, कर्म और स्वभाव गृहलक्ष्मी

---

* स सन्धार्य्यं प्रयत्नेन स्वर्गमक्षेयमिच्छता।
सुखञ्चेहेच्छता नित्य योऽधार्य्यो दुर्बलेन्द्रियैः ।

बनने या बनाये जानेके हों; पर इससे क्या मतलब? गुरुघटालजीने तो ज्योतिष द्वारा विचार करके निश्चय कर दिया है कि विधाताने, उस असहाय अनाथा अबलाका अमुक क्षयरोगग्रसित जर्जर पुरुषकी पत्नी होना लिख रक्खा है। उसी पतिके साथ पत्नीको सुख और आनन्द प्राप्त होगा!

आज विवाह हुआ, कल पुत्री विधवा होकर घर बैठी। बस उसके लि संसारके सारे सुख लोप हो गये। जिस प्रिय पुत्रीको अभी कल तक लो सौभाग्यवती कहते थे आज वह अभागिनी डाइन कही जाने लगी। लो उलटा उसीको कुवाच्य और कटु वचनोंसे जलाते हैं। लड़केकी नानी धिक्का रती है कि इस बहूने ही मेरे नातीको खा डाला। जिस दिनसे घरमें आ उसी दिनसे भैयाकी बीमारी बढ़ गई, यद्यपि वह बढ़ी कुपथ्यसे और विवा हके दिनोंमें ठीक आराम न मिलनेसे। पुरोहितजी भी, जो वैद्यक भी भलीभाँति जानते हैं, और जिन्हें विवाहके पहले ही लड़केके भयंकर असाध्य रोगका हाल मालूम था और जो यह जानते थे कि उसका बचना कठिन है उसी अनाथाके भाग्यपर दोष लगाते हैं। कहते हैं कि–"यदि इसके कर्म अच्छे होते–विधाताने इसको सिन्दूर लगाना लिखा होता, तो यह यदि किसी मुर्देको भी पति कहती तो वह जी जाता। अगर, इसके भाग्यमें आराम बदा होता तो बाबाजीकी भभूत और भवानीजीका चरणामृत ही उसके लिए अमृत हो जाता। ऐसी उत्तमोत्तम रसादि मात्रायें अमूल्य दवाइयाँ इस तरह कभी निष्फल न जातीं। लालाजीके घरमें यह पुत्री नहीं राक्षसी पैदा हुई है।"

धिक्कार है ऐसे विचारों पर। करें तो पैशाचिक कार्य आप और दोष लगायें दूसरों पर। क्या डाक्टर या किसी अच्छे वैद्य द्वारा लड़केकी परीक्षा करा कर उसकी शारीरिक अवस्थाका या उसकी आयुका निर्णय करा लेना असम्भव था? यदि भाग्य ही पर मरना जीना निर्भर होता तो आज जिन्दगीका बीमा करनेवाली सारी ही कम्पनियोंका दीवाला निकल जाता और इनका, इस डाक्टरी जाँचमें द्रव्य खर्च करना निष्फल ही होता।

लोग अपनी भूल पर ध्यान न देकर, अपने कियेको और अपने आपको दोष न देकर, व्यर्थ ही भाग्यकी, पूर्वजन्मके संस्कारकी, और विधाताकी निन्दा किया करते हैं।

इस बातमें जैसा अन्धेर भारतमें है वैसा संसारके किसी भी भागमें नहीं है।
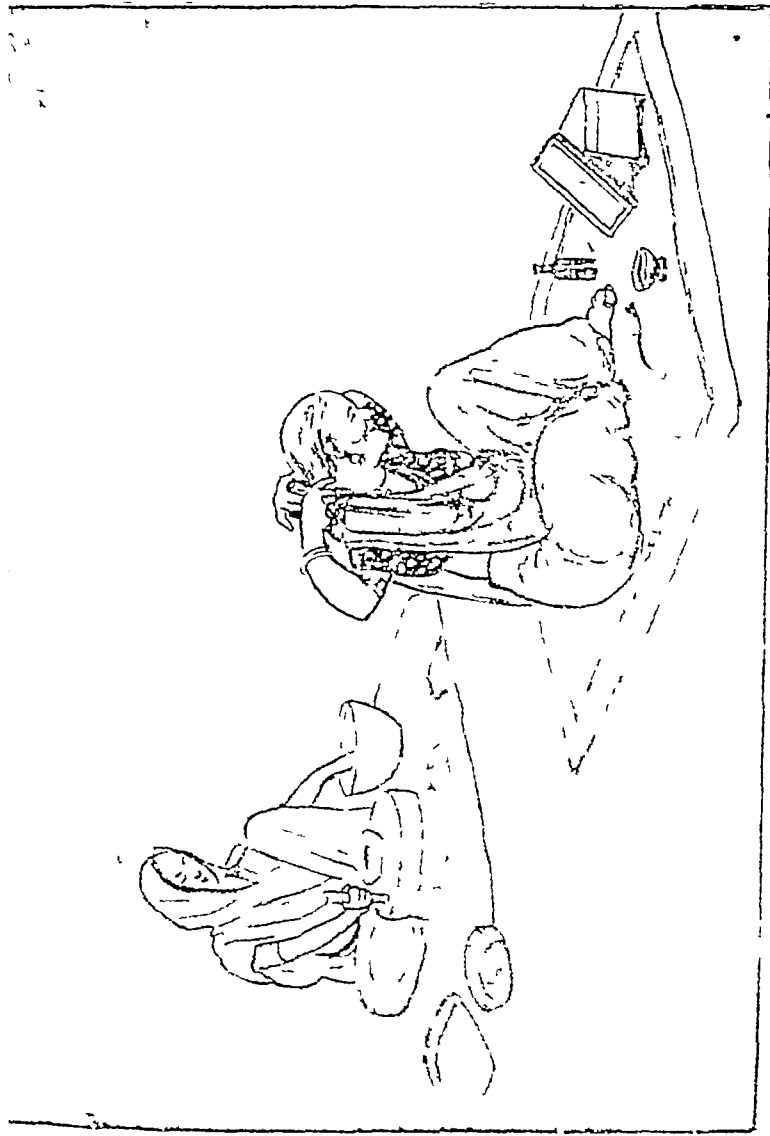
सधवा सास और विधवा बहू।

(देशदर्शन पृ० १६३)

विधवाश्रमकी बालविधवायें।
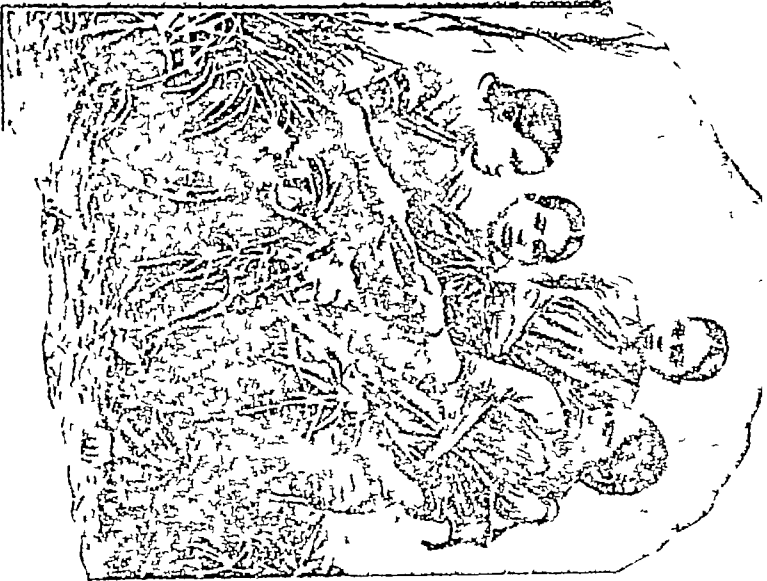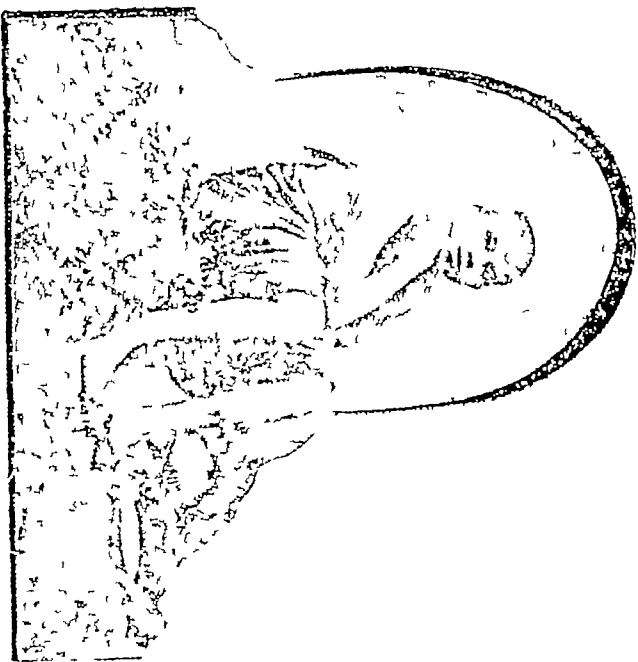
(देशदर्शन पृ० १६४)

मुण्डितमस्तका विधवा।

(देशदर्शन पृ० १६४)

टिकट नहीं खरीदा, चलती गाड़ीमें पकड़े गये, सजा मिली--यह भी किसमतमें लिखा था। 'किसमतमें लिखा था' इस उत्तरसे अधिक नीच उत्तर नहीं हो सकता। यह केवल कायर, डरपोक और मूर्खोंका उत्तर है।

पूर्वजन्मके कर्मोंके फलसे क्या मतलब ? यदि कोई खून करे और कह दे कि 'जो शख्स मर गया उसकी किसमतमें मेरे हाथसे मरना लिखा था, इसमें मेरा क्या दोष ?' बस, चलिए छुट्टी हुई। इस एक कहने पर दुनियाकी सब बातें खतम हो जाती हैं।

विचार कीजिए, आपने ही अपनी पुत्रीको पैदा किया। आपने ही उसे पालपोस कर बड़ा किया। वह कोमल लताकी तरह आपके हृदयसे लगी रही। आपहीने बचपनमें किसी अयोग्य पतिसे उसका विवाह कर दिया। इस लिए कि ऐसा न करनेसे अथवा इसके विरुद्ध करनेसे समाजमें आपकी हँसी होती, कुछ लोग आपसे सम्बन्ध छोड़ देते और ताने मारते। अतएव आपने अपनी प्रिय पुत्रीका भला न देखकर स्वार्थवश उसे अयोग्य पतिसे ब्याह दिया। कुछ ही दिनोंमें वह विधवा हो गई। अब वह अच्छे कपड़े नहीं पहिन सकती, शादियोंमें शरीक नहीं हो सकती। जहाँ और स्त्रियाँ खिलखिला कर हँस रही हैं, नाच रंगमें आनन्द कर रही हैं, प्यारी पुत्री उसी घरके एक कोनेमें बैठ कर रो रही है। वह स्वयं रोना नहीं चाहती, उसकी आँखोंमें जो आँसू आ रहे हैं वे पतिके प्रेम या विरहसे नहीं आ रहे हैं, पति देवताका तो उसे दर्शन ही नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु उसके मनमें रह-रहकर अन्य लड़कियोंके साथ मिलकर, दिल खोलकर हसनेकी और चिड़ियोंकी तरह इधर उधर फुदुकनेकी इच्छा होती है। पर ऐसा करनेसे आप--हाँ, हाँ, आप ही, उसे रोकते हैं कि लोग आप पर हँसेंगे। आप ही लोग उसे रुलाते हैं, और जिन्दगी भर रुलावेंगे। हाय ! हाय ! हमारे घरमें, हम हिन्दुओंके यहाँ, नित्य एक न एक तेहवार आया ही करता है। हमारी स्त्री और हमारी माँ तक पैरोंमें महावर लगावें, अच्छे अच्छे कपड़े पहने और हमारी पुत्री देख देख तरसा करे। उसे जन्म भर इसी तरह रहना है। वह कभी पति देवताका दर्शन न कर पायेगी, वह कभी पुत्रवती होकर पुत्रमुखका चुम्बन न कर सकेगी। उफ ! बाल्यावस्थासे वृद्धावस्था तक उसे इसी दीन अवस्थामें रहना होगा। प्रतिदिन रोना, धिक्कार, तिरस्कार, और अपमानित किया जाना उसके भाग्यमें लिखा है और साथ ही साथ उसे कामदेवके

कठिन बाणोंको सहकर युवावस्थामें क्या, जीवनपर्य्यन्त पवित्र भावसे रहना इस लिए नहीं कि उसे इस तरह पर रहना पसन्द है, बल्कि इस लिए आप उसे उस तरह पर रहनेके लिए मजबूर करते हैं। आप उस पर जबर्द करते हैं, अत्याचार करते हैं।

बतलाइए तो सही, इन सब घटनाओंमें पूर्वजन्मके संस्कारका दोष है आपका ? और अब भी उस पुत्रीकी दशा बदल देना आपके हाथोंमें है भाग्यके ? उसके विधाता, उसकी किसमतमें लिखनेवाले, आप थे, और या ब्रह्मा ?

यदि आपको उसकी घोर विपत्तिमें सहानुभूति प्रकट करनी है, उस दुःख और कष्ट काटना मंजूर है तो उसका फिरसे विवाह करना निश्चय कीजि और देखिए कि उसके पूर्व जन्मके संस्कार भाग जाते हैं और आपको स्वत तासे काम करनेका अवसर मिल जाता है। आपके घर ८–९ वर्षकी लड़ि योंका विवाह हो जानेकी कुरीति है। आप बाल्यावस्थामें विवाह न करें १५–१६ वर्षकी हो जाने पर किसी योग्य हृष्टपुष्ट विद्वानके साथ उसका विवा करें, फिर देख लें कि कुण्डली, गुरुघण्टाल, और किसमत ठीक है या आप कर्म, और ऐसा करनेमें आपकी पुत्रीके अगले जन्मके कर्म रोकते हैं या स्व आपकी कदराई, आपका डर, आपकी खुदगर्जी ? आप ऐसा करनेसे दूर भाग हैं। इस लिए नही कि पुत्रीके कर्म आपको रोकते हैं, बल्कि इसलिए कि आ अपने संबन्धियोंसे, अपनी जातिवालोसे डरते हैं कि वे लोग आप पर हँसेंगे कुछ लोग शायद आपसे सम्बन्ध न रक्खेंगे, आपकी स्त्रीकी हँसी उड़ावेंगे बस, इसलिए आप कुल धब्बा पुत्रीके भाग्य पर लगा देना ठीक समझते हैं। बस एक बात, वही बेसिर पैरकी बात, 'जो विधाताने लिखा है वह हुए बिना न रहेगा।' यह कह देनेसे सारा किस्सा खतम होजाता है। सब झंझट अपने सिरसे दूर हो जाती है।

कल्पना कीजिए कि आप रातको ऊपर छतसे नीचे आँगनमें गिर गये। आपकी पुत्री देख रही है कि आपके नाकसे खून निकल रहा है और आपको चोटके कारण बड़ा कष्ट हो रहा है। पर यदि वह यह कहकर बैठ रहे कि—पिताजीके भाग्यमें गिरना और चोट खाना बदा था, यह उनके पूर्वजन्मके संस्कार हैं, अस्तु, पड़े रहने दो, जो भोगना है भोग लेने दो—तो बताइए तो सही

कि आपको यह बात कितनी अच्छी लगेगी ? यह कष्ट तो आपका एक आध दिनमें दूर हो जायगा, पर पुत्रीको जीवनपर्य्यन्तके लिए किस्मतके हीलेसे दुःख भोगनेके लिए छोड़ना कितना बुरा है—कैसी नीचता है, कैसी नामर्दी है ! दूसरे ही दिन सुबह आप लोहार बुलाकर उस छत पर जंगला (Railings) लगवा देते हैं कि कदाचित् फिर न गिर जायँ और जंगला लगा देने पर फिर कभी नहीं गिरते, आपके पूर्वजन्मका पाप फिर कभी नहीं उदय होता । लेकिन पुत्रियाँ रोज गिरती हैं, और आप बड़ी बड़ी दोनों आँखें खोले देखा करते हैं, पर ऐसा प्रबंध नहीं करते कि उनका गिरना बंद हो । उनका कष्ट तब ही दूर हो सकता है जब विवाह-रूपी खुली छत पर योग्य विवाहकी जाली लगा दी जाय ।

'कर्म' है क्या ? प्रकृतिका अचल नियम । जैसे पृथ्वीमें आकर्षण शक्ति है । इस शक्तिका काम है कि सब चीजोंको अपनी ओर खींचे, लेकिन मनुष्यको फिर भी अधिकार है—उसमें सामर्थ्य है कि वह अपने सुभीतेके मुताबिक उस शक्तिको अपने अधीन रक्खे । हम सीढ़ीसे, बिजलीके यन्त्र (Electric lift) से, हवाई जहाजसे ऊपर उठ सकते हैं, और इस आकर्षण शक्तिको दबा सकते हैं । हमारी स्वतन्त्र बुद्धिको कोई परतन्त्र नहीं कर सकता । पूर्वजन्मके कर्मके फल, हमें इस जन्ममें परतन्त्र नहीं कर सकते, वे हमारे वर्तमान कालकी स्वतन्त्रतामें बाधा नहीं डाल सकते । प्रकृतिने राजा, प्रजा-धनी, दरिद्र, स्त्री, पुरुप, मनुष्यमात्रको स्वतन्त्र बुद्धि प्रदान की है । इस शक्तिसे हम पूर्वजन्मके कर्मोंके फलको बदल सकते हैं ।

पूर्वजन्मका संस्कार, यानी कुछ दिन पहलेका किया हुआ कर्म एक घडी पहले—एक दिन पहले—एक वर्ष पहले, या एक जन्म पहले, बात एक ही है । अच्छा, आजसे एक वर्ष पहले दो युवकोंने अपना बल बढ़ानेके लिए संखिया और पारेका भस्म कुछ दिनों तक सेवन किया । आज दोनोंके शरीर रोग-ग्रसित हैं, सारे शरीरमें फोड़े फुसियाँ निकल आई हैं । एक, हाथ पर हाथ रखकर किसमत ठोक कर बैठा रो रहा है कि यह मेरे कर्मोंका फल है, मुझे भोगना ही पड़ेगा और दूसरा, अच्छे डाक्टर या वैद्यसे सलाह लेकर दवा करके अच्छा हो जाता है ।

इसी तरह जब तक हम सृष्टि-नियमोंको नहीं जानते, वे हम पर हुकूमत करते हैं, पर जब हम उन्हें जान जाते हैं, तब वे हमारी गुलामी करने लगते

या छोड़ देना, बिलकुल डाकूके हाथोंमें था। यदि वह ऐसा न करना चाहता तो ब्रह्मा भी यदि चाहते कि वह खून करे, तो उनका चाहना निष्फल होता।

प्रकृतिने—सृष्टिकर्ताने, छोटेसे छोटे स्त्री-पुरुषको—मनुष्य मात्रको, निर्मल और स्वतंत्र बुद्धि प्रदान की है। किसी ऐसे व्यक्तिको किसी तरहका कार्य करने या न करनेका पूर्ण अधिकार और स्वतंत्रता है। यदि वह चाहे करे और न चाहे तो न करे। कार्य चाहे क्षुद्र हो और चाहे महान्, इसमें विधाता भी कुछ नहीं कर सकता।

हम देखते हैं कि इस कर्म-जगतमें पुरुषार्थहीसे सब कुछ प्राप्त होता है। आलस्यसे राम राम पुकारनेवालेकी ईश्वर भी सहायता नहीं करते। देशोद्धारक छत्रपति शिवाजीका जीवनचरित पढिए। उन्होंने कैसे कुसमयमें, कैसी कैसी कठिनाइयोंका सामना करके देश और धर्मका पुनरुद्धार किया था। बढ़ईके पुत्र ईसाने सारे संसारको उलट पलट दिया। नेपोलियन बोनापार्टने एक सामान्य गड़रियेके घर पैदा होकर अपने बाहुबल द्वारा एक बार सारे यूरोपको हिला दिया। धुनियोंके लड़के जगत्प्रसिद्ध कविवर शेक्सपियरने अपने कर्महीसे अटल कीर्ति कमाई। इन्हें छोड़ हमारे आदर्श श्रीरामचन्द्र या कृष्णचन्द्र अथवा भगवान् बुद्धकी जीवनी ही पढ़कर देखिए कि इनकी कीर्ति, इनका यश, इनका नाम जगतमें क्यों प्रसिद्ध है? इस लिए कि वे राजकुमार थे, और राजशय्या पर महलोंमें भाग्य द्वारा निवास करते थे, या इसलिए कि उन्होंने कर्म अत्युत्तम किये? स्मरण रहे कि जिन्हें हम स्वयं भगवानका अवतार समझते हैं उन्हें भी सामान्य मनुष्योंकी तरह कष्ट सहना पड़ा था। उन्हें भी अपनी विचारशक्तिसे वैसे ही काम लेना पड़ा था, जैसे आज हमें लेना है।

जरा सोचिए तो सही कि राम, आपके सामने खड़े सोच रहे हैं कि यदि माताजी (कैकयी) की आज्ञा पालन करते हैं तो पिताजी प्राणत्याग करते हैं—वन जायँ कि न जायँ? महाभारत करानेवाले, अर्जुनके सारथी और गीताके उपदेशक भगवान् कृष्णको अपने सगे मामा, कंसको मारना है,—मारें या न मारें? भयंकर युद्ध करना है, भाईको भाईसे, चचाको भतीजेसे, गुरुको शिष्यके हाथों मरवाना है, बालब्रह्मचारी भीष्मपितामहको उन्हींके पौत्र, प्रतापी अर्जुनसे धोखेसे मरवाना है, धर्मराज युधिष्ठिरसे गुरुकी मृत्युके हेतु झूठ बुलवाना है, और यह सब कुछ कृष्णहीके उपदेशसे होना सम्भव है,—युद्धका उपदेश

करें या न करें? राजकुमार गौतम, जिसे स्वयं कभी किसी तरहकी तकलीफ नहीं उठानी पड़ी थी, जो बचपनहीसे ऐशोअशरतके साथ पाला गया था और जिससे दुनियाँकी सब तकलीफें छिपाई गई थीं संयोगसे कई दुःखी व्यक्तियोंको देख कर संसारके उपकार और उद्धारकी चिन्ता कर रहा है। इस महान् कार्यके लिए, उस समयकी गिरी जातियोंको उठानेके लिए, भाग्यका मिथ्या पाखण्ड तोड़ कर सबको कर्मक्षेत्रमें लानेके लिए, आनन्दमय महलोंको, कोमल राजशय्याको, मनोमोहनी सुन्दरी प्यारी रानीको और प्राणोंसे भी अधिक प्यारे एक मात्र पुत्रको त्यागना है—कुछ न कहकर सबको सोता छोड़कर भाग कर जॅगलोकी खाक छानना है। वे जाते जाते ठमक कर घूम पड़ते हैं और नींदमें भी मुसकुराते हुए बच्चेको चूमा चाहते हैं—उफ! अब जायँ या न जायँ? पक्षपातरहित विचार करनेसे प्रकट होता है कि ये देवतासे मनुष्य नहीं हुए, बल्कि इन्होंने मनुष्यसे देवताके पदको प्राप्त किया है।

भाग्यके नाम सिर पर हाथ देकर रोनेसे नहीं, बल्कि धीरता धारण करके शत्रुका सामना करनेसे उसका नाश किया जा सकता है, अन्यथा प्रारब्धके नाम बैठे रहनेसे अपना ही विनाश हो जाता है। किसी भी मुसीबत या कष्टका मुकाबला करनेसे शरीरकी सब शक्तियाँ बढ़ती हैं और बैठे रहनेसे न केवल हार होती है बल्कि शक्तियाँ भी प्रायः लोप हो जाती हैं।

कसरत करनेसे शरीर क्यों पुष्ट होता है? इसलिए कि शरीरके अनेक अंगोंको किसी न किसी तरहके कष्टका मुकाबला करना पड़ता है। और उसका फल यह होता है कि नित्यकी इस मुठभेड़मे शरीर पुष्ट होता है और बल बढ़ता है। किसमें कितना बल है, किसमें कितना पुरुषार्थ है, इसकी जाँच, कार्यके करनेहीसे हो सकती है। कौन कह सकता था कि राम-मूर्ति या सैण्डोके शरीरमें इतना बल होगा कि उनके सीने पर हाथी चढ़ाया जा सकेगा। यदि बचपनमें वे सोच लेते कि भाग्यमें बलवान् होना लिखा होगा तो हो ही जायँगे, अथवा हनुमानजीको सवा पाव मिठाईकी रिश्वत देकर बलवान् हो जायँगे और इधर नित्य प्रति कठिन परिश्रम न करते, तो क्या उनका बलवान् होना सम्भव था?

पाठकगण, आप चाहे स्त्री हो या पुरुष, अविवाहित हो या विवाहित, धनाढ्य हों या धनहीन, आप अपना, अपनी सतानका, समाजका और साथ

ही साथ देशका सुधार कर सकते हैं। वोट लेनेकी आवश्यकता नहीं है, पदाधिकारी बननेकी आवश्यकता नहीं है और धनकी भी प्रायः जरूरत नहीं है। इसमें केवल पुरुषार्थकी आवश्यकता है।

यदि आप दृढ़ हो जायँ कि हम अमुक कार्य अवश्य करेंगे तो भाग्य कभी भी आपका हाथ न थाम सकेगा। हाँ, कठिनाइयाँ अवश्य मिलेंगी। पदपद पर आपको उनका मुकाबला करना पड़ेगा। पर अंतमें विजय आपकी ही होगी।

मानवोंकी जीवनी है यह हमें बतला रहीं,
अनुसरण कर मार्ग जिनका उच्च हो सकते सभी।
कालरूपी रेतमें पद्चिह्न जो तजि जायँगे,
मानकर आदर्श उनका ख्याति नर जग पायँगे॥

(ठ)–भारतमें विवाहित जनोंकी, तथा जन्म और मृत्यु-संख्याकी अत्यन्त अधिकता।

इँग्लैण्डमें एक अर्सेसे १५ से ४५ वर्षकी विवाहित स्त्रियोंकी संख्या फी सैकड़ा ४७ है। अर्थात् १०० में कुल ४७ स्त्रियाँ विवाहिता हैं। भारतमें १५ से नीचेवाली विवाहिता स्त्रियोंको छोड़कर, जिनकी संख्या कम नहीं है, और केवल उन्हींकी संख्या लेने पर जो १५ से ४० वर्षकी हैं, मालूम होता है कि फी सैकड़ा ८२·७ अर्थात् १०० में ८२ से भी अधिक स्त्रियाँ विवाहिता हैं*। अर्थात् जर्मनीकी सवा तीन करोड़ स्त्रियोंमेंसे कुल ९८ लाख विवाहिता हैं और भारतकी १४ करोड़मेंसे ७ करोड़ विवाहिता और ढाई करोड़ विधवा हैं ×। और सुनिए, भारतमें जन्मसंख्या संसारके सब देशोंसे अधिक है। (आगे छपा हुआ कोष्टक देखिए।)

इस अत्यन्त अधिक जन्मसंख्याका कारण यह नहीं है कि भारतकी स्त्रियाँ अन्य देशोकी स्त्रियोंसे अधिक बच्चा देनेवाली होती है। इँग्लैण्डमें १००० विवाहित स्त्रियोको २३४, और भारतमें २७२ लड़के पैदा होते हैं। इससे जाहिर है कि भारतकी स्त्रियाँ बहुत अधिक बच्चा पैदा करनेवालीं नहीं होतीं।

---

* Government Report, Sanitary Measures in India 1905–06, page 80

× Statesman's Year Book 1911.

भारत
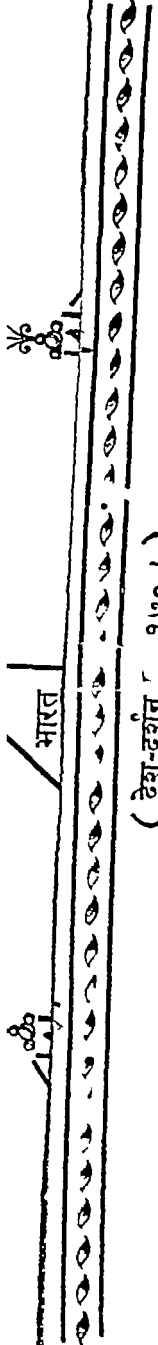
(देश-दर्शन   १७० ।)

भारतमें अधिक जन्मसंख्याके दो प्रधान कारण हैं—१ अत्यन्त अधिक विवाह, अर्थात् बहुत लोगोंका विवाहित होना और २ भारतकी दरिद्रता या भारतवासियोंको पेट भर अन्न न मिलना।

" The increased birth-rate is only another proof of the impoverishment of the (Indian) people "

अर्थात हिंदुस्थानके दरिद्र होनेका एक कारण दिन पर दिन मनुष्यसंख्याकी बढ़ती है।

इस अधिक सन्तानोत्पत्ति पर भारतवासियोंको कदाचित् अभिमान हो, शायद वे यह समझते हों कि अन्य देशवालोंसे उनमें सन्तानोत्पत्तिकी शक्ति अधिक है, अतः वे ससारकी अन्य जातियोंसे वलवान् और पुरुषार्थी हैं, पर यह ठीक नहीं है। वात विलकुल उलटी है। यह भी प्रकृतिका एक दि ग नियम है कि दरिद्र, कमजोर और अधपेटा भोजन पानेवाली भूखी जातियोंका सन्तान अधिक पैदा होती है।

" The fecundity (fruitfulness) of the human animal and of all other living beings is in inverse proportion to the quantity of nutriment available and that an underfed population multiplies rapidly "

" Birth-rate is much smaller in higher than in lower social strata, that fertility in man increases *pari passu* with poverty "

" Everywhere it has been seen that the inhabitants of the poorest quarters are the most prolific "

भारतमे जिस लापरवाहीसे लोग विवाह करते है, उससे अधिक लापरवाहीसे सन्तानोत्पत्ति करते हैं। भारतवासी समझते हैं कि सन्तानोत्पत्ति करनेवाला विधाता है। इससे उनका कुछ भी लगाव नहीं है, या यो कहिए कि यह भी एक किसमतका खेल है। इसमे उनका चारा नहीं। प्रत्यक्ष देखते है कि घरमें जो वच्चे मौजूद हैं उनके पालन-पोषणका प्रवन्ध नहीं हो सकता, माता और पिता दोनों अपना पेट काटकर भी सन्तानकी उदरपूर्ति नहीं कर सक्ते, पर वच्चे यदि हरसाल नहीं तो हर दूसरे साल अवश्य ही पैदा हो जाते हैं। पर इसमें उनका कुछ दोप नहीं, यह उनके कियेकी वात नहीं, यह तो विधाताकी 'देन' है।

जो पढ़े लिखे हैं वे भलीभाँति अपनी आमदनीकी दशा जानते हैं और यह जानते हुए भी कि हम अमुक संख्यासे अधिक बच्चोंकी परवरिश नहीं कर सकते वे सन्तानोत्पत्ति किये जाते हैं। भारतमें दूधकी कमी है, और यह कमी दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। "यहाँ पर कुल ४ करोड़ गायें और भैंसें हैं और ये बराबर साल भर तक दूध न देकर ६ महीने तक देती हैं। अर्थात् २ करोड़ गाय-भैंसोंके दूध पर ३१ करोड़ भारतवासी बसर करते हैं। औसत निकालनेसे १५ जन पीछे एक गाय पड़ती है*। जब दूधका ऐसा अभाव है तो दूध पर ही जानेवाले बच्चे कहाँ तक जीयेंगे, इसका विचार आप स्वयं कर सकते हैं, पर आप बच्चे पैदा करनेमें नहीं चूकते। पहले घरमें गाय रख लीजिए, तब बच्चे पैदा कीजिए।

अजब अन्धेर है। एक चित्रकार तसबीर बनानेसे साफ इनकार कर देता है। कह देता है कि इस समय मेरा चित्त दूसरी ओर है, यदि तसबीर बनाऊँगा, तो वह ठीक न बन सकेगी। कविको अच्छी कविता बनानेके लिए एक खास जोश (inspiration) होना चाहिए। गानेवालोंके लिए भी यही बात है। मिट्टीके पैसेपैसेके खिलौने बनानेवाला कुम्हार भी शराब पीकर या लड़ाई झगड़ा करते हुए खिलौने नहीं बनाता, इस लिए कि वे ठीक न बन सकेंगे, बिगड़ जायँगे। पर वाहरे अन्धेर! इन ईश्वरकी मूर्तियो—देवता और देवियोंकी पवित्र जीवित मूर्तियों—के बनानेमें किसी बातका विचार नहीं किया जाता! शारीरिक और मानसिक दशा चाहे कैसी ही खराब क्यों न हो, हम एक नहीं मानते। उलटे ब्राण्डीकी दो पेग और चढ़ा लेते हैं और एक स्त्रीको भी पिला देते हैं, या भंगका एक बड़ा गोला खुद जमा लिया और एक छोटी मात्रा मजदूरनीके हाथ घरमें भी भेज दी कि रातको सब झंझटसे जरा चित्त किनारे रहे और मौज आये। यदि इस मौजमें कुछ और अधिकता करनी हुई तो कोई रस या विषैली कामोद्दीपक औषधिका सेवन कर लिया। ऐसी अवस्थामें वीर्यकी क्या दशा रहती होगी और ऐसे समयमें गर्भाधानसे कैसी सन्तान पैदा होती होगी, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। और ऊपरसे तुर्रा यह कि सन्तान पैदा होने पर पोषणके लिए दूधका भी ठिकाना नहीं! परिणाम क्या होगा? वही, जो आजकल हो रहा है।

---

* 'The Hindoostan Review'—November 1913, P 312

स्मरण रहे कि बच्चे मरनेके लिए नहीं पैदा होते और यदि वे मर जाते हैं तो इसमें सर्वथा हमारा दोष है–हमारी न्यूनता है। अपनी दुर्दशा जानते हुए भी यदि हम सन्तानोत्पत्ति करें और वे मर जायें, तो उनका खून हमारे सिर है। उनकी मृत्युके पापभागी हम ठहराये जायँगे। ऐसा करना खामखाह खून करना है। यह वह अपराध है जिसकी क्षमा न मिल सकेगी।

यह हमारी असावधानी, और खुदगर्जीका फल है कि एक वर्षके नीचेके आयुके बच्चे एक हजारमें ३३३ मर जाते हैं। अर्थात् हर ३ बच्चोंमेंसे एक मर जाता है *। इस तरह भारतमें प्रति वर्ष २८ लाख बच्चोंकी मृत्यु होती है। बच्चोंकी मृत्युकी संख्या बराबर बढ़ती ही जा रही है।

प्रति हजार एक वर्षके नीचेके बच्चोंकी मृत्यु—

सन्	१९०५	१९०६	१९०७
लड़के	२१६·६	२२८·३०	२२१·७२
लड़कियाँ	२००·४	२१७·५२	२०९·३३

और यह दशा भारत जैसे गरम देशकी है जहाँकी आबोहवा बच्चोंको जीवित रखनेके लिए माफिक है, जहाँ स्त्रियोंको कारखानोंमें काम नहीं करना पड़ता, जहाँ जीवन-संग्राम बहुत कड़ा नहीं है, और जहाँ बच्चोको दाइयाँ नहीं बल्कि स्वयं मातायें पालती हैं। इँग्लैण्डमें, जहाँ कड़ी सरदी पड़ती है, और जहाँ माताओंको बच्चोको छोड़ कर दिन भर बाहर काम करना पड़ता है और जहाँ अकसर किरायेकी दाइयाँ बच्चोंको पालती हैं, बच्चे इस हिसाबसे मरते हैं—

मैनचिस्टर १६०, एडिन्बरो १५०, बरमिंघम १३०, प्रति हजार।

ये वे शहर हैं कि जिनके निवासियोंको जान देकर दिनभर कठिन परिश्रम करना पडता है। इनके जीवन-सग्रामका अनुभव करना ही भारतवासियोंको कठिन होगा। तो भी वहाँ भारतसे आधे बच्चे मरते हैं।

आप सोच सकते है कि जिस घरमे एक बच्चा मर जाता है उस घरकी क्या दशा होती है। साल भर तक रोना पीटना लगा रहता है, ठीक तरहसे लोग कामकाज भी नही करते और मातायें तो उस समय तक रो-रोकर प्राण

---

*Indu Madhav Mallik, M A, B L M D from last Census Report

देती रहती हैं जब तक उसके बदले एक दूसरा बच्चा उनकी गोदमे न आ जाय।

और सबसे खराब बात यह है कि इस तरह पर असावधानीसे सन्तानोत्पत्ति करनेसे आबादी भी नहीं बढ़ सकती। बच्चे पैदा अधिक अवश्य होते हैं, पर साथ ही मृत्युसंख्या बढ जाती है और आबादीका बढ़ाव रुक जाता है। मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट देखनेसे पता चलता है कि सन् १८८१ मे प्रति हजार २३.१, १८९१ में १३ १ और १९०१ में कुछ २ १ जन बढ़े।

अन्य देशोंमें मृत्युकी संख्या कम होती जाती है। इंग्लैण्डमें किसी समय फी हजार ७० जन मरते थे, वे ही कम होकर १८६५ में ३०,१८८० में २८ और १९०१ में १५ मरने लगे।

पर भारतकी मृत्युसंख्या बढ़ती जाती है। यहाँ १९०१ में फी हजार २९, १९०२ में ३१, १९०३ में ३४, १९०४ में ३३, १९०५ में ३६, १९०५ मे ३४, १९०७ में ३७ और १९०८ में ३८ जन मरे। किसी किसी प्रांतमें तो इससे भी अधिक लोग मरते हैं। युक्तप्रान्तमें ५३ तक नम्बर पहुंच चुका है। ये अल्पजीवी बालक जो वृथा उत्पन्न किये जाते हैं, अपने जन्मके पूर्व और पश्चात् मृत्यु तक, माताकी शक्ति तथा धनको व्यर्थ चूसनेवाले होते हैं। ये माताको युवावस्थाके सुख और सौन्दर्यको नाश करनेके अतिरिक्त कोई आनन्द नहीं देते।

ऐसे बच्चोंको जिनके पालन-पोषणका हम प्रबन्ध नहीं कर सकते, जिन्हें हम दीर्घायु और बलवान् नही बना सकते, पैदा करना महापाप है, घोर असभ्यता है।

" Weaklings have no place in the world. It is a sin to be weak. It is a sin to beget weak children "

भारतसरकार इस अत्यन्त अधिक जन्म और मृत्युसंख्याके बारेमें लिखती है कि "जब भारतवासी शरीरशास्त्रके नियमोंको समझ कर विचारपूर्वक विवाह और संतानोत्पत्ति करेंगे, तब जन्म और मृत्युकी संख्या आपसे आप कम हो जायगी।"

विवाहकी शय्यासे ऐयाशीको उठा दो और कामशक्तिको अपना मालिक न बना रक्खो। शरीरशास्त्र और समयके मुताबिक सावधानीके साथ विचारपूर्वक इस शक्तिसे काम लो, तो विवाहित जीवनकी मुसीबतें आपसे आप

आधी हो जायँगी। इस तरह पर रहनेसे स्त्री और पुरुष अधिक पवित्र भावमें रह सकेंगे। पति पत्नीमें प्रेम अधिक होगा और उनका सुख और आनन्द बढ़ेगा। लड़के कम पैदा होंगे। लड़कों पर माता-पिता अधिक प्रेम, अधिक समय, और अधिक द्रव्य खर्च कर सकेंगे। इससे लड़की-लड़के बलवान्, दीर्घायु और प्रसन्नचित्त होंगे और ऐसा घर बैकुंठकासा आनन्द देगा।

स्त्रियाँ केवल भोगविलासके लिए ही नहीं बनाई गई है। जो पुरुष स्त्रियोंके शरीरको, उनके सुख और दुःख पर ध्यान न देकर अपने ही सुख और मजेके लिए खुदगर्जीसे काममें लाते है वे विवाहके अधिकारके बाहर जाते हैं और विवाहशय्याको अपवित्र करते हैं। ऐसे कामी पुरुषोंके विवाहको अँगरेजीमें married or legal prostitution व्यभिचार कहते हैं।

A nation which seeks in sexual life nothing but pleasure is bound to disappear—वह राष्ट्र जो विवाहकी शय्या, केवल भोगविलासके लिए ही ठीक समझता है जीवित नहीं रह सकता,—उस राष्ट्रका विनाश निश्चय होगा।

There should be no more children brought into the world than can presumably be fed and reared—जितने बच्चोंका पालनपोषण हम भलीभाँति कर सकते हों उतनी ही सन्तानोत्पत्ति हमें करनी चाहिए। उससे अधिक नहीं।

" No one should bring beings into the world for whom one cannot find the means of support. "

सातवाँ परिच्छेद ।
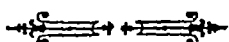
अन्यान्य रुकावटें ।

'Insufficient supply of food to any people does not show itself merely in the shape of famine It assumes other forms of distress as well, such as generating evil customs, spreading immorality and vice etc.'

—*Malthus*

जब किसी देशके मनुष्योंको पेटभर अन्न नहीं मिलता, तब उस देशमें एक मात्र दुर्भिक्ष ही पड़कर नहीं रह जाते, ऐसे देशोंमें तरह तरहकी तकलीफें पैदा होती हैं, बुरे रसम—रिवाज फैलते हैं और व्यभिचार—अनाचारकी वृद्धि होती है ।—माल्थस ।

हम भारतवासी यह माने बैठे हैं कि पहले तो भारतमें सदाचार छोड़ व्यभिचारका लेश भी नहीं है और यदि किसी अंशमें है भी तो नाममात्रको । कमसे कम विलायतवालोंके मुकाबले तो इस देशके स्त्रीपुरुष अत्यन्त सच्चरित्र हैं । सुबूतमें कहा जाता है कि विलायतमें तो व्यभिचारकी ऐसी अधिकता है कि वहाँ ऐसे घर बने हैं जहाँ स्त्रियाँ छिप कर बच्चे जन आती हैं और उन बच्चोंको दाइयाँ जिलाती हैं * । उनके यहाँ परदा न

---

* Illegitimate living births या छिप कर बच्चे जने जानेका ब्योरा —

सन्	इँग्लैण्ड	फ्रांस	जर्मनी
१९०४	३८,४१२	७१,७३५	१,७४,७९४
१९०५	३६,८१४	७१,५००	१,७७,०६०
१९०६	३९,३१५	७१,४६६	१,७९,१७८
१९०७	३६,१८९	७१,३०५	१,८०,५८७
१९०८	३७,५३१	७१,००९	१,८४,११२
१९०९	३७,५०९	७१,२०३	१,८३,७००
१९१०	......	. ...	१,८३,७००

होनेसे जो जिसे चाहता है, अपना लेता है । पराई स्त्रियाँ पराये पुरुषोंके साथ घूमती हैं और मनमाना आनन्द करती हैं, वे रोकी तक नही जातीं । असलमें, उनके यहाँ व्यभिचारका विचार ही नहीं है ।

यह वात कहाँ तक सत्य है इसका निश्चय करना अत्यन्त कठिन ही नहीं, असम्भव है । हमारे यहाँके रिवाज और रहनेके ढंग उनके रहन-सहनसे इतने विरुद्ध हैं कि हम खामखाह उनके चरित्रमें धब्बा लगाते हैं और उनका जीवन यदि पवित्र भी हो तो भी हम उन्हें कलंक लगाते और पापाचारी कहा करते हैं । समाजमे हर तरहके लोग होते हैं । यद्यपि आगरेके सिविल सर्जन मिस्टर क्लार्क और मिसेस फुलहम * आदिके सदृश कुचरित्र लोग भी इस समाजमें हैं, पर एकदम सारे समाजको अनाचारी मान लेना अन्याय है। कुछ दिनोंके लिए एक स्कूलमें मैं अवैतनिक असिस्टेण्ट हेडमास्टर था। स्कूलके प्रिंसपलसे मुझसे बहुत मेल बढ़ गया था । मैं प्रायः नित्य ही अपना सन्ध्या-का समय उनके बँगले पर बिताता था। ये सपरिवार बड़े ही सज्जन थे और सबका वर्ताव मेरे साथ बहुत ही भला था। हम सब एक साथ 'वैड मिन्टन,' 'टेनिस' या 'चेस' आदि खेल खेला करते थे । इसमे मेमसाहवा और उनकी युवा पुत्रियाँ भी शामिल रहती थीं। वे हारमोनियम या पियानो बजाकर बड़ी आजादीसे गाकर सुनाती थीं, खूब अच्छी तरह दिल खोल कर बातें करती थीं, वहस मुबाहिसा करती थीं, और सभ्यतापूर्ण हँसी-दिल्लगी भी करती थीं। अर्थात् जिस आजादीसे दो सभ्य पुरुष मित्र आपसमें व्यवहार

सन्	इग्लैण्ड	फ्रान्स	जर्मनी
१९११	.....	....	१,७८,५८४
१९१२	.....	......	१,७७,०५६
१९१३	.....	....	१,८३,८५७
१९१४	३७,३२५	....	....
१९१५	३६,२४५	....	... ...
१९१६	३७,६८८	....	....
१९१७	३७,०२२	....	......

* Vide the Pioneer and the Leader etc for March 1913 in which the shameful case was published.

रखते हैं उसी तरह प्रिंसपलसाहबके घरकी स्त्री और पुरुष दोनोंके साथ मेरा व्यवहार था।

मेरे इस मेल-जोलकी खबर धीरे धीरे स्कूलमे पहुँची। फिर क्या था! हर तरफसे मास्टर लोग कटाक्ष करने लगे। फुरसतके घण्टेमें सब लोग एक साथ बैठकर मेरी मीठी मीठी चुटकियाँ लेने लगे।

दैव-संयोगसे वहाँ एक नये कलेक्टर बदलकर आये। ये अकसर प्रिंसपल-साहबके बँगले पर आने लगे। कभी कभी खाना भी यहीं खायँ और रातको भी रह जायँ। मेम साहबाने तो अपना और कलेक्टरका बंगला एक कर रक्खा था। जब देखिए, वे कलेक्टरसाहबकी जोड़ी पर नजर आती थीं। हवा खाने दोनों एक साथ, नदीकी सैर एक साथ, जहाँ देखिए प्रिंसपलकी मेम और कलेक्टर साहब एक ही साथ दिखाई देते थे। दुर्भाग्यवश एक दिन प्रिंसपल साहब भले चंगे स्कूलसे आये और एकाएक बेहोश हो गये। उनका हृदय बन्द हो गया और वे कुछ ही घण्टोंमें परलोक सिधार गये।

लाश दफना कर मेम साहबा अपने बंगले पर न आकर साहब कलेक्टरके साथ उन्हींकी मोटर पर सीधी उनके बँगले पर गईं और वहाँ कुल दो सप्ताह रह कर विलायत चली गईं।

इधर स्कूल क्या, सारे शहरके लोग, कलेक्टर और प्रिंसपलकी विधवाको व्यभिचारी-व्यभिचारिणी कहकर गालियाँ देते थे। कोई कोई तो यहाँ तक कह बैठते थे कि प्रिंसपल साहबको इन्हीं दोनोंने मार डाला है। पर बात यह थी कि स्वर्गीय प्रिंसपल साहब कलेक्टरके बहनोई थे। मेम साहबा कले-क्टरकी सगी बहिन थीं। रंजका यह हाल था कि कुल दो सप्ताहोंमें वे २४ पौंड अर्थात् १२ सेर घट गई थीं।

भारतके सुप्रसिद्ध मित्र और कांग्रेसके जन्मदाता, मिस्टर ह्यूम लिखते हैं कि—"भारत और विलायतके लाखों परिवारोंका एक साथ मुकाबला करके देखनेसे यह निश्चय करना, या कहना, कठिन है कि भारतमें अधिक व्यभि-चार है या विलायतमें। समाजमें कमजोर स्त्रियाँ और पापी पुरुष सदैव रहते हैं, जिनका चरित्र किसी प्रकारकी उच्च शिक्षासे नहीं सुधर सकता। पर, साथ ही समाजकी दशा सुधारने, स्त्रीपुरुषोंको सदाचारी और सच्चरित्र बनानेका

एक मात्र उपाय उचित शिक्षा ही है। अस्तु, यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता कि विलायतके शिक्षित स्त्री या पुरुष व्यभिचारी हैं।"*

रेनाल्डके झूठे उपन्यास, मिस्ट्रीज आफ कोर्ट आफ लण्डन, स्त्रीत्याग या तलाकके मुकद्दमें, अथवा इधर उधरकी उड़ती हुई खबरें सुन कर किसी राष्ट्रको या एक दो आदमियोंके कुचरित्र होनेसे सारे समाजको चरित्रभ्रष्ट समझ लेना ठीक नहीं। इन किस्सोंको पढ़ कर, और यह देख कर कि उनके यहाँ परदा नहीं है, स्त्रियों तकका विवाह बहुत देरमें होता है, बहुतसे स्त्री-पुरुष आयुपर्यंत अविवाहित रहते हैं, हम, पक्षपातके रंगीन चश्मेमें उन पर दृष्टि डालते हैं और उनमें सर्वथा पाप ही पाप देखते हैं।

खैर, जो हो, मुझे इस लेखमें यह दिखाना अभीष्ट नहीं है कि भारतमें विलायतसे, अथवा विलायतमें भारतसे अधिक व्यभिचार है। मेरे इस कथनका अभिप्राय केवल इतना ही है कि दूसरोंकी फुली देखना और अपना ढेंढर न देखना अच्छा नहीं। अर्थात् हम दूसरोंका दोष देखकर उन पर हंसते हैं, परन्तु अपने दोष पर आँखें बन्द कर लेते हैं। इस बातकी जाँचके लिए मैं आपको ब्रिटिश राज्यके—जहाँ कि चौबीसों घण्टे सूर्य अस्त नहीं होते—दूसरे नम्बरके शहरमें, भूमण्डलके प्रधान बारहवें नम्बरके शहरमें और भारतके सबसे बड़े शहर कलकत्तेमें, जो जनसंख्या (आबादी) के हिसाबसे बम्बई, दिल्ली, लाहौर आदि सब शहरोंसे बड़ा है, ले चलता हूँ। आइए, पहले इस शहरकी जाँच घूम कर करें। घबराइए नहीं। लोगोंको उँगली उठाने दीजिए, हँसने दीजिए। शरमकी बात तो उस समय होती जब हम तमाशबीनी करने या ऐशो अशरत करने जाते होते। हम लोग तो मर्दुमशुमारीके अफसरोंकी तरह देशकी सच्ची दशाकी जाँच करने चल रहे हैं।

मछुआ बाजार।

मीलों तक सड़कके दोनों तरफ मकानोंके ऊपरके खण्डोंमें वेश्यायें खचाखच भरी हैं। ये बहुधा मारवाड़िनें और एतद्देशीय हैं। जैसे दरबेमें कबूतर कसे रहते हैं, वैसे ही मकानका किराया अधिक होनेसे एक एक कमरेमें चार चार पाँच पाँच वेश्यायें सड़ा करती हैं। सड़ककी पटरियों पर जगह जगह आठ आठ दस दस बंगाली लड़कियाँ एक कतारमें नाके नाके पर खड़ी हैं।

* A O Hume by Sir William Wedderburn Page 160

इनका स्थान उसी नाकेकी ठीक सामनेवाली गलीमें है। खुले आम, बीच सड़कमें लोग इन अनाथा लड़कियोंसे हँसी मजाक करते हैं। उस झुण्ड या कतारमेंसे जिसकी तरफ इशारा हो जाता है उसे पुरुषके साथ अपने स्थानको प्रस्थान करना पड़ता है।—कैसी अनोखी सभ्यता है!

लोअर चितपुर रोडके पीछे कोई महल्ला।

इस महल्लेका नाम स्मरण नहीं आता। यहाँकी दुर्दशा देख कर कलेजा फट जाता है, खून पानी हो जाता है। कई सौ घर बंगाली वेश्याओंके हैं। गलियोंसे भीतरका कोई कोई हिस्सा दिखाई देता है। आनन्दपूर्वक निडर होकर लोग तख्तों पर मसनद लगाये ताश खेल रहे हैं और लज्जा त्याग कर खुलेआम हर तरहका मजाक कर रहे हैं। सबसे घृणित बात यह है कि इन वेश्याओंमें बहुतोंकी आयु १० वर्षसे अधिक न होगी। पर हाय पेट, हायरी दरिद्रता और उन्हें गहरी कन्दरामें गिरानेवाले पुरुषोंकी सभ्यता! हम, तुम तीनोंको नमस्कार करते हैं।

सोना गाछी।

यहाँ भी वही हृदयविदारक दृश्य है। रास्ता चलना मुश्किल है। कामकाजी लोग इस रास्तेसे होकर नहीं जाते, रास्ता बचाकर किसी दूसरी तरफसे निकल जाते हैं। यहाँ वेश्यायें राह चलते हाथ पकड़ लेती हैं, टोपी या दुपट्टा ले भागती हैं। समाजसे गिरी हुई लड़कियोंकी अत्यन्त दीन दशा, बेहयाईकी आखिरी हद, और भारतकी सभ्यताकी तीसरी झलक, यहीं दीखती है।

इनके अतिरिक्त एक महल्ला गोरी (यूरोपियन) वेश्याओंसे भरा है। यहाँ अँगरेज तो विरले ही देख पड़ते हैं, हाँ मनचले भारतवासी ठोकरें खानेके लिए अवश्य आया करते हैं। एक नवयुवक अग्रवाल ग्रेजुएट डिप्टी कलेक्टर (शायद हमीं लोगोंकी तरह जाँच करते हुए!) एक मित्रके साथ इन्हीं गोरी वेश्याओंमेंसे एकके यहाँ पहुँच गये। एक तुच्छ बात पर मतभेद होनेसे उस अभिमानिनी वेश्याने डिप्टी साहब पर गुस्सेसे हाथ चला दिया! डिप्टी साहब अपने मुँहसे कहते थे कि दोनो मित्र यदि जूता हाथमें ले दौड़ कर भाग न जाते, तो खूब ही पिटते, और ऊपरसे पुलिसके हवाले कर दिये जाते!

वे कहने लगे—" इस दुर्घटनासे मेरे मित्र, जिनका मैं मेहमान था, बहुत दुःखी हुए। अपनी और मेरी झेंप मिटानेके लिए मुझसे कुछ न कह कर वे मुझे एक मनोहर बेल, लता और पुष्पोंसे सुशोभित सुन्दर बंगलेमें ले गये। यह सुनकर कि यह एक वेश्याका बंगला है, मैं धक्कसे रह गया। डरा कि कदाचित् यहाँ भी न ठुक जायँ। पर यहाँका बर्ताव देशी वेश्याओंसे भी अच्छा ठहरा! यह, एक यहूदिन वेश्याका बंगला था। ऐसे बहुतसे बंगले कलकत्तेमें हैं। मैं १५ दिन तक कलकत्तेमें रहा और अकसर शामको किसी ऐसे ही बंगलेमें आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करता रहा।"—गिनते जाइए, यह सभ्यताका चौथा नमूना है।

एडेन गार्डेन।

मैं—(चौंक कर) क्यों जी, यह अनोखी विक्टोरिया सब्जा पेयर तो मोती बाबूकी है न?

मेरे मित्र—(मुस्कराकर) खूब, गाड़ी और जोड़ी तो पहचान गये, पर उसके मालिक सवारों पर आँख नहीं ठहरती।

मैं—अरे ये तो स्वयं मोती बाबू हैं; पर उनके बगलमें यह कौन है?

मेरे मित्र—उन्हींकी घरवाली।

मैं—अजी जाओ भी, क्या मैंने उनकी बीवीको नहीं देखा है! यह तो रंग ढंगसे कोई वेश्या मालूम पड़ती है। लेकिन . ।

मित्र—वेश्या बीवी नहीं तो और क्या है? लेकिनके बाद चुप क्यों हो गये? तुम्हें आश्चर्य है कि मोती बाबू गौहरजानके साथ बैठ कर हवा खाने निकले हैं। अरे यह कलकत्ता है। वह देखो, जौहरीजी मलकाको लिये उड़े जा रहे हैं।

मैं—और सामने बच्चा किसका बैठा है?

मित्र—जौहरी महाशयका। अभीसे सीखेगा नहीं, तो आगे बापका नाम कैसे रक्खेगा!

मैं—छि.! क्या बेहयाई है, कैसी बेशरमी है।

मित्र—बस, तुम तो गँवार ही रहे। कैसी बेशरमी? वह देखो गाड़ियोंकी तीसरी कतार–एक, दो, तीन (कोई २० तक गिनाकर), जानते हो इनमें कौन हैं? पहचानते हो? सबकी सब वेश्यायें हैं। वे देखो सुर्राफ बाबू उनसे

गुलदस्ता दे रहे हैं। डाक्टर बाबू फूलोंका बटन उसकी साड़ीमें लगा रहे हैं। जरा आँख खोल कर देखो—प्रमथ बाबू किसके गलेमें हाथ दिये घूम रहे हैं? यहाँ, दिन भर लोग कस कर काम करते हैं, शामको यदि थोड़ा दिलबहलाव न करें तो मर ही जायँ। रही घरकी स्त्रियाँ, सो अव्वल तो उनसे यदि आजादीसे बातचीत करें, तो माँ-बाप तानोंसे बेध डालें, और दूसरे उन्हें अपनी गृहस्थी और बालबच्चोंके रोने-धोनेसे कहो फुरसत है, जो दिनभरके थके माँदे पतिका दिल बहलाकर उनकी थकावट दूर करें। तुम विलायतमें तो रहते नहीं कि हम भारतवासियोंके गृहसौख्यका हाल न जानते हो। हम लोगोंका घर तो नरककुण्ड समझो। यह सभ्यता और बेशरमी नही; कलकत्तेमें इसकी परम अवश्यकता है। It is not shameful luxury but essential necessity.

थियेटर।

यहाँ भी वही बात। आरचेस्ट्राकी कोच पर दो सीटें हुआ करती हैं। प्रायः सभी कोचों पर बाईजी (वेश्यायें) और सेठजी साथ साथ बैठे है। किसी भी अमीरजादेकी बगल इन शरीफजादियोंसे खाली नजर नहीं आती। तमाशा खतम होने पर सेठ साहूकार तो अपनी अपनी चिड़ियोंके साथ हवागाड़ियो पर हवा हो गये, रहे किरायेकी गाड़ी करनेवाले, सो जिसे देखिए वही गाड़ीवालोंसे किसी न किसी 'जान' के मकानका किराया तै कर रहा है। यदि मण्डलीका कोई आदमी घर जानेका नाम लेता है तो दूसरे उसे समझा बुझा कर ठीक कर लेते है। कहते है कि अरे यार, यह गोल्डन नाइट (शनिश्चरकी रात) बड़ी मुशकिलोंसे सात दिनकी कडी मेहनतके बाद प्राप्त होती है, इसे घरकी बेहंगम स्त्री और कलहमें नही खोनी चाहिए।

ग्रीन पार्टी।

रविवारको अक्सर दोपहरके बाद लोग शहरके बाहर बाग-बगीचोमें, दस दस पाँच पाँचके गोल बाँधकर निकल जाते है। कहीं ग्रीन सिरप (भङ्ग) उड़ता है और कही हाट वाटर (Wine) पेग पर पेग चढ़ाया जाता है। हर पार्टीमें पार्टीकी जान एकाद वेश्या अवश्य रहती है।

यह रिपोर्ट हम लोगोके भ्रमण करनेकी है। अब सरकारी कागजोसे देखिए कि इस शहरकी क्या दशा है।

सन् १९११ की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि कलकत्ते शहरमें १४,२७१ (चौदह हजार ! !) वेश्यायें हैं। कलकत्तेकी कुल स्त्रियोंमेंसे जिनकी उमर २० से ४० वर्षकी है , प्रत्येक बारह स्त्रीमें एक वेश्या है ! १२ से २० तककी आयुकी स्त्रियोंमें प्रति सैकड़ा ६ वेश्यायें हैं ! और १०९६ वेश्या लड़कियोंकी आयु १० वर्षसे भी कम है ! ९० फी सदी वेश्यायें हिन्दू हैं । †

भगवन् ! बारह, दस या इससे भी कम आयुकी वेश्यायें ! भारतमें जैसे बाल-विवाहकी कुरीति चल निकली है वैसे ही बालवेश्याओंका भी बुरा रिवाज जारी हो गया है । इस अन्धेरके विषयमे डाक्टर एस सी. मैंकेंजी एक स्थान पर और खाँबहादुर मौलवी तमीजखाँ दूसरे स्थान पर लिखते हैं कि,—'बेचारी दीन लड़कियाँ पानीमें फूलनेवाली लकड़ीके साथ पानीके टबमें बिठाई जाती हैं जिससे कि वे पुरुषोंके समागमके लिए तैयार हो जायं । कहीं कही यह काम केलेसे लिया जाता है ।"—Insert a piece of sola and then make the unfortunate girls sit in water tubs or use plantains to train up mere girls for prostitution. *

Dr. Chevers, ' Means are commonly employed even by *Parents* to render the immature girls *ople Viris* by mechanical means, ' बस यहाँ तो सभ्यताका अन्त हो गया !

सन् १८५२ ईसवीमें कलकत्तेमे १२,४१९ वेश्यायें थीं और उनमेंसे १०,४६१ हिन्दू थीं । ‡

सन् १८७० ई०में इस शहरमें ७,९३१ हिन्दू, १,१६२ मुसलमान, ५६ यूरेशियन, ५ यूरोपियन और ३५ यहूदिन आदि वेश्याये थीं ।×

यह दशा केवल कलकत्ता शहरकी ही नहीं है । इस खुले व्यभिचारका साइनबोर्ड भारतके प्रत्येक शहरके खास बाजार या चौकमें दिखाई देगा । बम्बईका व्हाइट मारकेट (सफेद गली), लाहौरकी अनार कली, दिल्लीका चावड़ी बाजार, और लखनऊका खास चौक वेश्याओंसे भरा पड़ा है । तीर्थ-

† All India Census Report 1911, for Calcutta

* Medical Jurisprudence by Chevers P 689

‡ The Chief Magistrate's Report for the state of town of Calcutta 1852-53

× Contegious Disease Act in Calcutta 1870

राज, पापनाशक, पवित्र काशीनगरमें, संयुक्त प्रांतके सब शहरोंसे अधिक वेश्याओंकी संख्या है। डाक्टर और वैद्य भी यहाँ युक्तप्रान्तके सारे शहरोंसे अधिक हैं। + (वेश्याओंकी अधिकताके साथ डाक्टरोंकी ज्यादती होनी ही चाहिए।) प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन और हरद्वारतक इनका डेरा जमा रहता है। पवित्र भूमि 'कनखल' में भी आप इन्हें देख लीजिए। नैनीताल आदि पहाड़ोंके ऊपर लोग कुछ ही महीनोंके लिए जाते हैं। पर बाबू साहबोंके साथ साथ बाईजीओं (वेश्याओं) का डेरा भी बदाऊँ, मुरादाबाद क्या बरेलीतकसे वहाँ पहुँच जाता है। अँगरेज तो शामके वक्त बोटिंग करते हैं, नीचे क्लबमें फुटबाल आदि अनेक खेल खेलते हैं और बाबूसाहबान किसी प्रेमिकाके सड़े डेरेमें अपने स्वास्थ्यका सर्वनाश करते हैं। पहाड़से लौटे हुए एक अँगरेज और हिन्दुस्तानीका स्वास्थ्य उनके आचारकी गवाही देने लगता है।

भारतके कुल शहरोंकी वेश्याओंकी संख्या—जो मर्दुमशुमारीके समय अपना यही पेशा बताती हैं—४,७२,९९६ है। × बहुतेरी वेश्यायें डरसे अथवा लाजसे अपना पेशा कुछ और बता देती हैं, इसलिए उनकी संख्या इसमें शामिल नहीं है। इन पौने पाँच लाखके लगभग वेश्याओंकी वार्षिक आमदनी ६२,४६,००,००० (बासठ करोड़!) रुपया है।

शोक यह है कि इस प्रकारका खुला व्यभिचार भारतमें दिनों दिन कम होनेके बदले बढता जाता है, और वेश्याओंकी संख्यामें अधिकता होती जाती है। पञ्जाबकी हिन्दू सभा लिखती है कि "इस प्रांतके प्रत्येक मुख्य मुख्य शहरमें व्यभिचारके लिए लडकियोंकी खरीद और फरोख्त बढ रही है। सन् १९११ में प्रांतीय लाट महोदयने इस बातकी तसदीक की है।"

अस्पतालोंके रजिस्टर, दवा बेचनेवालोंके इश्तिहार और कोढियोंकी संख्यासे भी इस देशके व्यभिचारकी झलक मालूम पड़ती है। कोढ़का रोग चाहे पैतृक भी हो, पर इस रोगके पीछे सिफ़लिस (गर्मी) अवश्य हुआ करती है। प्रोफेसर हिगिन बाटम—जिन्होने कोढियोंमें बहुत काम किया है—कहते हैं कि आजतक उन्हें कोई कोढ़ी ऐसा न मिला—जिसे खुद अथवा जिसकी छूतसे उसे यह रोग हुआ—सिफ़लिस न हो चुकी हो। कोढ़की जड

+ All India Census Report for U P 1911

× Life of Indian Prostitutes, Page 182

गर्मी है। यह तो खुले हुए व्यभिचारकी कथा हुई। इससे तो कोई इनकार ही नहीं कर सकता। अब रहा गुप्त व्यभिचार, सो उसका जाँचना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है। ईश्वर ही उसकी सच्ची जाँच कर सकता है।

इस देशमें समाजका ऐसा कड़ा नियम है, इसके लिए ऐसी कड़ी सामाजिक सजायें रक्खी गई हैं कि ऐसे लोगोंका प्रत्यक्ष पता लगना कठिन ही नहीं, असम्भव है। पर अनुभव अवश्य किया जा सकता है।

पहले घरकी मजदूरिनियोंको ले लीजिए। ये विवाहिता तो अवश्य होती हैं, पर युवावस्थामें अपने मालिकके घर, किसी न किसी नवयुवक सरदारकी शिकार होनेसे शायद ही बचती हैं। हाँ, अवस्था ढल जाने पर चुपचाप अपने पतिके साथ पतिव्रता बनकर बैठ रहती हैं। सेन्ससके सुपरिंटेण्डेण्टने लिखा है कि,—"मजदूरिनियोंमेंसे बहुतसी तो सचमुच ही वेश्यायें हैं।" +

[1] इसी तरह दूकानों पर बैठनेवाली स्त्रियोंको अर्धवेश्या समझना चाहिए, कमसे कम कुचरित्र स्त्रियोंमें तो इनकी गिनती अवश्य होनी चाहिए।

दक्षिणभारत (मद्रास आदि) में बालिकाओंको मंदिरमें देवसेवाके निमित्त चढ़ा देनेकी चाल है। वहाँ उन्हें 'विभूतिन' कहते हैं। वे तीर्थयात्रा करती हुई, इस प्रान्त तक आ जाती हैं और अपनी सच्चारित्रताका परिचय दे जाती हैं।

उन विवाहित पुरुषोंकी स्त्रियाँ, जो अत्यन्त निर्बल हैं, रोगी है, वृद्ध या शक्तिहीन हैं, और जिन्होंने जान-बूझकर ब्याह करके स्त्रियोके गले पर छुरियाँ चलाई हैं—कबतक पातिव्रत्य धर्म निबाह सकती है? अथवा उन अनाचारी अत्याचारियोंकी स्त्रियाँ, जो अपना घर छोड कर बाजारकी हवा खाते हैं, कबतक और कहाँ तक निरादर सहती हुई पतिव्रता रहेंगी? जो पुरुष स्त्रीभक्त नहीं, वेश्यागामी है, उसे अपनी स्त्रीसे पतिव्रता रहनेकी आशा करना व्यर्थ है। सम्भव है कि उसे अपने घरका हाल कभी न मालूम हो, पर बगलका पड़ोसी उसका कच्चा चिट्ठा कह सकता है।

[1] सबके ऊपर भारतमें २ करोड़ ५४ लाखसे अधिक विधवायें हैं। मैं इनके आचरण पर आक्षेप नहीं करता। पर विचार करनेकी बात है कि इनमेंसे प्राय सभी मूर्खा हैं, देव, शास्त्र, धर्म और ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। केवल यह

+ All India Census Report 1911

जानती हैं कि उनके कुलमें विधवा-विवाह नहीं होता। उन्हींका हृदय प्रश्न करता है कि क्यों नही होता? इसका वे कुछ उत्तर नहीं दे सकतीं। केवल भाग्यमें लिखा है, कर्म फूट गया है, आदि कह कर मनकी तरंगोंको शान्त करती हैं। पर इन स्त्रियोकी शैतान पण्डो, पुरोहितों या ऐसे ही अन्य पाखण्डियोंसे भेट हो जाने पर और मौका मिलने पर भाग्यके बल पर ये कबतक कामदेवसे लड़ सकती है? आखिर तो मूर्खा स्त्रियाॅ ही ठहरीं न, उनकी कमजोरी उन्हें यह समझा कर सन्तोष कर लेनेके लिए लाचार कर देती है कि "यह दुराचार भी विधाताने उनके भाग्यमे लिख रक्खा होगा, वे स्वयं धर्म्मच्युत नहीं हो रही हैं, बल्कि यह उनके दुर्भाग्यका परिणाम है—जिस दुर्भाग्यने, उन्हें जर्जर पतिकी पत्नी बनाया, और उसे भी न रहने दिया, वही भाग्य पिशाच उन्हें आज गढ़ेमें झोक रहा है। चलो, यह भी सही–'विधिका लिखा को मेटनहारा'–" बस खतम। हाॅ, यह बहुत जरूरी बात अवश्य है कि कहीं बात खुल न जाय, नहीं तो जन्म जन्मान्तर, पुश्त दरपुश्तके लिए खानदान भरको जातिच्युत होना पडेगा। सो, इसके लिए जबतक तीर्थयात्राके लिए द्रव्य, पापोंको धोनेवाली बडी बड़ी नदियाॅ, घरोंकी पुरानी चालकी संडासें, या अन्धे कुएँ मौजूद हैं, इससे भी भय नहीं।

भगवन्! क्या ही दीन दशा है। विश्वबन्धुके मकानके पास ही एक कुलीन ब्राह्मण महाशयका घर था। उनके यहाॅ एक परम रूपवती युवती विधवा थी। उनके घर परदेका कड़ा नियम था। तो भी विश्वबन्धु उनके यहाॅ बेरोक-टोक जाया करते थे। कुछ दिनोंके बाद जब न जाने क्यों ब्राह्मण महाशयने मकान छोड़ देनेका निश्चय किया, तब विश्वबन्धुने अपनी माॅसे कह सुन कर उस मकानको खरिदवा लिया। ब्राह्मण महाशय सपरिवार अपने देश (कन्नौज) चले गये और उस मकानकी मरम्मत शुरू हुई। एक कोठरी, जिसे पण्डिताइन 'ठाकुरजीकी कोठरी' कहा करती थीं, और जो सालमे केवल कुलदेवकी पूजाके समय खोली जाती थी, बड़ी सड़ी नम और बदबूदार थी। उसे पक्की करा देना निश्चय हुआ। नम मिट्टीको खोद कर फेंक देनेके लिए मजदूर खोदने लगे। सुना जाता है कि उसमेंसे एक ही उमरके कई बच्चोके पंजर निकले! एक तो बिलकुल हालहीका दफनाया जान पड़ता था। प्रभो! भारतको ऐसे भयंकर पापोंसे बचाइए। हमें बल और निर्मल बुद्धि प्रदान कीजिए जिससे हम इन कुरीतियोका अन्त कर सकें।

" हर पार्टीमें पार्टीकी जान एकाद वेश्या अवश्य रहती है। "

(देशदर्शन पृष्ठ १८२)

रूपवती विधवा युवती।
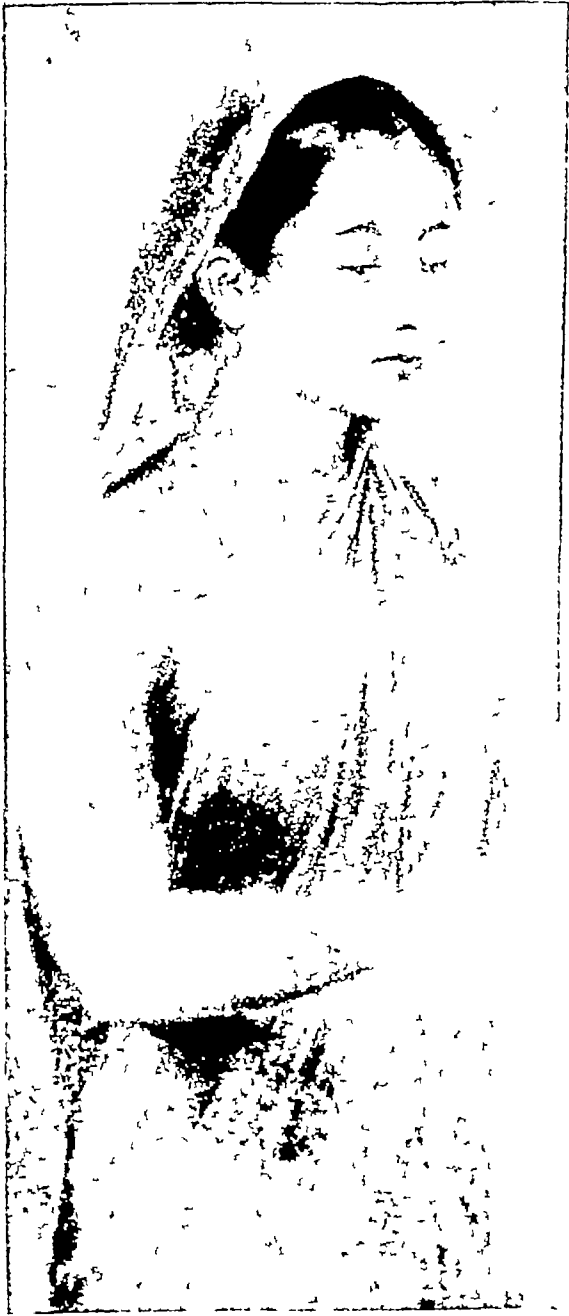
(देशदर्शन पृ० १८६)

सिविल सर्जन साहब जेल और अस्पताल आदिसे लौटकर लगभग एक बजे बंगले पर आये। टेबुल पर एक तार मिला जिसका आशय यह था कि "रोगी सख्त बीमार है। जल्दी आनेकी कृपा कीजिए।– देवदत्त।" साहब बड़े ही दयालु हैं। उसी समय घोड़े पर सवार होकर रवाना हो गये। उन्होंने देवदत्तके घर पहुंच कर पूछा कि रोगी कहाँ है? देवदत्त हाँफते हाँफते आये और बोले—हुजूर, बड़ी गलती हुई, माफ कीजिए। साहबने डपटकर पूछा कि बतलाओ रोगी कहाँ है। देवदत्त गिड़गिड़ाते हुए साहबके हाथमे फीस रखकर पैरों पर लोट गये और एबारशनकी (गर्भपात करनेकी) दवा पूछने लगे। साहब लाल हो गये। जमीनपर जोरसे पैर पटककर और 'छिः' कहकर लौट गये। बंगले पर पहुँचकर उन्होने इस बातकी सूचना पुलिस-कप्तानके पास भेज दी।

उसी दिन रातको देवदत्तकी चचेरी बहिन अकस्मात् मर गई और रातों-रात चिता पर भस्म कर दी गई। यह विधवा थी। कई दिनके बाद देवदत्तकी तलबी कोतवालीमें हुई। सुना जाता है कि वहाँके देवताने अपनी पूजा पाई और रिपोर्टमे लिख दिया कि देवदत्त प्रतिष्ठित रईस हैं। उस दिन, उनकी बहिनको हैजा हो गया था, इसीलिए साहबको बुलाया था। वे एबारशन नहीं बल्कि रेस्ट्रिक्टिव चेक (restrictive check) की या बन्धेजकी दवा पूछना चाहते थे, और यह कानूनन कोई जुर्म नहीं है।

यह दोहरे खूनका नमूना है। यहाँ तो समाजमें जबतक बात छिपी है, तब तक सब ठीक, और यदि खुलनेकी नौबत आई तो बस 'विष' या 'त्याग'। ले जाकर कहीं दूरके शहरमें या तीर्थस्थानमे छोड़ आये। कुछ दिनोंतक मुहब्बतके मारे कुछ खर्च भेजा और फिर बन्द कर दिया। ऐसी अनाथा स्त्रियोंकी क्या दशा होती होगी उसे पाठक स्वयं विचार सकते हैं।

भारतकी ऊपर बतलाई हुई कई लाख वेश्यायें कौन हैं? हम भारतवासियोंके घरकी विधवायें, हमारी ही बहिनें और बेटियाँ, या उनकी सन्तति। हमारी ही असावधानी, निर्दयता और निष्ठुरताके कारण उनकी यह दशा हुई है।

१ रामकली, विन्ध्याचल–" मैं क्षत्रानी हूं। बालविधवा हूं। मेरे भाई दर्शन करानेके हीलेमे मुझे छोड़ गये। उनके इस तरह त्याग कर देनेका कारण मैं समझ गई, इस लिए मैंने कभी पत्र नहीं भेजा और न लौटनेकी चेष्टा की। अब भीख माँगकर अपना गुजर करती हूं। मैं सर्वथा असहाय हूं।

और कोई जरिया पेट पालनेका नहीं है। उमर २०-२१ वर्षकी है। यहाँ मुझसी ही अभागिनें ८-९ स्त्रियाँ और हैं। उनका चरित्र ठीक नहीं है।"

२ लछमी, वृन्दावन-"मैं ब्राह्मणी हूं। मेरी सास आदि कई स्त्रियाँ मुझे यहाँ छोड़कर चल दीं। पत्र भेजने पर उत्तर मिला कि अपना कर्तव्य स्मरण करो, यहाँ लौटकर क्या मुँह दिखाओगी। वहीं जमुनामें डूब मरो। मेरी माँ नहीं है। पिताने मेरे पत्रका कभी उत्तर नहीं दिया।"

३ श्यामा, हरद्वार-"मेरे पिता मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।"

४ राजदुलारी, गया-"मेरे ससुरालके लोग बड़े धनी हैं। यहाँ मुझे पुरोहितजी छोड़ गये हैं। कुछ दिनों तक पाँच रुपया मासिक आता रहा, पर अब कोई खबर नहीं लेता। पत्रोत्तर भी नहीं आता।"

५ नालिनी और सरोजिनी, काशी-" हम दोनों अभागिने बंगालकी रहनेवाली हैं। हम दोनोंका एक ही घरमें विवाह हुआ था। नालिनी विधवा हो गई। मेरे पति मुझे एक लड़की होने पर वैराग लेकर चल दिये। मेरे ससुरजी पन्द्रह रु० मासिक पेन्शन पाते थे। काशीवास करने यहाँ स्वयं और हम दोनोंको साथ लाये। तीन महीनेके बाद मर गये। एक परिचित बंगाली महाशय सहायता देनेके बहानेसे मिले और एक दिन हम दोनोंका कुल जेवर चुरा ले गये। फिर इन्हीसे लगी हुई पुलिसकी एक घटनासे बल पूर्वक हम अनाथाओंका सर्वनाश किया गया और इस दीन हीन दशाको पहुँचाई गई। एक सौ और बीस रुपया कर्ज हो गया है। इस पुत्रीके सयानी होने पर इसीको बेचकर, अथवा वेश्या बना कर कर्ज अदा करूँगी।"

क्या अन्धेर है। स्त्रियों पर कैसा अत्याचार किया जा रहा है। स्त्रियाँ चाहे कितनी ही गई गुजरी क्यों न हों, पर विना वेईमान शैतान पुरुषोंके बहकाये वे अपने धर्मसे कभी नहीं डिगतीं। स्त्रियोंका चरित्र बिगाड़ना पुरुष जातिका काम है। बाज हरामजादोंने तो सैकड़ों स्त्रियोंकी मिट्टी पलीद कर दी है। यह ठीक है कि ताली दोनों हाथसे बजती है, पर समाज केवल स्त्रियोंको ही क्यों दण्ड देता है? अनाथा स्त्रियाँ ही क्यों घरसे निकाली जाती हैं? कुचरित्र पुरुष-जिनका व्यभिचार स्त्रियोंके मुकाबले सौ पचास गुना अधिक होता है-क्या सजा पाते हैं? समाज इन पापोंकी जड़, पाखण्डी कुचाली पुरुषोंका, क्यों नहीं तिरस्कार करता? ऐसा न करना इन पापियोंको

स्त्रियोंका सर्वनाश करनेके लिए सहारा देना और अनाथ, असहाय अबलाओं पर घोर अत्याचार करना है।

हमारा समाज, जिसे हम मूर्खतावश अति उत्तम समझ बैठे हैं और जिसकी पवित्रता पर फूले नहीं समाते, बिलकुल निर्जीव, निर्बल और सर्वथा अशिक्षित मनुष्योंका समूह है। इस समाजको सच्चरित्र स्त्रियोकी आह और कुचरित्रा स्त्रियोंका पाप भस्मीभूत कर रहा है और यदि इस पर लोगोंने ध्यान न दिया तो यह आह कुछ ही कालमें समाजको जलाकर राख कर देगी—सावधान!

व्यभिचार।

In every part of the world one of the general characteristics of the savages is to despise and disgrace the female sex.—Robertson

भूमण्डलके प्रत्येक भागमें स्त्रियों पर अत्याचार और उनका निरादार करना असभ्यताका मुख्य चिह्न समझा जाता है। वहशी और जगली आदमी ही स्त्रीजातिको तुच्छ दृष्टिसे देखते है। —रावर्टसन।

जैसे लोभीको धन, कामीको उसकी प्रेमिका और चोरको रात प्यारी होती है, व्यभिचारियोंको मादक वस्तुओंसे प्रेम होता है। जहाँ व्यभिचार है वहाँ यह निःसन्देह मौजूद है।

मद्यपान।

मुसलमानी आक्रमणके साथ व्यभिचारिणी वेश्याये आईं, और अँगरेज व्यापारियोके साथ यह रगीन शराब। अब पश्चिमी ठण्डे देशोमे ऐसी वस्तुओका तिरस्कार हो रहा है। लोग इनके भयंकर परिणामोंको समझ रहे हैं। वहाँकी वैज्ञानिक और डाक्टरमण्डलीने आन्दोलन मचा दिया है कि यह शराब उनके देशको, उनके राष्ट्रको और उनके समाजको भारी धक्का दे रही है। उसने सर्वसाधारणको चेता दिया है, और अनुभव करा दिया है कि मद्यपानसे बल घटता है, पुरुषार्थ कम होता है, शरीरमे रोग प्रवेश करते हैं और आयु कम हो जाती है। शरावका काम मांसको गला डालना है। इससे दिमाग खराब होता है और निर्मल बुद्धि मैली हो जाती है।

नेशन (Nation) लिखता है,—"शराबसे मस्तिष्कके रोग, अपच रोग और फेफड़ेके रोग अवश्य उत्पन्न होते हैं। जिसके शरीरमे जितना कम

या ज्यादा बल होता है उतने ही जल्द या देरमें ये रोग घुस सकते हैं। पर शराब पेटमें गई और उसने मस्तिष्क, पाचनशक्ति और फेंफड़े पर अपना कम या ज्यादा बुरा असर डाला। शराबियोंमें फी सैकड़ा २७'१ मस्तिष्कके रोगसे, २३'३ अपचके रोगसे और २६'९६ फेंफड़ेके रोगसे मरते हैं।"

पश्चिमीय देशोंमें मादक वस्तुओंका व्यवहार यद्यपि अत्यन्त अधिक है, पर हर्षकी बात यह है कि वहां टेम्परेन्स सुसाइटियोंके उद्योगसे शराब पीना घट रहा है। पादरी लोग तो अकसर पीते ही नहीं। पर शोक कि भारतके दुर्दिन इन वस्तुओंका प्रचार बढ़ाये जा रहे हैं। विलायतमें तो एक शराबहीका अधिक प्रचार है, पर भारतमें अँगरेजी शराब, देशी शराब, कच्ची शराब, ताड़ी, भंग, गांजा, चरस, अफीम, चण्डू और तमाखू आदि दस चीजोंका प्रचार है। ये दस तो परम्परासे बापदादाओंके वक्तसे चली आ रही हैं। इनमेंसे गाँजा, भंग और चरसका प्रयोग तो सत्य सनातन धर्म्म है। यह पवित्र बूटी अमृत है, देवताओंको चढ़ाई जाती है। इसका वेद और शास्त्रानुकूल सेवन किया जा सकता है। इससे धर्म्म नहीं जाता। वैद्यकसे भी इस ठण्डाईके नित्यके सेवनसे शरीर आरोग्य रहना बताया जाता है। खैर, जो हो। जब इन दस मादक वस्तुओंसे भी भारतकी तृप्ति न हुई तब लोगोंने और भी कई नई नई चीजें ढूढ़ निकालीं।—कोकेन (cocaine) खाने लगे, और नसोंमें जहरीली सुई गोद कर, या यन्त्र द्वारा शरीरमें विष चढ़ाकर, नशा पैदा करने लगे!

भारतमें इन वस्तुओंकी मांग अधिक होनेसे सरकारकी आमदनी बहुत बढ़ गई है और दिनों दिन बढ़ती जा रही है। ३० वर्ष पहलेकी अपेक्षा आज ५५ गुना आमदनी हो गई है! १८९८ मे मादक वस्तुओंसे ५ करोड़ ७४ लाख रुपयेकी आमदनी थी और कुल दस वर्षके बाद सन् १९०८ में यह आमदनी लगभग दूनी अर्थात् ९ करोड़ ५८ लाख और १९ वर्ष बाद अर्थात सन् १९१७ में प्रायः १४ करोड़ रुपये हो गई! *

---

* मादक वस्तुओंसे जो आमदनी हुई है उसका ब्योरा—

सन्	आमदनी पौण्ड	सन्	आमदनी पौं०
१८९८	३८,२८,९४८	१९००	३९,३७,२०२
१८९९	३८,५९,९४२	१९०१	४०,७६,६८१

लखनऊके एक चण्डूखानेका दृश्य।

(देशदर्शन पृ० ११०)

"लम्बी शिखा और पवित्र यज्ञोपवीत धारण किये, दबी जबानसे अद्धा (आधी बोतल शराब) माँगकर उसे धर्मपुस्तकके साथ लपेट बगलमें दबा, दबे पाँव चोरकी तरह खिसक जाते हैं।"

(देशदर्शन पृ० १९२)

अँगरेजी पढ़नेवालोंकी तो कोई बात ही नहीं है, इन लोगोंने तो जिन घरोंमें इसका नाम लेना भी पाप समझा जाता है उनको भी छिप छिप कर पीना शुरू करके पवित्र कर दिया है। यदि आप काशीके किसी ऐसे दवाखा-नेमें जाकर बैठ जाइए जहाँ अँगरेजी शराब भी बिकती है तो तमाशा देखिए कैसी कैसी विलक्षण मूर्तियाँ नजर आती हैं। लम्बी शिखा और पवित्र यज्ञो-पवीत धारण किये, बगलमें पोथी पत्रा दबाये, दबी जबानसे अद्धा (आधी

सन्	आमदनी पौण्ड	सन्	आमदनी पौण्ड
१९०२	४४,३६,६६२	१९११	७६,१०,०००
१९०३	४९,८०,०९६	१९१२	८१,८३,०००
१९०४	५३,६३,४१५	१९१३	८८,९४,०००
१९०५	५६,८७,८२०	१९१४	८८,५७,०००
१९०६	५८,९८,२१९	१९१५	८६,३२,०००
१९०७	६२,२७,०१०	१९१६	९१,४९,०००
१९०८	६३,८९,६२८	१९१७	९३,२८,०००

नोट—एक पौण्ड १५ रुपयेका होता है।

इस हिसाबसे सन् १८९८ में ५,७४,३४,२२० रुपयोंकी और सन् १९१७ में १३,९९,२०,००० रुपयोंकी मादक वस्तुये आईं, अर्थात् १९ वर्षमें ८,२४,८५,७८० रुपयोंकी आमदनी बढी।

केवल एक सालका अर्थात् सन् १९०८ ई० का ब्योरा —

अँगरेजी शराब (विदेशी) .	३,५१,४०८ पौण्डकी
देशी शराब	२३,७६,०६२ ,,
ताडी	१०,२७,४०३ ,,
अफीम जो भारतमें खर्च हुई ..	७,३४,८४८ ,,
अफीम जो विदेश गई .. .	२,७६,३६६ ,,
गाँजा, भंग, चरस आदि .. .	६,२६,४५२ ,,
सरकारी आमदनीका टोटल	६३,८९,६२८ पौण्ड

नोट—यह केवल सरकारी आमदनी है। इनमें मादक वस्तुये बेचनेवालोंका नफा शामिल नहीं है।

बोतल ब्राण्डी !) माँग कर, उसे उसी धर्म्म-पुस्तकके साथ लपेट, बगलमें दबा, दबे पाँव चोरकी तरह खिसक जाते हैं !

भंगके लिए तो कुछ पूछना ही नहीं है । अमीर गरीब, सनातनधर्म्मी आर्य्य, लड़के और बूढ़े, स्त्री और पुरुष किसीको इसके पीनेसे परहेज नहीं । भारत जैसे दरिद्र देशके लिए इसमें सुविधा भी है । एक पैसेमें ही एक आदमीका मतलब हो सकता है, जब कि उधर एक अद्धाहीमे 'चेहरेशाही' देने पड़ते हैं ।

स्मरण रहे कि नशे सब खराब हैं, असर सबोंका बुरा होता है । शराब अत्यन्त बुरी चीज है, लेकिन गाँजा और भंगका परिणाम घटियाँ शराबसे भी बुरा होता है । लोग इसे चाहे पवित्र बूटी कहें या अमृत, पर इसका असर अत्यन्त बुरा है । बम्बइक पागलखानेमें ३७५ पागल दाखिल हुए, उनमेंसे १९६ मादक वस्तुओंके व्यवहारसे पागल हुए थे और उनमें अधिक लोग गाँजा और भंग पीनेवाले थे । १९०८ में भारतके पागलखानोंमें ७२४५ पागल थे । इनमेंसे बहुतेरे मादक वस्तुओंके व्यवहारसे ही पागल हुए थे । ६५२ उचित चिकित्सासे अच्छे हो गये ।

एक मामूली नशा, आदतका नशा सुरती या तम्बाकू है । यह चाहे किसी तरह पर उपयोगमे लाई जाय, देखनेमे जरासी होती है, और इसका दाम या खर्च प्रायः नहींके बराबर समझा जाता है; फिर भी इस कम्बख्तका खर्च ४२ करोड़ पौण्ड (५० लाख मन) का है । यह भी भारतकी वस्तु नहीं है । अँगरेज लोग इसे अमेरिकासे लाये थे । इन्होंने भारतमें इसकी खेती शुरू की थी । इसे आये कुल १०० वर्ष हुए होंगे, पर १९११ में १० लाख एकड़ पर सुरती बोई गई * और ६६ लाख रुपयोंकी विदेशसे आई ऊपरसे ।

* सन् १९१०-११ मे १०,६८,००० एकड़ पर सुरती बोई गई और ४५ करोड़ पौण्ड सुरती पैदा हुई । भारतमे सुरतीका खर्च प्रति वर्ष ४२ करोड़ पौण्ड है । सुरतीके खर्चका ब्योरा यह है —

भारतमें पैदा हुई	४५,००,००,००० पौण्ड
इसमेंसे विदेश गई	२,८४,८५,२४८ पौण्ड
बाकी रही	४२,१५,१४,७५२ पौण्ड

नशेकी चीजोंके उपयोगसे बल घटता है, स्वास्थ्य बिगड़ता है और कुबुद्धि उपजती है। लोग आलसी हो जाते हैं। काम करनेसे घृणा उत्पन्न हो जाती है। इसका निश्चित परिणाम होता है—

जुर्म या अपराध ।

जहाँ व्यभिचार है, शराबखोरी है, दरिद्रता है, वहाँ जुर्मोकी अधिकता अवश्य ही होगी। यहाँका एक यह भी अनोखा दस्तूर है कि लोग खुद चाहे दूसरोंकी बहू-बेटियों पर कुदृष्टि डालें, पर यदि उनके साथ वही व्यवहार किया जाय, तो जान लेनेको तैयार हो जायँ। रेलकी सफरमें इसका नमूना देखनेमें आता है। यहाँ किसी भी व्यभिचारका बदला या उसके कम करनेका उपाय उस व्यभिचारीका सिर काट लेना या उससे फौजदारी करना है।

हम शराब तो खुले हाथो लेंगे और देंगे, किन्तु शिक्षामें थोड़ी रकम खर्च करेंगे। इससे हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि लोग आज जेलसे छूटे हैं और कल ही फिर किसी नये जुर्ममें गिरफ्तार हुए हैं। बारम्बार सजा पाते हैं, पर जुर्म × करनेसे बाज नहीं आते। मनुष्योंके सुधारनेकी यह रीति ही नहीं है। जब तक लोगोंको पेट पालनेके लिए उचित कार्य्य न सिखाया जायगा, तब तक वे और करेंगे ही क्या? जैसे खाली बोरा सीधा नहीं खड़ा रह सकता, वैसे ही खाली हाथ या पेटवाला सदाचारी नहीं रह सकता।

अन्य देशोंमें कैदियोको भी उचित शिक्षा दी जाती है। उनके काम करनेकी तजवीज कर दी जाती है। डाक्टर और वैज्ञानिक उनकी जाँच करते हैं। यदि उनके शरीरमें कोई ऐसी व्याधि हुई जिसके कारण वे जुर्म करते हैं तो उसे दूर करनेकी चिन्ता की जाती है। यह नहीं कि तीन दिनके उपासके बाद भूखकी ज्वाला बरदाश्त न करके किसी लड़केने सड़कके किनारेवाले सरकारी दरख्तसे आम तोड़कर खा लिया, थानेदार साहबने उसका चालान कर दिया और डिप्टीसाहबने खड़े होकर धड़ाधड़ ढाई दरजन बेत

विदेशसे खरीदी गई ६६,७२,९७५ रुपयोकी
७२,०४,८६२ पौण्ड

भारतमें खर्च हुई,—कुल ४२,३७,१९,६१५ पौण्ड।

× सन् १९०८ के जुर्मोका ब्यौरा—

लगवा दिये। चलिए खतम। लेकिन इससे तो वह और बेहया हो जायगा और फिर चोरी करेगा। जबतक कि उसकी रोजीका ठिकाना, पेट भरनेका सहारा न किया जायगा, वह जुर्म करेगा, और करेगा।

हर्षका विषय है कि अब हमारी सरकार इन बातों पर बराबर ध्यान दे रही है—उचित प्रबन्ध भी कर रही है। किन्तु सरकार ही पर सारा बोझा डाल देना ठीक नहीं। इस भारके उठानेमें हम लोगोंको भी सहर्ष अपना हाथ आगे बढ़ाना चाहिए। हम भारतवासी अपना अधिकार पानेके लिए तो शोर मचाते हैं, पर अपना कर्तव्य पालन करनेसे जान बचाते हैं। घूम फिर कर बात वही आती है कि—India must be its own Saviour!

फौजदारोमें १८,४४,२०७ मनुष्यों पर मुकदमें चले।

खूनके मुकदमें	४,७९७	काला पानी हुआ	२,०३३
डकैतोके	२,९८४	जेल गये	१,७४,१९०
अन्य सगीन जुर्मोंके	४३,८३८	बेत खाये	१९,०३४
पशुओंको चोरीके	२९,४५६	जुर्माना हुआ	६,२६,२१०५
मामूली चोरीके	१,९४,२४६	१५ दिनसे कमकी सजा	३४,५०[illegible]
नकब-जनी या सेंध लगानेके	२,२६,२८०	६ महीने तककी	८६,६२[illegible]
फाँसी हुई	४९४	२ वर्षसे ऊपरकी	१०,१०[illegible]

पोर्टब्लेयरमें जहाँ डामल वाले या काले पानीवाले भेजे जाते हैं उक्त वर्ष १४,२०४ कैदी थे। इनमेंसे ८,५५९ खूनी थे, २८२९ डाकू और २८१[illegible] सगोन जुर्मवाले। भारतके जेलखानोंमें ६,२७,२१५ कैदी थे, इनमेंसे २४,६९[illegible] स्त्रियाँ थीं और बाकी पुरुष।

सन् १९१० से १९१५ तक भारतके जेलखानोंमे नीचे लिखे अनुपा[illegible] कैदी थे —

कैदी	१९१०	१९११	१९१२	१९१३	१९१४	१९१५
पुरुष स्त्रियाँ	१००५१६ २४७४	९०३७२ १५१०	९९५८५ २३६५	१०२९७९ २३६०	१०९४०८ २६०७	११५४९[illegible] २७९[illegible]
जोड़	१९२९९०	९१८८२	१०१९१०	१०५५३९	११२०१५	१२२२८[illegible]

भारतमें गृहसुख नहीं मिलता, इससे लोग वेश्याओंके घर जाकर दिल बहलाते हैं । दुःख अधिक है, चिन्ता चिताकी तरह फूंके डालती है, इस पापिनसे कुछ देरको बचनेके लिए,—मानसिक सन्तापसे एक मुहूर्तभरके लिए छूटनेके इरादेसे लोग मादक वस्तुओंका सहारा लेते हैं । यह जवाब ठीक नहीं । असलमें हम अपने बच्चोंकी रक्षा नहीं कर सकते । उन्हें ब्रह्मचारी और सदाचारी बनानेमें, अधिक द्रव्य और समय खर्च करना पड़ता है । इसीकी हमारे पास कमी है । हमारी ही त्रुटिसे हमारे बच्चे निर्बल, कुचरित्र और अनाचारी, स्त्री या पुरुष दोनों होते हैं । हमारे ही दोष, अत्याचार और अनादरसे हमारी पुत्रियाँ बाजारोंमें जा बैठती हैं और फिर हमारे पुत्र गृहसुखके अभावसे, हमारी ही लापरवाहीके कारण कुसंगमें पड़ कर, उन वेश्याओंको सर्वथा अन्य समझकर अपना और उनका दोनोका नाश करते हैं । ये व्यभिचारी या व्यभिचारिणियाँ, शराबखोर, नशेबाज, चोर, चाण्डाल, खूनी, डाकू सब हमारे ही बच्चे हैं । हम लोगोकी असावधानीसे उनकी यह दुर्दशा हो गई है । इनका सुधार अथवा आगेकी सन्तानकी भलाई या बुराई हमारे ही हाथ है ।

यदि हम योग्य माता-पिता हैं, हममें योग्य संतान उत्पन्न करने और उसे योग्य स्त्रीपुरुष बनानेका पुरुषार्थ है, सामर्थ्य है, तब तो हम बच्चे पैदा करें; अन्यथा नहीं । बच्चोको बिलख बिलख कर मरनेके लिए, वेश्या या खूनी बननेके लिए, कंगाल और कायर बननेके लिए पैदा करना भारी असभ्यता है, अत्याचार है, भयंकर पाप है ।

'The greatest social evil of the day is to beget children whom one cannot support.'

'No one should bring beings into the world for whom one cannot find the means of support.'

> बताओ मुझे देश कोई कहीं,
> इसी हिन्दका हो ऋणी जो नहीं ।
> रहा विश्वमें जो बड़ेसे बड़ा,
> वही देश हा! आज नीचे पड़ा ।
> बचाओ उसे, जोश जीमें भरो,
> उठो भाइयो, देशसेवा करो ॥ —प्रीतम ।

आठवाँ परिच्छेद ।
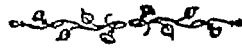
हमारी शिक्षा ।

विद्याधनं श्रेष्ठधनं तन्मूलमितरं धनम् ।

संसार परिवर्तनशील है। हमारी जो आवश्यकतायें आजसे ५०० व पहले थीं वे आज नहीं हैं। जिन चीजोंकी जरूरत उस समय थी व अब नहीं है। उनके स्थान पर नई नई जरूरतें पैदा हो गई हैं। देशक अवस्था जो उस समय थी वह अब नहीं है। इस लिए स्वभावतः ही शिक्षाक ढंग भी वह नहीं हो सकता जो आजसे ५०० वर्ष पहले था।

ससार एक युद्धक्षेत्र है। इसमे वही पुरुष विजयी होता है जो कालकी गतिके अनुसार शिक्षासम्पन्न होता है। पुराने जजर्र साधन किसी काम नहीं आते, वे केवल म्यूजियममें रखने योग्य रह जाते है। हमारे देशके विद्यार्थी जब संस्कृतकी उच्चसे उच्च परीक्षा पास करके निकलते हैं तो वे अपनी रोटी तक कमानेमें असमर्थ रहते हैं। उनकी शिक्षा न तो उनको इस योग्य बनाती है कि वे अपना जीवन-निर्वाह भलीभाँति कर सके और न वे अच्छे नागरिक ही बन सकते हैं। उनकी शिक्षा, अति प्राचीन कालके बिगड़े हुए ढंग पर चली जा रही है। वे देश, काल, जाति, राष्ट्र-संगठन, भारतोत्थान आदि विषयोंसे बिलकुल अनभिज्ञ होते है। उनकी शिक्षा व्याकरणके वितंडाओंमें तथा न्यायके 'पात्राधारम् घृतम् वा घृताधारम् पात्रम्'-जैसे प्रश्नोके हल कर नेहीमे खतम हो जाती है। हमारे देशके संस्कृतके विद्यार्थियोंकी वही दशा है जो आजसे ३०० वर्ष पहले यूरोपके विद्वानोंकी थी। वहाँ 'सूईकी नोक पर कितने फरिश्ते बैठ सकते हैं,' जैसे विचित्र प्रश्नो पर महीनो शास्त्रार्थ हुआ करते थे। भारतकी अवनतिका बड़ा भारी कारण यदि कोई हुआ है तो वह यह कि हमारी जातिके नेताओंने कालक्रमानुसार शिक्षाप्रणालीके बदल नेका यत्न नहीं किया। यदि हमारे देशकी पाठशालाओंमें संस्कृतभाषाके

द्वारा भारत तथा अन्य देशोंका इतिहास पढ़ाया जाता, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, रसायनशास्त्र, पदार्थविज्ञान आदि विषयोंकी उसी संस्कृत भाषामें शिक्षा मिलती, अपना साहित्य, अपने आदर्शपुरुषोंके जीवनचरित्र, अपने देशका गौरव भारतीय बच्चोंको पढ़ाया जाता तो भारत आत्मरक्षाकी युक्तियोंमें ढीला न पड़ता, आज हमारा प्यारा देश संसारसे पीछे न रहता और न हम अन्य जातियोंके घृणापात्र बनते।

यह तो मानी हुई बात है कि जैसी शिक्षा देशके बच्चोंको दी जायगी, उसीके अनुसार देशकी राजनैतिक अवस्थामें और देशकी सभ्यतामें उन्नति या अवनति होगी। यदि शिक्षा देशकालके अनुसार वर्त्तमान जीवनसंग्राममें खड़े करनेके योग्य नहीं है तो उस शिक्षासे शिक्षित हुए व्यक्ति जीवनसग्रामके भयंकर युद्धमें कभी विजयी नहीं हो सकेंगे।

गति जीवनका दूसरा नाम है। जो सभ्यता गतिवान् है, जिसकी शिक्षा कालकी गतिके अनुसार है उसके नष्ट होनेका भय नहीं। शिक्षाप्रणाली भी नये नये आविष्कारोंसे विभूषित, नई नई आवश्यकताओंको पूरा करनेवाली तथा जीवनप्रद होनी चाहिए। नदीका बहता हुआ जल सदा ताजा और जीवनदाता होता है और पोखरका स्थिर जल गन्दगी और बीमारियोंका फैलानेवाला होता है। नदी और पोखर दोनोंहीमें जलत्व समान है—दोनोंहीमें जलके प्रधान गुण विद्यमान हैं, किन्तु भेद केवल यह है कि एक गतिवान् होनेसे शुद्ध और पवित्र होता रहता है और दूसरा स्थिरताके कारण अपवित्रता तथा रोगका पुंज बन जाता है। जो स्थिर है वही पीछे है, वही मृतप्राय है, उसीका अन्त निकट है।

'जीवन्मुक्ति' तथा 'वेदान्त' की लापरवाहीकी शिक्षाने भारतके राष्ट्रीय जीवन तथा संघ-शक्तिको नष्ट कर दिया, जिससे इस देश पर मुसीबतोंकी अटूट भरमार होने लगी। सारे देशमें अराजकता, कुप्रबन्ध और अशान्ति फैल गई थी। किसीको राष्ट्रीय कर्तव्यका उचित मार्ग सूझ नहीं पड़ता था। भारतके सन्मुख जीवन और मृत्युका विकट प्रश्न उपस्थित था। संघ-शक्तिके नाश हो जानेसे राष्ट्रीय गौरवको बचानेका कोई उपाय सूझ नहीं पड़ता था। अत. लोगोंके मनमें स्वभावतः संरक्षकता (conservativism) के भाव उत्पन्न हुए। लोगोंने देखा कि उस कुसमयमें यदि वे राष्ट्रीय उन्नति नहीं कर सकते तो भी प्राचीनताके कट्टर संरक्षक बनकर हिन्दू संस्था-

ओंका अस्तित्व बचाये रह सकते हैं। उन्नति न सही, अस्तित्व तो बना रहेगा। इस संरक्षक बुद्धिका फल यह हुआ कि लोगोंका जीवन और विचारपद्धति बिलकुल नियमित, संकुचित और टिकाऊ हो गई। साहित्य, तर्कशास्त्र, कलाकुशलता, संगीत, चित्रकारी आदि विषयोंमें, जो किसी राष्ट्रके जीते जागते साक्षी हैं, कुछ भी उन्नति न होने पाई। सर्वसाधारणको अपनी बुद्धि, शक्ति और युक्तिमें अविश्वास हो गया। वे यह समझने लगे कि अब हममें नई नई बातोंके ढूंढ़ निकालनेकी शक्ति ही नहीं है। प्राचीनकालके लोगोंहीमें यह शक्ति थी। अब हमारा काम केवल यथाशक्ति उनकी नकल करना है। उनकी ढूंढ़ निकाली हुई चीजोंकी हम रक्षा करते रहें, बस यही बहुत है।

उस समयके इतिहासको पढ़नेसे हमें अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि एक जीते जागते उन्नत राष्ट्रने अपनी अवनति किस प्रकार कर ली और केवल अन्धपरम्पराके या पुरानी लकीरके ही फकीर होनेके कारण भारतने अपनेको किस तरह गारत कर लिया। भारत उस समय अपनी शक्तियोंको पहचान न सका, वह अपनी बुद्धि और युक्तिको काममें न लाकर आँख मूंद कर बैठ गया। फिर क्या था, देशमें चारों ओर ज्ञान और प्रकाशके बदले अज्ञान और अंधकार छा गया। इस अज्ञानयुगका जोर बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि राष्ट्रीय जीवन एकदम तहस नहस हो गया। उस समयका हिन्दुस्तान बुद्धि, शक्ति और युक्तिमें अत्यन्त जीर्ण दशाको प्राप्त हो गया।

लोगोंको यही मालूम होता था और बहुतोंको अब भी यही धुन है कि हमारे पूर्वज किसी समय उन्नतिके शिखर पर चढ़े थे, अब हमारे लिए कुछ उन्नतिका मार्ग ही नहीं है—आगे बढ़नेका हमारे लिए कोई रास्ता ही नहीं है। 'सुवर्णयुग' (Golden age) अथवा 'सत्ययुग' पहले ही हो गया; अब तो 'कलियुग' (Dark age) का जमाना है। इस युगमें उन्नतिके विषय पर अपना मस्तक खपाना व्यर्थ ही नहीं, बल्कि साक्षात् अधर्म है।

तात्पर्य यह कि ज्ञानका भाण्डार बन्द हो गया, संसारभरमें होनेवाला व्यापार रुक गया, राष्ट्रीय स्वाधीनता नष्ट हो गई, स्वदेशाभिमानका लोप हो गया और प्रायः सम्पूर्ण भारत मृत्युके मार्गपर चलता रहा। हमारे अभागे देशकी यह दशा ही अँगरेजी राज्यके पूर्वका इतिहास है।

इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि अँगरेजी राज्यने भारतकी दशामें बहुत कुछ परिवर्तन किया है। भारतमें नई जागृति उत्पन्न हुई है। पचीस तीस वर्ष पहले कहा जाता था कि भारत 'संक्रमण' अवस्थामें है, दस बारह बर्ष पहले इस नई जागृतिका नाम 'अशान्ति' था, परंतु अब कहा जाता है कि भारत अपने 'पुनरुज्जीवन' के मार्ग पर है। इस राष्ट्रीय जागृतिके समय चारों ओर विद्याकी पुकार मची है। देशहितैषी सज्जनोंने इस बातको समझ लिया है कि विद्याके विना इस देशका पुनरुद्धार नहीं हो सकता। भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक यही आवाज गूँज रही है कि 'India must teach or die' अर्थात् भारत या तो शिक्षित हो या रसातलको चला जाय।

और यही सत्य भी है। 'विद्याविहीनः पशुः'—जिनमें विद्या नहीं है वे इस संसारमें मनुष्यके रूपमें पशुओंका काम करते हैं। इतने बड़े और बलशाली पशु हाथीके मस्तक पर एक छोटासा महावत बैठकर अंकुशसे मारता है और हाथी चिंघाड़ मारकर उसी महावतकी मर्जीके मुताबिक काम करता है। यही कारण था कि अकबर और औरंगजेबके हिन्दू सेनापति मानसिंह और जयसिंह आदिने जैसे काम अपने प्रभुओंके लिए किये, वैसा काम वे अपने देशके हितके लिए न कर सके। अकबर और औरंगजेब दोनों ही अपने बुद्धिवैचित्र्यसे अपने कट्टरसे कट्टर शत्रुओंको वशमें करके डण्डेके जोरसे उनसे जो चाहते थे करवा लेते थे। मुगलोंकी रोटीके एक टुकड़ेके बदले राजपूतानेके बड़े बड़े सरदारोंने अपनी उज्ज्वल आत्माको काला करना और अपने ही देशभाइयोंका गला काटकर देशको तहस नहस करना स्वीकार कर लिया। हमारे पड़ोसी जापानके बच्चोंने जब पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की, तो अपनी योग्यता और विद्याको अपने देशकी सेवामें लगा दिया। वे स्थान स्थान पर स्कूल कालेज खोलकर अपने अशिक्षित भाइयोंको अपने बराबर बनानेमें लग गये। पचास वर्षके अन्दर उन्होंने अपने देशको खड़ा करके दिखा दिया। उसके विपरीत हमारे यहा पाश्चात्य शिक्षा पाये हुए लोग अपने ही देशभाइयोंसे घृणा करने लगे। एक दो दर्जन देश-सेवक भी निकले, पर बहुतेरोंको तो अपनी भाषा, अपना भेष, अपना रहन-सहन ही अच्छा नहीं लगता। अपनी योग्यता, अपनी प्रतिभाको वे वेश्याओंकी तरह बेचनेमें जरा भी नहीं लजाते। रुपयेके लिए वे घृणितसे भी घृणित कार्य करनेको उद्यत हैं।

अमेरिकाके एक शिक्षित पुरुष जोसेफ रीड अपने देशका हित साधन करनेके लिए यूरोपके किसी देशमें गये। वहाँके राजाने उन्हे घूस देकर अपनी ओर करना चाहा, पर उन्होंने उत्तर दिया कि " यद्यपि मैं बेचारा खरीदे जाने लायक नहीं हूँ, लेकिन जैसा भी हूँ, आपका राजा मुझे खरीदने योग्य धनवान् नहीं है—I am not worth purchasing But such as I am, the king of this country is not rich enough to buy me."

अँगरेजी स्कूलोंमें शिक्षा पाये हुए लाखों भारतीय आज गवर्नमेण्टके भिन्न भिन्न विभागोंमें नियुक्त हैं। हजारों रेलवे कर्मचारियोंका काम करते हैं। भला ये शिक्षित कहलानेवाले देशका क्या उपकार करते हैं? अदालतोंके मुन्शी, मुहर्रिर, पेशकार और बहुतसे तहसीलदार और डिप्टी कलेक्टर गरीब प्रजा पर कैसा अत्याचार करते हैं! पुलिसवालोंकी तो बात ही निराली है। यूनीवर्सिटियोंके डिगरी-होल्डर कानूनका पेशा करनेवाले, लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा करते हैं या उलटा उन्हें लूटते हैं? ये रुपयेके लिए देशबन्धुओंका जानबूझकर गला काटते हैं। वेश्याओंकी तरह इनके लिए शरीर और आत्माको बेचना ही इनके लिए ' ड्यूटी ' है। हाय! हाय! यदि भारतका शिक्षित समाज इस अँगरेजीके श्रेष्ठ शब्द ' ड्यूटी–(Duty) ' का महान् और पुनीत अर्थ समझा होता तो भारतका भी पुनरुद्धार जापानकी तरह ५० वर्षोंहीमें हो गया होता।

कहनेका तात्पर्य यह कि शिक्षा बहुत अच्छी अँगरेजी या संस्कृत बोलनेमें नहीं है, शिक्षा काले या गोरे चेहरेमें नहीं है, शिक्षा बहुतसे विद्वानोंके नाम रट लेनेमें नहीं है, शिक्षा लम्बे लम्बे व्याख्यानोंमें नहीं है, शिक्षा टोप, अचकन, पाटलूनमें नहीं है, और शिक्षा बहुत बड़ी बड़ी डिगरियाँ ले लेनेमें भी नहीं है। शिक्षा वह है जिससे मनुष्यका अन्तःकरण और बुद्धि बढ़े। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके विकाशको ही शिक्षा कह सकते हैं। शिक्षाका मुख्य अर्थ मनुष्यको मनुष्य बनाना है जिससे वह अपनी शक्तियोंको समझकर उनसे निज कुटुम्ब, समाज और राष्ट्रकी सेवा करके संसारमात्रके कल्याणका कारण हो।

इंग्लैण्डने हमें किसी अंशमें शिक्षा दी है। इसके लिए हम उसके कृतज्ञ हैं, पर वह शिक्षा प्रायः उसीके लिए अधिक उपकारकारिणी हुई है। एक खेतमें बाँसका बाड़ा बनाकर चार पाँच सौ बैल बन्द कर दीजिए। बैलोंके पसीनेका

उपजाया हुआ अन्न उनके सामनेसे ढोकर बाहर ले जाइए। उन्हें भूसा तक खाने मत दीजिए और सुबह शाम जरा खोलकर हरी-हरी दूब दिखा दीजिए। वे बैल भूखों मर जायँगे, पर अपने छुटकारेका यत्न न करेंगे। क्या ५०० बैलोंके सींग आपका मामूली बाड़ा तोड़नेके लिए काफी नहीं हैं? वे निस्संदेह उस बाड़े तथा उनकी पसीनेकी कमाई पर मजा उड़ानेवाले और उन्हें भूखों मारनेवालोंका चिथड़ा उड़ा सकते हैं, पर इतना उनको ज्ञान नहीं।

जिस शिक्षामे सूझ नहीं, जो बुद्धिके विकासमें सहायता नहीं देती और जिसमें संकट दूर करनेके उपाय ढूंढ़ निकालनेका बल नहीं, वह शिक्षा नहीं कुशिक्षा है।

अँगरेजोंकी वर्तमान शिक्षाप्रणालीने हमें केवल लिखना पढ़ना सिखाकर अपने ही काम करने योग्य बनाया है। उस शिक्षासे हमारी बुद्धिकी गाँठ नहीं खुली, हमने अपनी शक्तियोंको नहीं पहचाना, अपने सच्चे स्वरूप और उद्देश्यको भूलकर हम अपनेको छोटा ही समझते रहे। हमारे अँगरेजी स्कूल और कालेजोने हमें रट रट कर पास करना ही सिखाया। हमारी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाय, हमारा चरित्र खराब होजाय, इन बातोंसे कालेज और स्कूलके अधिष्ठाताओंको कुछ प्रयोजन नहीं। लड़के परीक्षा पास कर लें—बस यही उनका मुख्य उद्देश्य है। वर्तमान अँगरेजी स्कूल और कालेजोकी शिक्षा शिक्षा नहीं है, यह केवल परीक्षा पास करानेकी मशीन है।

ये परीक्षा पास करानेकी मशीनें कितनी हैं, जरा सन् १९१४–१५ की सरकारी रिपोर्टके अनुसार उनका व्योरा भी सुन लीजिए:—

प्रायमरी स्कूलोकी संख्या—जिनमें हिन्दी-उर्दूकी प्रारम्भिक पुस्तकें पढाई जाती हैं—१,३१,७१२ लाख है और पढ़नेवालोकी संख्या ५४,२७,८५०। इनमें लड़कियोकी संख्या १९१४—१५ में ५,५९,८३१ थी, पर स्त्रियोकी आबादीके हिसाबसे यह संख्या बहुत ही कम है।

सेकण्डरी स्कूलोकी सख्या ६,९८० और उनमें पढ़नेवालोकी संख्या १०,९७,९९२ है।

हाई और अँगरेजीके मिडिल स्कूल ४,४३३ हैं, पर इनमें सरकारी स्कूल केवल २९६ हैं, शेष सब गैरसरकारी हैं, उन्हें प्रजा अपने खर्चसे चलाती है।

टेक्निकल और इन्डस्ट्रियल १९८, पढ़नेवाले ११,१७६

स्कूल आफ आर्ट ९, पढ़नेवाले १,४११।

सन् १९१३-१४ में एग्रिकलचरल स्कूल (कृषिविद्यालय) एक था और पढ़नेवाले ११ थे। १९१४-१५ में वह भी न रहा।

मेडिकल स्कूल (डाक्टरी स्कूल) २४, मेडिकल कालेज ५, विटनरी या पशुओंके रोगोंके डाक्टरी स्कूल ४।

कानूनके कालेज २२, पढ़नेवालोंकी सख्या ४,४७६।

कमर्शियल (व्यापारी) स्कूल ६१। इनमें केवल ३ सरकारी हैं, शेष सब प्राइवेट हैं।

विश्वविद्यालय ५ और कालेज १९५।

नीचे लिखे कोष्टकसे साफ साफ समझमें आ जायगा।

विद्यालयोंकी श्रेणी	विद्यालयोंकी सख्या		विद्यार्थी	
	लड़कोंके	लड़कियोंके	लड़के	लड़कियाँ
प्रायमरी स्कूल	११६,०१२	१५,७०७	४५,१८,००४	९,२९,८४६
सेकडरी स्कूल	६,३७८	६०२	१०,११,२०३	८६,७८९
ट्रेनिंग आदि स्कूल	७,६५२	१४८	२,१०,२८७	१४,७३२
प्राइवेट स्कूल	३६,३८५	१९८४	५,५६,०६९	७५,७७२
कालेज	१८५	१०	५०,५७९	३६९
कुल	१६,६६,१२	१८,४४४	५३,४६,१४२	११,०८,६९८
सबका जोड़	१,८५,०५६		६४,५४,८४०	

इन १८,५०,५६ विद्यालयोंमेंसे ४०,१२४ विद्यालय ऐसे हैं जिनका प्रबंध सरकार, लोकल फंडों या म्युनिसिपल बोर्डोंके द्वारा होता है; ८८,२५४ विद्यालय ऐसे हैं जिन्हें सरकार, लोकल फंडों या म्युनिसिपल बोर्डोंसे सहायता मिलती है और ५६,६७२ विद्यालय ऐसे है जिन्हें किसी प्रकारकी सरकारी आदि सहायता बिलकुल नहीं मिलती।

हर्षका सम्वाद है कि भारतसरकार शीघ्र ही प्राइमरी स्कूलोंकी संख्या एक लाख नब्बे हजार कर देनेवाली है। पिछले २० वर्षोंमें शिक्षा-विभागका खर्च चार करोड़से साढ़े ग्यारह करोड़ हो गया है। सन् १९०१-२ में ४,४४,४७० लड़कियां पढ़ती थीं, १९१४-१५ में इनकी संख्या १०,७८,७२१ हो गई

। इसमें कोई शक नहीं कि हमारी शिक्षा दिनोंदिन बढ़ती जाती है, पर
प्र हिसाबसे, सो अलग छपे हुए कोष्टक+नम्बर १ मे देखिए।

मैं यह नहीं कहता कि पूर्वोक्त शिक्षासे कुछ लाभ नहीं है, इस थोड़ीसी
क्षासे भी देशका कुछ न कुछ सुधार अवश्य होगा, पर साथ ही यह बात भी
प्र है कि प्राइमरी, वर्नाक्यूलर और मिडिलकी शिक्षा ऐसी नहीं होती कि
नको पाये हुए व्यक्तियोकी गणना शिक्षित-समाजमे की जाय। पर यह शिक्षा
यहाँके बालक और बालिकाओंको नहीं मिलती। माननीय गोपाल कृष्ण
खलेका 'प्राइमरी एज्युकेशन बिल' पास न हो सका। कहा गया कि इसका
ख्य कारण खर्चकी कमी है। अमेरिकामें राज्यकी ओरसे कालेजोंमें भी शिक्षा
फ्त दी जाती है। वहाँका सिद्धान्त है कि प्रजाको हरतरहकी पूरी शिक्षा
ा समाज तथा राज्यका धर्म्म है। जापानी राजा प्रजा दोनों ही सर्वसाधा-
की शिक्षाका पूर्ण उद्योग करते हैं और इंग्लैण्डका क्या पूछना, उस देशमे
प्रजाको मुफ्त शिक्षा देनेका प्रचार है। सभ्य संसारमे केवल भारत ही

सभ्य देशोंकी प्रारम्भिक शिक्षाका ब्योराः—

देश।	विद्यार्थियोंकी सख्या।	प्रतिविद्यार्थी खर्च।	आवश्यक आयु।	देशोंकी जनसख्या।
मेरिका	१,६८,००,०००	४०	८—१६	८,२०,००,०००
स्ट्रेलिया	७८,००,०००	३६	७—१४	५०,००,०००
व्टजरलैण्ड	५,०२,०००	३२	६—१४	३५,००,०००
युक्तराज्य	७५,००,०००	३०	५—१४	४ ४२,००,०००
गल	२६,०००	३·०	६—१४	५,४४,०००
र्मनी	९०,००,०००	२७	६—१४	६,५०,००,०००
देशोका जोड	४,२३,२८,०००			२०,०२,४८,०००
रत	५४,४७,८५०	०·२५		३१,५०,००,०००

+ Statistical Abstract, British India 1890-1900 to 1903-9 Page 180

एक अभागा देश है जहाँ शिक्षा पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है और प्रारम्भिक शिक्षाको आवश्यक और मुफ्त नहीं किया जाता।

सभ्य संसारकी प्रारंभिक शिक्षाके हिसाबसे भारतमें ६ करोड़ विद्यार्थी होने चाहिए थे, पर हैं कुल ५४ लाख। अर्थात् यहाँ साढ़े पाँच करोड़ बालकोंकी शक्तियोंके विकासके लिए कोई सामान नहीं है।

१९१४-१९१५ में भारतमें प्रति सैकड़ा ३३'९ लड़के और प्रति सैकड़ा ६'३ लड़कियाँ-जिनकी अवस्था स्कूल जानेकी है-शिक्षा पाती थीं।

अब जुदा जुदा प्रान्तोंकी भी शिक्षाकी दशा देखिए—

सन् १९१२-१३ निम्न लिखित प्रांतोंमें स्कूल जानेवाली उमरके लड़कों और लड़कियोंमेंसे नीचे लिखे हिसाबसे लड़के और लड़कियाँ शिक्षा पातीं थीं-

प्रांत	लड़के	लड़कियाँ
मद्रास	३३ १	७'४
बम्बई	३६ २	७'४
बंगाल	४० ९	६'८
बिहार और उड़ीसा	२६ ०	३'४
संयुक्तप्रांत	१७'४	१ ५
पजाब	१८'१	२'९
बरमा	२१'८	९'०
मध्यप्रदेश और बरार	२५'९	२'८
आसाम	३०'८	३'७
उत्तरपश्चिमसीमाप्रांत	१५'४	१'६
कुर्ग	३३'६	१७'४

शिक्षाके बारेमें संयुक्त प्रांतकी दशा बहुत ही गई बीती है। श्रीयुत हृदयनाथ कुंजरूने हिसाब लगाया है कि यहाँ ८ लड़कोंमें ७ को किसी प्रकारकी शिक्षा नहीं मिलती, और ४०० लड़कियोंमें कुल ५ लड़कियोंको थोड़ी बहुत शिक्षा मिलती है।

इसी शिक्षाकी उन्नति पर, इसी शिक्षाके बल पर आप भारतवर्षके ५००से अधिक मत-भेदोंको मिटाकर एकता फैलाना चाहते हैं, २५३ भिन्न भिन्न भाषायें बोलनेवाले भारतवासियोंको, एक भाषा बोलना सिखाया चाहते हैं, चीन और

म) के सूची।

	१९०५-	१९०६-७	१९०७-८	१९०८-९
बी०				
बंगाल	४८१	४५१	६७६	७७९
सयुक्त प्रात	१८८	२७१	२६१	२३५
पंजाब	१२९	११६	१४३	१७२
मदरास	१७०	५९९	५६४	५७९
बम्बई	१९०	३७७	३२६	४०७
अन्य प्रान्त	५९	४१	१०८	८५
कुल प्रान्तोंके जोड़	७३१७	१८५५	२०७८	२२५७
एफ०				
बगाल	०२	७६९	६७१	७१५
सयुक्त प्रान्त	७२	२९९	४७३	३९७
पंजाव	९:	२९३	२९४	४५९
मदरास	०१	२२०६	२१६३	२९५७
वम्वई	४.	१०२९	८९१	१०६४
अन्य प्रान्त	६१	३५७	४४०	२७४
कुल प्रान्तोंके वालोंका	२	४९७३	४९३२	४९६६

सारे सरकारी और प्राइवेट स्कूलोंमें बिना फीस शिक्षा देनेका सरकारी कानून है और बिना फीसके शिक्षा दी जाती है।

भारतवर्षमें १९१० ईस्वीमें प्रकाशित होनेवाले दैनिक, साप्ताहिक, अर्ध-साप्ताहिक, और मासिकपत्रोंकी संख्या १,६३३ थी। अमेरिकामें केवल दैनिकपत्रोंकी संख्या २,३४९ है। वहाँ १५,९८३ साप्ताहिक, ५५४ अर्ध साप्ताहिक, और २२,७३० मासिक पत्र निकलते हैं। जरा विचार तो कीजिए, कहाँ, १,६३३ और कहाँ ४१,६१६। भारतवर्ष और अमेरिकाकी आबादीके हिसाबसे यहाँ डेढ़ हजार पत्रोंके बदले डेढ़ लाख पत्र होने चाहिए थे?

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयने अपने एक व्याख्यानमें कहा था कि-"भारतके पाँच विश्वविद्यालयोंमें २८,००० विद्यार्थी हैं, और अमेरिकामें २४,००० प्रोफेसर हैं!"

भारत एक लाखमसे एक पुरुष उच्चशिक्षा पाता है और दस लाख पुरुषोंमेंसे एकको विज्ञान (सायन्स) की शिक्षा दी जा रही है।*

अमेरिका और जर्मनीके छोटे छोटे लड़के यहाँके विद्वान् विज्ञानियोंसे अधिक साइन्स जानते हैं और साइन्सके नये नये आविष्कार करते हैं। †

लन्दनके 'ब्रिटिश म्यूजियम' नामक पुस्तकालयमें ४० लाख पुस्तकें हैं और उसमें हर साल ५० हजार नई पुस्तकें बढ़ाई जाती हैं। पुस्तकोंकी आलमारियाँ यदि एक कतारमें रख दी जायँ तो उनकी वह लाइन ४६ मील लम्बी होगी! अर्थात् सब पुस्तकोंको यदि आप देखना चाहें तो आपको ४६ मील चलना होगा!

	जो लिख पढ सकते थे।	जो बिलकुल लिख पढ नहीं सकते थे।
मर्द	१,४६,९०,०८०	१३,४७,५००२६
औरत	६,९६,३४१	१४,२९,७६,४५९
जोड़	१,५६,८६,४२१	२७,७७,२८,४८५

* Professor P. C Ray, D Sc, scientist of the worldwide fame

† Professor M. C. Sinha, M. Sc, famous scholar of Japan, America and Germany.

भारतकी आबादी रूसको छोड़कर सारे योरपके बराबर है । जिस आबादीमें यहाँ ९ विश्वविद्यालय × हैं, उसी आबादीमे वहाँ ७६ हैं । देखिए:—

देश ।	जनसंख्या ।	विश्वविद्यालय ।
इँग्लैण्ड (U. K.)	४१० लाख	१८
अमेरिका	८५८ ,,	१३४
फ्रांस	३९० ,,	१५
जर्मनी	६४५ ,,	२२
इटली	३२० ,,	२१

पाँचों सभ्य देशोंकी जनसंख्या २६३३ लाख और विश्वविद्यालय २१०
अकेले भारतकी जनसंख्या ३१५० लाख और विश्वविद्यालय कुल ६

शिक्षाका अभिप्राय केवल मानसिक शक्तियोंको ही विकसित करना नहीं है। मानसिक शक्तियोंके साथ साथ शारीरिक शक्तियोंका बल, आयु, आरोग्य आदिका बढ़ाना भी परमावश्यक है। सो इसके विषयमें माननीय डाक्टर राय—जो २३ वर्ष तक प्रेसिडेन्सी कालेजमें साइन्सके प्रोफेसर रह चुके हैं, और जिन्होंने नवयुवकोंकी दशा पर बराबर ध्यान रक्खा है—कहते हैं कि— " यहाँ प्रति सैकड़ा ५० लड़कोंको बदहजमी और भूख न लगनेकी शिकायत रहती है और प्रति सैकड़ा २५ की तन्दुरुस्ती मलेरिया ज्वरसे खराब हो जाती है । " *

उनकी रायमें विद्यार्थियोंकी इस शोचनीय दशाके मुख्य कारण ये हैं—एक तो मेस—जिनमें वे खाते हैं,—ठीक और उपयोगी खाना नहीं दे सकते। उन्हे कम और बुरी गिजा मिलती है । दूसरे छोटा कमरा, जिसमे छात्रोंको एक साथ रहना पड़ता है, तीसरे बुरी जगह पर मकानोका होना, और चौथे बहुत ज्यादा दिमागी मेहनत ।

यह तो विद्यार्थियोंके स्वास्थ्यका बुरा हाल हुआ, अब लीडरोंकी शोचनीय कहानी † और सुन लीजिए:—

× बरमा, और मध्यप्रदेशके नाम अभी विश्वविद्यालयोंकी गणनामें नहीं आ सकते, इसके लिए अभी कुछ समय चाहिए ।

* The Indian Raview, January 1913

† Prof. D.C. Ray, D Sc

१–जगत्प्रसिद्ध व्याख्याता श्रीयुत स्वामी विवेकानन्द,	मृत्यु	अवस्था	३९ वर्ष
२–श्रीयुत जस्टिस द्वारकानाथ मित्र	,,	,,	३९ ,,
३–श्रीयुत दीनबन्धु मित्र प्रसिद्ध उपन्यासलेखक	,,	,,	४२ ,,
४–श्रीयुत केशवचन्द्रसेन	,,	,,	४९ ,,
५–श्रीयुत क्रिस्टोदास पाल	,,	,,	४६ ,,
६–श्रीयुत कृष्णस्वामी ऐयर	,,	,,	४९ ,,
७–श्रीयुत जस्टिस तैलंग	,,	,,	४८ ,,
८–श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले	,,	,,	४९ ,,

कैसी हृदयवेधक दशा है ! अब दूसरी ओर नजर उठाइए।

डारविनने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ' Origin of Species ' को ५२ वर्षकी उमरमें लिखा था। गोयथने अपनी सब पुस्तकोंसे अच्छी और प्रसिद्ध पुस्तक ' Fanof ' को ६० वर्षकी उमरमें लिखा था। लार्ड केल्विन साइन्सका रिसर्च (खोज) ७८ वर्षकी अवस्थातक करते रहे। सर विलियम क्रुक्सकी आयु ८० वर्षकी है और वे अब तक युवा पुरुषके समान काम कर रहे हैं। अमेरिकाके प्रसिद्ध आविष्कारक एडिसन साहब जिन्होने फोनोग्राफ, टेलीफोन, बिजलीकी रोशनी तथा और बहुतसी चीजोका आविष्कार किया है और जिनकी आयु इस समय ६७ वर्षकी है—प्रण करके कहते है कि मैं २०० वर्ष जीवित रहूँगा। जितना काम वे ३० वर्षकी अवस्थामें कर सकते थे, अब ६७ वर्षकी अवस्थामें उससे दूना करते हैं !

हमारे लीडरोकी तन्दुरुस्ती ४० वर्षकी उमरमे ही बिगड़ जाती है, उनका शरीर सूखकर लकड़ी हो जाता है।

डाक्टर महाशय चिल्ला उठते हैं और व्याकुलतासे कहते है कि " देशकी दशा अत्यन्त बिगड़ी जा रही है, हमारा दुर्भाग्य जोर पकड़ता जाता है। यदि कुछ सुधार न हुआ तो वह दिन दूर नहीं है जब चीन और जापानके विद्यार्थी पृथ्वीसे लुप्त हुई हिन्दू जातिके ग्रंथादिकोको इकट्ठा करनेके लिए हिन्दुस्तानमें आवेंगे और वे ग्रन्थ उनके—चीनजापानियोके—विद्यालयोंमे पढ़ाये जायँगे और ससारसे उठ जानेवाली हिन्दूजातिका यही एक मात्र अंतिम स्मारक रह जायगा। "

दूसरे खण्डका सारांश।
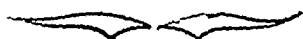
दैवी कारण। हम देखते हैं कि जनसंख्या अवश्यमेव उसी संख्या तक परिमित रहती है जिस संख्या तकके भोजनके लिए अन्न मिल सकता है। जनसंख्या अन्नकी वृद्धिके साथ ही साथ बढ़ती है। इसकी (जनसंख्याकी) निःसीम वृद्धिको रोकने और उसे एक नियत संख्याके भीतर रखनेवाले दो प्रधान कारण हैं— एक दैवी और दूसरा मानवी। दैवी कारण वह है जिससे प्राणी ज्ञान या विवेकरहित पशुओंके समान विषय-वासनाओंके वशीभूत हो सन्तानोत्पत्ति करते जायँ, इस बात पर ध्यान न दें कि जिनको वे उत्पन्न करते हैं उनके आहारका भी उचित प्रबन्ध है या नहीं, और ठीक पशुपक्षियोंकी तरह उनकी वृद्धि स्थानाभाव तथा आहारके कारण प्रकृतिके कठोर नियमोंसे कुचल डाली जाय।

भोजनकी सामग्रीके अभावके अतिरिक्त और भी कई कारण जनसंख्याकी निःसीम वृद्धि रोकनेमें सहायता किया करते हैं। वे कारण बुरे रीति-रिवाज, नशेबाजी और व्यभिचार आदि हैं। इन सब कारणोंसे मनुष्यका शरीर धीरे धीरे निर्बल होकर बहुत जल्द मौतके पंजेमें फँस जाता है।

जनसंख्याकी निःसीम वृद्धिको रोकनेवाले प्रधान कारण हैं,—युद्ध, दरिद्रता, अकाल, रोग और मृत्यु, कुरीतियाँ, दुराचार या व्यभिचार और नशेबाजी आदि।

युद्ध। मनुष्योंमें लड़नेका स्वाभाविक गुण या अवगुण है। जीवनरक्षाके लिए उसे दूसरोंसे युद्ध करना पड़ता है। सबल जातियाँ, निर्बल जातियोंका अधिकार दबाना, उनका धन, सम्पत्ति, और देश छीनना और कभी कभी उनके देशमें बसकर उन्हें सर्वथा निर्मूल कर देना चाहती हैं। जब किसी देशमें अविद्या आदिके अन्धकारसे स्वार्थ और फूट जोर पकड़ती है, तब ईर्षा और द्वेषसे वहांके निवासियोंमें ही आपसमें लड़ाई होने लगती है और विदेशी जातियोंको, सहजहीमें विजय प्राप्त हो जाती है, और धीरे धीरे उनका (देशवासियोंका) सर्वनाश हो जाता है। राजनीतिमें मित्रता आदि कोई सद्गुण नहीं हैं। अपने राष्ट्रकी स्वार्थसिद्धि ही इस नीतिका मुख्य उद्देश है। संसारके प्रत्येक काल और देशमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की बात सिद्ध

होती आई है। इससे समय समय पर छोटे बड़े युद्ध हुआ ही करते हैं और प्रकृति, युद्धद्वारा अत्यन्त बढ़ी हुई जनसंख्याका संहार करती है।

दरिद्रता। भारत अन्य देशोंके सम्मुख घोर दरिद्र है। इस विषयमें संसारके किसी सभ्य देशकी तुलना इस देशसे नहीं की जा सकती। भारत-वासियोंकी पुश्तैनी जायदादका मूल्य प्रति जन १४≡) और इंग्लैण्डवालोंका ४,५००) आँका जाता है। आस्ट्रेलिया और भारतके पशुधनकी तुलना करनेसे भारतमें २५३ करोड़ या ढाई अरब पशु कम हैं। भारतवासियोंकी वार्षिक आय एक पौण्ड या १५ रुपयेसे कम है; और स्काटलैण्डवालोंकी ६७५), अमेरिकावालोंकी ५८५), फ्रांसकी ४०५) और जर्मनीवालोंकी ३३०) है। भारतवासियोंकी दैनिक आमदनीकी औसत प्रति जन प्रति दिन दो पैसा पड़ती है। भारतके लगभग आधे काश्तकार पेटभर अन्न नहीं पाते। यहाँ कई करोड़ जन भूखों मरते हैं। दरिद्रताके कारण भारतमें शिक्षाका ठीक प्रवन्ध नहीं हो सकता। धनके अभावसे यहाँ स्कूल नहीं खोले जा सकते। जिस जनसंख्यामें यहाँ कुल ९ विश्वविद्यालय हैं, उसी जनसंख्यामें अन्य देशोंमें २१० विश्वविद्यालय हैं। यहाँ एक लाखमें एक जनको उच्च शिक्षा, और दस लाखमें एक जनको विज्ञानकी शिक्षा मिल रही है। भारतके साढ़े ३१ करोड़में कुल १८५ लाख जन लिख पढ़ सकते हैं, वाकी ३९ करोड़ ९५ लाख भारतवासी सर्वथा अनपढ़ हैं। भारतके कुल वड़े वड़े पदों पर गोरे नियुक्त हैं। भारतवासियोंको वेतन इतना कम मिलता है कि वे किसी तरह अपने कुटुम्बका पालन नहीं कर सकते और नाना प्रकारके दुःख सहकर अकालमृत्युके ग्रास बनते और अनाथ और विधवाओंकी संख्यामें अधिकता करते हैं। भारतके काश्तकार और मजदूरोंकी जाँच करनेसे पता चलता है कि वे घोर दरिद्रताका दु.ख भोग रहे हैं। उन्हें पेट भर अन्न नहीं मिलता। उनकी सालाना आमदनीकी औसतसे जेलके कैदियोंके खिलानेमें अधिक व्यय होता है। अन्य देशोंमें काम करनेके लिए आदमी नहीं मिलते, और भारतमें वेगार यानी मुफ्तमें काम करनेवाले मिलते हैं। यहां ५६ लाख भीख मांगनेवाले हैं। भारतका कुल जल और स्थलका वाणिज्य, कुल उप-योगी उद्योग और धन्धे, कुल व्यापार और शिल्प-कौशल विदेशियोंके हाथ जा चुका और चला जा रहा है। यहाँका व्यापार विदेशियोंके मूल-धनसे होता है जिसका नफा विदेश जाता है। भारतमें दिनोंदिन दरिद्रता बढ़ती

जा रही है। यहाँ अधिक सन्तानोत्पत्ति करना पूर्वोक्त विपत्तियोंमें अधिकता करनी है, जिनका निश्चित परिणाम भारतका पूर्ण क्षय और विनाश है। प्रकृति, दरिद्रताद्वारा जनसंख्याका अधिक बढ़ाव बड़ी ही निर्दयतासे रोकती है।

अकाल। अकालोंके पड़नेका प्रत्यक्ष कारण पानीका न बरसना जान पड़ता है, पर सच्चा कारण भारतकी दरिद्रता है। इतिहासके पण्डित बतलाते हैं कि भारतमें पहले बहुत कम अकाल पड़ा करते थे, पर अब तो इनकी भरमार हो गई है। आमदनी नहीं बढ़ रही है और आबादी बढ़ती जा रही है, इससे जहाँ जरा पानीमें हेर फेर हुआ कि तुरत घोर अकाल पड़ा और प्रकृतिने भयंकररूपसे जनसंख्याका संहार करना प्रारंभ किया। १० वर्षमें १९० लाख (एक करोड ९० लाख!) भारतवासी कालके ग्रास बने हैं।

रोग और मृत्यु। संसारके प्रत्येक देश और कालमें भिन्न भिन्न आयुके मनुष्य रहे हैं। मनुष्यकी आयुका ठीक ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। उचित आहार और विहारसे मनुष्यकी आयु सदा बढ़ती, और विरुद्ध आहारविहारसे घटती है। भारतमें सात्त्विक आहार, शुद्ध वायु, पवित्र जल, और पुण्यमय जीवन व्यतीत करनेका अभाव है। इसीसे इस अभागे देशमें लोगोंकी आयुकी औसत दिनोंदिन घटती जा रही है, और मृत्युकी संख्या बढ़ रही है। भारतकी जनसंख्या अत्यन्त अधिक ही नहीं वरन् अत्यन्त घनी भी है। यहाँ, साफ और हवादार मकानोंका अभाव है। काशी और कलकत्ता आदिके अनेक मकानोंकी देखभाल करनेसे बड़ी बुरी अवस्था दिखाई देती है। गाँवोंके मकान भी बड़े बुरे ढंगके होते हैं, स्त्रियाँ और बच्चे ऐसे ही बुरे मकानोंमें रात दिन आयुपर्यन्त बन्द रहते हैं। इससे भारतमें स्त्रियाँ और बच्चे अत्यन्त अधिक मरते हैं। भारतमें व्यभिचारकी अधिकता होती जाती है। कुरीतियोंसे, विधवाओंकी अधिकतासे, मूर्खतासे, और भाग्यको दोषी ठहराने आदिसे, वेश्यायें बढ़ रही हैं। भारतसे वीर्यरक्षा और ब्रह्मचर्यकी महिमा लोप हो गई है। यहाँ नशेबाजी और जुर्म बढ़ रहे हैं। भारतवासियोंका आचरण नष्टभ्रष्ट हो गया है। इससे, भारतवासियोंकी आयुकी औसत अन्य देशवालोंसे आधी रह गई है, और भारतमें मृत्युसंख्या, सारे संसारसे अत्यन्त अधिक होने लगी है।

विवाहकी अधोगति। संसारके किसी देश या जातिमें विवाह संस्कारका ऐसा सुन्दर, गम्भीर और उत्तम आदर्श नहीं मिलता जैसा भारतके वैदिक

ग्रन्थोंमें मिलता है। इतिहाससे पता चलता है कि वैदिक कालमें स्त्रियोंके अधिकार पुरुषोंके बराबर थे। वे उच्च शिक्षा पाती थीं, उनके पुरुषोंकी तरह उत्तमोत्तम संस्कार होते थे, वे यज्ञोंमें भाग लेती थीं, वेदमन्त्र उच्चारण करनेकी कौन कहे वे वेदोंकी ऋचायें तक रचती थीं। विवाह करने और अपने पतिके चुनने आदिका उन्हें पूर्ण अधिकार था।

पौराणिक समयसे स्त्रियोंकी और विवाहसंस्कारकी अधोगति आरम्भ हुई। स्त्रियोंका अधिकार छीना जाने लगा। वे विद्यासे वञ्चित रक्खी जाने लगीं और शूद्रा कहाने लगीं। वैदिक समयकी २४,२१ और १९ वर्षकी विवाहकी आयु १२,१० और शेषमें ६ वर्ष और कुछ महीनोंकी आयुमें बदल दी गई। वेद और ईश्वरीय आज्ञाके विरुद्ध मनमानी स्मृतियाँ गढ़ी गईं, जिनसे बालविवाहकी कुप्रथा भारतमें चल निकली। भारतकी उष्णता या गरम आबोहवासे यहाँ लड़कियाँ जल्द सयानी नहीं हो जातीं। भूमण्डलके अत्यन्त ठण्डे देशोंमें भी बुरे रीति-रवाजो और बालविवाहसे लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं—८ वर्षकी लड़कियाँ रजस्वला हुई हैं और १० वर्षकी लड़कियोंको बच्चा पैदा हुआ है। प्रकृतिने भूमण्डलके सब देशोंके लिए एक ही नियम रक्खा है। जिस आयुमें लड़कियाँ भारतमें सयानी होती हैं उसी आयुमें इँग्लैण्ड और अमेरिकामें भी होती हैं। बालविवाहसे भारत नष्ट होता जा रहा है। यहाँ बिना किसी विचारके सब लोग आँख बंद करके विवाह करने और सन्तानोत्पत्ति करनेसे बाज नहीं आते। भारतमें विवाहित पुरुषोंकी संख्या, अन्य देशवालोंकी संख्यासे अधिक है। यहाँपर जिस तरह सारे संसारसे अधिक बच्चे पैदा होते हैं उसी तरह सारे संसारसे अधिक मरते भी हैं। भारतवर्षमें भूमण्डलके सब प्रधान देशोंसे जन्म और मृत्युकी संख्या अत्यन्त अधिक है। अर्थात् यहाँ लोग संतान अधिक पैदा करते है, पर उसके पालन-पोषणका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। इससे, यहां प्रकृतिको हाथ फटकार कर अधम रीतिसे जनसंख्याका संहार करनेका अवसर मिलता है।

पिछले दो खण्डोंमें हम प्रकृतिका एक विलक्षण नियम देखते हैं। वह यह कि सृष्टिकी उत्पत्तिशक्ति सीमारहित है। यद्यपि प्राणियोंको अपने पूर्ण बलसे अपनी संख्या बढ़ानेका अवसर नहीं मिलता, तो भी इतना अवसर अवश्य मिल जाता है कि वे खोराकसे अधिक बढ़ जाते हैं, और तब प्रकृति अधम रीतिसे उस बढ़ी हुई संख्याका संहार करती है। प्रकृतिकी यह विलक्षण चाल

है कि वह प्राणियोंको अत्यन्त अधिकतासे जन्म लेनेका अवसर केवल इस लिए देती है कि शीघ्र ही भूख, प्यास या स्थान आदिके अभावसे उनका सर्वनाश हो जाय। एक क्षणमें वह करोड़ोंको जीवन प्रदान करके दूसरे ही क्षणमें निष्ठुरतासे छीन लेती है। जहाँ प्रकृतिको एक व्यक्तिकी आवश्यकता होती है, वहाँ वह एक अरब पैदा करती है। उनमेंसे एकको अपनी आवश्यकतानुसार चुनकर बचाती, और बाकी लाखों, करोड़ोंको तड़प-तड़पकर मर जानेके लिए छोड़ देती है।

प्रकृति, अपने ढंग पर तो इस तरह प्राणियोंका अधिक बढ़ाव रोकती है। अब देखना यह है कि इस विलक्षण नियमसे बचनेका भी कोई रास्ता है, या नहीं। कोई तरकीब ऐसी भी है कि जिससे इस भयंकर नियमसे उद्धार हो सके। लेखके आरम्भमें जन-संख्या रोकनेके दो तरीके अधम और उत्तम बतलाये गये हैं। अधम रीति तो हम दिखा चुके, अब उत्तम रीतिसे कैसे जन-संख्या रुक सकती है और कैसे इस प्राणघातक अधम रीतिसे छुटकारा मिल सकता है, सो आगेके खण्डमें दिखाया जायगा।
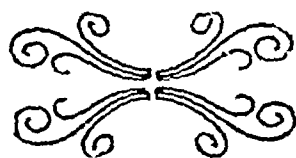
तीसरा खण्ड।

Believe not because some old manuscripts are produced, believe not because it is your national belief, because you have been made to believe from your childhood; but reason it all out, and after you have analysed it, then if you find that it will do good to one and all, believe it; live up to it, and help others to live up to it.

—*Buddha.*

पहला परिच्छेद ।
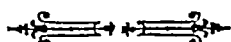
मानवी कारण द्वारा जनसंख्याकी असीम वृद्धिमें रुकावट ।

'The growth of numbers among animals is governed by present conditions, among man it is affected by traditions of the past and forecasts of the future.' —*Marshall.*

यह किसे नहीं मालूम है कि मनुष्य और पशुओंमें, अन्तर केवल यह है कि मनुष्योंमें पशुओके समान स्थूल बुद्धिके अतिरिक्त ज्ञानशक्ति भी है। वनस्पतियों और पशुओंमें, मनुष्यकी तरह, अच्छे और बुरेका ज्ञान या विवेक नहीं। उनमें एक प्रकारकी स्थूल बुद्धि होती है। उसीकी प्रेरणासे वे अपने समूह या दल बढ़ाते चले जाते हैं। वे इस बातसे कभी नहीं हिचकते कि जिनको वे उत्पन्न करते हैं उनके आहारका क्या प्रबन्ध है। वे वर्तमान-कालकी आवश्यकता पूरी करना जानते हैं। उन्हें भूत या भविष्यत्कालकी आपत्ति विपत्तिसे कोई मतलब नहीं। आवश्यकतानुसार स्वच्छन्दतासे अपना वर्ग बढ़ानेकी शक्तिसे वे काम लेंगे, अंतमें, स्थानाभाव तथा आहाराभावके कारण प्रकृति उनकी वृद्धिको चाहे कुचल भले ही डाले।

पर मनुष्य जब स्थूल पशु-बुद्धिके वशीभूत होकर अपना वर्ग बढ़ाने लगता है तब ज्ञान-शक्ति उससे पूछती है कि जिनको वह उत्पन्न करेगा उनके भरण-पोषणका भी उसने कुछ प्रबन्ध किया है या नहीं। विवेक-शक्ति भावी शुभ या अशुभ, अच्छे या बुरे परिणामको सामने रख देती है और उससे वादवि-वाद करने लगती है कि विवाह करनेसे समाजमें उसे किसी तरहका अनादर तो न सहना पड़ेगा। वह अपनी स्थिति पर विचार करता है कि उसके पास कितनी पूंजी है, उसकी आमदनी क्या है या आगे कितनी होगी, जितना धन वह आजकाल अपने आरामके लिए केवल अपने शरीर पर खर्च करता है,

विवाह होने पर या सन्तान उत्पन्न होने पर वही धन औरोंमें बँट तो नहीं जायगा जिससे उसे, आश्रित कुटुम्बको या भावी सन्तानको कष्ट उठाना पड़े। रोटी कमानेके लिए उसे इतनी मेहनत तो न करनी पड़ेगी जिसे वह सह न सके और अन्तको उसे रोगग्रसित होना पड़े। वह अपनी स्त्री तथा भावी सन्तानका भार उठाने योग्य है या नहीं और अपनी सन्तानकी शिक्षा आदिका प्रबन्ध ठीक तरह पर कर सकेगा या नहीं—ये सब, और इनके समान और अनेक विचार संसारमात्रके सभ्य स्त्री-पुरुषोंको पवित्र भावसे अविवाहित रहने अथवा विवाह हो जाने पर भी सन्तानोत्पत्तिको एक नियमित सीमाके भीतर रखनेके लिए संकेत करते हैं।

ज्ञान-शक्तिके इस संकेतकी ओर पूर्ण ध्यान देकर विवाह करना और उतनी ही सन्तान उत्पन्न करना—जितनी कि सर्वथा आरोग्य, योग्य, सुशिक्षित तथा निजकुटुम्ब, जाति और देशके कल्याणकी कारण बनाई जा सके—मानवी कारणद्वारा जनसंख्याकी असीम बाढ़ रुकना कहलाता है। इसी विवेक-शक्तिके संकेत पर न्यून या अधिक संख्यामें सन्तानवृद्धि करनेकी उत्तम रीतिको रेस्ट्रिक्टिव (Restrictive) या प्रुडेन्सल (Prudential) चेक कहते हैं।

दूसरा परिच्छेद ।

वृक्ष और पशु-जगत् ।

'Animals, at any rate, know nothing of the prevention of conception, that is a privilege of human species'

—*Bradlaugh.*

ज्यों ज्यों पश्चिमीय सभ्यता आगे बढ़ रही है, विद्या और विज्ञानमें जितनी ही तरक्की होती जाती है, उतनी ही हमारे पूज्य पूर्वजोंकी बातें सत्य और अटल प्रमाणित होती जा रही हैं। हमारे यहाँ लोग वनस्पतियोको चैतन्य-जगतके अंतर्गत मानते हैं। जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर जगदीशचंद्र बोसकी बीस वर्षकी निरंतरकी खोज और परिश्रमशीलताने संसारको स्पष्ट रूपसे दिखा दिया कि वृक्ष भी पशुओंकी तरह हर तरहके आन्तरिक अवयव रखते हैं। पशुओकी तरह वृक्षोंमें भी नर्वस सिस्टम (Nervous system) या नसें मौजूद हैं और उनमें अनुभवशक्ति भी पाई जाती है।

जैसे पशुओंके साथ बुरा बर्ताव करनेसे उन्हें कष्ट होता है, ठीक उसी तरह वृक्षोंको भी कुव्यवहारसे दु:ख होता है। वृक्षोंमें भय उत्पन्न किया जा सकता है, वे नशेमें मतवाले बनाये जा सकते है और उन्हें विष देकर मारा जा सकता है। यह हमारी अज्ञानता है कि विना सोचे समझे, विना किसी खास कारण या आवश्यताके भी, हम निष्ठुरतासे उनकी डालियाँ काटते, उनके फल और फूलोंको नोच कर नाहक मरोड़कर फेंक देते हैं और एक एक फलके लिए उन पर अनेक ईंटें और पत्थर मारते हैं।

संसारके समस्त चैतन्य पदार्थोंमें देखा जाता है कि प्रत्येक जीव अपनी जाति या श्रेणी बढ़ानेका तथा कायम रखनेका यथाशक्ति उद्योग और प्रयत्न करता है। पशु-जगतमें इसके उदाहरण प्रति दिन देखे जाते हैं। पक्षी किस सावधानीसे घोंसले बनाते, नियमित कालतक अपने अण्डोपर बैठते, और फिर जी जानसे बच्चोंकी देखभाल करते हैं। वे न जाने कहाँ कहाँसे ढूँढ़कर

बच्चोंके लिए आहार लाते हैं और जब तक बच्चे स्वयं अपनी रक्षा करनेके योग्य नहीं होजाते, उनके साथ साथ रहते हैं। मुर्गी एक छोटीसी चिड़िया है जो अनेक अण्डे देती है। वह अपने अण्डों पर तीन सप्ताह तक लगातार बैठती है और जबतक कि बच्चे नहीं निकल आते किसीको उनके पास फटकने नहीं देती। दर्जनके दर्जन बच्चोंको अपने परोंके साये तले रखती है, हरतरह उनकी रक्षा करती है, कीड़े मकोड़े खोदनेका उन्हें अभ्यास कराती है और जबतक वे स्वयं अपना गुजारा करनेके योग्य नहीं बन जाते, तबतक वह बराबर उनके साथ रहती है। उन्हें योग्य बनाकर छोड़ देती है और फिर संतानवृद्धिके कार्यमें लिप्त हो जाती है।

वृक्ष-जगत् भी संतान-वृद्धिमें नहीं चूकता। पशुओंकी तरह वह भी अपनी जाति बढ़ाने और कायम रखनेका यत्न किया करता है। जिस तरह पशुओंमें नर-मादाके संयोगसे वीर्य्य और रजःकण मिलनेसे संतानोपत्ति होती है, ठीक यही नियम वृक्षोंमें भी जारी है। वृक्षोंमें संतानोत्पत्तिका अङ्ग डालियोंकी प्रत्येक शिखामें होता है। इसे पुष्प कहते हैं। प्रत्येक पुष्पमें नर और मादा दोनोंके अवयव नहीं होते। कोई पुष्प नर होता है, और कोई मादा। वृक्षोंमें गर्भस्थिति-काल, जब उनमें पुष्प आते हैं तब प्रारम्भ होता है।

उस समयसे लेकर फल लगने तथा फल पकनेके समयतक प्रकृतिकी अद्भुत लीला देखनेमें आती है। पुष्पकी महकसे और मनोहर रंगसे मुग्ध होकर मधुमक्खी, कीट-पतंग, या रसिक पक्षी पुष्पों पर इधरसे उधर फुदुकते फिरते हैं। उनकी टाँगों या चोचोंमें फँस कर वीर्य्यकण, रज कणोंमें जा मिलते हैं। मधुमक्खी या भौंरे तो यह समझ रहे हैं कि वे पुष्पोंका रस ले रहे हैं, और उधर प्रकृति उनसे वृक्षोंकी दलाली करा रही है! वायुको भी वनस्पतियोंकी इस प्रकारकी सेवा करनी पड़ती है।

कभी कभी यह भी देखा जाता है कि एक ही वृक्षके पुष्पोंमें दोनों प्रकारके अवयव होते हैं। इन दोनों अवयवोंके होते हुए भी प्रकृति, इस विचारसे कि एक ही कुटुम्बमें विवाह और गर्भाधान संस्कार होनेसे संतान निर्बल हो जायगी, कीट पतंग और पक्षियों द्वारा दूरस्थ वृक्षोंसे संयोग होनेके उपाय करा देती है। छोटे छोटे जंतु एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर बैठकर उनका यह कार्य सँवार देते हैं—हजारों वृक्ष-स्त्रियाँ नित्य गर्भधारण करके संतानरूप फल या बीज पैदा करती हैं।

वनस्पतिशास्त्रके पण्डित नर और मादा पुष्पोंको भलीभाँति पहचानते है। वे यदि नर-पुष्पोंको नष्ट कर दें तो मादा-पुष्पोंमें फल न लगें, अर्थात् किसी तरह पर यदि नर और मादा-पुष्पोंके वीर्य्य और रजःकण मिल न पावें, तो फल न लगे। *

वृक्षोंकी संतानवृद्धिके लिए प्रकृति अनेक उपाय करती है। कई वृक्षोके फलोंमें बीज नहीं होते, बल्कि पुष्पोंहीमें बीज होते है। मनुष्य सुगंधिके लोभसे इन पुष्पोंको तोड़ लेते हैं और जान अथवा अनजानमें उनको इधर उधर बखेर देते हैं। मानों पुष्प अपनी सुगंधिकी दक्षिणा देकर मनुष्यसे अपनी संतानकी वृद्धि कराता है।

जिस तरह पशुओं और मनुष्योंमे कुटुम्बके बढ़ने पर दूर दूर जाकर बसनेकी आदत है वैसे ही वृक्षोमें भी है। वे भी अपने बीज दूर दूर भेज देते हैं। पशुओंमें पैरोद्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानकी यात्रा होती है, पक्षी पंखोके बल सैकड़ों मील उड़ जाते हैं, और मनुष्य, रेलो मोटरों और जहाजोमें बैठकर उपनिवेशन करने जाते हैं, किन्तु वृक्षोके पैर या पंख न रहते हुए भी वे एक स्थानसे दूसरे स्थानकी यात्रा करते है। बल्कि अनेक वनस्पतियोकी सन्तान तो हजारों मीलके फासले पर जा-जाकर उपनिवेशन करती है—' बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, बिनु कर कर्म करै विधि नाना। ' कुछ वृक्षोके बीज हवाके घोड़ों पर बैठ कर इधर उधर जा बसते हैं, कुछ बीज पक्षियोको अपनी मिठासकी लालच दिला, उनके पेटमें प्रवेश कर स्थान स्थानमें पड़ा करते है और बीठके स्वरूपमें बाहर निकल कर बडे बड़े वृक्ष बन जाते हैं।

जिन वृक्षोंके बीज बड़े होते हैं और इस कारण जो पक्षियो या वायुद्वारा नहीं ले जाये जा सकते, पर जिन्हें हजारो मील सफर करनेकी इच्छा होती है वे मनुष्यों या बन्दरो आदिसे अपना काम लेते हैं। गुलाब फारससे, तम्बाकू अमेरिकासे और आलू यूरोपसे लाकर भारतमे लगाये गये और अब ये हिमालयसे केप केमोरिन तक हर जगह खूब उगते हैं। कौन नहीं जानता कि काशीके लंगड़ा आम, काबुलके सेब, कन्धारके अनार, काश्मीर और पेशावरके अंगूर अपनी मिठासके कारण मनुष्यको लोभसे फँसाकर सारी दुनियामें अपने बीज भेजते हैं। क्या किसी धनी व्यापारीका लड़का रुपयोंके बलसे इन

* Darwin

मेवोंकी गुठलियोंसे अधिक यात्रा कर सकता है ? इससे सिद्ध है कि पशु और वृक्ष-जगतमें सन्तानोत्पत्ति, संतानवृद्धि और संतानरक्षाके लिए वे ही गुण विद्यमान हैं जो सर्वोत्तम पशु—' मनुष्य '-जगतमें हैं।

अन्तर केवल यही है कि मनुष्यमें विवेकशक्ति है। वह भूत और भविष्यत्कालपर ध्यान देकर अपना शुभ अशुभ विचार कर सकता है और पशु यह नहीं कर सकता। पशु सन्तानवृद्धि करना जानते हैं, पर आवश्यकतानुसार सन्तानोत्पत्तिमें कमीवेशी करना उनकी शक्तिके बाहर है। मछली लाखों अण्डे दिये जाया करेगी चाहे वे सबके सब बरबाद जाया करें। बरगद और पीपलमें लाखों बीज पैदा होंगे और नष्ट हो जाया करेंगे, पर वे कम बीज पैदा करना न सीख सकेंगे। पशु और वृक्ष दूरदर्शितासे कम बच्चे पैदा करनेमें असमर्थ हैं। उनमें यह शक्ति ही नहीं है कि प्रकृतिके दैवी कारणद्वारा नष्ट होनेसे अपनी सन्तानकी रक्षा कर सकें। पशु और वृक्ष स्वयं उत्तम रीतिसे लाभ नहीं उठा सकते, इसमें वे सर्वथा असमर्थ हैं। उत्तम रीतिसे एक मात्र सर्वोत्तम पशु ' मनुष्य ' ही लाभ उठा सकता है।
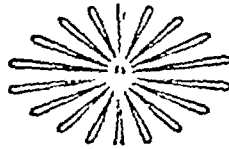
तीसरा परिच्छेद ।

मनुष्य-जगत् ।

जनसंख्याका इतिहास ।

'The problems of population are older than civilization.'
—*Adam Smith.*

जन संख्याके विषय पर विचार करना कोई नई बात नहीं है । प्रत्येक देश और कालके विचारवान् पुरुषोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है । सभ्य-जगतका इतिहास इसका साक्षी है । समय समय पर सामाजिक, धार्म्मिक और राजनैतिक नेता, आवश्यकतानुसार जनसंख्या बढ़ाने या घटानेका आदेश जनसाधारणको देते आये हैं ।

प्राचीन ग्रीसमें, उपनिवेशन तथा कृषि और व्यापारसम्बन्धी सुभीता होनेसे जनसंख्याकी वृद्धि होना स्वाभाविक था, पर निःसीम वृद्धिसे जो आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं उनसे बचना भी असम्भव था । उस कालके नेताओंका ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ । क्रीट, सोलन, फीडन, प्लेटो और अरस्तू आदिको जनसंख्याको सीमाबद्ध करनेकी आवश्यकता जान पड़ी थी।

प्लेटोने स्वतन्त्र राज्योकी स्वतन्त्र प्रजाके मनुष्योंकी और निवासस्थानोंकी संख्या ५०४० निर्णीत की थी । इस संख्यामें कमी और बेशी न होने पावे, इसका प्रबन्ध करना उस राज्यके मजिस्ट्रेटका काम था । पिताको यदि एकसे अधिक पुत्र हो तो वह उन लोगोंको दे डाले जिन्हें पुत्र नहीं हो; और पुत्रीको ब्याहमें दान देकर अपनी सम्पत्तिका मालिक अपने एक पुत्रको बनावे। इस तरह पिताकी मृत्युके पश्चात् उस घर तथा कुटुम्बमें एक ही पुरुष रह जायगा और स्वतन्त्र प्रजाकी संख्या समान स्थिर रहेगी ।

राजाज्ञासे खास खास जगहो पर मेले स्थापित किये जाय। उनमें देशके युवक और युवतियाँ सम्मिलित हो। मजिस्ट्रेटकी आज्ञासे सर्वोत्तम युवकोंका सम्बन्ध

---

* Republic 459, Laws 773 and elsewhere

सर्वोत्तम युवतियोंके साथ धार्मिक विधिसे करा दिया जाय। पर विवाहकी संख्याका विचार करना और यह आज्ञा देना कि कितने युवक और युवतियोंका सम्बन्ध होगा, मजिस्ट्रेटके अधीन होगा। मजिस्ट्रेट युद्ध, रोग और मृत्युसे क्षीण हुई जनसख्याकी कमी और वेशीके अनुसार विवाह-सम्बन्धकी संख्या निश्चित करेगा—न बहुत ज्यादा न बहुत कम—जैसी उस समय उस राज्यकी प्रजा-सम्बन्धी आवश्यकता जान पड़ेगी।

प्लेटोने २० वर्षकी अवस्था स्त्रियोंके लिए और ३० वर्षकी पुरुषोंके लिए विवाहके योग्य ठहराई थी। २० से ४० वर्षकी अवस्था तक स्त्रियोंको और ३० से ५५ वर्षकी अवस्था तक पुरुषोंको सन्तानोत्पत्तिका अधिकार दिया था। इस बीचमें राज्यके लिए कितने पुत्र चाहिए इसकी सूचना मजिस्ट्रेट देता था।

मजिस्ट्रेटके आज्ञाके विरुद्ध विवाह करना, अधिक सन्तानोत्पत्ति करना, निर्धारित आयुके पूर्व या पश्चात् सन्तान उत्पन्न करना राजाज्ञाके विरुद्ध चलना था। ऐसे स्त्रीपुरुषोंको राजदण्ड दिया जाता था।

मजिस्ट्रेटकी आज्ञानुकूल सर्वोत्तम प्रजाकी सन्तति शहरके बाहर उन दाइयोंके पास भेज दी जाती थी जो इसी कार्यके लिए नियत थीं और इसके अतिरिक्त मजिस्ट्रेटकी आज्ञाके विरुद्ध विवाह करनेवालोंकी, अयोग्य रोगग्रसित स्त्रीपुरुषोंकी अथवा नियमित संख्यासे अधिक सन्तान उत्पन्न करनेवालोंकी सन्ततिको राज्यके किसी सुनसान जंगलमें गाड़ देनेका नियम बना था।

अरस्तूने विवाहके लिए स्त्रियोंकी आयु १८ और पुरुषोंकी ३७ ठहराई थी। स्वभावतः इस बेढब आयुके कारण कितने ही स्त्री और पुरुषोंको लाचार होकर आजन्म अविवाहित रहना पड़ता था। क्योंकि १८ और ३७ की आयुका जोड़ा कम होता है, ऐसोंका मेल कठिन हो जाता है। और यदि कोई स्त्री नियमित संख्यासे अधिक गर्भ धारण करती थी, तो उसका गर्भ (गर्भमें जीव प्रवेश करनेके पूर्व ही) पात करा दिया जाता था। पूर्वोक्त नियमोंसे पता चलता है कि आजसे २२०० वर्ष पूर्व जनसंख्याकी निःसीम वृद्धिकी आपत्तियोंसे बचनेके लिए कैसे कठिन नियम बनाये गये थे और इतने दिन पहले भी प्रजोत्पत्तिको सीमाबद्ध किये बिना काम चलना कठिन था।

अर्वाचीन कालका इतिहास भी जनसंख्याके विषयसे खाली नहीं पाया जाता। देखा जाता है कि भीषण युद्ध या घोर अकालके पीछे लोग जनमं

ख्याको बढ़ाने और बहुत दिनोंकी शान्तिके पश्चात् बहुत बढ़ जाने पर उसे घटानेका यत्न किया करते हैं। काली मृत्यु (Black death) ने इंग्लैण्डकी, आलूके अकाल (Potato Famine) ने आयरलैण्डकी और ३० वर्षव्यापी युद्धने जर्मनीकी जनसंख्या घटाकर आधी कर दी थी।

इस ह्रास या क्षीणताको पूरा करनेमें सैकड़ो वर्ष बीत गये। १८ वीं शताब्दीके अन्तमें इंग्लैण्डके नेता पेटी, केरी, वेकफील्ड आदिने वहाँकी जनसंख्याको घटी हुई देखकर इस बात पर जोर दिया था कि जनसख्या खूब बढ़ाई जाय। पेटीका मत था कि "किसी देशकी उन्नति या अवनति उस देशकी जनसंख्याकी अधिकता या न्यूनता पर निर्भर है न कि उस देशके उपजाऊ या ऊसर होने पर। जिस देशकी जनसंख्या घनी होती है वह देश सुख और सम्पत्तिसे परिपूर्ण रहता है, और जहाँकी जनसख्या कम होती है वह देश दरिद्र और कंगाल होता है।" +

इसी शताब्दीमें जब फ्रांसने सारे संसारको विजय करनेका संकल्प किया था, तो इंग्लैण्डमें हलचल मच गई थी। उस समय अधिक सेनाकी आवश्यकता थी। अतः उस युद्धकालमें लोगोंका यह मत था कि जो पुरुष अधिक सन्तान उत्पन्न करता है वह धन्य है। महामन्त्री पिटका कथन था कि "जो देशको सन्तानसे परिपूर्ण करते हैं वे देशके सच्चे शुभचिन्तक हैं और ऐसे सज्जनोंकी सहायता राजा अपने कोषसे करेगा।" १८०६ में इंग्लैण्डमें एक एक्ट पास हुआ कि जिन पुरुषोंको दोसे अधिक सन्तान हो वे टैक्ससे बरी किये जायँ। पर जब नेपोलियन सेण्ट हेलीनामें कैद कर लिया गया और युद्धका भय कम हुआ तो पूर्वोक्त एक्ट खारिज कर दिया गया। अर्थात् दो सन्तानवाले पिताका कर जो माफ हो गया था वह फिर लगा दिया गया।

+ Whatever tends to the depopulating of a country tends to the impoverishment of it, and that most nations in the civilized part of the world are more or less rich or poor Proportionately to the paucity or plenty of their people and not to the sterility or fruitfulness of their land.' —*Petty*

(यदि पूर्वोक्त सिद्धान्त ही सत्य होता तो भारत और चीन जैसे घनी आबादीवाले देश भूमण्डलके सारे सभ्य देशोंसे कंगाल न होते।—लेखक।)

फ्रांसके राजा चौदहवें लुईने उन सब पुरुषोंको जो २० वर्षकी आयुके पूर्व विवाह कर लेते थे, अथवा उनको जिन्हें १० सन्तति थीं, हर तरहके राजकरसे मुक्त कर दिया था। नेपोलियन (पहले) ने नियम बना दिया था कि जिस घरमें ७ बालक हों, उनमेंसे एकके शिक्षण तथा पालन-पोषणका भार वह (नेपोलियन) स्वयं उठावेगा। सन् १८८५ और १८९० में फ्रांसमें अधिक सन्तानोत्पत्तिके लिए अनेक नियम बनें। उनमेंसे एक यह था कि प्रत्येक पिताको उसकी सन्तानकी संख्याके अनुसार १–२–३ या ४ वोट देनेका अधिकार प्राप्त होगा।

राजा, कर्मचारी और शक्तिमान् पुरुष युद्धमें विजय प्राप्त करने तथा नाम बढ़ानेके लोभसे जनसाधारणको अधिक सन्तान उत्पन्न करनेके लिए उत्साहित करते थे। पर विचारवान् पुरुष जो सामाजिक प्रश्नों पर भलीभाँति ध्यान देते थे, इस वृद्धिके विरोधी थे। उनका मत था कि जनसंख्याकी अधिक वृद्धिसे चाहे राजाका बल बढ़ जाय पर, जनसाधारणके लिए यह वृद्धि सदैव कष्ट पहुँचानेवाली होती है, और राजाओंको कोई अधिकार नहीं कि वे अपने नाम और फायदेकी गरजसे प्रजाके सुखकी आहुति दिया करें।

राजा तथा समृद्धिशाली पुरुषोंकी इस जबर्दस्तीका असर फ्रांस पर बहुत भयानक पड़ा। वहाँ विरुद्धमतवालोंका प्रभाव उलटा जोर पकड़ गया और जनसाधारणमें कम सन्तान उत्पन्न करनेकी ऐसी बलवती चाल चली कि वह उचित सीमाको भी लाँघ गई। ×

मारशलका कथन है कि "यदि उस समयके राजे और शक्तिशाली बड़े लोग स्वार्थान्ध होकर अपने नामके लिए सर्वसाधारणके हितका बलिदान न करते और यदि वे उस समयके विचारवान् समाजसुधारकों और देशहितचिंतक सज्जनोंकी पुकार सुनते, * बलात्कारके बदले मनुष्यत्वको जरा भी जगह

× अपने समीपवासी देशोंके सन्मुख फ्रांसकी जनसंख्या घटने पर राजनैतिक तथा सैनिक दृष्टिसे (From the political and military points of view) चाहे जितना शोक प्रकट किया जाय, किन्तु इस बुराईमें भलाईका अंश कहीं अधिक मिश्रित है। सामाजिक तथा आर्थिक दशाकी वृद्धिमें इसने योग दिया है।—Levasseur

* लोगोंको जनसंख्या बढ़ाने पर कम और जातीय आय बढ़ाने पर अधिक जोर देना चाहिए। क्योंकि अधिक आराम जो अच्छी आमदनीसे मिलता है

देते, तो फ्रांसमें जनसंख्या बढ़ानेका उलटा असर इतना जोर न पकड़ता, उस समय खूनकी भयंकर नदियाँ न बह निकलतीं, इंग्लैण्डका पैर जो स्वतंत्रताकी ओर बढ़ रहा था, रुक न जाता, और संसारमात्रकी उन्नति कहीं अधिक हुई होती।"

पश्चिमीय पण्डितोंका ध्यान जनसंख्याके विषयकी ओर निरन्तर आकर्षित होता रहा है और समय समय पर उनके गम्भीर विचार प्रकट होते रहे हैं। माल्थसने बड़ी खोज और परिश्रमसे यह सिद्ध किया है कि संसारकी उन्नतिका सबसे बड़ा बाधक कारण जनसंख्याकी निःसीम वृद्धि है। सभ्य संसारने इस सिद्धान्तसे अपने सुभीतेके अनुसार फायदा उठाया है और किसी न किसी रूपमें वह अब भी इससे लाभ उठा रहा है। माल्थसके सिद्धान्तके तीन भाग हैं,—

(१) संसार भरके प्रत्येक देश, काल और जातिमें जिसका इतिहास किसी अंशमें भी प्राप्त हो सकता है यह देखा जाता है कि खानेवाले अधिक और खोराक कम पैदा होती है। किसी न किसी समय खानेवाले हदसे ज्यादा बढ़ जाते हैं और खोराक कम हो जाती है। (यहाँ केवल मनुष्य-जगत् पर विचार कीजिए।)

(२) जब आबादी बेहद बढ़ जाती है तो उसमें कमी होनेके द्वार हैं— लड़ाइयोंमें कट मर जाना, अकालोंमें भूखों मरना, तरह तरहकी बीमारियोंसे मरना, बुरे रीति-रिवाजोंके फैल जानेसे कमजोर होकर मरना, वगैरह। और

(३) जैसी बातें दुनियामें पहले हुई हैं, वैसी ही आगे चलकर हो सकती हैं। भूतकालमें जनसंख्याकी असीम वृद्धिसे जो आपत्तिया उपस्थित हुई हैं, भविष्यत्कालमें भी उनके उपस्थित होनेकी सम्भावना है।

माल्थसका पहला सिद्धान्त इस समय तक अखण्डनीय है। इस बीसवीं शताब्दीने भी उस पर मतविरोध नहीं प्रकट किया है। * किन्तु उसके दूसरे

ज्यादा अच्छा है बनिस्बत उस दशाके जब कि आबादी बढ जाती है, खर्चकी तंगी होने लगती है और बढी हुई जनसंख्याके जीवन-निर्वाहकी कठिन समस्या हर समय सामने उपस्थित रहती है। —Quesney's Protest.

* भूमण्डलकी लोकसंख्या इस समय लगभग २५० करोड़ है और रेवेन्स्टीन (Ravenstein) साहबके हिसाबसे पृथ्वी पर २८० लाख वर्गमील

और तीसरे सिद्धान्तके रूपमें कुछ अन्तर आ गया है। रेलों और तेज जहाजों-ने इन आखिरी दो सिद्धान्तोंके ऊपरी रूपमें कुछ अन्तर डाल दिया है—पर सत्यतामें वे ज्योंके त्यों हैं। रेलों और जहाजोंके द्वारा अन्न आदि एक स्थान या देशसे दूसरे स्थान या देशमें ले जानेका सुभीता बहुत बढ़ गया है, और बहुत थोड़े खर्च पर दूर दूर देशोंमें भेजा जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक देशकी जनसंख्याको एक मात्र अपने ही देशकी उपज पर गुजारा नही करना पढ़ता, एक देशका अन्न दूसरे देशवालोंके भी काम आता है।

माल्थसका सिद्धान्त अक्षरशः सत्य प्रमाणित होता है। जनसंख्याकी बेहद बाढ़से जो बुराइयाँ पहले पैदा होती थीं वही अब भी होती हैं, अन्तर केवल यह पड़ता है कि एक देशकी मुसीबत दूसरे देशको भोगनी पड़ती है—एक देशकी आबादीकी बेहद बाढ़का असर दूसरे देशों पर अप्रत्यक्ष रूपसे पड़ता है। उदाहरणार्थ, जर्मनीकी बढ़ी हुई जनसंख्याकी खपत उस (जर्मनी) देशमें नहीं हो सकती, उसे संसारमें अधिक स्थान चाहिए—कृषिके लिए नई भूमि, शिल्पकलाकी निकासीके लिए नये बाजारो पर प्रभुता और प्रजाको उत्तमोत्तम दशामें रखनेके लिए उपनिवेश चाहिए। इसके लिए जर्मनी संसार मात्रको उलट पलट देगा—बेल्जियम, रूस और फ्रान्सका सर्वनाश ही क्यो न

खेतीके योग्य उपजाऊ जमीन, और १४० लाख वर्गमील अनउपजाऊ बजर और ऊसर जमीन है। यदि लोकसख्याकी वृद्धिकी औसत प्रति सहस्र ८ रख ली जाय (According to the calculations of the British Association) तो २०० वर्षके भीतर ही लोकसख्या बढ़कर ६०० करोड़ हो जाती है। प्रत्येक उपजाऊ वर्गमील पर २०० मनुष्योंका निर्वाह होगा। यह मान लिया जाय कि २०० वर्षमें खेतीके औजार तथा खाद आदिमें बहुत कुछ सुधार होकर भूमिकी उपज बढेगी, पर भूमिकी उपज बढनेसे भी आबादीकी बाढ़ केवल २०० वर्ष तक जारी रह सकेगी। इसके आगे नहीं। अर्थात यदि पृथ्वी भरकी उपज भूमण्डलके प्रत्येक जनमें बराबर बाँटी जाय—एक दूसरेकी खोराक हड़प कर जानेवालोंका अन्त हो जाय, तब भी लोगोंको केवल २०० वर्ष तक काफी अन्न मिल सकेगा। २०० वर्षके आगे फिर वही अन्नकी कमी—युद्ध, अकाल, रोग और मृत्यु।

हो जाय, पर जर्मनी अपनी जनताके विस्तारके लिए दूसरोंका अधिकार हड़पनेमें तनिक भी संकोच न करेगा । ×

इँग्लैण्डकी जनताका निर्वाह इँग्लैण्डमें न हो सकेगा । वे कैनेडा, न्यूजीलैण्ड और आस्ट्रेलिया आदिमें जा बसेंगे और वहाँके भोलेभाले कमजोर निवासियोको कठोर नियमोसे कुचल डालेंगे । माउरीजका * अस्तित्व उठ जायगा और अँगरेजोंके बच्चे उनके देशमें फूलें फलेंगे । भारतके अन्नसे इँग्लैण्डकी बढ़ी हुई आबादीका पालन-पोषण होगा और भारत-संतानका सर्वनाश दुर्भिक्ष आदिसे हुआ करेगा ।

साराश यह कि इस बीसवीं शताब्दीके आविष्कारोंसे सुरक्षित और स्वतन्त्र देशोंकी जनसंख्याकी बाढ़का बुरा असर आत्मरक्षाके उपायोंमें ढीले परतन्त्र या दुर्बल देशों पर पड़ता है । रेलों, तारों और जहाजोने भारतकी स्थितिमें भयंकर परिवर्त्तन कर डाला है । भारतका जीवन भारी संकटमें फँस गया है । इस समय इस अभागे देश पर अपनी जनताकी निःसीम वृद्धिके भारके अतिरिक्त अन्य देशोकी आबादीकी बाढका भी बुरा असर पड़ रहा है—यह भारतका दुस्सह दुर्भाग्य है !

× स्पेनवालों (Spaniards) ने हेटी नामक द्वीपको जीतकर उसको अपना उपनिवेश बनाया । थोडे ही दिनोमे हेटीके खास निवासियोंकी सख्या घटकर कुल एक चौथाई रह गई ! अमेरिकामें वहाँके असली बाशिन्दो (Red Indians) की सख्या मुश्किलसे २ लाख रह गई है, और औपनिवेशक गोरी जातिवाले ७ करोड हो गये है । आफ्रिकामें भी यही दृश्य दीखता है ।

* न्यूजीलैण्ड पासिफिक महासागरका एक द्वीप है । यह अँगरेजोंका उपनिवेश है । यहाँके प्राचीन निवासियोंको माउरीज कहते हैं । इनकी सख्या बराबर घट रही है । थोडे ही समयमें इनके अस्तित्वके लोप हो जानेका भय है । माउरीज कुल ४० हजार बच रहे है और उनके देशमें अँगरेजोंकी सख्या ८ लाख हो गई है !—‘ A Dying Race’ page 4 by U. N Mukerjee.

चौथा परिच्छेद।

भारतवर्षमें प्रचलित वंश-वृद्धि-धर्म्म।
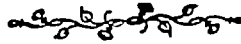
'The measure of goodness or badness of an act is almost always its expediency or inexpediency, and that conscience deals with accustomed morality and not with expediency.'

भले या बुरे कार्यका निर्णय सामयिक आवश्यकतासे किया जा सकता है न कि अन्त.करणके संकेतोंसे। अन्त करण आवश्यक कार्य करनेका सकेत नहीं करता, वह केवल प्रचलित धर्म्म या कार्य—जिसे करनेका उसे अभ्यास हो गया है—करनेका इशारा किया करता है। +

जिस समय भारतवर्षने धर्म्म, विज्ञान, शिल्प, कला, व्यापार और व्यवसायमें पूर्णता प्राप्त की थी, जिस समय आर्य्यावर्तके अगणित योद्धाओंने अस्त्रशस्त्रके सहस्रो आविष्कारोंसे पृथ्वीभरकी जातियों पर प्रभुत्व और चक्रवर्ती राज्य प्राप्त कर लिया था, जिस समय भारतके विमान स्वच्छन्दतासे गगनमण्डलमें उड़ा करते थे और सहस्रों भारतीय जहाज फारस, मिश्र, अमे-

---

+ अन्त करण कोई वस्तुविशेष या ईश्वरदत्त शक्ति नहीं है। यह भला बुरा पहचाननेवाली शक्ति इन्द्रियोंद्वारा सगठित ज्ञानसे बनती है। जिस देश, काल, समाज या धर्म्ममे मनुष्य उत्पन्न होता है उसी देश, काल, समाज या धर्म्मकी घटनाओंके अनुसार ही उसका अन्त करण बनता है। विषय गम्भीर है तो भी आगेके थोडे शब्दोंमें बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। मनुष्य इस समारमें जन्म लेता है तबसे, बल्कि गर्भमेंसेही उसकी सूक्ष्म इन्द्रियाँ—नाक, कान, आँख और स्पर्श तंतु आदि—काम करने लगती है। आर्य्य और अँगरेज जातिके बालकोंमें कोई अन्तर नहीं होता। जन्मके समय रग, रूप और बनावटको छोड़कर सभी बालक एकसे होते है। किन्तु, ज्यों ज्यों वे बढते हैं, और देश, काल, तथा समाजके आचार-विचारोंकी झाई उनके मस्तिष्क पर पड़ती है त्यों त्यों उनमें

रिका और यूनानमें जाया करते थे, जिस समय पश्चिमीय गोरी जातियोंके पुरखे असभ्य और कंगाल थे, जिस समय इस महान् जातिको ईसा, महम्मद, कन्फ्यूसियस आदि संसारके सारे बड़े बड़े धर्मोंके जन्मदाताओंको जन्म लेनेके लिए तैयार करना था, उस महाप्रभुत्वके समयमें इस जातिको अधिक संतानकी आवश्यकता थी। इसे सारे भूमंडलमें अपनी सभ्यताका प्रचार करना था, युद्ध करना था, व्यापार करना था, और उपनिवेशन करता था। इन महान् कार्योंकी पूर्तिके लिए अधिक संतानकी आवश्यकता थी। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिए इसने उत्तम प्रजाका उत्पन्न करना प्रत्येक आर्य्यका कर्तव्य कर्म बना दिया था। वेदोंमें सुदृढ़, सुन्दर और सदाचारी सन्तान उत्पन्न करनेकी बड़ी महिमा गाई है। स्थान स्थान पर अनेकानेक प्रार्थनायें और सदुपदेश दिये हुए हैं। जैसे—'इस बधूको १० पुत्ररत्न उत्पन्न हो। तुम सम्पूर्ण

भिन्नता आती जाती है। जिस धर्म्म या समाजमें बालक उत्पन्न होता है उसी धर्म्म और समाजके नियम उसे पालन करने पड़ते हैं। नियमविरुद्ध चलनेवालोंको वह दण्ड पाते देखता है। इस दण्डके भयसे स्वभावत धीरे धीरे उसे यह मालूम हो जाता है कि क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित। ब्राह्मणका लड़का गोमासके स्मरणमात्रसे पापके भयसे काँप उठता है, किन्तु इसके विपरीत यूरोपियन पादरीका लड़का बड़े हर्षसे गोमास भक्षण कर जाता है।

एक ही देशके लोगोंमें वर्ण और धर्म्मकी विभिन्नतासे अत करणमें भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। किसी चमारको खुले आम मदिरा पीनेमें तनिक भी संकोच न होगा, पर ब्राह्मण शराबकी बोतल ले जानेमें हिचकिचायगा। किसी जैनमतावलम्बीके पैरके नीचे यदि जान बूझकर एक चिउँटी भी मर जाय, तो उसका कलेजा धक धक करने लगता है, पर शाक्तमतावलम्बी बडी प्रसन्नतासे भेड़ों, बकरियों और भैंसोंकी गर्दनों पर छुरी फेरकर बलिदान चढाता है। नरहत्यासे बड़ा कोई पाप नहीं है, पर जगली और असभ्य जातियाँ अपने बूढे माँ-बापोंको आनन्दपूर्वक खाती और इस महामाससे पडोसियोंकी दावत करती पाई गई हैं। अत अतःकरणका संकेत ईश्वरीय अकुश नहीं है। हृदयकी सकीर्णता और पक्षपातको त्यागकर सामाजिक, सामायिक और दैशिक आवश्यकताओंसे धर्म्म और अधर्म्मका निर्णय किया जासकता है, न कि प्रचलित धर्म्मशास्त्रकी आज्ञा या अन्त करणके संकेतोंसे।

आयुको—जो १०० वर्षोंसे कम नहीं है—प्राप्त होओ और पुत्रों तथा नातियोंके साथ आनन्द करो। गृहाश्रममें स्थिर रहकर इस पतिके लिए उत्तम प्रजाको उत्पन्न करो, आदि। * ” मनु भगवानने वंश-वृद्धिकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। आपका वचन है कि गर्भधारण करनेके लिए स्त्रियाँ और गर्भाधान करनेके लिए पुरुप उत्पन्न किये गये हैं।”

---

*—इमा त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा कृणु।
दशास्या पुत्रानाधेहि पतिमेकादश कृधि॥
—ऋ० म० १०, अ० ७, सू० ८५, म० ४५।

अर्थात्—हे भगवन्, इस वधूको सौभाग्यवती बनाओ और यह १० पुत्रोंकी माता होवे।

इहैव स्त मा वि योष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुत।
क्रीडतौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥
—ऋ० मं० १०, अ० ७, सू० ८५, म० ४२।

अर्थात्—हे वधू और वर तुम दोनों आनन्दपूर्वक १०० वर्षोंसे अधिक जीओ और पुत्रों तथा नातियोंके साथ खेलो। (४३, २७, २५, आदि मन्त्रोंमें भी ऐसी ही प्रार्थनायें हैं।)

आरोह तल्प सुमनस्य मानेह प्रजा जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उपस प्रति जागरासि॥
—अ० का० १४, अ० २, सू० २, म० ३१।

अर्थात्—हे वरानने, तू प्रसन्नचित्त होकर इस गृहाश्रममें स्थिर रह और इस पतीके लिए उत्तम प्रजाको उत्पन्न कर।

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नी समस्पृशन्त तन्वस्तनूभि।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सभवेह॥
—अ० का० १४, अ० २, सू० २, मं० ३२।

अर्थात्—हे सौभाग्यप्रदे, तू सूर्यके साथ कान्तिकी तरह अपने स्वामीके साथ मिलकर अच्छी प्रजाको प्राप्त हो। (३७, ३८, ४३, आदि अनेक मन्त्रोंमे भी ऐसी ही प्रार्थनाये और उपदेश हैं।)

सुप्रजा प्रजाभि स्यां सुवीरो वीरै सुपो पोपै।
नार्य प्रजा मे पाहि शंस्य पशून्मे पाह्यथर्यपितुं मे पाहि॥
—य० अ० ३, म० ३७।

* जैसे सब बड़े बड़े नद और नदियाँ समुद्रमें जाकर ही स्थिर होती हैं वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थहीको प्राप्त होकर स्थिर होते हैं। जैसे आयुके आश्रयसे सब प्राणधारी जीते हैं वैसे ही गृहस्थके आश्रयसे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी, अर्थात् सब आश्रमोंका निर्वाह होता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीनों आश्रम गृहस्थहीसे प्रतिदिन अन्नादि पाते हैं, इससे गृहस्थ ही सबसे ज्येष्ठाश्रम है। वेद और स्मृतिके प्रमाणसे सब आश्रमोंके बीचमें गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है, क्योंकि यही आश्रम तीनों आश्रमोको पालन करता है। ×

'पुं' नामक नरकसे जो पिताकी रक्षा करता है, वही पुत्र कहलाता है। ब्रह्माने नामहीसे पुत्रका कर्तव्य बतला दिया है। पुत्र-शब्दका अर्थ बतलाया जाता है—'पुनाति स्ववंशान् इति पुत्रः।' अपने वंशजोंको सुकृत्यों द्वारा जो पवित्र करे उसीका नाम है 'पुत्र'। पुत्र अपने अच्छे कर्म्मोंसे दस पीढ़ी आगेके अपने पूर्वजोंको, दस पीढ़ी पीछेकी अपनी सन्ततिको तथा स्वयं अपने आपको अर्थात् कुल २१ पीढ़ियोंको दुर्मरण आदि प्रायश्चित्तोसे मुक्त और पवित्र कर सकता है।

अर्थात्—मैं त्रिविध सुखसे युक्त होकर उत्तम प्रजायुक्त होऊँ, उत्तम पुत्र, बन्धु, सम्बन्धी भृत्योंके साथ उत्तम वीरोंसे सहित होऊँ, आदि।

* प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थञ्च मानवाः।
तस्मात् साधारणो धर्म्मः श्रुतिः पत्न्या सहोदितः ॥—मनु।

अर्थात् गर्भधारण करनेके लिए स्त्रियाँ और गर्भाधान करानेके लिए पुरुष उत्पन्न किये गये हैं, इस लिए स्त्रीके पास पुरुषका रहना आवश्यक धर्म्म है।

×—यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥—मनु।

पुत्र अथवा पुत्रके पुत्रकी आवश्यकता केवल पिण्डदान और श्राद्ध करके पितरोंको सन्तुष्ट कर देनेहीके लिए नहीं है, बल्कि 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति-' जिसे पुत्र या सन्तान नहीं उसकी सद्गति ही नहीं हो सकती। पुत्रहीनके लिए मोक्षका द्वार ही बन्द रहता है।

एक ओर तो आर्थिक सुगमता और दूसरी ओर वंशवृद्धिसम्बन्धी शास्त्रकारोंकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था और अपूर्व पुत्रमहिमा। जब वंशवृद्धिसे लोक और परलोक दोनों ही बनते हैं तब फिर क्या पूछना है! पतिपरायणा, मनोवृत्त्यनुसारिणी सुंदरी पत्नीकी प्रेमपूर्ण सेवाका स्वर्गीय आनंद लूटना किसे रुचिकर न होगा, अनेक पीढ़ियोंको मुक्ति देनेवाले शिशुजन्मकी किसे अभिलाषा न होगी, कौन ऐसा मूर्ख और नराधम होगा जो वंशवृद्धि न करके इस लोक और परलोक दोनोंके आनन्दसे वञ्चित रहना चाहेगा!

इस अन्तिम शास्त्राज्ञाने भारतमें भारी उलट फेर कर दिया—प्रत्येक स्त्रीपुरुषके हृदय पर बड़ा प्रभाव डाल दिया। योग्यायोग्यका विचार न करके सबको पुत्रप्राप्तिके लिए गृहाश्रमधर्मका पालन करना चाहिए और संसार-व्यवहार चलाना चाहिए। सब किसीको पुत्र उत्पन्न करना चाहिए। ऐसा करनेहीसे परमार्थ सधेगा और वास्तविक मुक्ति मिल सकेगी, अन्यथा नहीं। शास्त्रोंके सत्य मर्मको न समझनेवाले भारतवासियोंके मनमें यह बात समा गई है कि सन्तानोत्पादन करनेहीसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है। विना पुत्रके उनका जीवन ही वृथा है। प्राचीन कालका इतिहास उनके इस विचारको और भी पुष्ट करता है। रामायण आदि पुस्तकोंमें वे पुत्रमहिमाकी अनेक कथायें पढ़ते हैं। वे देखते हैं कि दशरथ आदि महाप्रतापी राजाओने सन्तानके लिए बड़े बड़े कष्ट सहे थे, पुत्र उत्पन्न करनेके लिए महान् यज्ञ और तप किये थे। क्योंकि विना पुत्रके मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता।

सहस्रों वर्षोंसे यह भावना हमारे हृदयमें चली आ रही है कि जो पुत्र अपने माता-पिताके पीछे श्राद्ध नहीं करता और पिण्डदान नहीं करता उसके माता-पिताओंकी सद्गति नहीं होती। यह विश्वास दृढ और अटलसा हो गया है। इसका परिणाम बड़ा भयानक हो रहा है। अन्धविश्वासी पुरानी लकीरके फकीरोंके यहाँ सन्तान होनी चाहिए—बस। पुत्र जीवेगा, पुण्यात्मा होगा कि पापका पुतला—देशद्रोही, पितृघातक, व्यभिचारी, कपटी आदि जो कुछ भी हो इससे कुछ मतलब नहीं। जिन्होंने मातापिताको उनकी जीवितावस्थामें

खानेको पूरा अन्न भी नहीं दिया है, वल्कि उलटे उन्हींका जीवन चूस चूस कर अपना निर्वाह किया है वे कपूत भी पिताकी मृत्युके पीछे पिण्डे ढँगला कर पितरोंको स्वर्ग पहुँचावेंगे ! हाय ! यह कैसी धर्मकी समझ और कैसी अन्धश्रद्धा है !

पिण्डदानसे पारमार्थिक सिद्धि चाहे कुछ भी होती हो, पर श्राद्धादि क्रियायें फलदायिनी तभी होंगी जब शास्त्राज्ञाका सत्य उद्देश्य और उन क्रियाओंका मर्म अच्छी तरह समझमें आजायगा। मृत्युके पश्चात् पुत्र पिताको नरकसे मुक्त करता है, यह बात अप्रत्यक्ष और काल्पनिक है। इसे न तो किसीने आँखसे देखा है और न बहुत दिनो तक इसके दिखाई देनेकी आशा ही है। किन्तु पिताकी जीवित अवस्था तो प्रत्यक्ष है। स्वर्गके सुखको कोई नहीं देख सकता, पर इस संसारमें पुत्र पिताको कितना सुख देता है इसे तो सभी देखते हैं। यह विलकुल खुली हुई बात है।

स्वर्ग और नरकका सीधासादा नाम सुख और दुःख है। इस जीते जागते सत्य और सार संसारमें नरकसे मुक्त करनेका अर्थ है, दु खसे, भयसे, चिन्तासे, पराधीनतासे छुटकारा दिलाना। माता-पिताके सुखकी या मोक्षमार्गकी सुगमताके लिए, कुल, जाति या स्वदेशके उद्धारके लिए, संसारके प्राणीमात्रके कल्याणके लिए, बड़ोके आरंभ किये हुए कार्यको पूर्ण करनेके लिए, कुल-दीपक पुत्र और प्रकाशमयी पुत्रियोकी आवश्यकता होती है। सुपुत्र और सुपुत्रियाँ अपने वल, ज्ञान, आत्मत्याग और सत्कर्मोंसे इस संसारके यात्रियोंसे भरी हुई नौकाका वेड़ा पार करती हैं। इस तरह कुटुम्बकी एक प्रधान स्त्री या पुरुष सत्कार्योंकी प्रवृत्ति करता हुआ मरणको प्राप्त होता है और अपने स्थान पर अपने आरम्भ किये हुए या अधूरे छोड़े हुए कार्योंको पूर्ण करनेके लिए या उनमें वृद्धि करनेके लिए अपने स्थान पर एक या अधिक, अपने समान, नहीं नहीं अपनेसे अधिक, रूपवान्, वलवान्, स्वकुटुम्बप्रेमी, स्वदेशानुरागी वीरों या वीरांगनाओको छोड जाता है। आर्यधर्म्मकी आज्ञानुसार प्रत्येक नर और नारी, हर एक गृहस्थ ऐसी पुनीत प्रवृत्ति करनेके लिए, ऐसे मनोवाञ्छित उत्तराधिकारीको छोड़ जानेके लिए वँधा हुआ है। कर्त्तव्य रूपसे आरंभ किये हुए कार्योंको परिपूर्ण करनेके लिए पुत्रकी इच्छा मनुष्योंमें स्वाभाविक है। इस प्राकृतिक, स्वाभाविक और धार्मिक इच्छाको पूरा करनेके लिए प्राचीन आर्यगण गृहाश्रमके दृढ नियम सङ्गठित कर गये हैं। इन

नियमोंके अनुसार चलनेसे कुपुत्र जन्म ही नहीं सकते। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यही नहीं बल्कि इससे मनमानी सर्वोत्तम संतति पैदा की जा सकती है। किसी वेद, किसी शास्त्र और किसी धर्म्ममें दुर्जनों जर्जर, अपाहिज या दुर्बल सतान पैदा करना नहीं लिखा है। गृहाश्रम धर्म्ममें प्रवेश करना बालकोंका खेल नहीं बतलाया गया है। मनुमहाराजने साफ साफ लिख दिया है कि "गृहाश्रममें बड़ी सावधानीसे रहना चाहिए। दुर्बल और अयोग्य जन इस महत्त्वपूर्ण धर्म्मका पालन नहीं कर सकते *।" उन्होंने ऐसे लोगोंको गृहाश्रममें जानेका अधिकार ही नहीं दिया है। बल्कि विवाह कैसे लोगोंको करना चाहिए और कैसे लोगोंको नहीं, यह भी लिख दिया है। "जिस कुलमे सुकर्म न होते हों, जिसमें अच्छे बालक न उत्पन्न होते हो, जिसमें वेदाध्ययन न होता हो, जिस कुलके बालकोंके शरीर पर लम्बे बाल हों, जिस कुलमें क्षय, मृगी, या सफेद कोढ़ हो, उन कुलोंमे न तो कन्या देनी चाहिए और न ऐसे कुलोंकी कन्या लेनी चाहिए।"

"पीले वर्णवाली, अधिक अङ्गवाली (जैसे छगुली), रोगवती, जिसके शरीर पर कुछ भी लोम न हो, या अधिक लोम हों, व्यर्थ अधिक बात करनेवाली हो, जिसके बिल्लीकी तरह पीले नेत्र हों, जिसका नक्षत्र पर नाम हो (रेवती, रोहिणी आदि), जिसका नदी पर नाम हो (गङ्गा, यमुना आदि), जिसके पर्वत, पक्षी, (कोकिला, मैना आदि), अहि (उरगा, भोगिनी), प्रेष्य (दासी) वाचक नाम हो और जिसका भीषण (कालिका, चण्डिका इत्यादि) नाम हो, उस कन्याके साथ विवाह न करना चाहिए। किन्तु जिसके सुन्दर अंग हों, उत्तम नाम हो, जो हंस और हाथीकी तरह चल- वाली हो, जिसके सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दाँत हों, जिसके सब अंग कोमल हो उस स्त्रीसे विवाह करना चाहिए।" †

स मन्धार्य्यं प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखञ्चेहेच्छता नित्य योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥

†—हीनक्रिय निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥
नोद्वहेत्कपिला कन्या नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
नालोमिका नातिलोमा न वाचाटा न पिङ्गलाम् ॥

" चाहे ऋतुमती कन्या पिताके घरमें मरणपर्यन्त बिना विवाहके बैठी रहे, परतु गुणहीन, असदृश, या अयोग्य पुरुषके साथ उसका विवाह कभी न करे । " +

नारद ऋषिने कहा है कि " कुमारोंकी परीक्षा वैद्यसे कराकर उसकी आज्ञा होने पर विवाह करना चाहिए। यदि कुमारीमें संक्रामक, और घृणोत्पादक रोग, शरीरकी कुरूपता, ब्रह्मचर्यका भंग आदि दोष हों तो उसका विवाह नहीं हो सकता और यदि उपर्युक्त दोष या पागलपन, जातिहीनता, नपुंसकता, दरिद्रता आदि दोष कुमारमे हों तो वह भी विवाहका अधिकारी नहीं ।'' इनके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, लक्षण शास्त्र आदि भी ऐसी बातोंसे भरे पड़े हैं कि कैसी स्त्रीसे या कैसे पुरुषसे किस समय विवाह करना चाहिए। मनुष्यके शरीर और आत्मा दोनों उत्तम रहें, इसके लिए गर्भाधानसे लेकर श्मशानात, अर्थात् मृत्युके पश्चात् मृतक शरीरका दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं। शरीरका आरंभ गर्भाधान और अन्त अन्त्येष्टिसे होता है। इन सोलहों संस्कारोंको नियमपूर्वक करना प्रत्येक आर्य्यका कर्तव्य है ।

मैं पूछता हूं कि ऋषियोके प्रचलित नियमोंमेंसे क्या आज एक नियम भी उनकी अज्ञानुसार माना जाता है ? क्या आज भी केवल हृष्टपुष्ट, निरोगशरीर, विद्वान्, विद्याभ्यासी, सत्यासत्यविवेकी और कर्तव्यपरायण लोग गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होते हैं ? क्या दुधमुंहें बच्चोके—गोदमें खेलनेवाले या स्कूलोंमे फुदुकनेवाले बच्चोके—सिर पर गार्हस्थ्य रख देना धर्म्म है ? क्या शराबी, कोढ़ी, पागल, दुर्बल, दरिद्रोका संतानोत्पादन करना धर्म्म है ? साक्षात् देखते हुए कि १०० लड़कोंमेसे ५० लड़के बाल्यावस्थामें ही (एक वर्षके भीतर ही) कालके ग्रास बन रहे हैं, यह जानते हुए भी कि इन बच्चोंकी मृत्युका कारण उनके

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियाम् ॥
+ —काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

माता-पिताकी त्रुटि है, सन्तान पर संतान पैदा करते हुए श्मशान या कब्रस्तान भरते जाना अभागे भारतका ही धर्म्म हो सकता है।

धर्म्म और अधर्मका निर्णय मनुष्य करें या न करें, मनुष्य किसी अधर्मको ही धर्म्म कह कर अपने भोलेभाले भाई मनुष्योंको भरमाया करें, किन्तु प्रकृति धोखा नहीं खा सकती। कालचक्र आपसे आप दोनोंको अलग कर देगा। धर्म्मसे उत्थान और अधर्म्मसे अधःपतन होगा और अवश्य होगा। उसे संसारकी कोई कृत्रिम शक्ति रोक नहीं सकती। प्रजाके धार्मिक जीवनसे देशकी उन्नति और अधार्मिक जीवनसे अवनति होगी और निश्चय होगी। सभ्य संसारके सम्मुख इस देशकी कैसी दीन दशा है, वह कैसे घोर अधःपतनको प्राप्त है, यह बतानेकी अवश्यकता नहीं।

वह भयंकर अधर्म क्या है? प्रजामें स्वदेशाभिमानका न होना। प्रजाका आलसी और निरुद्योगी बन जानेका मूल कारण क्या है? इसका उत्तर है-"भारतवासी प्रजा उत्पन्न करनेका शास्त्र भूल गये हैं और इतनी अधिक संतान उत्पन्न करते हैं कि वे उसको सुयोग्य बनानेमें असमर्थ रहते हैं।"

दो माली वृक्ष लगा रहे हैं। उनमेंसे एक वनस्पतिशास्त्रका पण्डित है और दूसरा गवांर। चतुर माली भूमिको उर्वरा बनाकर उचित समय पर बीज बोता है और उतने ही बोता है जितनेकी देखरेख और खाद-पानी आदिका प्रबन्ध वह ठीक ठीक कर सकता है। पर मूर्ख माली समय-कुसमय बुरी भली भूमि पर ध्यान न देकर बीज बोता ही चला जाता है। उसके कुछ बीज तो उगते ही नहीं, सड़ या सूख जाते हैं, बाकी जो निकलते हैं वे इतनी अधिक संख्यामें कि वह उनकी देखरेख नहीं कर सकता। परिणाम यह होता है कि चतुर माली फलों और फूलोंसे सम्पन्न होकर मालामाल हो जाता है और मूर्ख मालीका सबका सब या अधिकांश द्रव्य और परिश्रम निष्फल जाता है और अन्तको वह दरिद्र और भिखारी होकर चतुर मालीका आश्रित बनता है।

केवल संतान उत्पन्न करते रहनेमे क्या लाभ? बच्चे पैदा हुए और मर गये, या कुछ दिन जी कर मरे। जो द्रव्य और शक्ति इन बच्चो पर खर्च हुई वह व्यर्थ गई। सूदको कौन झीके, मूल धन ही मारा गया। पर सभ्य देशवाले केवल ऐसी ही संतान पैदा करते हैं जो जीती जागती हुई पूर्ण आयुको प्राप्त होती है। उन्होंने जो शक्ति और द्रव्य अपनी संतान पर लगाया वह जमा होता गया और अपने समय पर सूद-ब्याज सहित फिर लगाया गया। इस

तरह पर वह शक्ति और द्रव्य दोनों बढ़ते ही जाते हैं। मूल धन खो देनेवाले और सूद-दरसूद बढ़ानेवाले महाजनोंका भला क्या मुकाबला हो सकता है?

सारांश यह कि अपनी कमजोरियोंको, अपनी त्रुटियों और भूलोंको धर्म्म या अधर्म्मके माथे मढ़ना ठीक नहीं। धर्म्मके हीलेसे साक्षात् और बरबस अधर्म्म करनेका फल बढ़ा ही जहरीला होता है जिसका निश्चित परिणाम है 'मृत्यु।'

इन सर्व घटनाओं, दोषों और निर्बलताओंके दिखानेसे मेरा यही अभिप्राय है कि आप अपनी वास्तविक दशाका अवलोकन करके उनके दूर करनेके उपायों पर ध्यान दें। प्रत्येक काल, देश और समाजमें सदैव एक ही धर्म्मशास्त्र, एक ही नियम, एक ही सभ्यता स्थिर नहीं रह सकती। समयके साथ साथ इन सबमें भी परिवर्तन होता ही रहता है, या होना जरूरी होता है *। इससे समयानुसार देशकी परमावश्यक बातोंका करना किसी तरह अधर्म्म नहीं हो सकता। जिससे अपना मतलब सधे, जिससे अपनी जाति और अपने देशकी दशा सुधर सकती हो, वह बात चाहे नई हो और चाहे उसके बारेमें अपने धर्म्मशास्त्र कुछ न कहते हों, तो भी उसका करना परम धर्म ही होगा। देशके उत्थानसे बढकर दूसरा पुण्य कार्य कुछ नहीं हो सकता।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्म्मः।

---

* अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेताया द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगन्ह्रासानुरूपत.॥ —मनुस्मृति।

पाँचवाँ परिच्छेद ।
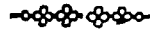
जन-वृद्धि-निरोधका उत्तम उपाय ।

The nation is an organism in struggle to survive, and its success in that struggle depends on the strong increase of the best elements of its population. * —Karl Pearson

इस युद्ध-क्षेत्र या कर्मक्षेत्र संसारमे प्रत्येक राष्ट्र अपने अपने अस्तित्वके लिए युद्ध कर रहा है । विजयका प्राप्त होना राष्ट्रोंके लोकसमुदायकी व्यक्तिगत उत्तमता पर अवलम्बित है ।

इस जीवनसंग्रामसे कोई बच नहीं सकता । प्रत्येक कालमें, प्रत्येक देशमें, प्रत्येक राष्ट्र, जाति और मनुष्यमें यह झगड़ा अनन्तकालसे जारी है । इसी नियमके अनुसार भारतको भी इस क्षेत्रमें उतरना पड़ा है, किन्तु दुःख और लज्जाके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि भारतकी हार हुई और अब इस प्यारे देशके सम्मुख जीवन और मृत्युका भयंकर प्रश्न उपस्थित है ।

किसी जाति या राष्ट्रकी ऐसी दीन, हीन और भयप्रद दशाको सुधारने अथवा उन्नत करनेका गम्भीर विचार उपस्थित होने पर ये दो प्रश्न आपसे आप मनमें उठते हैं,—एक तो वे कौन कौनसे कारण है जो अब तक उस जातिकी उन्नतिको रोकते रहे हैं, और दूसरा क्या भविष्यमें उन सब कारणों, या सब न सही तो उनमेंसे कुछ कारणोके दूर होनेकी आशा है ?

इन प्रश्नोको पूरी तरह हल करना और उस जाति या राष्ट्रकी उन्नतिके बाधक कारणों पर पूरी तरहसे विचार करना किसी एक मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है । और न कोई एक ऐसा उपाय ही बतलाया जा सकता है जिसके करने या न करनेसे उस राष्ट्रकी दशा सुधरकर बिलकुल ठीक हो जाय । यह सर्वथा असम्भव है । इस लिए भिन्न भिन्न देशो तथा भिन्न भिन्न समयोंके विद्वानों, तत्त्ववेत्ताओं तथा लोकहितैषी मनुष्योंने इन प्रश्नोंको अपने अपने

* National life from the stand-point of Science by Professor K Pearson

ढंग पर अलग अलग हल करनेका प्रयत्न किया है और उन्नतिके बाधक कारणोंमेंसे किसी एक पर अपना विचार प्रकट किया है।

भारतवर्षमें चारों ओरसे उन्नतिकी पुकार है। कोई कहता है कि भारतीय प्रजामें स्वदेशाभिमान नहीं है, कोई कहता है कि वे अपना धर्म्म नहीं समझते, कोई कहता है कि वे आलसी और निरुद्योगी बन गये हैं और कोई कहता है कि देशमें एकता नहीं है। अनेकानेक सज्जन भारत-सुधारके लिए तन-मन-धन अर्पण कर रहे हैं और इसके एक एक अंगको सुधारनेका प्रयत्न कर रहे हैं। बहुतसी संस्थायें लेखों और व्याख्यानोंद्वारा भारतीय प्रजामें स्वदेशाभिमान फैला रही हैं, बहुतसी सभायें धर्म्मको ही मूल मानकर धार्म्मिक शिक्षाका प्रचार कर रही हैं और बहुतसी सुसाइटियाँ सार्वजनिक प्रेम और संघशक्तिके महत्त्वको लक्ष्य मानकर अछूत जातियोंके उद्धारमें लगी हुई हैं। ये और इसी प्रकारके और भी कार्य प्रशंसनीय हैं और इन सभीसे देशका कल्याण होगा, यह निश्चय है, किन्तु यदि कुछ थोड़ेसे देशहितैषी अपना जीवन देशसेवामें बितावें और बहुतसे देशबन्धु उनके कार्य करनेमें बाधा डालें, तो क्या कभी यथेष्ट सुधार हो सकता है? यदि हम अनाथरक्षाके लिए चिल्लाया करें, पर मरते समय आधे दर्जन अनाथ छोड़ जायँ, समाजसुधारका बीड़ा उठावें, पर अयोग्य सन्ततिसे समाजको भरते रहें, तो इससे क्या लाभ? किसी कविने कहा है कि—

'If every one looks to his own reformation,
'How very easy to reform a nation.'

अर्थात्—यदि किसी राष्ट्रका प्रत्येक जन अपने अपने सुधारका प्रबन्ध करे तो उसका सुधरना बहुत ही सहज हो जाय। किन्तु, यदि सब लोग देशकी अधोगति तथा सुधारकी ओर ध्यान न देंगे, तो एक मुट्ठीभर सुधारकोंसे देशकी दशाका परिवर्तन बहुत बड़ी कठिनता और विलम्बसे हो सकेगा। साथ ही यह भी स्मरण रहे कि बहुतसी बातें ऐसी हैं कि जो स्वयं अपने ही किये हो सकती हैं। दूसरोंका कर्तव्य उनमें कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकता। यह महत्त्वपूर्ण विषय भारत-जनताकी वृद्धिका है। इसमें सुधार करना या न करना प्रत्येक भारतवासीके अधीन है।

इस बातका वर्णन अच्छी तरह किया जा चुका है कि हतभाग्य भारतमें प्राकृतिक निरोध (Positive check) किस भयंकर निर्दयतासे निःसीम

वृद्धिको रोककर भोजन और जनसंख्याकी समता स्थिर रखता है। इससे देशको भारी धक्का लगता है और वह दिनोंदिन अधोगतिको प्राप्त होता जाता है। देशके अभ्युदय और कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि आबादी बहुत न बढ़ने पावे। अतः अब जनवृद्धि-निरोधके कुछ मानुषी उपाय (Prudential or Restrictive check to Population) बतलाये जाते हैं।

जनसंख्या रोकनेके मानुषी कारण जितने हैं, उनके तीन भाग किये जा सकते हैं:—

१ केवल उत्तम सन्तान उत्पन्न करना (सन्तान-शास्त्र)।

२ इन्द्रियदमनद्वारा सन्तानकी संख्या न बढ़ने देना।

३ कृत्रिम निरोध (Artificial check) अर्थात् ओषधियों या यन्त्रोंका प्रयोग करके जितनी चाहिए उतनी ही सन्तान उत्पन्न करनी।

छठा परिच्छेद।
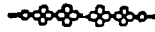
सन्तानशास्त्र

अर्थात्

उत्तम संतति उत्पन्न करनेके नियम।

'Positive and negative Eugenics are one and the same; that the relative increase of the better is the relative decrease of the worse' ×

—*Whetham.*

धनात्मक और ऋणात्मक सन्तानोत्पादन (Eugenics) का परिणाम वास्तवमें एक ही है। क्योंकि उत्तम प्रजाकी जितनी ही वृद्धि होगी अधम प्रजामें उतनी ही कमी होगी। —व्हीथम।

यह विषय बड़े महत्त्वका है। किसी जातिकी उन्नति उस जातिकी उत्तमोत्तम उत्पादकशक्ति पर निर्भर है। जो जाति जितनी ही अधिक और सर्वोत्तम प्रजा उत्पन्न कर सकती है, वह जाति उतनी ही शीघ्रतासे उन्नतिके शिखर पर विराजमान होती है। कृत्रिम निरोध (Artificial check) या इन्द्रियदमन द्वारा अधम प्रजाकी उत्पत्ति रोकनेकी अपेक्षा उत्तम प्रजाकी वृद्धि पर ध्यान देना कहीं अधिक आवश्यक है। * जर्मन और फ्रांस इस विषयके उत्तम उदाहरण हैं। जर्मन जातिने उत्तम प्रजाकी वृद्धि पर और फ्रांसने अधम प्रजा न उत्पन्न करने और अपनी जनसख्याको सीमाबद्ध करने पर

× 'Family and the Nation' by Whetham

*'The possibility of improving the race of a nation depends on the power of increasing the productivity of the best stock. This is far more important than that of repressing the productivity of the worst'—Enquiries into Human Faculty page 336

अधिक ध्यान दिया है। फल यह हुआ है कि यद्यपि फ्रांस स्वयं बहुत अच्छी दशामें है और चीन या भारतसरीखे देशोंसे जहाँ अधम प्रजाकी भरमार है उसका मुकाबला नहीं किया जा सकता, तो भी जर्मनीने उसे बेतरह नीचा दिखाया है। जैसे चीन और भारतसे फ्रांस कहीं अच्छी दशामें है, किन्तु, जर्मन फ्रांससे भी अच्छा निकला, ठीक इसी तरह अधम प्रजाकी उत्पत्ति किसी न किसी तरहसे रोकना तो अच्छा है ही, पर इससे भी कहीं अच्छी बात यह है कि एकमात्र सर्वोत्तम प्रजाकी उत्पत्ति पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाय। हालां कि प्रकृति असीम वृद्धिको अवश्य ही रोकेगी, चाहे वह उत्तम प्रजाकी हो और चाहे अधमकी। अयोग्य प्रजावाले राष्ट्रको, जैसा कि एक चीनी विद्वानने कहा है 'Fankwei Foreign Devil' —विदेशी राक्षस भक्षण करेंगे और इन बलवान् राक्षसोंकी वृद्धि यूरोपीय महाभारतसरीखे युद्ध-कुंडोंमें स्वाहा हो जायगी। इस तरह प्रकृति भूमण्डलकी जन और भोजनकी समता स्थिर रक्खेगी। पर तैमूर, नादिर, प्लेग, दुर्भिक्ष, दरिद्रता और इन सबसे बुरे पराधीनताके चंगुलमें फँसकर मरनेसे तो चक्रवर्ती राज्याभिलाषी जर्मनकी तरह रूस, फ्रांस और इंग्लैण्डसे ही भिड़कर कट मरना अच्छा है। जहाँ संघर्ष नहीं, वहाँ जीवन नहीं। इस राष्ट्रीय संघर्षमें विजयी होनेके लिए योग्यता चाहिए, इसलिए राष्ट्रमें योग्यता बढ़ानेकी कामना प्रशंसनीय है। इसी कारण मैं पहले कृत्रिम उपायोंसे अधम प्रजाकी उत्पत्ति रोकना न बतलाकर सुदृढ, सुन्दर और सदाचारी सन्तान उत्पन्न करने पर जोर देता हूँ। जब उत्तम प्रजाकी उत्पत्ति होने लगेगी, तब अधम प्रजाकी कमी आप-ही-आप हो जायगी। *

भारतके प्राचीन शास्त्रोंसे पता चलता है कि हमारे पूर्व पुरुषोंने इस विषयमें बहुत कुछ अनुसन्धान किया था। प्राचीन आचार-प्रणालीसे यह विदित होता है कि उन लोगोंने केवल विचार ही नहीं किया था, बल्कि वे इस विषयके व्यवस्थापित नियमोंके अनुसार चलते भी थे। राम और कृष्ण, सत्यवक्ता हरि-

---

*'That success in life indicates ability, and that ability is a desirable possession for a race'

'I have not spoken of the repression of the inferior stock believing that it will ensue indirectly as a matter of course.'

—*The Parenthood and Race-culture.*

श्चन्द्र और युधिष्ठिर, अखण्ड ब्रह्मचारी पितामह भीष्म और हनुमान, महारथी अर्जुन, भीम और कर्ण, विद्वान् नरेश जनक और श्रीहर्ष, परोपकारी शिवि और भोज, कविकुलभूषण कालिदास, भवभूति, दण्डी और माघ, जगद्गुरु भगवान् व्यास और शुकदेव, गौतम और शंकर, स्त्रीसमाजका मुख उज्ज्वल करनेवाली सीता और सावित्री, द्रौपदी और शकुन्तला आदि कोटि कोटि उदाहरण हैं जिनके जीवनसे हमें अपने प्राचीन पुरुषोंके आदर्शजीवनकी तथा उत्तम सन्ततिशास्त्रके ज्ञानकी झलक दिख जाती है।

संसारमें ऐसी अनेक जातियोंके उदाहरण मिलते है जो बड़े जोरोंसे उठीं, जिन्होने शताब्दियोंपर्यंत राज्य किया, पर अन्तमें नष्ट भ्रष्ट हो गई और अब उनके आस्तित्वका पता केवल उनकी कब्रों या पृथ्वीके पेटमें पड़ी हुई उनकी वस्तुओको देखनेसे चलता है॰। किन्तु हजारों वर्षोंसे पराधीनताके दुःख भोगते रहने पर भी बूढ़ी आर्य जाति नष्ट न होकर अपना आस्तित्व बनाये हुए है। इन बुरे दिनोंमें भी इसने स्वदेशभक्त राणा प्रताप, महाराष्ट्रकेसरी शिवाजी, गुरु गोविंदसिंह, रानी दुर्गावती और लक्ष्मीबाई आदि अगणित वीर और वीरागनाओको जन्म दिया है। यह उसी महान् और पवित्र संस्कारका या सन्तानशास्त्रके नियमोंके प्रचारका ही फल है। पर आज हम उन नियमोको भूलते जा रहे है, हममेंसे उनका प्रचार उठता जा रहा है। आधुनिक सभ्य जातियोंने भी सन्तान शास्त्रके नियमोंकी खोज की है और उनके द्वारा उन्होने अपनी बहुत कुछ उन्नति कर ली है। पर हम इन नये नियमोसे भी परिचित नहीं हैं। इस तरह प्राचीन और अर्वाचीन नियमोंकी अज्ञानतासे हम अवनतिके गहरे गढ़ेमें गिरते जा रहे हैं। जिस वेगसे हमारा अधःपतन हो रहा है उससे भय है कि कहीं संसारसे हमारा नामोनिशान ही न मिट जाय। अत यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारतजनताको सन्तानोत्पत्ति-शास्त्रका मर्म समझाया जावे, और शिशुपालन तथा शिक्षणका महत्त्व दिखलाया जावे। ये सन्तानशास्त्रसंबंधी विचार चाहे आधुनिक संसारके हो और चाहे हमारे प्राचीन पूर्व पुरुषोंके, इससे कोई मतलब नहीं, इनका जानना जरूरी है। पूर्वजोंकी आचारपद्धति पर ध्यान देतेहुए आधुनिक वैज्ञानिक देह-धर्म-शास्त्रका ज्ञान

॰ जैसे मिसरके पिरामिड, बाबिलन, ग्रीस, मेक्सिको तथा दक्षिणअमेरिकामें खोदी हुई वस्तुयें और खडहर आदि।

प्रत्येक भारतवासीको होना चाहिए। प्रत्येक विचारशील भारतवासीको वह महान् सन्देश घर घर पहुँचाना, इस विषयकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित करना और इसे उनका कर्तव्यकर्म बना देना उचित है।

'It must be made familiar as an academic question until its exact importance has been understood and accepted. It ought to be introduced into the National Conscience like a new religion. It may be defined as the science which deals with those social agencies that influence the racial qualities of future generations.' ×

मनुष्य जातिकी उत्तरोत्तर वंशवृद्धिके नियमोंके बतलानेवाले शास्त्रका आधुनिक नाम है 'अभिजनन-शास्त्र,' 'प्रजननशास्त्र', या 'सन्तानशास्त्र' आदि। अंगरेजीमें इसे यूजेनिक्स (Eugenics) कहते हैं। सन्तानशास्त्रका विषय बड़ा ही गम्भीर और विशाल है। इसका सम्बन्ध जीवन-विद्या (Biology), नर-विद्या (Anthropology), शरीर-रचना-विद्या (Anatomy), मानस-शास्त्र (Physiology), समाज-शास्त्र, (Sociology), और आचार-शास्त्र (Ethics) आदि अनेक शास्त्रोसे है। इस छोटेसे ग्रन्थमे न तो इतना स्थान है और न मुझमें इतनी योग्यता है कि इस गम्भीर विषय पर विस्तारपूर्वक लिखा जाय। यहाँ मैं यथाशक्ति इस विषयके मन्तव्योंकी केवल छाया या आभासमात्र (Bird's-eye-view), देनेका प्रयत्न करता हूं।

संसारमे प्रत्येक कार्य्य नियमपूर्वक होता है। दृष्टि जहाँतक जा सकती है और बुद्धि जहाँतक अपना कार्य कर सकती है, प्रकृतिमें कोई बात नियम-विरुद्ध होती नहीं दिखाई देती। पृथ्वी, आकाश, तेज, वायु, प्रकाश, गृह नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य्य आदि सभी नियमानुसार अपना कार्य किया करते हैं। प्रकृतिने प्रत्येक कार्यके लिए नियम बना रक्खे है। इन्ही नियमोंको ईश्वरीय भेद, गुप्त रहस्य, अमोघ शक्ति और अगणित विद्याओका खजाना कहा जाता है। मनुष्यजातिकी भलाई और श्रेय इन्हीं प्राकृतिक नियमोके ज्ञान पर निर्धारित है। ज्यो ज्यो मनुष्यकी बुद्धि विकसित होती या बढ़ती जाती है त्यों त्यों वह इन नियमोके गुप्त भेदोंको समझता जाता है और ज्यों ज्यों ये रहस्य मनुष्य पर व्यक्त होते जाते है त्यो ही त्यों मनुष्यका श्रेय और विशेषता

× National Life from the stand point—Science, page 20

बढ़ती जाती है और यह संसारमें बड़े महत्त्वपूर्ण और आश्चर्यजनक कार्य करनेमें समर्थ होता जाता है। मनुष्यजातिकी उन्नति ओर लाभके लिए इन नियमोंका जान लेना, इनको मालूम कर लेना, इन्हें समझ लेना बहुत जरूरी ह। जिन जातियोंमें इस ज्ञानका अभाव है, जो इन नियमोंसे अनभिज्ञ हैं, वे इस संसारमें अज्ञानान्धकार और अधोगतिके दलदलमें फँस कर मर मिटती है, और जो जातियाँ इन प्राकृतिक रहस्यों, शक्तियों और नियमोंको जान लेती हैं, समझ लेती हैं और उन्हींके अनुसार कार्य करती है, वे संसारमे सबसे अधिक उन्नति कर लेती हैं, वे मार्गदर्शिका और नेत्री मानी जाने लगती है।

इन्हीं प्राकृतिक नियमोंके ज्ञानसे स्वार्थत्यागी और जातिहितैषी विद्वानोंने अगणित विषयोंमें अगणित ही अविष्कार किये हैं। भाप, बिजली, तार, छापखाना, हवाई जहाज आदि इसी ज्ञानके फल हैं। हीरा और नीलम जैसे बहुमूल्य रत्नोंके भी बनानेका यत्न विद्वानोंने किया और उन्हें सफलता हुई। पहले इस बातका ज्ञान प्राप्त किया गया कि हीरा या नीलम किन पदार्थोंसे बने हुए हैं—उनमें कौन पदार्थ कितने कितने अंशमें मिश्रित हैं—पृथ्वीके अन्दर कितने कितने दबाव और गरमीसे वे तैयार हुए हैं, और फिर उन्हीं पदार्थोंको उतने ही अंशोमें अपनी निश्चित रीतिसे मिला कर आवश्यक गरमी और दबाव पहुँचा कर हीरा और नीलम बना लिये गये।

माताका गर्भस्थान प्रकृतिकी एक प्रयोगशाला है। इस प्रयोगशाला (Laboratory) में बहुमूल्य और सस्ते हर तरहके मनुष्य-रत्न ठीक उसी प्रकारसे तैयार होते हैं जिस प्रकार कि रसशालामे रसमात्राये। रसशालामे रासायनिककी बुद्धि, यन्त्रोंकी उत्तमता तथा पदार्थोंके उचित अंशके मिश्रण पर ओपधियोकी उपयोगितामें अधिकता या न्यूनता होती है, काचके कारखानेमें काचके मावेकी जातिके अनुसार न्यूनाधिक निर्मल और पारदर्शक काचकी वस्तुयें बनती हैं, सूई, कारीगर और मशीनकी उत्तमताके अनुसार सुन्दर और टिकाऊ या भद्दे और कमजोर कपड़े बनते है, कुम्हार जिसतरहकी मिट्टीका उपयोग करता है, चाकके ऊपर जैसा आकार देता है, जिस सावधानी और चतुरतासे उन्हें पकाता है वैसे ही उत्तम या निकम्मे पात्र तैयार होते हैं। भट्टीमेंसे निकालनेके पश्चात् पात्रों पर चाहे जैसा रंग चढ़ाया जाय, चित्रकारी और पच्चीकारी की जाय, इससे उनकी सुन्दरता कुछ बढ़ सकती है, किन्तु

पात्रोंका वास्तविक मूल्य उपयोगमें लाइहुई मृत्तिकासे, साँचे या चाक पर दिये हुए आकारसे और भट्टीमें चतुराईके साथ पकानेसे ही आँका जाता है:—

> It isn't all in the bringing up,
> Let folks say what they will,
> You may silver Polish a Pewter cup,
> But it will be Pewter still.

बालकरूपी पुतला माताके गर्भरूपी साँचेमें ढलकर तैयार होता है। जैसे उत्तम या मध्यम पदार्थोंका प्रयोग इस महान् रसशालामें किया जाता है, वैसा ही अच्छा या बुरा पुतला तैयार होता है। यदि चतुर रासायनिक माता-पिताने हीरा बनानेका मसाला एकट्ठा करके उसे उचित समय और निश्चित रीतिसे सावधानीके साथ मिलाया, तो बहुमूल्य हीरा बनता है, यदि नीलमके मसालेसे काम लिया तो नीलम तैयार होना है और यदि काच बनानेके पदार्थोंका प्रयोग किया तो काच प्राप्त होता है। राम और रावण, कृष्ण और कंस, युधिष्ठिर और दुर्योधन, पृथ्वीराज और जयचन्द्र आदि उत्तम और अधम मनुष्योंकी रचना माताकी इसी अद्भुत रसशालामें हुई है। अन्तर केवल पदार्थोंकी उत्तमता-अधमताका हुआ है। जैसे पदार्थका प्रयोग हुआ प्राकृतिक प्रयोगशालामेंसे वैसी ही वस्तु बनकर बाहर निकली। राम या रावण, कौशल्या या ककेयीको पैदा करना अब भी हमारे ही अधीन है। जैसे मसालोंका प्रयोग किया जायगा, वैसी ही सन्तति प्रयोगशालासे तैयार होगी। यह प्रकृतिका अटल और निर्विवाद नियम है। अतः विचार इस बातपर करना है कि इच्छानुसार उत्तम सन्तति उत्पन्न करनेके लिए किन किन पदार्थोंकी आवश्यकता पढ़ती है जिनके प्रयोगसे केवल सर्वोत्तम सन्तान उत्पन्न हो सके।

इस विषयके चार भाग किये जा सकते हैं:—

(क) प्राकृतिक प्रयोगशालाका रहस्य।

(ख) वंशपरम्परामे आनेवाले गुण।

(ग) मनःशक्ति और प्रेमका प्रभाव।

(घ) सन्तानका पालन-पोषण और शिक्षण।

(क)—प्राकृतिक प्रयोगशालाका रहस्य। *

'Nature is not on the side of sentiment. She is always a prodigal, acting in and for the plural on a grand scale, with one great aim before her of ensuring the continuance of the race She has fitted man and woman not to love one, but hundreds, and our senses act automatically on the side of Nature'

—*Victoria Cross.*

जिधर आँख उठाकर देखिए प्रकृतिकी विचित्र लीलायें दिखाई देती हैं। सृष्टिकी प्रत्येक बात अपूर्व रहस्यसे भरी हुई है। प्रकृति जिस अनुपम रीतिसे सृष्टिके विस्तारका कार्य करती है उस पर जितना ही ध्यान दीजिए उतना ही आनन्द और आश्चर्य होता है।

प्रकृतिने इस विचित्र संसारमें असंख्य प्राणिवर्ग उत्पन्न किये हैं और वह प्रत्येक वर्गके निरन्तर स्थिर रखनेका पूर्ण यत्न करती है। किसी जाति या श्रेणीके जीवोंका वह अन्त नहीं देखा चाहती, वह उनकी वृद्धि वड़ी ही उदारतासे करती है। जैसा वतलाया जाचुका है कि जहाँ उसे एक वट-वृक्ष उत्पन्न करना होता है वहाँ वह लाखों करोड़ो वीजोसे काम लेती है। यद्यपि एक वृक्षके लिए एक ही वीज काफी है, किन्तु संयोगवश यदि वह वीज नष्ट हो जाय और वृक्ष न पैदा हो सके तो प्रकृतिके विस्तार-कार्यमें वाधा पड

---

* लज्जा मनुष्य-समाजका स्वाभाविक गुण है। गुण ही नहीं वल्कि मानव-जातिके लिए एक उत्तम भूषण है। किन्तु उचित सीमामें ही वह गुण कहा जा सकता है। उचित सीमाका उल्लंघन होने पर वह गुण न रहकर अवगुण हो जाता है। जिसके ज्ञानपर हमारी भावी सन्तानका, हमारे देशका वल्कि ससार मात्रका जय या क्षय निर्भर है उस महत्त्वपूर्ण विषयको लज्जाप्रद या अश्लील समझकर त्याग देना अच्छा नहीं। इस लज्जाप्रदताके भ्रमको छोड़कर प्रत्येक स्त्री-पुरुषको, मुख्यत स्त्रियोंको उचित अवस्थामें इस विषयके ज्ञानसे लाभ उठाना चाहिए। पुरुषका तो गर्भाधान करने तक ही वच्चेके सुधारने सम्बन्ध है, किन्तु स्त्रियोंका गर्भ रहनेके पहलेसे, वच्चा अच्छे प्रकार समझने न लगे तवतक, सम्वन्ध है। सन्तानके सुधार या विगाड़की जिम्मेदारी स्त्रियों पर अधिक है। इस लिए स्त्रियोंको उचित समय पर इस विषयका ज्ञान प्राप्त करा देना परम आवश्यक है। इसमें लज्जाकी या अश्लीलताकी कोई वात नहीं है।

जाय। इस लिए वह अत्यन्त उदारताके साथ लाखों बीजोंसे काम लिया करती है जिससे कि नष्ट होते होते भी दो एक नये वृक्ष पैदा हो जायँ।

मानव-जातिके विस्तार और अस्तित्वके लिए उसने कम बुद्धि नहीं खर्च की है। उसने इस जातिके प्रत्येक प्राणीको स्वतन्त्र रखते हुए प्रेमबन्धनमें ऐसा जकड़ रक्खा है कि वह हिल नहीं सकता। प्रेम एक ऐसी वृत्ति है कि जिससे मनुष्यका किसीसे प्रेम किये बिना छुटकारा ही नहीं। संसारके प्रत्येक स्त्री-पुरुषको—बच्चेसे लेकर बूढ़ेको—राजा, रंक, गृहस्थ, संन्यासी सभीको इस विभूतिके अधीन रहना पड़ता है और किसी न किसीसे प्रेम रखना ही पड़ता है। ईश-प्रेम, देश-प्रेम, जाति-प्रेम, कुटुम्ब-प्रेम, माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र और पुत्री आदिका प्रेम, इस प्रकार किसी न किसी प्रेमके बन्ध-नमें बँधा ही रहना पड़ता है।

ये जितने प्रेम हैं सब मानवजातिकी स्थिति, विकास और विस्तारमें सहा-यता देते हैं, किन्तु इन सबोंसे अधिक शक्तिवान् स्त्रीविषयक प्रेम है। यह वह शक्ति है जो मानवको बदल देती है—स्त्रीपुरुषोंका काया पलट कर देती है—उसके स्वभावमें, उसके आचरणमें, उसके जीवनमें परिवर्तन कर देती है। इस प्रेमसे उसकी भावना, उसके विचार, उसकी बुद्धि, उसकी प्रतिभा, उसकी सदाचारशीलता और उसकी संकल्पशक्तिमें बिजलीकीसी संजीविनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है,—जंगली सभ्य, निर्दय दयालु, डरपोक बहादुर और मूर्ख विद्वान बन जाता है।

प्रकृतिने स्त्री-पुरुषोंमें ऐसी आकर्षणशक्ति उत्पन्न कर रक्खी है कि वे एक दूसरेकी सुन्दरता पर या गुणवत्ता पर ऐसे मुग्ध हो जाते हैं कि अपने आपको भूल जाते हैं। देखनेसे, छूनेसे, प्रेमपात्रके विषयमें बात करनेमें या बात सुननेसे हृदय द्रवित हो जाता है। प्रेमपात्रके ध्यानमात्रसे प्रत्येक शारीरिक ज्ञान-तन्तु उत्तेजित और प्रफुल्लित हो उठता है—चेहरेपर ललाई और प्रस-न्नता, आँखोंमें चमक और चंचलता और हृदयमें आनन्द और उत्साहकी लहरें उमड आती हैं। 'दो शरीर एक प्राण' का सच्चा उदाहरण यही प्रेमी-प्रेमिकाका जोड़ा है। स्त्री और पुरुष इन दो पृथक् प्राणियोंको एक कर देनेके लिए, उनको एक दूसरेमें लीन कर देनेके लिए, तन्मय कर देनेके लिए, मिला देनेके लिए प्रकृतिने इस प्रेमशक्तिको उत्पन्न किया है।

जीवनकालमें एक ही जनसे पूर्ण प्रेम होता है। ' One life one love' और यही प्रेमके बन्धनसे बँधी हुई दो व्यक्तियाँ वैवाहिक सम्बन्धसे जुड़कर दम्पति बनती हैं। उचित भी यही है कि जो एक दूसरेको हृदयसे प्रेम करते हों वे ही वैवाहिक सम्बन्ध करें-' Those who love in spirit should unite in person. ' सामाजिक और मानसिक झुकाव भी इसी ओर होता है कि जीवन मात्रमें केवल एक ही प्रेमपात्र हो, किन्तु प्रकृतिका रुख दूसरा ही है। प्रकृति सामाजिक या मानसिक भावोंकी ओर ध्यान नहीं देती, वह केवल अपनी वंशवृद्धिकी बात देखती है। इस भयसे कि यदि किसी कारण एक प्रेमी और प्रेमिकामें वियोग हो जाय अथवा उनमेंसे किसी एककी भी मृत्यु हो जाय तो सन्तान-वृद्धिका कार्य बन्द हो जायगा, वह एक व्यक्तिके प्रेमको काफी नही समझती।

वंश-वृद्धिकार्यको निर्विघ्नतासे चलाते रहनेके लिए, एकके वियुक्त हो जाने या मर जानेके पश्चात् दूसरेसे काम लेनेके अभिप्रायसे उसने एकके बदले सैकड़ो व्यक्तियों पर प्यार करनेकी शक्ति मानवजातिको दी है। प्राकृतिक झुकाव एक ही व्यक्तिकी ओर नही होता, वह कितने ही सुन्दर और गुणवानोकी ओर ढुलता है। मानसिक शक्तिके द्वारा मनुष्य इस प्राकृतिक चंचलताको दबाकर अपने प्रेमको एक पात्रमें स्थिर रखता है और इसे ही हम सच्चा प्रेम (Fidelity in love) कहते है। किन्तु सची बात यह है कि हमारा हृदय प्रकृतिके सकेतोंकी ओर अवश्य चलायमान हुआ करता है। एक स्त्री अपने प्रथम प्रेमीके अतिरिक्त किसी दूसरेके रूप या गुणको देख कर उसे पसन्द करती है और स्वभावतः विना इच्छा किये ही आपसे आप उसकी ओर आकर्षित होती है। यह प्रकृतिका ही कार्य है। इस समय स्त्रीका प्राकृतिक भाव यह नहीं होता कि वह इस दूसरे मनुष्यको प्रेम करना नहीं चाहती, बल्कि सामाजिक पातिव्रत धर्मके भयसे अथवा यह सोच कर कि इस दूसरे मनुष्यको प्यार करनेसे उसके पहले प्रेमीको दुःख होगा वह अपनी मानसिक शक्तिसे इस नये प्रेमको कुचल डालती है।

यही दशा पुरुषकी भी है। अपनी पहली प्रेमिकाके अतिरिक्त जब वह किसी दूसरेकी सुन्दरता पर या गुणों पर मुग्ध होता है तब स्वभावतः उसकी ओर झुका चाहता है। चित्त आकर्षित होता है, किन्तु इस भयसे कि नई प्रेमिकासे पुरानीको दुःख होगा उसकी ओरसे मनको फेरना आरम्भ करता

है। इस स्त्रियोंके पुरुषोंकी ओर आकर्षित होनेमें, और पुरुषोंके स्त्रियोंकी ओर खिंचनेमें उनका दोष नहीं है, यह प्रकृतिका रहस्य है। उसके सन्तानवृद्धिकार्यमें बाधा न पड़े, इसी लिए वह युवा और युवतियोंको यह वशीकरणका खेल खिला कर उनको चलायमान किया करती है—In both it is the anxiety of Nature that neither should be left mateless—part of her tremendous scheme of insurance against mischance.

मनुष्य आनन्दकी ओर स्वयं ही आकर्षित होता है। आनन्दकी ओर आकर्षित होना उसकी प्रकृति या स्वभाव है। संसारमें मनुष्य उसी कार्यकी तरफ अनुराग प्रकट करता है जिसमें उसे कुछ आनन्द मिलनेकी सम्भावना होती है। आनन्द चाहे क्षणिक हो और चाहे स्थायी, किन्तु, यह तो सर्वथा निश्चित है कि मनुष्य यदि झुकेगा तो आनंदहीकी ओर। यदि उसे विश्वास हो जाय कि अमुक कार्यमें लेशमात्र भी आनन्द नहीं है, तो वह उस कार्यके करनेकी चेष्टा तक नहीं करेगा। इसी लिए प्रकृतिने मानव-जातिकी वृद्धिक्रियामें एक विशेष प्रकारके आनन्दका समावेश कर रक्खा है।

डाक्टर फाउलरका कथन है कि Love is a transmiting agent—प्रेम अपने प्रेमपात्रोंका रूप और गुण पुनः उत्पन्न करता है, अर्थात् प्रेमियोंके हृदयमें यह इच्छा हुआ करती है कि वे अपने प्रेमपात्रका रूप और गुण भावी सन्तानमें देखें। प्रेमका यह स्वाभाविक गुण है कि वह अपने प्यारेकी शकल–जिस पर उसका प्रेम हो उसके सदृश मूर्ति–गढ़कर संसारको देना चाहता है—Beauty that women seek after that they may give to the world again

यौवन, सौन्दर्य और गुणस प्रकृति स्त्री और पुरुषोंको एक दूसरेकी ओर आकर्पित करके प्रेममें परस्पर लीन कर देती है, और फिर उन्हें आनन्दके लोभमें मतवाला करके उनसे वंश-वृद्धिका कार्य्य लिया करती है।

आगे चलकर मालूम होगा कि दम्पतिके परस्परके प्रेमसे, आनंदमय जीवनसे, उमग और उत्साहसे सन्तानमें उत्तमता आती है। उत्तम स्थितिमें उत्पन्न होनेवाली सन्तान उत्तम ही गुणोसे विभूषित होती है। प्रेमपात्रके साथ संयुक्त होनेसे गहरा आनन्द प्राप्त होता है। इस आनन्दसे उमंग और उत्साह चढ़ता है और इस उमंग और उत्साहके बढ़नेसे स्थितिमें उत्तमता आती है।

गर्भाधानके समय दम्पात्तिकी जो मनोवृत्ति होती है वे जिस स्थितिमे होते हैं उसका प्रभाव संतान पर पड़ता है। इसी लिए प्रकृतिने प्रेममयी संतानोत्पत्तिक्रियामें एक विशेष प्रकारके आनंदका समावेश कर रक्खा है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि प्रकृतिने सतानोत्पत्तिके लिए सयोग (मैथुन) और संतानको उत्तम बनानेके लिए उसमें आनन्द सृष्ट किया है। अधम कामवासनाको तृप्त करनेके लिए प्रकृतिने आनन्दकी सृष्टि नहीं की है। सृष्टिमात्रके पशु और पक्षियोमें जब कभी यह क्रिया होती है तब एकमात्र संतानोत्पत्तिके लिए होती है। संसारमें एक मानव जाति ही ऐसी पापकलुषित है जो मैथुनके आनन्दको एक बात और संतानोत्पत्तिको दूसरी बात मान बैठी है, बल्कि उसके समाजमें क्षणिक इन्द्रिय वासनाकी तृप्ति ही प्रथम बात समझी जाने लगी है। इस इच्छाको तृप्त करनेमें *यदि गर्भ रह जाय तो हरीच्छा ! कामवासनाकी तृप्ति अपने हाथमे* और संतानका उत्पन्न होना या न होना भाग्यके हाथमें ! पाश्चिमीय अधम साहित्यने भारतको और भी गारत कर रक्खा है। स्मरण रहे कि प्रकृतिको धोखा नहीं दिया जा सकता। सन्तानोत्पत्तिके अतिरिक्त अन्य किसी भी हेतुसे वीर्यपात करना प्रकृतिनियमके विरुद्ध कार्य करना है। इसका दण्ड हमें प्रकृति दे रही है। पापका प्रायश्चित्त किये बिना उद्धार नहीं हो सकता। हम गिर तो गये ही हैं, किन्तु अब और नीचे न जायँ, बस इसीमे कुशल है। सावधान !

उत्पादक संस्थान। *

वे अंग जिनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति की जाती है उत्पादक संस्थान (Reproductive system) कहलाते है। वे शिश्न, अडकोष, योनि और गर्भाशय आदि हैं।

पुरुषके उत्पादक संस्थानके मुख्य अंग है—अण्डकोष, अण्ड, शुक्रजनक ग्रन्थि, शुक्राशय और शिश्न। अंडकोष वह अङ्ग है जो सारे शरीरसे वीर्यको एकत्र करता है। मैथुनद्वारा वीर्य बनानेका यही अंग है। यह केवल पुरुषोंको होता है। बाहरसे इसकी शकल एक लटकती हुई थैलीकी तरह होती है। इस थैलीके भीतर दो अंडाकार अंड होते है। एक इस थलीके दाहिनी

* The Modern Family Doctor—T C Jack—London 1914

ओर और दूसरा बाईं ओर लटका करता है। प्रौढ़ावस्थामें ये $1\frac{1}{2}$ इंच लम्बे, १ इंच चौड़े और $\frac{1}{4}$ इंच मोटे होते हैं। ये एक प्रकारकी अति सूक्ष्म रेशेदार वस्तुसे ढके रहते हैं, और उसकी बनावट ऐसी होती है कि वह अंडको कई भागोंमें विभक्त कर देती है। एक भागमें शुक्रजनक ग्रन्थि होती है और दूसरेमें अति सूक्ष्म लपेटे हुए (Coiled) सूत्रके सदृश एक बहुत लम्बा तंतु होता है जिसमें शुक्रकीट उत्पन्न होते और रहते हैं। इसी शुक्रकीटमें पुरुषके सन्तानोत्पादक मुख्य द्रव्य होते हैं।

अण्डसे बिलकुल मिली हुई उसके पीछे इपिडिमिज होती है। अंडके बारीक तंतुका लगाव इससे रहता है। इसकी शकल कुछ अर्धचन्द्रकीसी होती है। इसके ऊपर अतिसूक्ष्म नलियाँ होती हैं, जो कि ऊपर जाकर मिल जाती हैं और एक मोटी नली बन जाती है। यह नली उदरसे होती हुई मूत्रप्रणालीमें मिलकर शुक्राशयमें प्रवेश करती है।

शुक्राशय (Seminal Vesicles) एक प्रकारकी दो थैलियाँ हैं जिनका कुल अंश लपेटे हुए (coiled) सूतकीसी वस्तुका बना होता है। ये मूत्राशय (Bladder) से बिलकुल मिली हुई होती हैं। इनमें अंडसे उत्पन्न किया हुआ शुक्र एकट्ठा होता है और ये मूत्रमार्गसे मिल जाती हैं।

मूत्रमार्ग (Urethra) मूत्राशयके नीचेवाली नलीको कहते हैं। पुरुषमें (प्रौढावस्थामें) इस नलीकी लम्बाई ८ या ९ इंच होती है। इस नलीका आरम्भ मूत्राशयके नीचेसे होता है और यह शिश्नके नीचेसे होती हुई लिङ्गमुण्डमें समाप्त हो जाती है। शिश्नके मणि (सोपारी) में जो छिद्र होता है वह इसी मूत्रमार्गकी नलीका अन्त है। इसी नलीके मार्गसे मूत्र और शुक्र बाहर निकलते हैं।

शिश्न (Penis) तीन बेलनाकर (cylindrical) मासतंतुओंसे बना होता है। सिकुड़कर छोटा हो जाना और फिर बढ़कर अपने पूर्ण प्रमाणमें आजाना इसका गुण है। इसके अन्तमें शिश्नमणि या सोपारी होती है जो छुछड़ी नामक चमड़ेसे ढकी होती है। ये शिश्न और अण्डकोप सारे शरीरके वातमंडलसे (Nervous System) मिले रहते हैं। ज्ञान या कर्मेन्द्रियोंके कार्यसे स्वयंभू शिश्नमें उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। पहला कार्य वातसूत्रका खबर पहुँचाना है, उसके उत्तरमें रक्तकी नाड़ियोंसे तीनों बेलनाकार मास तंतुओंमें

रक्त उमड़ पड़ता है, तब शान्त शिश्नमें बड़ी तीक्ष्ण उत्तेजना उत्पन्न होजाती है और वह एक बारगी बढ़ जाता है।

स्त्रियोंके उत्पादक संस्थानके मुख्य अंगोंका नाम है—डिम्बजनक ग्रन्थि, गर्भाशय, फालोपियन नली और योनि अथवा भग *। पुरुषोंके अंडके स्थान पर स्त्रियोंकी डिम्बजनक ग्रन्थियाँ (Ovary) होती हैं। ये एक इंच लम्बी, बादामके शकलकी, वस्ति (Pelvis) के भीतर एक दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर होती हैं। ये गर्भाशयके दोनों ओर उससे जरासे फासले पर ऊपरकी ओर रेशेदार तंतुसे जुड़ी रहती हैं। इसीसे डिम्ब-नामक कीट उत्पन्न होते हैं जो स्त्रीके संतानोत्पादक मुख्य द्रव्य होते हैं।

+ मूत्राशयके पीछे जिस स्थान पर पुरुषोंके शुक्राशय होता है उसी स्थान पर स्त्रियोंके गर्भाशय (uterus or womb) होता है। यह नासपातीके शकलका एक खोखला मांसपिण्ड है। यह ऊपर मोटा और नीचे आकर पतला हो जाता है। इसके ऊपरके भागको शरीर (Body) और नीचेके भागको ग्रीवा कहते हैं। जब स्त्री गर्भवती नहीं होती तब इसकी लम्बाई ३ इंच, चौड़ाई २ इंच और शरीरकी मोटाई लगभग १ इंच हुआ करती है। गर्भाशयकी ग्रीवा योनितक चली आती है और एक छोटेसे दानेकी भाँति दिखाई देती है। यह दाना गर्भाशयका मुख कहा जाता है। इसमें खुलने और बन्द होनेकी शक्ति होती है। गर्भाशयके शरीरके दोनों तरफ दो नलियाँ होती हैं। इन्हें 'फालोपियन' नली (Fallopian tube) कहते हैं। यह नली गर्भाशयको डिम्बजनक ग्रन्थिसे मिलाती है। गर्भाशय ही वह स्थान है जहाँ गर्भस्थिति होती है और जहाँसे नौ मासके पश्चात् बच्चेका जन्म होता है।

पुरुषोंके जननेन्द्रियके स्थान पर स्त्रियोंके भग या योनि होती है। यह युवतियोंमें लगभग ३ इंच गहरी होती है। इसमें दो छिद्र होते हैं, एक छोटा और दूसरा बडा। छोटे छिद्रमे मूत्रमार्ग (Urethra) की नली मिली होती है।

---

* स्त्रियोंकी छाती या स्तनयुग्म भी उत्पादक संस्थानका एक अंग माना जाता है।

+ स्त्री और पुरुषके मूत्रमार्ग (Urethra) में अन्तर होता है। स्त्रियोंका मूत्रमार्ग पुरुषोंसे छोटा लगभग २ इंचका ही होता है।

बड़े छिद्रका लगाव गर्भाशय आदिसे रहता है। इसे योनिद्वार कहते हैं। यही मासिक स्रावका मार्ग है और इसी मार्गसे बच्चा जन्म लेता है। इसके ऊपर दो मुलायम गद्दिया होती हैं जिन्हें भगोष्ठ कहते हैं। स्त्रियोंमें मैथुनका यही अंग होता है।

स्त्री और पुरुष दोनोंकी जननेन्द्रियाँ बड़ी ही सचेत (sensitive) होती हैं। शरीरके किसी भी भागमें ज्ञान या स्पर्शेन्द्रियद्वारा तनिक भी विषयासक्त कार्य होनेसे इनमें तत्काल ही किसी न किसी अंशमें उत्तेजना पैदा हो जाती है। इन इन्द्रियोंका लगाव शरीरके प्रत्येक अंगसे है। उदर, रीढ़ हृदय और मस्तिष्ककी प्रधान वातरज्जुओं (Nerves) से लेकर शरीरके अति सूक्ष्म भागों तक इन जननेन्द्रियोंका घनिष्ट लगाव है। इन दो अंगोंकी तरह शरीरका और कोई अग नहीं है जिसका इतनी वातरज्जुओंसे लगाव हो। शरीर मात्रके वातमण्डल (Nervous system) पर दो अंगोंका शासन है। * इन्हीं दो अंगोके मन्थनसे सारे शरीरका रस निकलता है जो मानव-वृक्षकी उत्पत्तिमें बीजका काम देता है। इसी मसालेसे प्राकृतिक प्रयोगशालामें संतान तैयार होती है।

प्राकृतिक प्रयोगशालाके मसाले।

जो कुछ आहार किया जाता है वह पक्वाशय (Stomach)में जाता है, वहाँ अनेक शक्तियोंके द्वारा पाचन होता है और एक प्रकारका रस बनता है। सार भाग शरीरमें रह जाता है और अनावश्यक भाग मल और मूत्रके रूपमें बाहर निकल जाता है। इस रसका फिर पाचन होता है और सार भाग रुधिरमें मिल जाता है। इस रुधिरका भी पाचन होता है और उसके तीन भाग होते हैं—सूक्ष्म, स्थूल और मल। सूक्ष्म भाग रुधिरमें मिलकर उसका पोषण करता है, स्थूल भागसे मांस बनता है आर मलसे पित्त। इस पाचनक्रियाका

---

* 'As no other point in the body is there a junction of so many important nerve—extremities as in the reproductive organs These, in particular, the branches or many spinal nerves and of the nervous sympathicus and through their connection with the brain are capable of exerting an influence on the entire nervous system. They are in a sense the root of the whole tree of life.'

—B Porter.

तार टूटने नहीं पाता। एक सारको पचाकर उसमेंसे दूसरा, फिर तीसरा, और फिर उससे भी सूक्ष्म चौथा सार, इस तरह एकसे एक उत्तम वस्तुयें तैयार हुआ करती हैं। आवश्यक वस्तुयें शरीरके प्रत्येक भागमें मिला करती हैं और अनावश्यक वस्तुयें मल, मूत्र, पसीना, नाक-कानका मैल, नख और बाल बन कर बाहर निकल जाती हैं। इसी क्रमसे भोजन किये हुए पदार्थसे रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, माससे मेदा, मेदासे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य्य या रज * बनता है।

आहार करनेसे वीर्य्य बनने तक रसका पृथक् पृथक् छः धातुओमें पाचन होता है। प्रत्येक पाचन और शुद्धिक्रियामें ५ दिनसे कुछ अधिक समय लगता है। इस हिसाबसे आहारसे वीर्य बननेमें प्रायः ३० दिन और कुछ घण्टे लगते हैं। शरीरमें वीर्य्य सबसे शुद्ध रस होता है। इसीसे मानवशरीरका पोषण होता है। इसका कोई एक स्थान नहीं है। जैसे दहीमें घी, तिलमें तेल और ईखमें रस रहता है वैसे ही वीर्य्य भी समस्त शरीरमें प्रत्येक स्थानमें रहता है। यही शरीरका राजा है। वीर्य्यहीसे बल है, वीर्य्यहीसे बुद्धि है। इसीसे उत्साह, धैर्य, लावण्य और सौन्दर्य है। शरीरकी उत्तमता इसी वीर्य्य पर निर्भर है। इसकी वृद्धिसे इन विभूतियोंमें वृद्धि होती है और इसके क्षयसे उपर्युक्त सब बातें, बल्कि जीवन तक नष्ट हो जाता है। इसी लिए सन्तानोत्पत्ति कार्य्यके अतिरिक्त और किसी इच्छाकी पूर्तिके लिए वीर्य्यपात करना अनुचित कहा गया है। जैसे दहीके मथनसे मक्खन निकलता है वैसे ही 'रति-सेवन' द्वारा समस्त शरीरका मथन होकर वीर्य्य बनता है और वीर्य तथा रजके मेलसे सन्तानोत्पत्ति होती है।

वीर्य्य सफेद, लसदार और चिकना पदार्थ है। इसमें एक खास तरहकी गन्ध होती है। पाश्चात्य विद्वानोंने सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रोंसे वीर्य्यका निरीक्षण करके पता लगाया है कि इसमें क्या क्या पदार्थ हैं। शुद्ध वीर्य्यमें दो द्रव्य पाये जाते हैं—एक शुक्रकीट (Spermatazoa) और दूसरा वीर्यके दाने (Seminal granule)। बस, पुरुषवीर्य्यमें यही दो चीज हैं।

---

* स्त्री और पुरुष-वीर्य्यमे भिन्नता होती है। इससे दोनोंका एक नाम नहीं हो सकता। स्त्रीकी सातवीं धातु, जो शुद्ध होकर बनती है, रज है।

शुक्रकीट एक प्रकारके अति सूक्ष्म जन्तु हैं जो आँखसे सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र-की सहायताके बिना नहीं दिखाई दे सकते। ये एक तरहके दुमदार जन्तु हैं। इनका सिर चिपटा, धड़ गोल और पूँछ लम्बी चूड़ीदार उतारकी होती है। इनके सिरकी लम्बाई $\frac{१}{६०००}$ इंच, चौड़ाई $\frac{१}{१००००}$ इंच, धड़की लम्बाई $\frac{१}{६००}$ इंच, और पूछकी लम्बाई $\frac{१}{४०००}$ इंच, होती है। इस कीटमें सन्चलन-शक्ति होती है। यह सन्चलन तडपनेकी भाँति होता है। इसी शक्तिसे ये योनिद्वारमें प्रवेश करके आगे बढ़ते हैं और स्त्रीके डिम्ब नामक कीटमें प्रवेश (Seminal granules) करनेमें समर्थ होते हैं जिससे डिम्ब गर्भरूपमें या बच्चेके बीजरूपमें परिणत हो जाता है।

वीर्यके दाने या जर्रे (Seminal granules) वीर्यकीटके साथ एक प्रकारके द्रव्यसे मिले रहते हैं। ये वीर्यकीटसे भी छोटे होते हैं। इनका काम भी स्त्रीके डिम्बमें प्रवेश करके उसको बीजमें परिणत करना है।

स्त्रियोंका वीर्य्य पुरुषोंसे भिन्न होता है। उनके भोजनका पाचनक्रम तो पुरुषोंहीके समान है, किन्तु स्त्रीके सातवें रसमें वे ही द्रव्य नहीं पाये जाते जो पुरुषमें होते हैं। जो शुद्ध रस गर्भोत्पत्तिमें काम आता है उसे रज कहते हैं। जिस प्रकार पुरुषवीर्यमें शुक्रकीट होते हैं वैसे ही स्त्रियोंके रजमें भी एक प्रकारके जन्तु होते हैं जिन्हें डिम्ब कहते हैं। ये अण्डेकी तरह गोल होते हैं और जिस प्रकार अण्डेके भीतर जर्दी और सफेदी दो वस्तुयें होती हैं उसी तरह डिम्बमें भी जर्दी और सफेदी होती है। जर्दीको न्यूक्लस (Nucleus) और सफेदीको प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) कहते हैं। न्यूक्लस पानीके समान पतली चीज है। इसमें अति सूक्ष्म पीले परमाणु होते हैं। यह एक बारीक झिल्लीके अंदर बंद रहता है और प्रोटोप्लाज्ममें तरता और धीरे धीरे बढ़ता है।

प्रोटोप्लाज्म भी पानीके सदृश पतली चीज होती है। इसमें दो तरहके परमाणु होते हैं। एकको ग्लोब्युल्स (Globules) और दूसरेको ग्रेन्युल्स (Granules) कहते हैं। न्यूक्लस और प्रोटोप्लाज्म दोनो द्रव्य एक बारीक झिल्लीके भीतर ढके रहते हैं और इन सबको डिम्ब कहते है। यह लगभग $\frac{१}{२००}$ इंचका होता है। डिम्ब शुक्रकीटसे बहुत बड़ा होता है। शुक्रकीट डिम्बमें

प्रवेश कर जाता है। इन दोनोंके मिश्रणको बच्चेका बीज कहते हैं। इसी मसालेसे प्रयोगशालामें संतान तैयार होती है।+

प्रयोगशालामें शरीर-रचना।

जैसे ऋतु, भूमि, बीज और जलके संयोगसे बीजसे अंकुरोत्पत्ति होती है वैसे ही ऋतु, गर्भाशय, रज और वीर्य इन चार पदार्थोंके संयोगसे सन्तानके अंकुर उगते हैं। इसे गर्भस्थिति कहते हैं।*

स्त्रियोंके रजस्रावके ३ दिन बचाकर † चौथे दिन रतिसेवासे डिम्ब और

+ (1) Sexual Psychology by Trail (2) Kollikar (3) Kirke.

* पूर्वोक्त वस्तुओंके सयोग होने पर भी जो गर्भस्थिति नहीं होती है उसके बहुतसे कारणोंमेंसे मुख्य ये हैं —

(१) गर्भाशयमें रोग होना-(क) गर्भाशयमें मास या मज्जा बढ़ जाना। (ख) गर्भमें कीड़ा पैदा हो जाना। (ग) गर्भाशयका दग्ध हो जाना। छोटी उमरके सभोगसे यह रोग उत्पन्न हो जाता है। (घ) गर्भाशयका उलट जाना। (ङ) गर्भाशयमें वायुका बढ जाना। (च) गर्भाशयमे शीत पैदा हो जाना।

(२) रजोधर्ममे गड़बड़ी रहना-(क) मासिकधर्मका न होना। (ख) ठीक समय पर जो प्रति २८ वें दिन होता है न होकर पहले या पीछे कई दिन बाद होना। (ग) कम होना। (घ) बहुत ज्यादा होना। आदि।

(३) सयोगकी अधिकता—इमसे पुरुषवीर्यके शुक्रकीटोंमे कमी आजाती है और वे इतने शक्तिहीन हो जाते हैं कि डिम्बमे प्रवेश नहीं कर सकते। आदि।

(४) मन.शक्तिकी प्रतिकूलता—कुछ दिनोंतक सन्तान न होनेसे यह मान बैठना कि अब हमे सन्तान न होगी।

(५) प्रेमका अभाव-इस कारण स्त्री-पुरुष एक दूसरे पर अनुरक्त नहीं हो सकते और गर्भस्थिति नहीं हो सकती।

(घ) डिम्बमें पुरुषकीटका मिश्रण न हो सकना-स्त्री और पुरुषके एक दूसरेके आगे पीछे स्खलित होनेसे रज और वीर्यका मिश्रण नहीं होता, वह व्यर्थ जाता है।

† रज.स्रावके दिन न बचानेसे जैसे बहती हुई धारामे कोई चीज स्थिर नहीं रह सकती-उसी धाराके साथ बह जाती है, उसी तरह रजोदर्शनके प्रारम्भसे ३ या ४ दिनोंमे रतिसेवनसे गर्भस्थिति नहीं होती और इन दिनोंके सभोगसे स्त्री और पुरुष दोनोंहीको नानाप्रकारके रोग हो जाते हैं।

शुक्रकीटका 'फिलोपिनयल' नलीमें मिश्रण होता है और फिर यह मिला हुआ द्रव्य गर्भाशयमें प्रवेश करता है। *

पहला सप्ताह—$\frac{1}{200}$ इंचवाला डिम्ब, जिसमें शुक्रकीट प्रवेश कर चुका है, गर्भाशयमें स्थिर हो जाता है। यहाँ इस मिश्रित द्रव्यके दो भाग होते हैं, फिर इन दो भागोंके चार भाग और इन चार भागोंके आठ भाग होते हैं। ये कुल भाग भीतरसे अलग होने पर भी बाहरसे उसी एक डिम्बके भीतर रहते हैं।

दूसरा सप्ताह—इन आठ भागोंके १६ भाग हो जाते हैं और दूसरे सप्ताहके अन्त तक डिम्बके भीतरके परमाणु विभक्त होकर तथा बढ़कर स्पंज (Sponge) के शकलके हो जाते हैं और डिम्बका आकार बढ़कर $\frac{1}{20}$ इंच, और वजन प्रायः एक ग्रेन हो जाता है।

तीसरा और चौथा सप्ताह—डिम्बका आकार चींटीके बराबर हो जाता है और महीना समाप्त होते होते उसमें सिर तथा पैरोंका आकार बनने लगता है। इस समय तक इसे देखकर कोई पहचान नहीं सकता कि यह मनुष्यजातिके बच्चेका बीज है।

दूसरा मास—लगभग पैतालीसवें दिन इस बीजका ऐसा आकार बन जाता है कि इसे देखकर यह कहा जा सकता है, कि यह मानव जातिके बच्चेका बीज है। शरीरकी अपेक्षा सिर बड़ा होता है; पैर ठूँठे होते हैं, उनमें उँगलियाँ नहीं होतीं, आँख, कान और मुँहकी जगह सिर्फ काले काले दागसे जान पड़ते हैं, लम्बाई एक इंच तक बढ़ जाती है और इस दूसरे महीनेके अन्त तक ये सब अंग कुछ स्पष्ट हो जाते हैं—हाथ, पैर, मुँह, उँगलियाँ दिखाई देने लगती हैं।

तीसरा मास—लम्बाई ३ इंच, और वजन छटाक डेढ़ छटाक हो जाता है। आँखकी पलकें तैयार हो जाती हैं पर वे बन्द रहती हैं। नाकके छेद, होठ, और स्त्री या पुरुषके चिह्न बनते हैं। फेफड़ोंका बनना भी आरम्भ हो जाता है।

चौथा मास—रग पट्ठे बराबर नजर आने लगते हैं। इस महीनेमें बच्चा कुछ कुछ हिलने लगता है।

---

* इसमें मतभेद है। कोई कहता है कि फिलोपियन ट्यूबमें रज और वीर्यका मिश्रण होता है और कोई कहते हैं कि गर्भाशयमें होता है।

पाँचवाँ मास—इस समय तक शरीरकी अपेक्षा सिर बड़ा होता है और उस पर कोमल बाल निकल आते हैं। लम्बाई ७–८ इंच हो जाती है।

छठा मास—चमड़ा या ऊपरकी खाल बनकर तैयार होती है, उँगलियोंमें नख निकल आते हैं और शरीरके सब अंग बन जाते हैं। इस समय यदि बच्चा गर्भसे बाहर हो जाय तो साँस लेता है, किन्तु जी नहीं सकता।

सातवाँ मास—बच्चा गर्भाशयमें उलट जाता है और बाहर निकलनेके रास्ते पर आ जाता है।

आठवाँ मास—शरीरके सब अवयव पुष्ट होते रहते है और अपना अपना काम करने लगते हैं। इस समय बच्चेमें अपने जीवनके निर्वाहकी शक्ति हो जाती है। वह स्वयं जी सकता है। ×

× अपने देश (भारत) में यदि बच्चे समयके पूर्व पैदा हो जाते हैं तो वे बहुधा मर जाते हैं। उनके कलेजे तथा फेंफडेमें आवश्यक शक्ति न होनेके कारण वे भलीभाँति रुधिर शुद्ध नहीं कर सकते जो उनकी मृत्युका एक प्रधान कारण होता है। नव-जात बालक नीले पीले पड़ जाते हैं। अपने यहाँ यह बीमारी भूतप्रेतकी बाधा समझी जाती है। इससे माता-पिता यथेष्ट उपचार न कर मूर्खोंसे झड़ाने फुँकाने या राखी गडा बँधानेमें लगे रहते हैं और इस तरह उन बेचारोंकी जानें ले ली जाती है। पर इस देश (अमेरिका) में समयसे पूर्व पैदा हुए बच्चोंके लिए खास प्रबन्ध है। ये एक यन्त्र (Infant incubator) मे रक्खे जाते हैं। इस यन्त्रके द्वारा ८४ फी सैकड़ा बच्चे जीते पाये गये है। इस संस्थाका प्रधान स्थान न्यूयार्क है और इसकी शाखायें अन्य शहरोंमें हैं। यहाँ समयसे पहले जनमे हुए बालक जन्म लेते ही लाये जाते हैं और उनकी परीक्षा की जाती है। फिर वे साफ सुथरा करके एक प्रकारके शीशेके सन्दूकमें रक्खे जाते हैं। इसमें साफ और नर्म कपड़ा बिछा रहता है और विज्ञानकी सहायतासे सर्वदा समताप रक्खा जाता है। हर बालकके फेंफडेकी शक्तिके अनुसार हवामें आक्सिजन मिलाकर एक विशेप यन्त्र द्वारा इस उत्तम वायुका प्रवेश सन्दूकमें किया जाता है जिससे बालक बिना दिक्कतके साँस लिया करता है। ठीक समय और अवसर पर परीक्षा की हुई स्त्रियोंका उत्तम दूध उचित परिमाणमें उन्हें पिलाया जाता है। बस इतना करनेसे ये जीते, बढ़ते और पुष्ट होते जाते है।

नवाँ मास—नवें मासमें बच्चा सब प्रकार परिपूर्ण होकर साधारण तौर पर २० इंच तक लम्बा और वजनमें लगभग ६ सेरके होता है। अच्छे स्वस्थ तथा उचित आयुवाले मातापिताकी सन्तान निरोग और हृष्टपुष्ट पैदा होती है।

गर्भाशयमें बच्चेका पोषण माताके रक्तसे होता है। बच्चा 'नाल' नामक रस्सीके सदृश अवयवसे सारे आवश्यक पदार्थ माताके शरीरसे खींचता है। माताके प्रत्येक गुण या अवगुणका, प्रत्येक भले या बुरे कार्यका तथा मानसिक विचारका प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। अतः जैसा मसाला विज्ञानशालामें प्रयोग किया जाता है, जितनी सावधानी तथा चतुरता उस वस्तुकी तैयारीमें खर्च की जाती है उतनी ही उत्तम या निकृष्ट सन्तान प्रयोगशालासे तैयार होकर निकलती है।

समय आने पर जो योग्य बनना चाहता है वह भूल करता है। इसके लिए बहुत पहलेसे तैयारी करनी होती है। रूपवान्, निरोगी, दीर्घायु और गुणी सन्तानकी तैयारी सन्तानके जन्मसे कई पीढ़ी पहलेसे ही आरम्भ होती है। यदि गर्भाशयरूपी भूमि अच्छी है, और नीवमें बड़े बड़े मजबूत पत्थर दिये गये हैं, तो उस पर सर्वांगसुन्दर सन्तानरूपी महल तैयार किया जा सकता है। महलका ऊपरी हिस्सा भी मसालेकी उत्तमता तथा शिल्पकार माता-पिताकी चतुरता पर निर्भर है। एक एक ईंट जिस ढंगसे रक्खी जाती है उसी ढंगका महल बनता है। महलके सुन्दर तथा चिरस्थायी होनेके लिए प्रारंभसे अंत तक किसी बातमें त्रुटि न रहनी चाहिए। यदि नीव ही कमजोर है, तो उस पर आलीशान महल बन ही नहीं सकता। यदि हठसे,

---

बालकोंके जीवनका मुख्य यन्त्र साफ हवा, साफ कपड़े, शुद्ध दूध और उचित मात्राका प्रयोग मात्र है। अब आप उपयुक्त विवरणसे अपने यहाँके नरकरूपी प्रसूतिगृहोंका मिलान कीजिए जहाँ गन्दे कपडे, गन्दी हवा, टूटे फूटे घरोंकी सबसे गन्दी कोठरियाँ और उसपरसे दुर्गन्धयुक्त मलीन वस्तुओंका धुआँ होता है।

इस विज्ञानशालामें इस समय कई लड़के है। सबसे छोटा बालक यहाँ १४ दिनोंसे है। उसका वजन १५ छटाक है और देखनेमें वह एक चूहेके बराबर है।

—शिवप्रसाद गुप्त, पनामा पैसेफिक प्रदर्शिनी—अमेरिका।

१४ अप्रेल, १९१४।

मूर्खतासे या कौशलसे उस पर इमारत बना भी ली जाय तो वह अवश्यमेव गिर जायगी और किया हुआ परिश्रम वृथा जायगा। अथवा नीव अच्छी हुई और ऊपर मिट्टीकी कच्ची दीवार बना दी गई, या उसका नकशा खराब हुआ तो भी महल सन्तोषजनक न बनेगा। सुन्दर और मजबूत महलके लिए महल बनानेके नियम जानना तथा उसके अनुसार चलना, वंशपरम्परासे अच्छे बीजकी तैयारी करना, सदाचार और प्रेम आदि गुणोंसे तथा मानसिक विचारोंसे गर्भमें ही सन्तान पर प्रभाव डालना, जन्मके पश्चात् भलीभाँति देख-रेख रखना, शिक्षा देना और सत्संगका संयोग जोड़ देना आवश्यक है। इससे ही इच्छानुसार उत्तम सन्तान हो सकती है।

(ख)—वंश-परम्परा

अर्थात्

वंशमें पीढ़ी दर पीढ़ी उतरनेवाले गुण या अवगुण।

'Nature is all that a man brings himself into the world, nurture is very influence from without that affects him after his birth. The supremacy of nature over nurture, of inheritance over training is unquestionable. The influence of environment is not quite one-tenth that of heredity '*

—Galton.

वंशपरम्परासे तात्पर्य्य यह है कि एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ी बँधी होती है। आंगिक तथा जातीय प्रवाह द्वारा एक पीढ़ीका सिलसिला दूसरी पीढ़ीसे लगा रहता है। " शरीरका प्रत्येक भाग अपनेमेंसे अति सूक्ष्म भाग उत्पन्न करता है। ये अति सूक्ष्म परमाणु सारे शरीरमें संचलन करते हैं और अपने ही सदृश दूसरे परमाणुओंको उत्पन्न करते हैं। इन्हीं परमाणुओंमेंसे शरीर उत्पन्न करनेवाले कोषोंकी उत्पत्ति होती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी

---

* The Ground Work of Eugenics

बच्चोंमें उतरते और प्रकट होते हैं ।"+ "मनुष्यशरीर दो प्रकारके कोषोंका बना होता है । एक प्रकारका कोष दिनमें सैकड़ों बार नष्ट होता और भोजन आदिसे फिर बना करता है और दूसरे प्रकारका कोप नष्ट नहीं होता, पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तानमें उतरता रहता है । इन्हीं कोषोंसे वीर्य बनता है जिससे बच्चेकी उत्पत्ति होती है । एकको शरीरकी रक्षा तथा पोषण करनेवाला कोप (Sometic cell) और दूसरेको उत्पादक कोष (Cetum cell) कहते हैं। बीजमें जो शक्ति है वह प्रत्येक बीजमें नई नहीं बनती । पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पादक कोष, नये बननेवाले कोषोंको यह शक्ति देते रहते हैं । उत्पादक कोषोंके साथ यह शक्ति भी संतानमें उतरती रहती है, और इसी शक्तिके अनुसार बच्चेमें वंशपरंपरासे दोष या गुण उतरते हैं । *

प्रजनन (Eugenics) पर श्रीमान् गाल्टन साहबने बड़े परिश्रम तथा खोजसे एक सिद्धांत स्थिर किया है । उनका मत है कि सामान्यतः बच्चेकी शरीररचनाके तत्त्वोंका आधा हिस्सा तो माता और पिता दोनों मिलकरके देते हैं और बाकी आधा हिस्सा पूर्व पुरुषोंसे या वंशपरंपरासे आता है। उसका ब्योरा इस प्रकार है:—

" माता और पितासे प्राप्त हुए गुण या अवगुण आधा अंश, अर्थात् पृथक् पृथक् प्रत्येकसे चौथाई चौथाई अंश और इसी तरह पितामह, पितामही, मातामह, मातामही इन चारोंसे चौथाई अंश, अथवा यों कहिए कि प्रत्येकसे सोलह-सोलहवांश । इसके आगे भी इसी रीतिसे गुण अवगुण मिलते हैं । इस पंक्तिमालाका सिलसिला हुआ $\frac{१}{२}+\frac{१}{४}+\frac{१}{८}+\frac{१}{१६}+\frac{२}{३२}+$. .आदि=१ ।

इस अनंत पंक्तिमालाका यह विशेषत्व है कि प्रत्येक अंक पिछले अंकोंके जोड़के बराबर होता है । जैसे —

$\frac{१}{२}=\frac{१}{४}+\frac{१}{८}+\frac{१}{१६}+\frac{१}{३२}+\frac{१}{६४}$.आदि;

$\frac{१}{४}=\frac{१}{८}+\frac{१}{१६}+\frac{१}{३२}+\frac{१}{६४}+\frac{१}{१२८}$.आदि,

---

+ Origin of Species—Darwin

* Weismann of Germany

+ The two parents between them contribute on the average one-half of each inherited vuality, each of them contributing one-quarter of it The four grandparents contribute between them one-quarter, or each of them

$\therefore \frac{1}{8}=\frac{1}{16}+\frac{1}{32}+\frac{1}{64}+$.... ....आदि,

फिर इसी तरह...... . . आदि"×

यह गाल्टन द्वारा निर्धारित व्यवस्था आनुमानिक गणना-सम्बन्धी सूत्रमात्र (Statuistical formula) है। किन्तु स्मरण रहे कि यह व्यवस्था दाय (Inheritance) में निर्णयात्मक रूपसे घटती है। इसको मिश्रित या संसृष्ट दाय (Blended inheritance) कहते हैं। इस दायके अतिरिक्त सृष्टिमें दो प्रकारके दाय और भी देखनेमे आते हैं। एकको व्यावर्तक दाय (Exclusive inheritance) और दूसरेको निर्दिष्ट या विलक्षण दाय (Particulate inheritance) कहते हैं।

व्यावर्त्तक दायमें कभी मातृक और कभी पैतृक गुणोंका लोप सा पाया जाता है। संततिमें माताके ही गुणोका अधिकावेश होता है। इस कारण ऐसा मालूम होता है कि केवल माताहीके गुणोंसे अपत्य अलंकृत है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि पैतृक गुण उसमें आये ही नहीं; वरन् यह घटना उपस्थित होती है कि पैतृक गुणविशेषका आविर्भाव नहीं होना। ठीक इसी रीति पर किसी संतानमें पैतृक गुणोंका अधिक विकास होता है और मातृक गुण प्रायः लुप्त पाये जाते हैं।

निर्दिष्ट या विलक्षण दायमें किसी गुण विशेषका विकास होता है, जो न तो पूर्णतया पैतृक होता है और न मातृक। जैसे घोड़े और गधेके मेलसे खच्चर पैदा होता है जिसमें न तो माताके गुण पाये जाते हैं और न पिताके। कभी कभी अपत्यमें कुछ ऐसे गुणोका प्रादुर्भाव होता है जो उसके माता पितामें नहीं पाये जाते, किन्तु अनुसधानसे पता चलता है कि उनके किसी पूर्व वंशधरमें वे गुण विद्यमान थे। विज्ञानवेत्ताओंका विचार है कि इसका कारण कई पीढ़ियों तक गुणोका अव्यक्त रहना मात्र है। योग्य प्रणोदनके प्राप्त न होनेसे वे विकासित नहीं होते हैं। और यह देखा गया है कि कई

---

one sixteenth and so on The sum of the series $\frac{1}{2}+\frac{1}{4}+\frac{1}{8}+\frac{1}{16}+$ etc being equal to 1 (one) as it should It is the property of this infinite series that each term is equal to the sum of all those that follow, thus $\frac{1}{2}=\frac{1}{4}+\frac{1}{8}+\frac{1}{16}$ etc, $\frac{1}{4}=\frac{1}{8}+\frac{1}{16}+\frac{1}{32}$, ...etc and so on

—Galton

एक पीढ़ियोंके पश्चात् यह परावृत्तिका प्रादुर्भाव हो जाता है । इसे रिवर्जन या एटोइज्म (Reversion or Atooism) कहते हैं ।

डाक्टर डावेन्पोर्टने वंश-परम्परासे आनेवाले गुणोंको ४१ भागोंमें विभक्त करके उनपर अपना मत प्रकट किया है । ऑखकी रंगत, बाल, चमड़ा, कद, वजन, गाने बजानेमें, चित्रकारीमें, साहित्यमें, गणितमें या स्मरणशक्तिमें विशेषता, शारीरिक बल, बोलनेमें, सुननेमें, देखनेमें अन्तर, पैतृक नशेबाजी या जुर्म करनेकी ओर झुकाव, पैतृक रोग, क्षय, मिरगी, उपदंश आदि । अर्थात् भली भॉति विचार करके मिलान करनेसे पता चलता है कि पूर्वोक्त गुण या अवगुण वंशपरम्परासे पीढ़ी दर पीढ़ी उतरते हैं । * प्रकृतिका यह शोकजनक नियम है कि जहॉ माता और पितामेंसे एक भी रोगग्रसित होता है वहॉ दुर्भाग्यवश दायके नियमानुसार प्रायः दुर्बल और रोगी माता पिताका दुर्गुण संतानमें विशेष विकास पाता है—*Even where one of the* parents is unhealthy, it is a sad part of the Law of heredity that the children more often follow the weaker parent than the stronger one.

प्रजनन-कार्यालय (Eugenics Record Office) लन्दनसे कई छोटी छोटी पुस्तकें निकली हैं जिनमें अनेकानेक परिवारोंके वंशजोंका ब्योरा दिया है और उन्हींके अनुसार नकशे बने हैं जिनमें न कि केवल एक दूसरेका नाता दिखाया गया है, किन्तु गुणों और अवगुणोंमें भी वंश-परम्परासे कैसा अटूट सम्बन्ध है, दिखाया गया है । इनके देखनेसे साफ साफ मालूम होने लगता है कि किस प्रकार वंशपरम्परासे गुण और अवगुण सन्तानमें उतरते हैं और रोगी और अयोग्य पिता-पितामहके दोषसे उनके पुत्र और पौत्र आदि कैसी घोर विपत्तियॉ सहते हैं । अनेकानेक कुलोंमें मिरगी, राजयक्ष्मा, उपदंश, कंठमाला, पागलपन, बहरापन, कोढ़ आदि अनेक भयंकर रोगोंको देखकर रोमाच हो आता है । क्या इससे अधिक हृदय-विदारक कोई दूसरी अपील हो सकती है जो इन कुलोंके बच्चोंका इतिहास करता है ? +

---

* *The Science of Human improvemnt by better breeding, by Dr Davenport.*

+ ' Heredity is the fundamental cause of human wretchedness. There are thousands elaborate genealogical charts showing

सिद्ध यह हुआ कि मनुष्य केवल अपने मातापितासे ही उत्पन्न नहीं हुआ करता; वरन् जिस बीजसे बच्चेकी उत्पत्ति होती है उसमे पूर्व वंशधरोंका भी भाग रहता है। अतएव यदि भारत-जनताका सुधार करना है, तो उसमे अभीसे चित्त लगाने तथा प्राकृतिक नियमोंके ज्ञान प्राप्त करते रहनेसे कहीं कई पीढ़ियोंमें जाकर सुधार हो सकेगा। अपने पूर्वजोसे जो गुण प्राप्त हुए हैं उनमें वृद्धि करके अपने वंशजोंको वे ही गुण प्रदान करना और दुर्गुणोंको काट देना—जिसमें उनके प्रभावसे भावी संतानको कष्ट न भोगना पड़े हमारे हाथों है। हम चाहें तो राष्ट्रको पवित्र कर सकते हैं और चाहे तो सद्गुणोंके बदले दुर्गुणोंका विकास करके वंशकी उत्तरोत्तर वृद्धि न करके उसकी अधोगति कर सकते हैं। भारत जनताको पवित्र कर माताका सिर ऊँचा करना या उसे रसातलके गढ़ेमें गिराना, ये दोनों कार्य हमारे ही अधीन हैं।

(ग)-मनःशक्ति और प्रेमका प्रभाव।

'Slaves suckle slaves; pure and enthusistic women bring forth saints and heroes All history attest the fect that great man had great mothers.

मनुष्य स्वभावहीसे विचारशील है। वह हर समय कुछ न कुछ विचारा ही करता है। कोई क्षण ऐसा नहीं जाता जब वह विचारसे खाली रह

not only the degree of relationship but also legitimacy, sex, cause of death, bad habits, diseases or defects such as alcoholism, creminality, sexual immorality, tuberculosis, syphilis, insanity etc Here the students confronted with patients and the histories of pat ents see with their own eyes a telling demonstration of the cost in misery and care caused by the breeding of tainted stock! And it is doubtful if any other statement could make such eloquent appeal as these simple diagrams in which the mark of deaf-mutism or feeble-mindedness or some other grave infirmity, blockens the whole page of a family history, generation after generation '

The Social Direction of Human Evolution by Professor Killicott.

सके। संसारके छोटे बड़े सभी कार्योंका मूल विचार ही है। पहले मनःशक्ति अपना काम करती है, फिर दूसरे अंग इस शक्तिकी आज्ञा पर कार्य करते हैं। विना इस शक्तिकी सहायताके कोई भी काम नहीं किया जा सकता।

जिस प्रकार पानीमें पत्थर फेंकनेसे लहरें उत्पन्न होती हैं, या जैसे बोलने या बाजे आदिके शब्दसे वायुमें कम्पन होता है वैसे ही विचारसे भी ईथर नामक द्रव्य पर प्रभाव पड़ता है। विशाल महासागरमें एक कंकड़ी फेंकनेसे उसमें लहरें उत्पन्न होती हैं और ये लहरें चाहे दिखाई न दें तो भी महासागरके अन्त तक किसी न किसी रूप या अंशमें अपना प्रभाव डालती हैं। इसी तरह प्रत्येक शब्द सारी सृष्टिके वायुमण्डलमें कम्पन उत्पन्न करता है। एक सेकण्डमें करोड़ो क्या अर्बों कम्पन्न उत्पन होते हैं, किन्तु हमारा कानयन्त्र एक नियमित सीमा तकके ही कम्पनको ग्रहण करता है। कम्पन निरन्तर हुआ करता है, और हमारे कानके परदेसे टकराया करता है। जितनेके ग्रहण करनेकी शक्ति हमारे कानोंमें होती है उतनेको हम सुनते हैं, शेष सारे कम्पन हमारे कानोके पाससे निकल जाते हैं और सुनाई नहीं देते। +

विचार-कम्पन 'ईथर' (Ether) नामक अति सूक्ष्म वस्तु पर होता है। 'ईथर' के परमाणु अति सूक्ष्म होते हैं। इनकी सूक्ष्मताका अनुमान यों किया जा सकता है कि सोने जैसे घन (dense) पदार्थमें भी ईथरके लाखों परमाणु समा जाते हैं। "प्रत्येक विचार जो मनःशक्तिसे उत्पन्न होता है इस ईथर पर प्रभाव डालता है। हमारे विचारोंकी आकृति इस ईथर पर अंकित हो जाती है, किन्तु सूक्ष्मताके कारण साधारण आँखसे दिखाई नहीं देती। जर्मनीके विख्यात डाक्टर ब्रेडक विचार द्वारा जो आकृतियाँ ईथरमें उत्पन्न होती है उनका प्लेट (चित्र) लेनेमें समर्थ हुए हैं। एक बार एक युवा पुरुष अपनी प्रेमिकाके विचारोंमें निमग्न था। डाक्टर ब्रेडकने उसके विचारका चित्र ईथरसे उतारा और प्लेट पर उस युवाकी प्रेमिकाका चित्र आगया! ऐसे ही और कई बार तसवीरें ली गईं और वे ठीक निकलीं।"

+ जव एक सेकण्डमें ४० से लेकर ४–५ हजार तक कम्पन होते हैं, तव वे साधारण मनुष्योंको सुनाई देते है पर जव इससे अधिक कम्पन होते हैं, तव सुनाई नहीं देते। वायुमण्डल और ईथरमें एक सेकण्डमें असख्य कम्पन उत्पन्न होते या हो सकते हैं। इसकी जाँच अति सूक्ष्म यन्त्रोंसे होती है।

" जलमें उत्पन्न हुई लहरें मिट जाती हैं और वायुमण्डलका कम्पन (Vibration) भी नाश हो जाता है, किन्तु ' ईथर ' में उत्पन्न हुआ कम्पन या आकृतियाँ अमर रहती हैं।* " अतएव प्रत्येक विचारका प्रभाव बच्चेके वीज पर पड़ता है। गर्भाधान-समयसे लेकर प्रसव तक माताके प्रत्येक विचारकी छाया बच्चे पर पड़ती है और वह उसी आकृति, रंग, रूप, स्वभाव और बुद्धिका बनकर तैयार होता है।

" सारे प्राणियोंका सूक्ष्मदृष्टिसे अवलोकन करनेसे ज्ञात होता है कि उनका आकार उनके स्वभाव और उनकी इच्छाके अनुसार बना हुआ होता है। उनके किसी अवयवका उत्पन्न होना या क्रमशः लोप हो जाना उनकी मनःशक्ति पर अवलंबित होता है।"+

सिंह या रीछकी डरावनी सूरत उसके विकराल और उग्र स्वभावके कारण और गौकी शान्तिमूर्ति उसके शांतिपूर्वक जीवन-निर्वाहके ही कारण है। एक ही प्रकारके पालतू और जंगली जानवरोंमें भिन्नता हो जाती है। पालतू जानवरोंको रक्षाकी वैसी जरूरत नहीं रहती जैसी कि जङ्गलमें रहनेवालोंको होती है। इससे पहले पालतूओंका स्वभाव शान्त और दूसरे जंगलियोका उग्र हो जाता है और उसीके अनुसार उनका शारीरिक संगठन होता है। कितने ही पेटके बल रेंगनेवाले जन्तुओंने रक्षाकी निरन्तर इच्छासे पैर पैदा कर लिये हैं। कितने ही तितलीकी जातिके कीड़ोने पक्षियोसे सुरक्षित रहनेकी इच्छासे अपने रंग बदल लिये हैं—जिन वृक्षो पर वे निवास करते थे उन्हींके पत्तोके जैसा रंग अपने पंखोंका बना लिया है। कितनी ही मछलियोंने हिंसक जलचरोसे अपने प्राण बचानेके लिए अपने शरीरमें पर पैदा कर लिये हैं। इसी प्रकार लता, वृक्ष और पुष्प भी अपनी आकृतिमे परिवर्तन करते पाये गये हैं। बहुतसे फूल मांसाहारी बन गये हैं और उनमे मक्खियो और कीट पतंगोंके पकड़ लेनेकी शक्ति उत्पन्न हो गई है। तात्पर्य यह कि मनःशक्तिके निरंतर उद्योगसे प्राणियोमें रक्षा आदिके लिए नये नये अवयव उत्पन्न हो जाते हैं और जब जिन अवयवोकी आवश्यक्ता नहीं होती तब वे अवयव क्रमशः लोप हो जाते हैं।

---

* Mrs Annie Besant

+ Darwin

वास्तवमें देखा जाय तो मनःशक्ति ही शरीरकी रचना करती है। इसी शक्तिके प्रभावसे हम मनुष्य बने हैं। अतएव गर्भाधान अथवा गर्भावस्थाके समय मातापिताकी जैसी मनःशक्ति होती है वैसी ही मनःशक्तिके साँचेमें सन्तान ढलती है। बादको भी माताके स्वभाव तथा आचरणकी छाया बच्चे पर पड़ती है और वह स्वभावतः उसी रंगमें रँग जाता है।

१—अर्जुन और सुभद्रासे अभिमन्युका जन्म हुआ था। अभिमन्यु जिस समय गर्भमें था और सुभद्राका चित्त कुछ उदास था, उस समय अर्जुनने उसके मनोरंजनार्थ 'चक्रव्यूह'की रचनाका और उसको भेद करनेकी रीतिका वर्णन किया। महाभारतके युद्धमें कृष्ण, अर्जुन और द्रोणाचार्यके अतिरिक्त अन्य किसीको 'चक्रव्यूह'की रचना या भेद करनेकी रीति नहीं मालूम थी। कृष्ण और अर्जुनकी अनुपस्थितिमें द्रोणने चतुराईसे चक्रव्यूहकी रचना करके युधिष्ठिरसे कहलाया कि या तो व्यूहमें प्रवेश कीजिए, या कौरव पक्षको विजयपत्र लिख दीजिए। उस संकटके समय अभिमन्यु गर्भवासके समयके संस्कारसे सचेत हो उठा और उसने अभूतपूर्व वीरताके साथ 'चक्रव्यूह'में प्रवेश किया।

२—सारे यूरोपको थर्रा देनेवाले महान् वीर नेपोलियन बोनापार्टसे शायद ही कोई शिक्षित अनभिज्ञ होगा। उसके ज्वलन्त वीरत्व और आश्चर्यजनक नैतिक कार्योंका वृत्तान्त किसे न मालूम होगा। कहते हैं कि जिस समय वह गर्भमें था उस समय उसकी माता प्लूटार्कके लिखे हुए वीर पुरुषोंके जीवन चरित तथा ग्रीशियन वीररसके साहित्यका अध्ययन किया करती थी। वह बड़े तेज घोड़े पर सवारी किया करती थी, और अपने पतिके अधीन सैनिकों पर रानीके समान हुकूमत किया करती थी। उस उत्तम वीररसके साहित्यके पठन-पाठनका और उससे उत्पन्न हुए उच्च मानसिक विचारोंका प्रभाव उसकी गर्भस्थ सन्तान नेपोलियन पर पड़ा जिससे कि उसमें अलौकिक शक्तियोंका विकास हुआ। *

३—'चार्ल्स किंग्सले' जिस समय गर्भमें था उसकी माताने अपने हृदयको वैराग्य और धर्म्मवृत्तिकी ओर फेरा। वह सांसारिक वैभव और सुखका परित्याग कर साधुभावसे रहने लगी। उसने नगरका निवास छोड़कर ग्राम-वास स्वीकार किया और वह अपना अधिक समय सृष्टिसौन्दर्य और प्रकृतिकी मनो-

* Dr. Fowler

हरताके देखनेमें बिताने लगी। माताने जान-बूझकर अपनी गर्भस्थ सन्तान पर प्रभाव डालनेके लिए इस आचरणपर चलना आरम्भ किया था। फल यह हुआ कि किंगसले एक महान् पुरुष हुआ, सृष्टिसौन्दर्य पर उसने बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा और एक प्रतिष्ठित धर्माध्यक्षके रूपमें बड़ा भारी यश प्राप्त किया।

४—मेरी विनीशिया नामक एक अमेरिकन महिला अपना वृत्तान्त लिखती है—" मेरे प्रथम पुत्रके प्रसवके एक मास पहले एक घूम घूम कर किताबें बेचनेवाला आया। उससे मैंने एक पुस्तक खरीदी जिसमें इच्छानुसार मनःशक्ति द्वारा गुणवान् सन्तान उत्पन्न करनेकी रीति लिखी थी। प्रसवका समय निकट होनेके कारण मैं अपने पहले पुत्र पर यथेष्ट प्रभाव नहीं डाल सकी, इसलिए वह साधारण बुद्धिका उत्पन्न हुआ। पर दूसरा पुत्र मेरे गर्भमें आया तो मेरी इच्छा हुई कि उसे चित्रकारीमें कुशल और प्रवीण बनाऊँ। इस उद्देश्यसे मैं अमेरिकाके प्रसिद्ध नगरोंके चित्रालयोंमें जाती, वहाँके चित्रोंको प्रेमपूर्व देखती, सच्चे हृदयसे उनकी प्रशंसा करती और उनके बनानेका स्वयं अभ्यास करती। इसका फल यह हुआ कि बच्चेमें चित्र-रचना सम्बन्धी शक्तिने पूर्णतया विकास पाया। इसके बाद दूसरे पुत्रके जन्मके पीछे तीसरी और चौथी सन्तानकी गर्भावस्थामें मैंने जिस जिस विषय पर अपनी मनःशक्तिको लगाया उस ही उस विषयमें मेरी सन्तान योग्य उत्पन्न हुई।" *

५—श्रीकृष्ण और रुक्मिणीजीके प्रेमकी कथा सभी हिन्दू जानते हैं। दम्पतिमें जो घनिष्ठ प्रेम होता है उसका परिणाम सन्तान पर अवश्य होता है। कृष्ण और प्रद्युम्न (ज्येष्ठ पुत्र) को देखकर लोगोंको भ्रम होता था। वे कृष्णसे इतने मिलते जुलते हुए थे कि स्वयं कृष्णको संदेह हो गया था कि यह उन्हींकी शकलका दूसरा पुरुष कौन है। कृष्णका केवल रूप ही नहीं, किन्तु गुण भी प्रद्युम्नमें विराजमान थे।

६—वाशिंगटन शहरके एक तरुण दम्पतिने अपनी संतानको सुन्दर बनानेकी इच्छासे एक सुन्दर बालकका चित्र खरीदा। वे दोनों समय समय पर उसे

---

* What a young wife ought to know by Mrs ✓ Ignorance is not purity, but is often the cause of grocest impurity.

Evil is wrought by want of thought,
As well as by want of heart

देखा करते थे। यथासमय उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई। यह बच्चा सर्वथा उस चित्रसे मिलता जुलता था।+

७—एक अँगरेजका एक आफ्रिकानिवासिनी काले रंगकी स्त्री पर बहुत प्रेम था। वह उससे विवाह करके कई वर्ष तक हर्षपूर्वक उसके साथ रहा। इस स्त्रीके देहात हो जानेके कारण उसने फिरसे एक गोरी मेमके साथ विवाह किया। पर जो पुत्र इस दूसरी गोरी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ वह रंग * और रूपमें उसकी पहली स्त्रीके ही जैसा हुआ। कारण बतानेकी अवश्यकता नहीं। अँगरेज अपनी पहली स्त्रीको भूल न सका था। गर्भाधानके समय उस स्त्रीकी शकल उसके मस्तिष्कमें थी, इससे उसका प्रतिबिम्ब संतानमें आया। +

८—स्पेनमें एक प्रतिष्ठित पुरुषकी लड़कीके सोनेके कमरेमें एक हबशीकी तसवीर टँगी थी। उसे वह अकसर देखा करती थी। गर्भावस्थामें भी उसकी नजर उस पर पड़ा करती थी। फल यह हुआ कि उसके उक्त चित्रके अनुरूप पुत्र उत्पन्न हुआ। †

९—रोमका एक न्यायाधीश बहुत बदशकल और छोटे कदका था। इसका पहला पुत्र भी इसीके समान बदशकल और छोटे कदका हुआ। न्यायाधीशको सुन्दर पुत्रकी आकांक्षा थी। अतः उसने उस समयके विख्यात डाक्टर गैलनकी सम्मति ली। उक्त डाक्टर महोदयने उसे सलाह दी कि वह अपनी स्त्रीके सोने तथा बैठनेके कमरोंमें एक ऐसी शकलकी सुन्दर प्रतिमा बनवाकर

+ Dr Fowler

* डाक्टर सिक्स्टके यहा कुछ खरगोश पले थे। उन्होंने उनका रंग बदलना चाहा, इसलिए एक कमरेको नीला रँगवा कर अर्थात् उसका फर्श, छत और दीवारें आदि भी नीली कराके उसीमें उन खरगोशोंको रख दिया। कुछ दिनोंके बाद उनके दो बच्चे नीले रंगके पैदा हुए और फिर इन नीले रंगके खरगोशोंके बच्चे भी नीले ही रंगके पैदा होते रहे। घोड़ोंके पालनेवाले सौदागर उनसे इच्छानुसार बच्चे पैदा कराते हैं। जोड़ा लगाते समय जिस रंग और रूपका घोड़ा घोड़ीके सामने खड़ा किया जाता है प्रायः उसी रंगका बच्चा पैदा होता है।

+ Dr Love † E J Jamport ‡ Professor Killicott

रखवा दे कि उसका ध्यान हर समय उस प्रतिमाकी ओर आकर्षित हुआ करे। उसने ऐसा ही किया और तब उसके जो सन्तान उत्पन्न हुई वह आशातीत सुन्दर थी।

जिस प्रकार और जितने अंशमे उत्तम मनःशक्ति और प्रेमके प्रभावसे अच्छी संतान उत्पन्न की जा सकती है, उसी अंशमे बुरे आचरण तथा प्रेमके अभावसे बुरी दुर्गुणी संतान उत्पन्न होती है। इस बातको भली भाँति समझ लेना चाहिए कि यदि कोई जोड़ा बराबर अच्छा आचरण न रखता हो और विचार भी अपवित्र किया करता हो तो यह आशा करना कि गर्भके समय अथवा गर्भावस्थामें वह अपने आचरण तथा विचारोंको शुद्ध कर लेगा, व्यर्थ है। ठीक समय पर कोई अपनी मनःशक्ति पर प्रभुता नहीं जमा सकता। जैसा सदैवका अभ्यास होगा वैसे विचार उस समय भी उसके मस्तिष्कमे आवेंगे। अतः उत्तम सन्ततिकी आशा रखनेवाले दम्पतिको सदाचार और सुविचारोंकी आदत पहलेहीसे डालनी चाहिए।

१—एक स्त्री अपने बच्चेको निद्रा लानेवाली ओषधि देकर कहीं बाल या नाचमें चली गई और ओषधिकी मात्रा अधिक होनेसे इधर उस बच्चेकी मृत्यु हो गई। इससे स्त्रीको अत्यन्त दु.ख हुआ। उसका शोक दिनोदिन बढ़ता ही गया। इसी शोकावस्थामें वह दूसरी बार गर्भवती हुई और इस गर्भावस्थामें भी शोकमग्न बनी रही। परिणाम यह हुआ कि बच्चा रोगी उत्पन्न हुआ और दो वर्षोंके बाद सिरकी पीड़ामें मर गया। स्त्री और भी शोकग्रस्त हुई। तीसरी बार गर्भ रहा और समय पर और भी अधिक रोगी बच्चा पैदा हुआ। छः मासके बाद यह बच्चा भी जीवित न रह सका। माताकी निराशा और शोककी सीमा न रही। वह और भी गहरे शोकसागरमें गोता खाने लगी। इसी अवस्थामें चौथे बच्चेका जन्म हुआ। पूर्ण रूपसे सावधानीके साथ सँभालने पर भी दो वर्षके भीतर ही इस बच्चेको भी कालका ग्रास बनना पड़ा और अन्तको कुछ ही दिनों बाद इस स्त्रीका भी शोक और दुःखके कारण देहान्त हो गया। ×

२—"मेरे तीन बच्चे मेरी गर्भावस्थाकी तीन जुदी जुदी स्थितियोंकी याद दिलाते हैं। पहले पुत्रके गर्भके समय मेरी मानसिक दशा अच्छी थी, मैं

× Dr. Fowler

सदैव प्रसन्नचित्त और प्रफुल्लित रहती थी। इससे मेरा पहला लड़का निरोग, सर्वांगसुन्दर और बुद्धिवान् पैदा हुआ। दूसरे बच्चेमें गर्भके आनेके समय मेरा पति शराबी बन गया था। मुझे उसका यह व्यसन नापसन्द था और उसकी ओरसे मुझे कुछ घृणा सी उत्पन्न हो गई थी। इससे मैं अप्रसन्न तथा उदास रहती थी। इस अवस्थामे मेरे दूसरे बच्चेने वृद्धि पाई और जन्म लिया। उसकी दशा सर्वथा मेरी उस अवस्थाके अनुकूल है। तीसरे बच्चेकी उत्पत्तिके समय मेरे पतिका दुर्व्यसन बहुत बढ़ गया था। उसके असत् और कुटिल व्यवहारोंसे मुझे अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ता था। आर्थिक दशा भी बड़ी शोचनीय हो गई थी। मेरा विनोदप्रिय और प्रसन्न स्वभाव निराशा और शोकमें बदल गया था और मैं चिन्तारूपी चिता पर दिन रात जलने लगी थी। अतएव मेरा तीसरा पुत्र रोगी, निर्बल, निराशा तथा शोकका अवतार ही उत्पन्न हुआ।" ×

३—एक साधारणतः सुन्दर और निरोग स्त्री अपने १४ वर्षके दुबले, पतले, क्षीण और शक्तिहीन पुत्रको लेकर मेरे पास आई। पुत्रका पिता भी साथ था। यह भी अच्छा खासा जवान था। तीनोंकी परीक्षा किये जानेके पश्चात् डाक्टरने स्थिर किया कि दम्पतिमें प्रेमका अभाव था। इस शक्तिके विकास न पानेकी वजहसे सन्तानमें अपूर्णता रही और ऐसा निकम्मा बच्चा पैदा हुआ। †

४—एक स्त्री अपनी १६ वर्षकी पुत्री डाक्टर फाउलरके पास लाई और कहने लगी कि यह लड़की अकसर रोया करती है और धार्मिक पुस्तकोंके अतिरिक्त अन्य किसी मनोरञ्जक या हास्यप्रद पुस्तकको कभी नहीं पढ़ती। डाक्टरने उसकी परीक्षा की तो पता चला कि उसमें दृढ स्वभाव, प्रेम और प्रसन्नताकी शक्तियोंने विकास नहीं पाया था। उसकी मातासे पूछने पर मालूम हुआ कि उसने एक दुष्टके बनावटी प्रेमके फन्देमें फँस कर उससे

× No intelligence, no cunningness, no benevolence could evade the inevitable. What she was that her child was What she had made herself she had made her child What she had become that her child became also In being born the child became all that

† *Dr. Fowler*

विवाह कर लिया था, किन्तु थोड़े ही दिनों बाद उसका असली स्वभाव प्रकट हो जानेसे वह पतिसे विमुख रहती, उसके नाम पर रोया करती और बाइबिल पढ़कर अपने मनको मारे रहा करती थी। ऐसी ही अवस्थामें उसे वह पुत्री पैदा हुई थी।

ऐसे ही अनेकानेक उदाहरण मौजूद हैं। गुण और दुर्गुण दोनों ही माता-पितासे बच्चोंमें आते हैं। अच्छे संबंधसे अच्छी सन्तान और बुरे माता-पितासे बुरी सन्तान पैदा होती है। मन.शक्तिका अच्छा या बुरा प्रभाव निर्विवाद है। प्रेम और मनःशक्तिके अतिरिक्त थका देनेवाले कार्यसे, अथवा एकदम बिना काम किये ही हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहनेसे, रोगीकी शुश्रूषा करनेसे, बन्द और बिना हवाके मकानमें रहनेसे, श्वास रोकनेवाले कामके करनेसे, अनियमित आहार-विहार तथा परिश्रमसे गर्भस्थ बच्चे पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

(घ)–संतानका पालन-पोषण और शिक्षण।

" If a society expands beyond its power of organisation, it suffers (as Nepoleon said, all empires die) from indigestion. "

—*G. H Perris.*

इस पुस्तकके पहले ही परिच्छेदमें बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुषमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक योग्यता होनेसे ही वह स्त्री या पुरुष कहलानेका अधिकारी हो सकता है। यदि मनुष्यमें मनुष्यके गुण न हुए तो वह फिर मनुष्य कहाँ रहा?

जब बालक संसारमें आता है तब केवल सामाजिक और पैतृक संस्कारोंको लेकर आता है, किन्तु वह अयोग्यता और अविद्या आदिका पुंज ही होता है। माता, पिता, गुरु, पुरोहित आदि शिक्षक उसे उक्त दुरवस्थासे अनेक प्रयत्नों और साधनोंसे निकालते हैं। जन्मसे अच्छे संस्कारोंके होते हुए भी–हृष्टपुष्ट, आरोग्य और उत्तम कुल तथा जातिमें उत्पन्न होते हुए भी–बिना अनेक विभूतियों और उत्तम गुणोंसे युक्त हुए, मनुष्य मनुष्यकी पंक्तिमें नहीं बैठ सकता।

शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंको पुष्ट करने तथा बढ़ानेके अनेक साधन है। उन साधनोंमें संपत्ति प्रधान है। संसारमें विना सम्पत्तिके कोई कार्य नहीं किया जा सकता। सम्पत्तिकी ही सहायतासे बच्चेके पालन-पोषण तथा शिक्षणका उचित प्रबन्ध किया जा सकता है।

संसारके प्रत्येक कार्यके लिए शारीरिक बलका होना आवश्यक है। इस शक्तिका बढ़ना अच्छे आहार, स्वच्छ वस्त्र, पवित्र जल और वायु, साफ और हवादार मकान, व्यायाम, लाभकी आशा और स्वतन्त्रता पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त कार्यकुशल होनेके लिए नाना प्रकारकी शिक्षायें कृषक, शिल्पकार, व्यवसायी, राजनीतिज्ञ, पण्डित या वैज्ञानिक आदि सबको उनके व्यवसायों या आवश्यकताओंके अनुसार मिलनी चाहिए। बिना शारीरिक बल, और मानसिक शक्तियोंको बढ़ाये संसार-यात्रा नहीं हो सकती। जैसा कि ऊपर कहा गया है मनुष्य केवल जन्मसे ही मनुष्य नहीं हो सकता, मनुष्यमें मनुष्यके गुण होने चाहिए।

संसारका कोई शिक्षक—माता, पिता, गुरु या पुरोहित—उचित साधनोंकी सहायताके बिना कुछ नहीं कर सकता। यदि सम्पत्तिका ही अभाव हो, अथवा बच्चेके पालन-पोषणके लिए खाद्य पदार्थोंकी कमी हो तो फिर जन्मसे उत्तम संस्कार पाये हुए बालकका जन्म भी वृथा हो जाता है। यदि बालकका पालन-पोषण और शिक्षण उचित रीतिसे न हो सका तो ऐसे बच्चोंको जन्म देनेसे क्या लाभ ?

यह बड़ा ही भयङ्कर प्रश्न है। इसका हल करना कठिन ही नहीं, असम्भवसा है। बच्चोंके भोजनके लिए खाद्य पदार्थ, रहनेके लिए स्थान, शिक्षाके लिए द्रव्य, कृषिके लिए भूमि और व्यापारके लिए नये बाजार कैसे मिलें? इस जीवन-प्रयासको, इस संघर्षको मिटानेके लिए कोई एक निश्चित रास्ता न आज तक मिला है और न मिलेगा। प्रत्येक समयमें प्रत्येक जाति या देशके मनुष्योंको इस प्रश्नको अपनी सुविधाओं और बुद्धिके अनुसार हल करना पड़ा है।

डारविन और माल्थसका समय भी अब नहीं है। भूमण्डल मानवजातिसे भर गया है। अब अधिक वृद्धि होना असंभव हो गया है। इस पृथ्वीकी सबसे श्रेष्ठ और महान् जातियोकी जनवृद्धि केवल कम ही नहीं हो गई है बल्कि रुक सी गई है। फ्रान्सवालोंका नाम बदनाम है कि वे कृत्रिम उपा-

योंसे जनवृद्धि रोकते हैं, इसीसे वहाँकी जनसंख्यामें वृद्धि नहीं होती । ज्यादती सभी बातोंकी बुरी है, सो फ्रान्स-निवासी जन-निरोधमे ज्यादती करते है इसमें कुछ सत्यता अवश्य है, किन्तु जनसंख्या तो सभी देशोंकी स्थिर सी हो गई है । लगभग सभी देशोकी जनसंख्यामें बहुत कम वृद्धि हो रही है। हमें इस विषयमें केवल सुनी हुई बातो पर विश्वास न करना चाहिए । ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर खूब जॉच कर विचार करना चाहिए:—

आगेके नकशेसे यह भ्रम दूर हो जाता है कि जर्मनीका बल उस देशकी जनवृद्धिसे बढ़ा है और फ्रांसवालोंका बल जन-निरोधसे घट गया है । जनवृद्धि

जन्म-मृत्युसंख्या और वृद्धि प्रति हजार ।*

	इँग्लैण्ड		जर्मनी		फ्रास +	
	१८७६ ई०	१९०९	१८७६	१९०९	१८७६	१९०९
जन्मसख्या	३६ ३	२५ ६	४० ७	३२ ९	३४ ७	१९ ६
मृत्युसख्या	२० ९	१४ ५	२५ ४	१७ ८	१९ ३	९ २
जनवृद्धि	१५ ४	११ १	१५ ३	१५ १	१५ ४	१०·४

न तो जर्मनीमें अधिक है और न इंग्लैण्डमें। प्रत्येक देशकी जन्मसंख्या पर विचार करनेसे यह बात और साफ हो जाती है कि सभ्य जातियोंमें सन्तान-वृद्धिमें बराबर कमी होती जा रही है । जन्मसंख्यामें कमी होना इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आगे बतलाये हुए देशोंमें दूरदर्शितासे उतनी ही सन्तानोत्पत्ति की जाती है जितनोके पालन-पोषणका उचित प्रबन्ध हो सकता है। भारतमें अवश्य ही अन्धाधुन्दी है । भारतकी जन्मसंख्या घटनेके बदले बढ़ती नजर आती है ।

उत्तम सन्तान पैदा करना अति उत्तम है, किन्तु एक हद तक । हदके बाहर जानेसे लाभ छोड़ सदैव हानि ही होती है । सभी स्त्री-पुरुषोंके जीव-

* History of War & Peace by Perris, page 245
+ From Periodicals.

नमें चाहे वे कितनेही धनाढ्य और आरोग्य हों एक समय आता है जब उन्हें अधिक सन्तानकी आवश्यकता नहीं रहती और सन्तानका होना उनके स्वास्थ्यके लिए या स्वयं सन्तानके लिए हानिकर होता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो एक नियमित संख्याका ही पालन पोषण और शिक्षण कर सकते हैं। जिनमें दो बच्चोंको पालने तथा शिक्षित बनानेका सामर्थ्य है उन्हें यदि एक दर्जन बच्चे हो जायँ–जैसा कि बराबर होता है–तो उनकी तथा उन बच्चोंकी क्या दशा होगी, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं।

जन्मसंख्या प्रति हजार। *

सन् ई०	इंग्लैण्ड	जर्मनी	फ्रांस
१८७६—८०	३६·३	४० ७	३४ ७
१८८१—८५	३३ ५	३७ ०	२४ ७
१८८६—९०	३१·४	३६ ५	२३ १
१८९१—९५	३० ५	३६ ३	२२ ३
१८९६—१९००	२९ ३	३६ ०	२१ ९
१९०१—१९०५	२८·१	३४ ३	२१ २
१९०७—	२६ ३	३२ ३	१९ ७
१९१४—	२४·४	२८ ०	१६ २

सन्	भारत ×
१८९९	४२·१६
१९००	३६ ५६
१९०१	३४ ५१
१९०२	३९·३६
१९०३	३८ १६
१९०४	४० ८५
१९०९	३७·४६
१९१५	३७·८२
१९१६	३७ १३

* History of War & Peace by G H Perris, page 244

× Statistical Abstract of British India, Page 228-237

अपने बच्चोंके पालन-पोषण कर सकनेकी और उन्हें शिक्षण दे सकनेकी शक्ति तक ही सन्तान पैदा करनेसे भारतका कल्याण हो सकता है । इसके बाहर जानेसे नैपोलियनके कथनानुसार राष्ट्रोंको बदहजमीका रोग हो जाता है जिसकी यदि दवा न की गई तो मृत्यु हो जाती है ।

ऐसे रोगकी महान् ओषधिका नाम है जन-वृद्धि-निरोध । एक अति उत्तम रीतिका वर्णन ऊपर हो चुका, पर वह काफी नहीं है, इससे अब दूसरे उपायों पर विचार करना उचित है ।
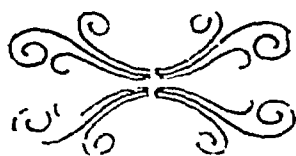
सातवाँ परिच्छेद।
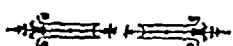
ब्रह्मचर्य्य या इन्द्रिय-निरोध।
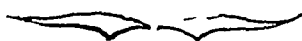
Looking back over the procession of the ages, the flux and reflux of populations, the building up and collapse of States, we are driven to the conclusion that every function of society at every stage of its growth is affected by density of population, and the margins of free land. And since we are limited to this planet the whole process of expansion is necessarily, modified as the filling up of the earth nears completion —*Herbert Fisher.*

समयकी लड़ी पर, जनसख्याके वढ़ने और घटनेके इतिहास पर, ससारमात्रके प्रधान राज्योंके वनने और विगड़ने पर दृष्टि डालनेसे विवश होकर मानना पड़ता है कि इस सृष्टिके प्रत्येक कालमें, समाजकी प्रत्येक अवस्थामें, जनसंख्याकी अधिकता और भूमिकी न्यूनताका प्रश्न उपस्थित रहा है। और चूँकि हमारा निवासस्थान यही एक भूमण्डल है, इसलिए ज्यों ज्यों पृथ्वी मानव-जातिसे भरनेके निकट आती जायगी त्यों त्यों जनवृद्धिकी प्रचलित दशा या रीतिमें परिवर्तन करना होगा। —हर्बर्ट फिशर।

छोटा या बड़ा जो कुछ कार्य हम करते हैं और सोचते विचारते हैं वह हमारे कृत्यके अवयवमें गंभीरतम भावसे अंकित रहता है। उसका फल केवल हमींतक नहीं रह जाता, वरन् पत्थर फेंकनेसे उठी हुई समुद्रकी लहरकी भाँति वंशानुक्रमसे क्रमश. विस्तार पाता हुआ अनन्त कालतक वर्त्तमान रहता है। इससे हमारी संतान-संततियोंमें और उनके संसर्गसे समाजमें हमारे कर्मोंके फल चिरकाल तक विद्यमान रहते हैं।

निकम्मापन या अनुचित कर्म एक संक्रामक व्याधि है जिसका विस्तार समाजमें और सव व्याधियोंसे अधिक होता है। इसका परिणाम हम लोगोंके

आवयाविक गठनको भी विकृत करता है और यत्न-वर्द्धित पैतृक सम्पत्तिकी भाँति पुत्रपौत्रानुक्रमसे सन्ततियोमें भी ह्रास होता है। जब हमे अपने ही किये हुए कार्य्यसे अपनी क्षति नही सुहाती तब यह कितना अनुचित है कि हम जान-बूझ कर अपनी त्रुटिसे, अपनी असावधानीसे, अपनी स्वार्थवृत्तिसे अपनी भावी संतानको, समाजको, या सारे देशको क्षतिग्रस्त कर दें, उन्हें अवनतिके गढ़ेमें गिरा दें। यह कितनी बड़ी कृतघ्नताका कार्य्य है कि जिस मातृभूमिके अन्नसे हम पले हैं, और जिन देशबन्धुओके यत्नसे, सौजन्यसे हम प्रतिदिन अपने शरीरको पुष्ट कर रहे हैं उनके उपकारके लिए, उनकी उन्नतिके लिए कुछ न करके हम उलटे उनके अनिष्ट और ध्वंसके लिए बीज बो देते हैं।

प्यारी मातृ-भूमि, मैं इसकी साक्षी तुझीसे दिलाता हूँ कि क्या तेरी इस अधोगतिका कारण स्वयं तेरी ही संतान नहीं है? वंश-वृद्धिके पक्षपाती प्यारे देशबन्धुओसे भी मैं सविनय पूछता हूं कि क्या बहुसंख्यक, क्षीण, दीन, निस्तेज, रुग्ण, और जीवनशक्तिविहीन सन्तान उत्पन्न करना ही प्रजावृद्धिका मूल उद्देश्य है?

जीवात्मा नित्य हो या अनित्य, इस विचारका यहा प्रयोजन नहीं, पर इतना तो प्रत्यक्ष है कि क्रमविकाशपथसे मनुष्य क्रमशः हीनतर अवस्थासे उन्नततर अवस्थाको प्राप्त होता है। क्रमविकाश डारविन साहबका अविष्कार नहीं है। हमारे देशमें यह पूर्वकालसे माना जाता है। आप क्रमविकाश स्वीकार करें या न करें, पर मनुष्यके वंशानुक्रमकी उन्नति तो आपको माननी ही पड़ेगी। प्रजावृद्धिके साथ साथ मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक वृद्धि दिनोंदिन होती रहनी चाहिए। यदि प्रजा-वृद्धिसे हम पारिवारिक और सामाजिक अवस्थाका परिवर्तन उन्नतिकी ओर कर सके तो प्रजावृद्धि सार्थक है, अन्यथा यह कार्य कामचिन्ताका पक्षपात है। इस बुरे दुर्व्यसनको छोड़नेका साधन है इन्द्रियदमन, इन्द्रिय-निरोध या ब्रह्मचर्य्य।

भारतवर्षीय या पाश्चात्य शरीर-तत्त्ववित पण्डित एक स्वरसे स्वीकार करते हैं कि रक्तका अंतिम सारभाग शुक्रमें परिणत होता है और दूधमें मक्खनकी नाईं रक्तके प्रत्येक भागमें वर्तमान रहता है। दूधको मथकर सारभूत मक्खन निकाल लेनेसे जैसे दूध निकम्मा होजाता है वैसे ही शुक्रके निकलनेसे रक्त भी निकम्मा हो जाता है। जितना ही शुक्र निकलता है उतना ही रक्तका निक-

र्मापन बढ़ता है। जो लोग रक्त अथवा शरीरके इस परमोत्कृष्ट अंशकी रक्षा करते हैं उनकी प्रत्येक शक्ति विशेष रूपसे बढ़ती है।

सुप्रसिद्ध डाक्टर निकल्सका मत है कि "शुक्र शरीरका राजा है। जिन स्त्रीपुरुषोंका जीवन पवित्र और सयत होता है उनके शरीरमें यह पदार्थ व्याप्त होकर उन्हें अधिकाधिक साहसी, उद्यमशील, दीर्घायु और आनन्दकी मूर्ति बनाता है और इसका व्यय उनको दुर्ब्बल और अस्थिर-चित्त बनाता है। इससे उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका ह्रास होता है, शरीर-यन्त्रकी क्रिया विनष्ट होती है और इसका अंतिम परिणाम है मृत्यु।"

भारतवर्षमें विद्यारम्भ-संस्कारके समय बालकोंको ब्रह्मचर्यकी महिमाका सदुपदेश दिया जाता था *। आचार्य, शिष्योको प्रतिदिन ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन

---

* तू आजसे ब्रह्मचारी है। नित्य सन्ध्योपासन कर। भोजनसे पूर्व शुद्ध जलका आचमन किया कर। दुष्ट कर्मोंको छोड़ धर्म किया कर। दिनमें शयन कभी मत कर। आचार्य्यके अधीन रहकर नित्य सागोपाग वेद (आजकल समयके अनुसार जो शिक्षा प्रचलित हो और जो विद्यार्थी पढता हो वही विद्या वेदके स्थानपर जानना।—लेखक।) पढ़नेमें पुरुषार्थ किया कर। एक एक वेद सागोपाग पढनेके लिए बारह बारह वर्ष, इस तरह कुल ४८ वर्ष चाहिए। जब तक तू पूरे तौरसे वेदोंको पढ न ले अखण्ड ब्रह्मचारी रह। आचार्यके अधीन धर्माचरणमें रहा कर, किन्तु यदि आचार्य अधर्म करनेका उपदेश करे तो उसे कभी न कर। क्रोध और मिथ्याभाषण मत कर। आठ प्रकारके मैथुन (जो आगे बतलाये हैं— ले०।) न करना। भूमिमें शयन करना, पलग पर न सोना (किन्तु ऐसा नहीं है कि पलंग पर सोनेवाला ब्रह्मचारी बन ही न सके। कडी भूमि पर या शय्या पर सोनेसे कामकी ओर प्रवृत्ति कम होती है—ले०।) गाना, बजाना, नृत्य, गन्ध और अजन, (गाना-बजाना बुरी सोहबतमे बुरा है, वास्तवमे यह एक सुन्दर और आवश्यक विद्या है—ले०) अति स्नान, अति भोजन, अति निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक और कुविचार मत ग्रहण कर। रात्रिमे चौथे प्रहरमे जाग। नित्यक्रिया स्नानादिसे निवृत्त हो ईशप्रार्थना और उपासनाका आचरण नित्य किया कर। मास, रूखा शुष्क अन्न, मद्य मत खा पी। तेल मत मल। अतिखट्टा, तीखा, कसैला, क्षार और रेचक द्रव्योंका सेवन मत कर। नित्य युक्तिसे आहार-विहार करके सुशील, थोड़ा बोलनेवाला सभामे बैठने योग्य गुण ग्रहण कर। —दयानंद सरस्वती।

करना सिखाते थे। उनको इस पुनीत मार्गसे विचलित नहीं होने देते थे और प्रत्येक बालक अखण्ड ब्रह्मचर्य्यव्रत—जो पुरुषोंके लिए ४८ वर्ष तक और स्त्रियोंके लिए २४ वर्ष पर्यंत नियत था*—पालन करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे। वेदोंमे, श्रुतियोंमे हम ब्रह्मचर्य्यकी महिमा नित्य ही पढ़ते थे, पर दुर्भाग्यसे समयने ऐसा पलटा खाया कि जिस एकके साधनसे हम लोगोंका सब साधित होता था उस ब्रह्मचर्य्य-साधनका विधान ही लुप्त हो गया।

हम लोगोंको स्वास्थ्य-रक्षाके लिए कभी कभी विद्यालयमे और कभी कभी घरमें उपदेश मिलता है, उत्तम पुष्टिकर खाद्यानिर्वाचनकी वैज्ञानिक प्रणाली बताई जाती है, अज्ञान दूर करने तथा मानसिक शक्तियोंके विकासके लिए अनेकानेक विद्याओंका अभ्यास कराया जाता है, पर हाय! ब्रह्मचर्य अथवा शुक्रधारण करना किस पक्षीका नाम है यह हमें कभी नहीं बताया जाता। माताजी स्त्री ठहरीं, भला वे इस लज्जास्पद विषयका भाषण कैसे करें! पिताजी भी बालकके सम्मुख ऐसी बातें करते लजित होते है। वे समझते है कि ऐसी बातोंसे बालक निर्लज्ज हो जायगा, और कदाचित् इस अश्लीलताके ज्ञानसे यह बुराई सीख जायगा, अतः इस विषयमें उसे अन्धकारहीमें रखना ठीक है। अँगरेजी विद्यालयोंने इस विषयको सभ्य न समझकर पाठ्य पुस्तकोंसे निर्वासित कर दिया है, अब रहे बड़े भाई, बहिन और मास्टरसाहब, सो उन पर भी माता और पिताजीका ही रंग चढ़ा है। वे ऐसे शब्द उच्चारण करना अनुचित समझते हैं,—चलिए किस्सा खतम! अब इस विषयकी झाँकी हमें किसी मूर्ख, अनुभवहीन और कदाचित दुष्ट सहपाठीसे मिलेगी।

आजकल स्कूल और कालेजोकी जो व्यवस्था है उसे न तो कलम लिख सकती है और न कोई प्रेस छापनेका साहस ही कर सकता है। रोमके साक्षात् राक्षस 'निरो' × का भी चरित्र आजकलके कतिपय उच्च-शिक्षा-लाभ करने-

---

* संस्कारविधि, पृष्ठ ९९।

× "निरोका जन्म बहुत ही दुर्गुणी माता-पितासे हुआ था। दुर्गुण इसे जन्मसे ही विरासतमे प्राप्त हुए थे। संसारमें इससे अधिक अधम विषयी नर नहीं पाये गये। माता और भगिनी तकसे अपनी वासना तृप्त करनेमें इसने संकोच नहीं किया था। हत्या आदि करके अपनी वासना पूरी करना तो इसके लिए बाये हाथका खेल था।"—*Hi[illegible] of Rome [illegible]*

वाले विद्यार्थियोंके नीचातिनीच कृत्योंके सम्मुख दब जायगा। जो स्कूलों और कालेजोंमे पढ़े हैं और प्रेम और हवसकी हवा मित्रमण्डलीमे खा चुके हैं, वे ही आजकलकी इस गिरी हुई अवस्थाका अनुभव कर सकते हैं।

इसमें हमारे युवकोंका अधिक दोष नहीं। उनके क्षीण शरीर, दुर्बल अंग, शिथिल मुखमण्डल, लक्ष्यहीन दृष्टि, कम्पित वाणी, उदास मन और करुणाहीन हृदयके उत्तरदाता उनके माता, पिता, और शिक्षक ही हैं। यह इस विषयकी अज्ञानताका विषमय फल है कि जो इस अभागे भारतमें २५ वर्षकी वृद्धा स्त्रियोंकी, और ३० वर्षके शिथिल, अशक्त और पौरुषहीन पुरुषोंकी कमी नहीं है।

नदीमें बहते हुए, वृक्षोंसे गिरते हुए, अग्निसे जलते हुए, और गिरते हुए घरोंके नीचे दबते हुए स्त्री-पुरुषोंको बचानेके लिए लोग अपनी जानको भी जोखिममें डाल कर उनकी सहायतामें कटिबद्ध हो जाते हैं। आप अपने बालकोंको कुत्ता, सर्प, व्याघ्र, आदि हिंसक जानवरोंसे बचानेकी बहुत ही चिन्ता करते हैं। तरह तरहकी भयानक व्याधियों, चोरों और डाकुओंसे बचानेके लिए भी आप कोई यत्न उठा नहीं रखते, किन्तु बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है कि इन सबसे अत्यन्त भयंकर व्याधि पर—जो मूल ही नष्ट कर देती है—उस हत्यारे डाकू पर—जो आपके युवक और युवतियोंका जीवन-सर्वस्व लूटे जा रहा है—आप नजर भी नहीं डालते-उसके दमनका कोई भी यत्न नहीं करते। आपकी सन्तान और उसके संसर्गसे सारा समाज इस दुर्व्यसनसे विनाशके प्रबल श्रोतमें बहा जा रहा है-अधःपतनके गहरे गढ़ेमें गिरता जा रहा है, किन्तु आप इसके लिए कोई उद्योग नही करते। खास कर आपके दुष्कार्य्यों और असावधानियोंसे आपकी सन्तान और भी अधिक दुर्दशाग्रस्त हो रही है। यदि आप उसके उद्धारके लिए जी जानसे कोशिश न करेंगे, तो इसका प्रायश्चित्त आपहीके देशको भोगना होगा।

इस समय अखण्ड बालब्रह्मचारी भीष्म पितामहकी सन्तानको ब्रह्मचर्य्य पालन करनेमें ही हानि सूझने लगी है। कितने ही पढ़े-लिखे कहलानेवाले लोगोंको मैंने यह कहते सुना है कि शुक्र रोकनेसे रुकता नहीं। शुक्रको शरीरसे न निकलने देनेसे वह स्वप्नदोषादिकके द्वारा निर्गत होजाता है और जैसे शुक्रके अधिक अपव्यय करनेसे प्रमेह आदि रोग उत्पन्न होते हैं वैसे ही उसको एकदम रोकनेसे भी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

ऐसा कहनेवालोंकी यह धारणा होती है कि शुक्र शरीरके किसी निर्दिष्ट स्थानमें संचित रहता है और क्रमशः अधिक संचय हो जानेसे वर्षाकालमे पूर्णोदर सरोवरके समान तट भेदकर उसके प्रवाहित होजानेकी सम्भावना रहती है। पर हम पहले देख आये हैं कि शुक्र तिलमें तेलकी भांति रक्तके प्रत्येक कणमें वर्त्तमान रहता है। दूधको मथनेसे जैसे नवनीतकी उत्पत्ति होती है वैसे ही काम-चिन्ताके द्वारा रक्तका किसी विशेष रूपसे आलोड़न होनेसे वीर्य्य अण्डकोषमें सचित होता है और रतिक्रियादिके द्वारा हमारी जीवनी शक्तिके साथ निर्गत होता है।

स्वप्नकी प्रवृत्ति दैवात् नहीं होती। अर्ध निद्रा या तन्द्रावस्थामे हम लोगोंकी चिन्ता स्वप्नमे परिणत होती है। स्वप्न स्वाधीन नहीं है। यह चिन्ताके और किसी कारणसे निद्रा ठीक तरह पर न आनेके अधीन है। भोजनके न पचनेसे, कब्ज रहनेसे और चिन्तामें निमग्न रहनेसे ही स्वप्न आते हैं। स्वस्थ मनुष्योंको स्वप्न नहीं आते *। स्वप्न रोगका लक्षण है। चिन्ता भी स्वाधीन नहीं कही जा सकती। जिसका जीवन जिस प्रणालीसे प्रचलित होता है उसकी चिन्ता भी उसीके अनुकूल होती है। जो सतर्क भावसे कभी कुपथकी सेवा नहीं करता, स्वप्नमें भी उसकी चिन्ता कुपथ-परिचालित नहीं होती। जिसने अपने मनको अपवित्र विचारोंसे दूषित नहीं किया है और जिसका शरीर रोगग्रस्त नहीं है उसको स्वप्नदोषकी आशंका नहीं।

परमहंस रामकृष्णने सकाम भावसे धन और स्त्रीका कभी स्पर्श नहीं किया था। आपको कभी स्वप्नमे भी कुचिन्ता उत्पन्न हो यह तो हो ही नहीं सकता था, पर कहते है कि यदि गाढ निद्रावस्थामे भी कोई उनके शरीरसे रुपया या स्त्रीका स्पर्श कराने जाता था तो उनका शरीर उस पदार्थसे संकुचित होकर धनुषाकार हो जाता था।

शुक्र जब प्रत्येक अवयवमें रक्तके साथ वर्त्तमान है और बिना काम-चिन्ताके उससे पृथक् नहीं हो सकता, तब उसका आपसे आप निकल जाना असम्भव

---

* अमेरिकाके ग्रामोफोन आदि यन्त्रोंके सुप्रसिद्ध आविष्कारक टामस एडिसन नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करने और अपनी शारीरिक दशा अच्छी रखनेके कारण कभी स्वप्न नहीं देखते। उनकी आयु ७० वर्षकी हो चुकी है।

है। यह जान लेना चाहिए कि शारीरिक बलसे शुक्र-रोध करनेकी चेष्टाको ब्रह्म-चर्य्य नहीं कहते। ब्रह्मचर्य्य मानसिक व्यापार है, जिसके बिना शारीरिक कार्य्य हो ही नहीं सकता। कदाचित् वह मनुष्य ब्रह्मचारी कहा भी जा सकता है जो मनको वशीभूत और अनासक्त रखकर शरीरके द्वारा कभी सांसारिक कार्य्य कर लेता हो, किन्तु जिसका मन वशमें नहीं वह शरीरसे इन्द्रिय-निरोध करते हुए भी व्यभिचारी है। अपवित्र चिन्तामें निमग्न रहने-वाले ऐसे ही ब्रह्मचारियोंको स्वप्न-दोष अथवा प्रमेहादि रोग हो जाते हैं।

गीतामें लिखा है कि जो लोग व्रतनियमके द्वारा इन्द्रियोंकी शक्तिका ह्रास करके उनको बलपूर्वक अपने विषयोंसे प्रतिनिवृत्त करनेकी चेष्टा करते हैं वे किसी प्रकार इसमें समर्थ तो हो जाते हैं, किन्तु उनकी मानसिक विष-यासक्ति नहीं जाती। इस प्रकार यदि कोई बाह्यदृष्टिसे विषयसे पृथक् रहकर मन-ही-मन उसमें लगा रहे तो वह मिथ्याचारी कहाता है। इन्द्रिय-निरोध चित्तवृत्ति-निरोधसे ही हो सकता है। अन्यथा मानसिक विकारसे विकृत हुआ वीर्य्य रक्तसे पृथक् होकर कोषमें एकत्रित होता है, और शारीरिक चेष्टासे बाहर न किये जानेके कारण स्वयं बाहर निकलनेकी चेष्टा करता है, और स्वप्नदोष, शुक्रमेहादि रोगोंके द्वारा बाहर निकलने लगता है। रक्तसे पृथक् होकर अण्डकोशमें आजानेके पश्चात् वीर्य्य पुनः रक्तमें नहीं लौटाया जा सकता।

ब्रह्मचर्य्य केवल शारीरिक यत्न, मानसिक अध्यवसाय, नैतिक न्याय-परता पर प्रतिष्ठित नहीं है, यह तीनोंके समवायसे निष्पन्न होता है। हमारे शास्त्रकारोंने बहुत ही उत्तम रीतिसे इसका स्वरूप बतलाया हैः—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥

स्मरण, कीर्त्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, सकल्प, अध्यवसाय और क्रिया-निर्वृति ये आठ प्रकारके मथुन हैं। इन सबोसे निवृत्त होना ब्रह्मचर्य है।

१ स्मरण। विषयकी पुन.पुनः चिंता करना, पूर्वकृत दुष्कार्य्यको फिर फिर याद करना, प्रेमपात्र पर आसक्त हो उसके दर्शन, चुम्बन, आलिङ्गन या उपभोगके लिए व्यस्त रहना, या इसी प्रकारकी विषय-चिन्तामें निमग्न रहना

एक प्रकारका मैथुन है। इससे रक्तसे वीर्य्य पृथक् होनेमे सहायता मिलती है और ऐसी चिन्ता करते करते स्त्री-पुरुष अन्तको विषयवासनामें फँस जाते है।

पुनः पुनः काम-विषयिणी चिन्ता या पूर्वानुष्ठित दुष्कार्योंका स्मरण अधःपतनका प्रथम सोपान है, और ऐसी कठोर श्रृंखला है कि इसमें एकवार बँध जानेसे फिर छूटना अत्यन्त कठिन हो जाता है। हम प्रतिदिन ऐसे कितने ही मनुष्योको देखते हैं जो मनुष्य नामसे परिचित होने योग्य नहीं हैं। नीति, रीति, शिष्टाचार, सद्व्यवहार, लज्जा, समाजका भय आदि सभी उत्तम कार्योंका करना उनके लिए असम्भव व्यापार है। वे जानते हैं कि उनका व्यवहार उनका आचरण, उनका काम सज्जनतासे परे है; पर मनकी गति ऐसी कठिन है कि एक वार किसी बुरे विषयमें आसक्त होजानेसे उसकी निवृत्ति दुर्लभ हो जाती है। इससे ये मनुष्य छुटकारा न पाकर दिनोदिन और भी गिरते जाते हैं।

कुचिन्ता उत्पन्न होते ही उसको रोकनेका प्रयत्न करना चाहिए। यदि यह कुछ कालके लिए मनमें रह जायगी, यदि दश पाँच वार ऐसी चिन्ताको उपस्थित होनेका अवसर दिया जायगा, तो यह पत्थरकी लकीरकी तरह मास्तिष्कमें अपना स्थान बना लेगी और स्थायी रूपसे वास करने लगेगी। किन्तु यदि प्रथम ही आक्रमणमें यह रोक कर कुचल दी जायगी तो इसका वेग जहाँका तहाँ रह जायगा। आरम्भमें कुचिन्तारूपी शत्रु पर विजय पाना उतना ही सहज है जितना उसके अभ्यास हो जाने पर उसे दूर करना कठिन होता है।

प्रकृतिका यह एक नियम है कि संसारका कोई स्थान किसी समय खाली नहीं रहता। एक वस्तु हटानेसे दूसरी वस्तु वहाँ तुरन्त ही आ उपस्थित होती है। किसी कुचिन्ताको हटानेके लिए यह परमावश्यक है कि कोई दूसरी सच्चिन्ता उसका स्थान रोक ले। अन्यथा मास्तिष्क विचारोंसे खाली न रहेगा, लाख उद्योग करनेपर भी, यदि सद्विचार कुविचारके स्थानपर आरूढ़ न किया जायगा तो कुविचार कदापि न हटाया जा सकेगा। वह बारबार आक्रमण करेगा और किले पर दखल जमा लेगा।

अँगरेजीमें एक प्रवाद है कि "शून्य मन भूतोंकी क्रीडा भूमि है।" अतः मनको सर्वदा सच्चिन्तामें निमग्न नहीं रखनेसे उसमें आप-ही-आप किसी कुचिन्ताका आविर्भाव हो जाता है। यदि बैठे बैठे एकाएक किसी कुचिन्ताका आवि-

भाव हो और यदि उसका प्रथम वेग सँभालना कठिन जान पड़े तो तत्काल ही अपने आसनसे उठ पड़ना चाहिए और दमभरके लिए दौड़ आना चाहिए। मन जब तक दृढ़ न हो तब तक निर्ज्जनवास करना उचित नहीं। उस समयके निर्ज्जनवाससे तरह तरहकी कुचिन्ताओंके आनेकी संभावना है। अतएव ऐसी अवस्थामें बहुतसे लोगोंसे घिरे हुए रहना चाहिए। सत्संग इस समय बहुत ही पथ्यकर होगा।

ईश्वरका श्रद्धा और भक्तिपूर्वक स्तवन करनेसे, सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करनेसे, जिससे प्रीति, भक्ति या भीति हो उसके स्मरण या नामोच्चारसे कुचिन्तायें दूर हो जाती हैं। यदि कभी कोई ऐसी दुर्घटना हुई हो जिससे कुचिन्ताके द्वारा कुछ विशेष अनिष्ट या अप्रिय संघटित हुआ हो, या भविष्यत्में होनेका डर हो, तो स्मरणार्थ उसका संकेत एक कागज पर लिखकर ऐसे स्थान पर रख देना चाहिए जहाँसे वह सर्व्वदा दृष्टिगोचर होता रहे।

श्रुति कहती है—"मन अन्नमय है।" उपनिषदमें एक सुन्दर आख्यायिका है जिसका सार भाग यह है कि महर्षि उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतुको उपदेश किया कि मन अन्नमय है। श्वेतकेतुको अन्न और मनसे कोई लगाव नहीं जान पड़ा। इससे उन्होंने इस पर शंका की। तब महर्षिने पुत्रको १५ दिन आहार नहीं करनेको कहा। श्वेतकेतु उनकी आज्ञा पालन करके १६ वें दिन पिताके पास उपस्थित हुए। पिताने आदेश किया कि तुझे ऋक्, यजु और साम कंठस्थ हैं। इस समय उनका पाठ तो कर जाओ। श्वेतकेतुने कहा—इस समय तो मुझे वह कुछ भी स्मरण नहीं है। फिर पिताकी आज्ञानुसार भोजन करनेसे उनकी स्मृति पूर्ववत् जाग उठी।

एक देशी कहावत है कि "जैसा खावै अन्न वैसा होवै मन।" इसी प्रकार एक पश्चिमीय विद्वान्का कथन है कि, "A man is what he eats" अर्थात् मनुष्य जो पदार्थ खाता है उसी पदार्थके गुणसे उसका शरीर बनता है। शरीर खाद्य वस्तुका परिणाम मात्र है और शरीरसे मनका विशेष सम्बन्ध है। आहारके दूषित होनेसे मनकी वृत्ति भी बिगड़ने लगती है। मादक वस्तुओंके खाने पीनेमें बुद्धि भ्रष्ट होती है, जिससे कुचिन्ता उत्पन्न होनेका भय रहता है। पुष्टिकर और अपने शरीरकी आवश्यकतानुसार गुणकारी * पदार्थ खाने चाहिए।

---

* हिन्दू शास्त्रकारोंने आहारको उसके गुणोंके अनुसार तीन हिस्सोंमें बाँट दिया है—सात्विक, राजसिक और तामसिक। सात्विक आहारसे शान्ति अधिक

सारांश यह कि पूर्ण रूपसे पवित्र रहना चाहिए। कहते हैं कि "Cleanliness is next to godliness"—पवित्रता देवताका गुण है। पवित्र आहार, पवित्र विहार, पवित्र आचरण रखनेसे, और सर्वदा पवित्र भावोंकी आलोचना करते रहनेसे मनका संस्कार ऐसा दृढ हो जाता है कि कुचिन्ता पास भी नहीं फटकने पाती।

२ कीर्तन। मनके भीतर कुचिन्ताका पूर्ण रूपसे अधिकार होने पर वाक्यके द्वारा उसका प्रकाश होता है। कुवाक्य कुचिन्ताकी और कुचिन्ता कुवाक्यकी सहायता करती है। अन्तमें ये दोनों बातें एक दूसरेकी सहायतासे वर्द्धित होकर कार्य्यके द्वारा प्रकाशित होने लगती हैं। यह भी रक्तसे वीर्य्यके पृथक् होनेमें एक कारण है, इससे यह भी एक प्रकारका मैथुन या मैथुनका अंग माना जाता है।

जब किसीका मन या हृदय कुभावसे पूर्ण हो जाता है तब वह पहले तो बहुत सावधानीसे अपने चुने हुए मित्रनामधारी शत्रुओके निकट उसका कीर्तन करता है, उसके बाद स्वभाव बँध जानेसे और क्रमशः अधिकतर साहस प्राप्त होनेसे जहाँ तहाँ केवल कुकार्य्यहीकी आलोचना करने लगता है। औरोंसे भी इसी प्रकारके प्रसङ्ग सुननेकी प्रबल इच्छा रखता है और विना बुलाये भी जहां ऐसा प्रसंग होता है वहाँ प्रतिदिन उपस्थित होने लगता है। क्रमशः अश्लील वाक्योका प्रयोग करने लगता है और फिर पराई स्त्रियोको देख कर उनके प्रति अवाच्य शब्दोका प्रयोग करने लगता है। कितने ही लोगोंकी

बढती है और राजसिक और तामसिक आहारोंसे सासारिक कार्योंकी ओर प्रवृत्ति होती है। किन्तु ऐसा नहीं है कि एक मात्र सात्त्विक आहारवाला ही ब्रह्मचारी बन सके। राजसिक और तामसिक आहार करनेवाले भी ब्रह्मचारी अवश्य बन सकते हैं। मासखानेवालेका शुक्र फलाहार करनेवालेसे अधिक उत्तेजित होगा, उसका मन भी अधिक चंचल होनेकी सम्भावना है, किन्तु यह बात नहीं है कि मास खानेसे शुक्र धारण न किया जा सके। अडा, कछुआ, मछली, मास, सरसो, पियाज, लहसुन, मिर्च, अति लवण, अति मिष्ट, अधिक मसाला उड़द, मसूर आदि रजोगुणवर्धक पदार्थ हैं। सैंधा नमक, थोड़ा मीठा, ताजा फल, गोदुग्ध, घृत, चावल, जौ, गेंहूँ, मूँग, चना आदि सतोगुणवर्धक पदार्थ हैं। मास, मदिरा, पियाज आदि तमोगुणवर्धक पदार्थ हैं।

अवस्था तो यहाँ तक गिर जाती है कि वे मेले-तमाशोंमें, तीर्थ-यात्राओंमें, देवस्थानोंमें केवल राह चलती सुन्दरियोंको बुरी नजरसे देखने और उनके आगे अश्लील शब्दोंका उच्चारण करनेके लिए ही भ्रमण किया करते हैं और फिर आपसमें बैठकर उसी विषय पर अपनी अपनी कार्यकुशलता तथा सफलताकी आलोचना प्रत्यालोचना किया करते हैं। यह मानसिक रोग (mental leprosy) स्त्री पुरुषोंके हृदयोंमें बहुतकाल तक छिपा नहीं रह सकता, कुछ दिनोंके बाद यह अवश्य ही प्रकट हो जाता है। पहले तो यह गलित कुष्ठरोगकी तरह मन तथा वाणीको भ्रष्ट करता है और फिर कार्यरूपमें परिणत होकर शरीरमें भी किसी न किसी प्रकारका कोढ़ पैदा कर देता है जो किसी तरह छिपाया नहीं जा सकता। ऐसोंकी दशा दिनोंदिन बिगड़ती ही जाती है—

यथा हि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते।
एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति ॥*

मुखसे एकाएक कुवाक्य नहीं निकलता, एक कुवाक्य ही क्या, संसारका छोटा या बड़ा कोई भी कार्य हठात् नहीं होता। आपसे आपका होना प्रकृतिके नियममें नहीं है। जो कुछ भी हम करते हैं, जो एकाएक बिना पूर्वविचारके भी हमसे हो जाता है उसकी तैयारी भी किसी न किसी अंशमें किसी न किसी रूपमें पहलेसे की हुई रहती है। इत्तफाक (Chance), हठात्, आपसे आप आदि शब्द भ्रमजनक हैं। यदि हम पक्षपातरहित होकर अपने कर्मोंको खूब टटोल कर देखें, तो पता चलेगा कि प्रत्येक कार्यका कारण हमारे मस्तिष्कमें व्यापमान है। वह किसी न किसी रूप या अंशमें हमारे विचारमें अवश्य आचुका है। इस दुर्व्यसनसे निवृत्ति पानेका सबसे पहला साधन तो यह है कि मनके विचारको, चिन्ताको शुद्ध करके पवित्र रखना, और दूसरे साधन मामूली हैं। जहाँ कुवाक्य कहे जानेकी सम्भावना हो वहाँ न जाना, कुवाक्य या कुप्रसंगके उठते ही उसे रोक देना, उस स्थानसे भाग जाना, उन मित्र-शत्रुओंको त्याग देना, पवित्र शास्त्रोंका अवलोकन करना, जितेन्द्रिय पुरुषोंका सहवास करना, सर्वदा और सबके निकट सत्य-भाषणका अभ्यास करना,

---

* अर्थात्—जैसे मैले कपडोंवाला मनुष्य बिना विचारके गन्दी जगहोंमें जहाँ तहाँ बैठ जाया करता है, वैसे ही सदाचारसे भी गिरा हुआ मनुष्य अपने बचे हुए सदाचारकी रक्षा नहीं कर सकता।

अपनी दिनचर्य्या लिखना, रात्रिमें सोते समय उस पर विचार करके पश्चात्ताप करना और जिन जिन कारणोंसे दुष्कार्य हुआ है उनको न करनेकी दृढ प्रतिज्ञा करना और दुष्कार्यकी निवृत्तिकी इच्छासे ईशविनय करना। जितेंद्रिय पुरुषोंमें अग्रगण्य भगवान् बुद्धदेव कहते हैं कि सत्यका प्रचार करना शातिका उत्कृष्ट उपाय है। अपनेसे थोडी बुद्धिवालोंको उपदेश करनेसे और बड़ोंके समक्ष अपने दोषोंको अलोचना करनेसे सारी पाप-प्रवृत्तियाँ निवृत्त होती हैं। एक पापका छिपाना मानों दूसरे पापका अनुष्टान करना है।

३ केलि। अर्थात् स्त्रियोंके साथ कामभावसे खेल खेलना। शरीरकी सब इन्द्रियोंमें परस्पर एक ऐसा सम्बन्ध है कि एककी उत्तेजनासे सबकी सब उत्ताजत हो उठती हैं। स्त्रियोंके साथ इन्द्रिय-रोचक क्रीडा करनेसे इन्द्रिय-वृत्ति प्रबल होती है और कामवासना बढ़ती है, जिससे शुक्रनाश होता है। अतः यह भी एक प्रकारका मैथुनका सहायक अंग है। हम पहले देख आये हैं कि मानसिक कुचिन्ता और कुप्रसंग शारीरिक चेष्टाके द्वारा प्रकट होते हैं। कुचिन्ताके द्वारा नीति बिगड़ जानेसे पुरुष सर्वदा स्त्रियोंके साथ कामोत्तेजक खेल खेलना प्रिय समझते हैं। इस प्रकार खेलते खेलते उनके हृदयका भाव अधिक मन्द पढ़ जाता है। स्त्रियोंके निकट कामभावसे बैठना, उनका संतोष साधन करना और उनके उचित अनुचित आदेश पालन करना, उनका प्रधान कार्य हो जाता है।

ऐसी अवस्थामें सबसे अच्छा उपाय यह है कि कुछ दिनोंके लिए उस स्थानको एकदम छोड़ दे, जहाँतक दूर जाते बन पडे निकल जाय और अपनी सारी शक्तिको उस तरफसे मन फेरनेमें लगाकर इस प्रसंगको त्याग दे। मनके समान शरीरको भी सर्वदा सत्कार्य अथवा आवश्यक कार्योंमें नियुक्त नहीं रखनेसे वह निष्फल या अनिष्टकर खेल आदिमें नियुक्त होता है। इसीको व्यसन कहते हैं। संयमी मनुष्य व्यसनका सर्वथा परित्याग करते हैं। नित्य नियमित रूपसे व्यायाम करके शरीरसे पसीना निकालना, सुबह शाम मैदा-नकी ओर कई मीलतक हवा खाने निकल जाना, स्त्रियोंका साथ न करना आदि इस व्यसनसे बचनेके उपाय हैं।

४ प्रेक्षण। इसका अर्थ है कामभावसे स्त्री-दर्शन करना। वृक्षोंके नवीन नवीन पत्तोंमें, सुगन्धमय फूलोंमें, स्वादिष्ट फलोंमें, ग्रह-नक्षत्रोंमें, पशु, पक्षी

और कीट- पंतगोंमें, सभीमें सुन्दरता है। सृष्टिकी सभी सुन्दर वस्तुओंमें आकर्षण शक्ति है। उनकी सुन्दरता, उनकी मधुरतासे ही उनकी ओर चित्त आकर्षित होता है। उन्हें देखकर हर्ष और प्रसन्नता होती है। इसी तरह मातामें पितामें, भ्रातामें भगिनीमें, पुत्र और पुत्रीमें भी सुन्दरता है, उन्हें भी हम स्नहपूर्वक देखकर प्रसंन्न होते हैं। हम अपने परिवारके स्त्री-पुरुषोंके श्रृंगारका भी प्रबन्ध करते हैं। अच्छे वस्त्र और आभूषण बनवाते हैं और उन्हें पहिने देखकर प्रफुल्लित होते हैं। किन्तु, पवित्र स्नेह और अपवित्र काम-प्रीतिमें बड़ा अंतर है। एकसे प्रम और भक्ति उत्पन्न होती है और दूसरीसे विषय-वासना। पापके पिण्डस्वरूप कटाक्ष पुण्यश्लोक सती स्त्रियोके पवित्र वदनमें नरककी अपवित्रताका चित्र दिखाने लगते हैं। ये कटाक्ष-राक्षस उनकी पवित्र मूर्तिमें श्मशानकी विकटता प्रतिपादन करते हुए लोगोको नरकके अपवित्र कुण्डमें निक्षेप करते हैं। इस एक पापके द्वारा कितने घर बिगड़ते है, हसका निर्णय करना कठिन है। इसके प्रभावसे बुद्धि जाती रहती है, हिताहितज्ञान शून्य हो जाता है, अपने पराये संबन्धका निर्णय नहीं हो सकता, न्यायपरता जाती रहती है, मनुष्य मनुष्यत्वसे च्युत होकर पशुके समान पात्रापात्रके ज्ञानसे शून्य हो जाता है और समस्त संसारकी स्त्रियोंको अपने उपभोगकी वस्तु समझने लग जाता है। ऊँटकी तरह गर्दन उठाकर इधर उधर देखा करता है और मानसिक व्यभिचार द्वारा अपनी चित्तवृत्तिको दूपित और अपवित्र किया करता है।

इससे बचनेका उपाय विलास-सामग्रीका त्याग, और अंतःकरणकी शुद्धि और प्राकृतिक सौन्दर्यकी ओर अपनी रुचि बढ़ाना है। विलास और आराममें बड़ा अन्तर है। स्नान करना और, स्वच्छ वस्त्र तथा आभूपण पहिनना बुरा नहीं है बल्कि जरूरी है, किन्तु विलासताके भावसे नहीं। आवश्यक्ता और आरामके भावसे प्रत्येक परिवारके आरामका भिन्न भिन्न दरजा होता है। जो चीज हमारे आराम और आसाइशके दरजेसे विलासिता है वही एक हमसे अधिक आरामसे रहनेवाले स्त्री या पुरुपके लिए परमावश्यकता है। जिस परिवारके स्त्री और पुरुप सामान्य सूती वस्त्र पहनते हैं उनके लेखें रेशमी वस्त्र पहननेवाले विलास भोगते हैं, किन्तु जिस परिवारमें रेशमकी बारीक साड़ियोंके पहननेकी आदत और रिवाज है वहाँ वह एक मात्र आवश्यकताकी पूर्ति समझी जाती है। इस ढंगके वस्त्र उस परिवारके लोगोंमें कोई विशेपता

उत्पन्न नहीं करते, वह एक नित्यकी मामूली बात समझी जाती है। यही बात आभूषण, सुगंधमय तैल आदि सभी वस्तुओंके प्रयोगमें है। आरामके लिए श्रृंगार ठीक है, किन्तु किसी भी वस्तुका विलासिताके भावसे प्रयोग करना अनुचित है। श्रृंगारका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

५ **गुह्य भाषण**। इसके दो अर्थ हैं—एक तो एकान्तमें या अकेलेमें बैठकर स्त्रियोंसे बात करना और दूसरे अपनी कामाभिसन्धिको अपने मित्र नामधारियोंके निकट प्रकाश करना। दोनों ही बातें अनिष्टकारक और निन्दनीय हैं, अतः त्याज्य हैं। लोकनिन्दाका भय इस दूषित वृत्तिको रोकनेके लिए अति उत्तम है। ऐसे कार्योंसे घृणा प्रकाश करना और वे जड़ न पकड़ने पावें, इस लिए आरम्भमें ही उनकी जड़में कुठाराघात करना उपकारी होता है।

५ **संकल्प**। किसी वर्तनमें यदि धीरे धीरे भाप एकट्ठी होती हो और उसका मुँह बन्द है, तो कुछ समयमें भापकी अधिकता होनेसे वह वर्तन फट जायगा। इसी तरह जब पूर्वोक्त पाँचों वृत्तियोंका अधिक संचय हो जाता है, तब वह संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिवृत्तिके आकारमें प्रगट होता है। किसी भी दुष्कार्यके लिए मनमें सकल्प दृढ होजानेसे फिर उससे बचना बहुत ही कठिन है।

सकल्प पूर्ण होना या निष्फल होना ये दोनों ही सर्वनाशके कारण हैं। यदि दुष्प्रवृत्तिका संकल्प पूरा हो, तो यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य शीघ्र ही सर्वनाशके पथ पर अग्रसर होता है और यदि संकल्प निष्फल हो तो उससे क्रोध उत्पन्न होता है जिससे बुद्धि भ्रष्ट होती है और बुद्धि भ्रष्ट होनेसे जो अन्याय अत्याचार या पाप न हो जाय वही थोड़ा है। अतएव, पूर्ण प्रयत्नसे इसको पूर्वहीसे रोकने और परित्याग करनेकी चेष्टा करना उचित है।

कहा जाता है कि कामसे कामका, तापसे तापका, और शीतसे शीतका दमन होता है—Like kills like. अत. संकल्पसे ही संकल्प-रोधकी नीति अति प्रशंसनीय है। पहलेहीसे यह संकल्प कर लेना चाहिए कि हम अपनेको दुष्प्रवृत्तिके वशीभूत कदापि नहीं होने देंगे, अथवा नीच संकल्प हो जाने पर भी यह संकल्प कर लेना चाहिए कि हम अपने तन और मनको हर समय किसी हितकर कार्यमें लगाये रहेंगे। ऐसा करनेसे फिर उस नीच

संकल्पको प्रकट होनेका अवसर ही नहीं मिलता और वह क्रमशः नष्ट हो जाता है। भीष्मपितामह जैसे महान् पुरुषोंकी प्रतिज्ञाको सुवर्णाक्षरोंसे लिखकर उसको ऐसे स्थान पर रखना जहां उस पर सर्वदा दृष्टि पड़ा करे, विशेष फलप्रद है।

७ **अध्यवसाय**। मन और शरीर दोनो हाथ मिलाकर चलते हैं। मनमें काम-संकल्प दृढ़ होनेसे मनुष्य अध्यवसाय अर्थात् चेष्टाके द्वारा उसको पूर्ण करनेमें तत्पर होते हैं। इस अवस्थामें लोग कामान्ध हो जाते हैं। उनके ज्ञान, शील, लज्जा आदि सभी गुण लोप हो जाते हैं। केवल अपनी दुष्प्रवृत्तिके लक्ष्यको जलते हुए प्रदीपके समान प्रत्यक्ष समझकर वें उस पर पतंगकी भांति जा गिरते हैं और प्राण विनष्ट करनेके लिए तत्पर हो जाते हैं।

अध्यवसाय, अध्यवसायसे ही नष्ट हो सकता है। यदि मनुष्यका हृदय या मन सर्वदा सत्कार्य्यके लिए अध्यवसाय करता रहेगा, तो उसे दुष्कार्य्यके लिए समय नहीं मिलेगा। अपनेको समझाना चाहिए और उस कुचेष्टाके स्थान पर देशकी भलाईकी चेष्टा, किसी उत्तम कार्यकी चेष्टा, अथवा अपनी ही किसी उत्तम स्वार्थसिद्धिकी (पठन, द्रव्योपार्जन आदिकी) चेष्टा करनी चाहिए।

८ **क्रियानिवृत्ति**। पूर्वोक्त सातों अगोंसे या किसी एक अंगसे उत्तेजित होकर प्राकृतिक या अप्राकृतिक किसी रीतिसे शुक्रक्षय करनेको क्रियानिवृत्ति कहते हैं। चाहे जिस रीतिसे और चाहे जिस समयमें शरीरसे शुक्र निकाला जाय उससे हानि अवश्य होती है। कुसमयमें, अप्राकृतिक रीतिसे अथवा अधिक अंशमे शुक्र वाहर जानेसे अधिक हानि होती है और वीर्य्यके पक जानेके पश्चात पूर्ण युवावस्थामें सन्तानोत्पत्ति क्रियामें वीर्य्य निकलनेसे कम हानि (जो नहींके बराबर है) होती है। * जो लोग जितने ही पवित्रभा-

---

* डाक्टर केपेल्मन (Capillmann) का मत है कि स्त्रियोंके रजोदर्शनके प्रारभके २ दिन और रजस्राव वन्द होनेके पीछेके १४ दिन छोड़कर वाक़ी दिनोमे रतिसेवनसे गर्भाधान नहीं होता, अत यह भी सन्तानवृद्धि-निरोध है। डाक्टर सारानोस और विक्टर हेंसेन (Saranos & Victor Hensen) ने एक नक़शा तैयार किया है जिसमे उन्होंने दिखलाया है कि रजस्राव वन्द होनेके

वसे ब्रह्मचर्य्यका पालन करते हैं उनका हृदय उतना ही प्रफुल्लित और मस्तिष्क उतना ही सबल और स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा आदि गुणोंसे युक्त होता है। अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेवाले महापुरुषोंका मुकावला कोई नहीं कर सकता। जिसने जीवनमें केवल एक बार भी शुक्रक्षय किया हो उसका और अखण्ड ब्रह्मचारीका मुकाबला होने पर दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर पाया जायगा।

साथ ही यह भी बता देना आवश्यक है कि ब्रह्मचर्यव्रत किसी भी आयु या अवस्थासे पालन किया जा सकता है। यह बात नहीं है कि जो बाल्यावस्थासे ब्रह्मचर्य्य पालन करता चला आया हो, वही ब्रह्मचारी बन सकता है और शुक्र धारण कर सकता है। ऐसा भ्रमजनक विचार फैला है कि जिसने कभी एक बार भी शुक्रक्षय किया है वह ब्रह्मचर्य्य पालन नहीं कर सकता—वह शुक्र धारण कर ही सकता, क्यों कि यदि एकबार शरीरसे शुक्र निकल जाता है तो उसके निकालनेका मार्ग खुल जाता है और वह फिर बन्द नहीं किया जा सकता। परन्तु यह बात बिलकुल गलत है।

शुक्रका शरीरमें रहना प्राकृतिक है, उसका बाहर निकलना ही अप्राकृतिक है। पूर्वोक्त प्रकारके मैथुनोंमेंसे सबकी या किसी एककी सहायताके बिना शुक्र बाहर नहीं निकल सकता। शरीरमें रोग उत्पन्न हो जानेसे शुक्रक्षय होना सम्भव है। सो चाहे जितना भी शुक्र शरीरसे निकल चुका हो, पूर्वोक्त ८ प्रकारके मैथुनोसे बचनेका अभ्यास करनेसे बाल, युवा, वृद्ध, विवाहित, अविवाहित, व्यभिचारी, अप्राकृतिक मैथुन करनेवाले और बाल्यावस्थासे कुसंगमें पड़कर वीर्य्य क्षीण करनेवाले सभी स्त्री पुरुष पुनः शुक्र धारण करके अपनेको सुधार सकते हैं। सुधारके लिए यह कहना कभी ठीक नहीं हो सकता कि अब समय नहीं रहा—It is never too late to mend. हां,

---

पश्चात् पहलेसे नवें दिन तक, नवेंसे ग्यारहवें दिन तक, ग्यारहवें दिनसे तेईसवें दिन तक और तेईसवें दिनसे रजोदर्शनके एकाद दिन पूर्वतक रतिसेवनसे सैकड़ा पीछे ४८, ६२, १३, ९, १, और $\frac{1}{१६२}$ अंशोंमें गर्भस्थिति हुआ करती है। रजोदर्शनके तीन चार दिन बाद गर्भस्थितिकी अधिक सम्भावना होती है और १९ दिन बाद कम किन्तु गर्भका रह जाना हर समय सम्भव है। Facultive Sterility by Capillmann

यह भले ही न हो कि कोई व्यभिचारी पुनः ब्रह्मचर्य्य पालन करके सदैवके ब्रह्मचारीके बराबर हो जाय, किन्तु यम और नियमसे * रहनेसे उसकी अवस्था पहलेसे अच्छी अवश्य हो जायगी। शुक्रधारण जीवन और शुक्र-क्षय मृत्यु है।

साराश यह कि ब्रह्मचर्य द्वारा सन्तानवृद्धिका निरोध बड़े लाभके साथ किया जा सकता है। विवाहित पुरुष जितनी चाहिए उतनी सन्तान उत्पन्न करनेके पश्चात् किसी भी समयसे किसी भी समय तक ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य्य तोड़ा जा सकता है और पुनः पालन किया जा सकता है। ×

ब्रह्मचर्य्यकी महिमा अपार है। आज तक संसारमें जितने महान् कार्य्य हुए हैं, या जितने महापुरुष कहलाये हैं वे सब ब्रह्मचर्यव्रतके साधनसे।

ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाहरन्।

* निर्वैरता, सत्य बोलना, चोरीत्याग, वीर्यरक्षा और विषयभोगसे घृणा, ये पॉच नियम है, और शौच, सतोष, तप , स्वाध्याय, (वेदका पढना) और सर्वस्व ईश्वरार्पण ये पाँच नियम हैं।

× महाप्रतापी अर्जुन, जितेन्द्रिय लक्ष्मण और योगीश्वर जनक आदि इसके परमोत्तम उदाहरण हैं।

आठवाँ परिच्छेद ।
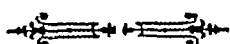
कृत्रिम निरोध ।

अर्थात्

औषध या यन्त्रोंके प्रयोगसे संतानवृद्धिमें कमी करना ।

'After the desire of food, the most powerful and general of our desire is the passion between the sexes And taken in an enlarged sense, it is almost impossible to suppress it for the whole life'

—*G. Wallace*

जठराग्निकी धधकती हुई ज्वाला या क्षुधाके बाद प्रज्वलित भीषण कामाग्निका नंबर आता है। गहरा विचार करने पर प्रकट होता है कि साधारणतः कामकी प्रबल लहरको जीवनपर्यन्तके लिए दबाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन और दुष्कर अवश्य है।—जी वालेस ।

यूरोपके आजन्म अविवाहित मांक और नन (monk and nun) भारतके युवा संन्यासी, प्रत्येक देशके अधिक (majority) अविवाहित स्त्री-पुरुष और बारकोंमें रहनेवाले पल्टनके सिपाही इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि जनसाधारणके लिए अविवाहित अवस्था अच्छी नहीं। कुमार या कुमारीपनके ऊपरी आडम्बरके भीतर पाप और दुश्चिन्तायें छिपी हुई मिलती हैं। Celibacy in general is an apt means of irreparable debasement of the pure and chaste; and it does always give way to illegitimacy.

" बारकोंका जीवन बुरा है, बारकोंका जीवन सदा बुरा' रहेगा। बहुतसे पुरुषोंका अपने घर और स्त्रियोंके प्रभावसे दूर रहना अच्छा नहीं । स्त्रियोंके

लिए भी यह अच्छा नहीं है कि वे स्त्रियोंमें ही रहें और काम करें । पुरुषों और स्त्रियोंका परस्पर प्रभाव पड़ता है। एकके कारण दूसरेको स्वाभाविक रुकावट रखनी पड़ती है, और दोनोंमें स्वास्थ्यकर उत्तेजना रहती है। बारकोंमें ऐसा ही कोई उत्तम संस्कार और दृढ संकल्पवाला मनुष्य होगा जो दुर्गुणोंसे बच सकेगा। मेरे सामने अनेक शुद्ध, स्वच्छ और उत्तम युवक सेनामें आये, पर सालभर भी न बीतने पाया कि वे कुकर्मी हो गये। मैं साधारण व्यक्ति हूँ। लेकिन कोई भी समझदार भला आदमी जो सेनामें रह चुका है तुरंत मान लेगा कि मेरा कथन सत्य है और यह बात बहुत दबाकर, बहुत रोककर कही गई है।" + सर्वसाधारण अविवाहित स्त्री-पुरुषोंके लिए भी पूर्वोक्त आलोचना अक्षरशः सत्य और सच्ची है। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि कोई पवित्र भावसे अविवाहित रह ही नहीं सकता, और खासकर भारतवर्षमें जहाँ ब्रह्मचर्यके लिए अनन्त कालसे उपदेश और आदेश मिलता चला आ रहा है और जहाँ अखण्ड बालब्रह्मचारियोंकी आदर्श जीविनियोंकी नित्य चर्चा हुआ करती है। मेरा अभिप्राय यह है कि आजन्म ब्रह्मचर्य्यव्रतपालन करना सर्वथा सम्भव और साधनीय है, किन्तु सबके लिए नहीं। सर्वसाधारण आजन्म ब्रह्मचारी कदापि नहीं रह सकते।

और न यही युक्तसगत जान पड़ता है कि विवाह करके जीवनकालमें यदि एक संतान उत्पन्न करना है तो बस एक ही बार स्त्रीप्रसंग करके सदाके लिए ब्रह्मचारी बन जाय। असम्भव यह भी नहीं है, किन्तु साथ ही सर्वसाधारणके लिए संभव भी नहीं है। प्रेक्टिकल और थियोरेटिकल अर्थात् व्यावहारिक और सैद्धान्तिक काममें आकाश और पातालका अंतर हुआ करता है। भारतकी विधवायें इस बातकी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनमेंसे कुछ देवियाँ ऐसी अवश्य हैं जो पवित्र भावसे अपना वैधव्य निभा ले जाती हैं, किन्तु बहुतेरी ऐसा नहीं कर सकतीं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पापकी भागिन बन जाती हैं। इसमें इन अनाथाओंका अधिक दोष नहीं। इन पर दोषारोपण करनेवालोंको उन पुरुषोंकी दशाका स्मरण करना चाहिए, जो स्त्रीकी मृत्युके एक ही महीने बाद विवाहमण्डपमें पुन उपस्थित हो जाते हैं। जो हो। इससे कुछ प्रयोजन नहीं। मेरी धारणा यह है कि समाजमें कुछ स्त्री-पुरुष ऐसे हैं जो भीष्म-पिता-

---

+ भारी भ्रम—Great Illusion by Norman Angel का अनुवाद।

महकी नाईं अखण्ड ब्रह्मचर्य्यव्रत नहीं पाल सकते और साथ ही एक नियमित संख्यामें संतानका पालन और पोषण कर सकते हैं। अधिक संतानोत्पत्ति उनको, तथा उनकी सन्तानको, इस तरह तीनोंको घोर आपत्तिमें डालकर उनके विनाशका कारण होती है।

ऐसा नहीं है कि वे अपनी अवस्था या भविष्यका ज्ञान न रखते हों। वे जानते हैं कि जितनी सन्तान उन्हें है उससे एक भी अधिक होनेसे वे भारी बखेड़ेमें पड़ जायंगे। पालन-पोषण आदिका उचित प्रबन्ध न कर सकनेसे सन्तान अस्वस्थ हो जायगी। अधिक परिश्रम, चिन्ता, और आराम आदि न मिलनेके कारण स्वयं उनका भी स्वास्थ्य नष्ट हो जायगा और गरीब माताकी जो चौंथ होगी उसका तो कुछ पूछना ही नही। वे इन सब बातोंको जानते हैं, तो भी कुछ कर नहीं सकते। उन्हें संतान होती ही जाती है और घोर विपत्तिका कारण बनती जाती है। बेचारी स्त्रियाँ तो मर मिटती हैं। एक निरन्तर चलनेवाली मशीनकी तरह, चाहे जो आपत्ति या विपत्ति उन पर आवे, उनके बच्चे पैदा होते जायँगे। वे जानती हैं कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया है, उनका शरीर संतानोत्पत्तिका भार सहने योग्य नहीं है, किसी किसीके लिए तो मृत्युतकका भय है, तो भी वे इसे रोकनेमें असमर्थ रहती हैं और जानती समझती हुई, दोनो आँखे खोले, असहाय होकर अकाल कालकी ग्रास बन जाती हैं। उन्हें जान-बूझकर बरबस मरना पड़ता है। कुछ परिचित लोगोंके वृत्तांतसे यह बात और साफ हो जायगी।

१—'क' एक उच्च शिक्षित धनाढ्य सज्जन हैं। उनकी युवती धर्म्मपत्नीके पेटमें भीतरकी ओर फोड़ा हो गया। कलकत्तेके एक प्रसिद्ध डाक्टरने उसका चीड़-फाड़ किया। जब फोड़ा अच्छा हो गया तब डाक्टरने स्त्री-पुरुष दोनोंको सचेत कर दिया कि गर्भधारण होनेसे पेटके अन्दरके टाँके टूट जायंगे और तब स्त्रीका प्राण न बच सकेगा। पति-पत्नीमें गाढ़ा प्रेम था। कई वर्षोंतक वे एक दूसरेसे अलग रहे, किन्तु किसी अवसरपर कामदेवके बाणोंसे बेधित हो भूत और भविष्यको भूल सा गये। स्त्री गर्भवती हुई और कुछ कालके अनन्तर उसी पेटकी व्याधिसे मृत्युको प्राप्त हो गई।

२—'ख' एक शिक्षित जमींदार हैं। आपकी स्त्रीके हर बार मरा हुआ बच्चा पैदा होता था और डाक्टरोंकी सहायतासे किसी तरह चीड़-फाड़ कर निकाला जाता था। प्रत्येक प्रसवके समय वे प्रतिज्ञा करते थे कि स्त्रीसे अलग

रहेंगे, किन्तु आयुपर्यन्त अलग रहना भी असम्भव निकला। तीसरे प्रसवमें उनकी स्त्रीको इतना कष्ट हुआ कि उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

३—'ग' एक धनाढ्य साहूकार हैं। उनका बचपनमें ही विवाह हो गया था। उसके बाद उन्हें गलित कुष्ठ हो गया। ९ लड़की-लड़के आपको हुए। ५ मर गये और ४ जीये। जो जीये उन सबोंको कोढ़ विरासतमें मिला। सबसे बड़ा लड़का कुछ पढ़ा लिखा और समझदार है। वह जानता है कि उसकी यह दुर्दशा उसके पिताके कारण हुई है। यह जानते हुए और स्वयं सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा न रखते हुए भी वह इसमें असमर्थ है। उससे भी तीन बच्चे हो चुके और पहले बालकको कोढ़ भी शुरू हो गया!

४—'घ' एक स्कूलके छात्र हैं। उमर २१ वर्षकी है। स्त्री इनसे एक वर्ष छोटी है। तीन बच्चे हो चुके और चौथेकी तैयारी है। घरमें कोई दूसरी स्त्री नहीं है। जो दुर्दशा इनकी तथा इनकी स्त्रीकी होती है उसे ये ही जानते हैं। प्रति १८ वें महीनेमें एक सन्तानरूपी विपत्ति इनके सामने आकर उपस्थित हो जाती है। इनको बड़ा भय इस बातका है कि यदि इसी नियमसे सन्तानवृद्धि हुई तो रहनेको स्थान कहाँ मिलेगा। भोजन, शिक्षण और विवाहादिका प्रश्न तो दूर रहा, बेचारी अकेली बालिका माताकी जो दुर्दशा हो रही है उसे वही जानती है।

ऐसे लोगोंके लिए ब्रह्मचर्य्यव्रतका उपदेश या इन्द्रिय-निरोधकी सलाह निष्फल प्रमाणित हुई है। ये अपने मन पर अधिकार नहीं जमा पाते। अतः ऐसे कमजोर तबीयतवालोंके लिए किसी दूसरे उपायका होना आवश्यक है। ऐसोंको मरनेके लिए छोड़ देना उचित नहीं जान पड़ता।

यूरोप और अमेरिका आदि देशोंमें कृत्रिम निरोधकी चाल है। जो लोग पवित्र भावसे अविवाहित नहीं रह सकते और साथ ही बहुसंख्यक सन्तानका पालन-पोषण भी नहीं कर सकते, वे सभी लोग कृत्रिम निरोधका शरण लेते हैं और ओषधि या यन्त्रकी सहायतासे सन्तानकी निःसीम वृद्धि रोकते हैं। अमेरिकाकी कितनी ही रियासतोंमें राज-नियम बन गया है जिससे स्वाभाविक दोषी (Habitual Criminals) और सर्वथा अयोग्य स्त्री पुरुष न विवाह कर सकते हैं और न सन्तानोत्पत्ति। यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस नियम पर चलनेके लिए बाध्य किये जानेकी जगह कितने ही प्रार्थनापत्र अयोग्य स्त्री-पुरुषोंके स्वयं आते हैं कि वे कृत्रिम उपायद्वारा सन्तानोत्पत्तिसे रहित कर

दिये जायँ। इस पर कुछ ऐसे कृत्रिम उपाय कर दिये जाते हैं कि वे भोग-विलास कर सकते हैं, किन्तु सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते। *

हम यूरोपवालोंको आदर्श नहीं बनाना चाहते। उनकी नकल नहीं किया चाहते। हमारे और उनके समाज-संगठनमें बड़ा अंतर है। हमारे और उनके आदर्शमें भिन्नता भी है। उनकी अन्धाधुन्ध नकल करना हमारे लिए अत्यन्त बुरा है। मैं यह भी मानता हूँ कि कृत्रिम निरोध बुरा काम है। इससे समाजमें बुराइयाँ फैल सकती हैं। कृत्रिम निरोध प्रकृतिके विरुद्ध भी है। इससे हानि होती है। ये सभी बातें सत्य हैं, किन्तु बहुसंख्यक क्षीण और रुग्ण सन्तानोत्पत्ति भी तो बहुत बुरी बात है। जिससे समाज दूषित हो, देश रसातलको चला जाय, दाम्पत्यसुखमें कुठाराघात हो, वह किससे कम बुराई है?

प्रकृति-विरुद्ध कार्यका प्रकृति आपसे आप दण्ड देती है। प्रकृतिको कोई धोखा नहीं दे सकता। जानमें या अनजानमें किसी तरह प्रकृति-नियमके विरुद्ध चलनेसे प्रकृति सजा देती है। अकाल, हैजा, प्लेग आदि प्रकृतिके नियमोंको उल्लंघन करनेके ही दण्ड हैं। यदि हम अधिक संख्यामें उत्पन्न हुई सन्तानके जीवन-निर्वाहका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते और उन्हे अकाल और प्लेगका ग्रास बनाते हैं तो यह क्या प्रकृतिनियमके अनुकूल है?

जहाँ दो बुराइयाँ हैं, जहाँ दो अधर्म हैं, जहा दो प्रकृति नियमके विरुद्ध कार्य्य है और उनमेंसे एक करना ही पड़ता है वहाँ उन दोनोंमेंसे जो कम बुरा हो, जिससे कम हानि होती हो, जो प्रकृति-नियमके विरुद्ध हो किन्तु कम हो, उसीको चुन लेना चाहिए और उसी कम बुराईको बरतना चाहिए।

मानव जातिका प्राकृतिक आहार केवल अन्न और फल है और निवासस्थान वृक्षकी छाया है। बाल और नख कटाना अप्राकृतिक है। रात्रि विश्रामके लिए है न कि कृत्रिम रोशनी पैदा करके काम करनेके लिए। किन्तु, इन नियमोको अब कौन मानता है? मांस खाना, पक्के महलोंमें रहना, बाल कटाना, रात्रिमें रोशनीमें काम करना आदि सभी अप्राकृतिक कार्य प्राकृतिक हो रहे हैं। इनकी चाल ऐसी चल पड़ी है कि इनकी अप्राकृतिकता ही लोप हो गई है।

तब अखण्ड ब्रह्मचर्य्यव्रतसे उत्तम कौन बात हो सकती है? अपने प्राचीन पुरुषोंके आदेश पर आरूढ रहनेसे अच्छी बात तो दूसरी हो ही नहीं सकती,

---

* Extract Govt Report in 'The Ohio World Recorder' for 1613

किन्तु जो लोग ब्रह्मचारी नहीं रह सकते उनके लिए तो सन्तानवृद्धिसे देशको धक्का पहुँचानेसे अच्छा यूरोपवालोंकी नकल करना है। यदि बहुसंख्यक सन्तानोत्पत्तिसे अधिक और कृत्रिम निरोधसे कम हानि होना सम्भव हो, तो ऐसी दशामें कम बुराईवाली वस्तुका ग्रहण करना ही उचित है।

संखिया विष है। इसका साधारण गुण शरीरको नष्ट करना है। इसके खानेसे मृत्यु हो जाती है। पर संखिया और ऐसे ही अनेक विष बहुतसे रोगोंके रामबाण उपाय हैं। रोग उपस्थित होने पर इनका उचित और नियमित मात्रामें उपयोग अमृतका सा गुण करता है। क्या आप बता सकते हैं कि इन अप्राकृतिक वस्तुओंका संसारमें कितना उपयोग होता है और इनसे कितना लाभ होता है ?

सन्तान-वृद्धिको रोकनेवाली ओषधियाँ और यन्त्र भी विष हैं। इनका स्वाभाविक गुण हानि पहुँचाना है। किन्तु उचित समय और सीमामें इनके प्रयोगसे अकथनीय लाभ होता है। राष्ट्रका सन्तानवृद्धिरोग इससे दूर होकर वह आरोग्य हो सकता है। किन्तु इन दो शब्दों पर सदा ध्यान रखना चाहिए,-उचित और अनुचित मात्रा। एकका परिणाम जीवन और दूसरेका मृत्यु है।

यूरोप आदि देशोंमें दो प्रकारके कृत्रिम निरोध काममें लाये जाते हैं-१ रासायनिक ओषधियाँ जिनके उपयोगसे गर्भस्थिति नहीं होती, और दूसरे ऐसे यन्त्र जिनके प्रयोगसे स्त्रियाँ गर्भ नहीं धारण कर सकतीं। ओषधियाँ केवल स्त्रियोंके लिए हैं और यन्त्र स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए। इनके अतिरिक्त भारतके प्राचीन चिकित्सक भावमिश्र आदिने तथा यूनानी हकीमोंने भी इस विषय पर अपना मत प्रकाश करके कुछ ओषधियाँ लिखी हैं।

कृत्रिम निरोधके यन्त्रों या ओषधियोका नाम इस पुस्तकमें लिखना उचित नहीं समझा गया। जिन लोगोंको इसकी आवश्यकता हो वे मेरी लिखी हुई 'दम्पति-मित्र' नामक छोटीसी पुस्तक मेरे पाससे * मँगाकर पढ़ें। जनसंख्याकी निःसीम वृद्धिसे जो हानियाँ होती हैं उनका सविस्तर वर्णन किया जा चुका। देशबन्धुओ और भगिनीयोको उनके देशकी सच्ची स्थितिका दर्शन करा दिया गया, वृद्धि-निरोधके कुछ उपाय भी बता दिये गये। अब अपने सुभीते, आवश्यकता, विचार और योग्यतानुसार मार्ग

---

* शान्तिभवन, चेतगज काशीसे।

चुनकर उस पर चलना प्रत्येक विचारशील, देशभक्त सज्जनके अधीन है। व्याख्यानदाताका काम श्रोताओंके हृदयमें कथित विषयकी ओर चाव उत्पन्न कर देना है जिसमें उस विषयका वे अध्ययन करें न कि उनको सलाह देना। मैंने सड़कके चौरस्ते पर लगे हुए सड़कोंके नामोंके साइन-बोर्डोंका काम किया है। पथ-प्रदर्शककी तरह रास्तोंका इशारा भर कर दिया है, उन पर चलना या न चलना आपके मन और पैरोंके अधीन है—

—The lecturer's work is to win the hearers to study rather than to give out cut and dried up opinions. I am acting as a sign post to show you the road along which your own feet must carry you.

तीसरे खण्डका सारांश।

वृक्ष और पशुजगतमें सन्तानोत्पत्ति, सन्तानवृद्धि और सन्तानरक्षाके लिए वे ही गुण विद्यमान हैं जो मनुष्य-जगतमें हैं। प्रकृति स्वाद या सुगन्धकी लालच दिखाकर वृक्षोंके बीज सारे संसारमें फैलानेका प्रयत्न करती है। पशु और पक्षी अपनी जाति बढ़ानेका पूर्ण यत्न करते हैं, किन्तु ये विवेकशक्तिसे काम लेकर अपनी जाति बढ़ानेमें कमी या बेसी नहीं कर सकते। दैवी कारणसे ही इनकी असीम वृद्धि रुकती है। उत्तम रीतिसे अपनी संख्या एक नियमित सीमामें रखनेकी शक्ति वृक्ष और पशु-जगतमें नहीं है। इस शक्तिसे मनुष्य ही लाभ उठा सकता है।

मनुष्य ज्ञानशक्तिके संकेतकी ओर ध्यान दे सकता है और अपना शुभाशुभ विचार कर विवाह या सन्तानोत्पत्ति कर सकता है। सभ्य जातियोंके इतिहाससे मालूम होता है कि प्राचीन कालमें भी इस जनसंख्याके विषय पर ध्यान दिया जाता था। ग्रीक देशके सुप्रसिद्ध प्लेटो और अरस्तू आदि विद्वानोंने ऐसे नियम बना रक्खे थे कि जिससे आबादी बेहिसाब नहीं बढ़ने पाती थी। उस समय राजाज्ञासे ही विवाह तथा सन्तानोत्पत्तिकी संख्या निर्णय की जाती थी। आज्ञाके विरुद्ध चलनेवालोंको दण्ड मिलता था और अयोग्य सन्तानको जंगलमें गड़वा देने तकका नियम था! अर्वाचीन कालके इतिहाससे भी यह बात जाहिर होती है कि आवश्यकतानुसार समय समय पर जनसंख्या बढ़ाने या घटानेका प्रयत्न हुआ है। इंग्लैण्ड और फ्रान्समें राजाओंकी ओरसे ऐसे नियम बनाये गये मिलते हैं कि जिनके कारण जनसंख्यामें कमी या बेशी हो। अमेरिका और जर्मनीमें भी एक नियमित सीमाके भीतर सन्तानोत्पत्ति करनेकी चाल पाई जाती है।

भारतवर्षमें किसी समय अधिक सन्तानकी आवश्यकता थी। उस समय यहाँ वंश-वृद्धि करना धर्म्म ठहरा दिया गया था और उत्तम सन्तानोत्पत्ति प्रत्येक आर्य्यका कर्तव्य कर्म बना दिया गया था। इस विषयमें यहाँतक जोर दिया गया कि जिसे सन्तान न हो उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। इसका

फल यह हुआ कि यहाँके लोग बिना विचारे सन्तानोत्पत्ति करने लग गये और ऋषियोंके बनाये हुए सन्तान-सम्बन्धी नियमोंको भूल गये। प्राचीन पुरुषोंने ऐसे उत्तम नियम बना रक्खे हैं कि उनकी पालना करनेसे बुरी सन्तान नहीं हो सकती।

जन-वृद्धि-निरोधका सबसे उत्तम उपाय यह है कि एकमात्र उत्तम सन्तान उत्पन्न की जाय। इसके लिए वंश-परम्परासे आनेवाले दोषों और गुणोंके नियमों पर विचार करना चाहिए। कई पीढ़ी आगेके–पितामह पितामही, मातामह, मातामही आदिके–गुण और दुर्गुण दोनों ही, सन्तानमें उतरते हैं।

प्रेम और मनःशक्तिका भी सन्तान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। ऐसे अनेकानेक उदाहरण पाये जाते हैं जिनमें मातापिताने मनःशक्ति द्वारा इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न की है। गर्भाधानके पश्चात् माताके प्रत्येक विचारका अच्छा या बुरा प्रभाव सन्तान पर पड़ता है। प्रेम और मनःशक्तिके अतिरिक्त अधिक थका देनेवाले कामका, एकदम कोई काम न करनेका, बिना हवाके मकानमें रहनेका, और अनियमित आहार-विहारका भी गर्भस्थ बच्चे पर असर पड़ता है।

उत्तम सन्तान उत्पन्न करना उत्तम है, किन्तु वह उतनी ही होनी चाहिए जितनेके पालन पोषण और शिक्षणका हम उचित प्रबन्ध कर सकें। केवल उत्तम उत्पत्तिसे ही काम नहीं चल सकता। सन्तानको नाना प्रकारकी आवश्यक शिक्षायें दिये बिना वह जीवन-संग्राममें विजय प्राप्त नहीं कर सकती। इंग्लैण्ड, फ्रास, जर्मन आदि देशोंमें उतनी ही सन्तान उत्पन्न करनेकी चाल है, जितनीको योग्य बनानेके उचित प्रबन्ध और साधन वहाँ प्राप्त हैं।

जन-वृद्धि निरोधका दूसरा उपाय है इन्द्रिय-दमन या ब्रह्मचर्य। इस व्रतको विवाहित, अविवाहित, बाल, वृद्ध सभी पालन कर सकते हैं। आठ प्रकारके मैथुन–स्मरण, कीर्तन, केलि आदि–से बचना ब्रह्मचर्य्य है। ब्रह्मचर्य-पालनके लिए सबसे पहले मन पर अधिकार जमाना चाहिए। आहारका प्रभाव मन पर पड़ता है, इससे आहार पर भी ध्यान रखना उचित है। पवित्र आहार करने, पवित्र आचरण रखने, सत्संगमें रहने और पवित्र भावोंकी आलोचना करनेसे कुचिन्तायें नहीं होतीं और ब्रह्मचर्य्य-व्रतपालन करनेमें सुगमता होती है।

भूखके बाद विषय-वासनाका नम्बर आता है। सर्वसाधारणके लिए कामको आयुपर्यन्त दबाना असम्भव है। अविवाहित अवस्था भी जनसाधारणके लिए अच्छी नहीं। कुमार या कुमारीपनके आडम्बरके भीतर पाप और दुश्चिन्तायें छिपी रहती हैं। और न यही युक्तिसंगत जान पड़ता है कि विवाह करके यदि एक सन्तान उत्पन्न करना है तो बस एक बार स्त्री-प्रसंग करके जीवनभरके लिए विषय-सेवन त्याग दे। ऐसे कई उदाहरण मिले हैं जिनमें जीवन और मरणका प्रश्न उपस्थित होने पर भी लोग इससे नहीं बच सके और परिणाम बहुत ही बुरा हुआ। ऐसी अवस्थामें जो लोग किसी अन्य उपायसे सन्तानोत्पत्ति नहीं रोक सकते, उन्हें ऐसी ओषधियों या यंत्रोंसे काम लेना चाहिए जिनके प्रयोगसे गर्भस्थिति न हो। ऐसी अनेक ओषधियों तथा यन्त्रोंका परिचय 'दम्पति-मित्र' नामक छोटीसी पुस्तकमें है जो लेखकसे * प्राप्त हो सकती है।

* मेरा पता—शान्तिभवन चेतगंज, काशी।

परिशिष्ट ।
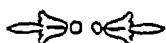
प्राणि-शास्त्रके अध्ययनसे, जीवों और जातियोके इतिहासका अवलोकन करनेसे, और संसार पर विचारपूर्ण दृष्टि डालनेसे यह पूर्णत. सिद्ध होता है कि प्रकृति, जड़को चैतन्य और चैतन्यको अधिकतर चैतन्य वनाना चाहती है। पहले इस पृथिवीतल पर किसी प्रकारका जीवन नहीं था। तत्पश्चात् वहुत साधारण प्रकारका जीवन उत्पन्न हुआ। इसके अनन्तर धीरे धीरे जीवन वढ़ता गया और अधिक विकसित होता गया। समस्त प्राणियोंके देखने पर यदि कोई वात स्पष्ट जान पड़ती है तो यह कि जीवन वढ़ना, फैलना, अधिक उन्नत और पेचीदा होना चाहता है।

इसी निरन्तर उन्नतिके सिद्धान्तके मार्ग पर मानव-जातिका चलना भी माना जाता है। विकास-वादियोंका मन्तव्य है कि मनुष्य-जातिने वरावर उन्नति की है। इस समय मनुष्य-जगत्के सभ्य भागकी जो दशा है वह इतिहासकी अन्य दशाओंसे वहुत श्रेष्ठ है। नये जगतका आचार विचार, आहार-विहार, शिक्षा-संस्कार सभी कुछ अवसे पूर्वकी सव अवस्थाओंसे श्रेष्ठ तथा उत्तम माना जाता है। आज तक मनुष्य-जातिकी जो गति रही है विकासवादी, उसकी तहमें उन्नतिके सिद्धान्तको काम करते हुए देखते हैं। उनका मत है कि भौतिक और प्राणि-जगत, अवस्थाओकी अनुकूलता और निर्वलोंके नाश द्वारा निरन्तर उन्नति करता जा रहा है।

आप ग्रीन आदि आदर्शवादियोंको लीजिए, हर्वर्ट स्पेन्सर आदि विकास-वादियोका संयोगात्मक दर्शन (Synthetic Philosophy) पढ़िए, कान्टे-के प्रत्यक्षात्मक दर्शन (Positive Philosophy) का अनुशीलन कीजिए, सव जगह समाजशास्त्रके सिद्धान्तोंकी खोजमें आप यह पावेंगे कि जिन पड़ावोंसे मनुष्य-जाति गुज़री है, उनमेंसे कोई भी इतना सुन्दर न था जितना सुन्दर वर्त्तमान पड़ाव है। मनुष्य-समाज आदर्शवाद (Theological) युगसे, प्रत्यक्षवाद (Positive) युगमें प्रवेश कर रहा है। इस समयकी अवस्था, अन्य अवस्थाओंकी अपेक्षा आदर्शके अधिक समीप है। और जिस मार्ग पर अव

तक मानव-जाति चलती रही है यदि उसी पर निरन्तर चलती रही तो किसी दिन आदर्श तक पहुंच जानेमें सन्देह नहीं है।

समाज-शास्त्रके कुछ धुरन्धर पण्डितोंका अटल विश्वास था कि संसार, असभ्य संग्राम-युगसे गुजर कर अब व्यापार-युगमें आ गया है। इस युगने लोगोंकी स्वार्थ-बुद्धिको इतना परिष्कृत कर दिया है कि अब वे लड़ाई जैसे निकम्मे काममें हाथ नहीं डाल सकते। इस मतको उन्होंने बड़े विस्तार, विचार तथा अकाट्य युक्तियोंसे सिद्ध किया था। किन्तु, यूरोपीय महायुद्धने इस सिद्धान्तरूपी सुन्दर और सुगठित आकाश-भवनको पृथ्वी पर गिरा कर चकनाचूर कर दिया। प्रकृतिवाद (Materialism) से उन्नति करके अध्यात्मवाद या एकेश्वरवाद (spiritualism) और आदर्शके अधिक समीप पहुँचे हुए मनुष्य-समाजने अपने एक करोड़ भाइयोंके रक्तसे पृथ्वीको रंग दिया, सराबोर कर दिया, भिगो दिया।

अमेरिकाके प्रोफेसर ई० एल बोगर्टने एक नकशा तैयार किया है जिसके अनुसार इस यूरोपीय महाभारतमें भाग लेनेवाले समस्त देशोंके हताहतों और लापता लोगोंकी संख्या लगभग एक करोड़ है †।

† मित्र राष्ट्र।

नाम देश	मृतोंकी ज्ञात संख्या	ज्यादा जखमी	मामूली जखमी	कैदी	जोड़
संयुक्तप्रदेश अमेरिका	१०७२८४	४३०००	१४८०००	४९१२	३०३१९६
* ग्रेट ब्रिटेन	८०७२२१	६१७७४०	१४४१३९४	६४९०७	२९३१२६२
फ्रास	१४२७८००	७००००	२३४४०००	४५३५००	४९२५३००
रूस	२७६२०६४	१००००००	३९५००००	२५०००००	१०२१२०६४
इटली	५६०१६०	५०००००	४६२१९६	१३५९०००	२८८१३५६
बेल्जियम	२६७०००	४००००	१०००००	१००००	४१७०००
सर्विया	७०७३४३	३२२०००	२८०००	१०००००	१०५६३४३
रूमानिया	३३९११७	२०००००	XXX	११६०००	६५५११७
ग्रीस	१५०००	१००००	३००००	४५०००	१०००००
पोर्तगाल	४०००	५०००	१२०००	२००	२१२००
जापान	३००	XXX	९०७	३	१२१०
	६९३८५२९	३४३७७४०	८५१६४९७	४६५३५२२	२३५०४०३८

यह केवल हताहतोंकी संख्याका खुला हुआ ब्योरा है। अन्य रूपसे विचार करने पर यह संख्या चौगुनी प्रकट होती है। कोपेन हेगेनकी एक विश्वसनीय संस्थाने युद्धके वादकी अवस्थाका अध्ययन करके रिपोर्ट तैयार की है जिसमें दिखाया है कि यूरोपमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी संख्या जितनी अधिक हो गई है उससे ज्ञात होता है कि इस महायुद्धमें कमसे कम चार करोड़ मनुष्योंकी मृत्यु हुई है। यहीं तक बस नहीं। 'दि नेक्स्ट वार' नामक पुस्तकमें विल इर्विन साहबने लिखा है कि विगत महायुद्धमें केवल एक करोड़ सैनिक और तीन करोड़ नागरिकोंकी मृत्यु मानना भ्रमजनक है। य

शत्रु राष्ट्र ।

जर्मनी	१६१११०४	१६००००००	२१८३१४३	७७२५२२	६१६६७६९
आस्ट्रिया हंगरी	९११०००	८५००००	२१५००००	४४३०००	४३५४०००
टर्की	४३६९२४	१०७७१२	३०००००	१०३७६१	९४८३९५
बलगेरिया	१०१२२४	३०००००	८४२३९९	१०८२५	१२५४४४८
	३०६०२५२	२८५७७७२	५४८५५४२	१३३००७८	१२७२३६३२
पूर्ण योग	९९९८७८१	६२९५५१२	१८००२०३९	५९८३६००	३६२२७६७०

* ग्रेट ब्रिटेनकी सहायता सरकारी रिपोर्टके मुताबिक, उसके अधीन देशोंने इस प्रकार की,—

नाम देश	विविध रणक्षेत्रोंमे आदमी भेजे	मृतोंकी संख्या
न्यूजीलैण्ड	२२७२२५	१६१३६
आस्ट्रेलिया	८१३४५३	५९३३०
कैनेडा	६८३१७०	५६६२६
जोड़	१२२३८४८	१३२०९२
अकेले भारतने	१५०१३०५	१०००००

भारतीय जनता, तथा कतिपय विद्वानोंका, जिन्होंने इस विषयपर मनन किया है सरकारकी इस रिपोर्टपर विश्वास नहीं है। बहुतोंका खयाल है कि महायुद्धमें भारतके ८ से १० लाख तक सैनिक मरे हैं। लेजिस्लेटिव काउन्सिलमें लार्ड हार्डिंगने यह भी नहीं बताया कि इस देशसे कितने सैनिक विविध रणक्षेत्रोंमें भेजे गये। यह कहकर टाल दिया कि संख्या बता देनेसे सर्व साधारणके हितमें बाधा पड़ेगी। अब जो सरकार ठीक ठीक मृतोंकी संख्या प्रकाशित कर दे तो साम्राज्य-संगठनके हितमें बाधा पड़ जाय! —लेखक।

सब अपने युगके चुने हुए प्रायः अविवाहित पुरुष थे। इनकी मृत्युसे राष्ट्र, इनकी सन्ततिसे सदैवके लिए वञ्चित हो गया। करोड़ो मनुष्य, युद्ध-जनित व्याधियो, रोगो और कष्टोंके कारण कालके ग्रास बने हैं। इसके अतिरिक्त रुग्ण और अपाहिज सैनिकोंकी भी एक बड़ी संख्या है। इस सारी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जनहानिका ठीक ठीक हिसाब लगाना इस समय असम्भव है। जो राष्ट्र विगत महायुद्धमें सम्मिलित हुए थे उनकी जनसख्या ठीक होनेमें सदियाँ लग जायेंगी। रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की आदि तो बिलकुल ही अस्त व्यस्त हो गये हैं।

सुप्रसिद्ध अङ्कशास्त्रज्ञ फ्रैमण्ड साहब महायुद्धसे होनेवाली प्रत्यक्ष साम्पत्तिक क्षतिको अनुमानत. सात खरब रुपया बताते हैं। यह क्षति इतनी विविध है कि इसके ठीक ठीक मूल्यका हिसाब लगाना असम्भव है। बेल्जियम, फ्रांस, रूस, पोलैण्ड, रूमानिया आदिके जो अनेक प्रदेश नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये हैं उनसे होनेवाली क्षतिका हिसाब कैसे लगाया जा सकता है। जो अनेक पुस्तकालय भस्म कर दिये गये हैं उनकी कीमत क्या आँकी जा सकती है। अकेले फ्रांसमें ही खेती करने योग्य भूमिका आठ हजार वर्गमील लम्बा चौड़ा प्रदेश नष्ट कर दिया गया है और पाँच लाख इमारतें विध्वंस कर दी गई है! रूस २७ लाखसे ऊपर सैनिकोंकी भेंट युद्धको दे चुका है। मि० आर्थर रैन्सम उस देश (रूस) में ५३०० मीलकी लम्बी यात्रा करके वहाँके अकाल पीडितोंका जो ब्योरा देते हैं उससे भारतके सिवाय सारे संसारका कलेजा हिल जाता है। भारत तो निरन्तर ऐसे कष्टोंको भोगा ही करता है। रूसकी आधी जनसंख्या वस्त्रविहीन है। अत्यन्त कड़े शीतसे रक्षा करनेके सामानकी कौन कहे वहाँ तन ढाँकने तकका सहारा नहीं है। एक करोड़ नरनारी भूखे फिर रहे हैं। बच्चोकी हृदयविदारक कथा न कहना ही अच्छा है। वहाँ ३० से ५० लाख आदमियोंकी मृत्युकी आशंका है।

नेपोलियनकी भयंकर लड़ाइयोंसे लेकर बालकनकी लड़ाई तक उन्नीसवीं शताब्दीमें जितनी महत्त्वपूर्ण लड़ाइयाँ हुई हैं उन सबोंमें मिलाकर ५० लाखसे भी कम सैनिक हताहत हुए थे। विगत महायुद्धका ब्योरा उससे कहीं बढ़ चढ़ कर है। आगामी युद्धके लिए जिस गरमागरमी और शीघ्रताके साथ तैयारियाँ हो रही हैं उससे स्पष्ट है कि संसारमें फिर खूनकी नदियाँ बहनेवाली हैं। फ्रांसके प्रधान मन्त्री ब्राइण्ड तथा अन्य कतिपय प्रधान

पुरुषोंका कथन है कि शीघ्र ही एक विश्वव्यापी युद्ध होगा। अपनी घातकता और व्यापकतामे यह युद्ध, विगत महायुद्धसे भी बाजी मार ले जायगा! इस संग्राममें एशिया श्वेताङ्गोंके विरुद्ध एक अरब योद्धा रणक्षेत्रमें लावेगा! इस संघर्षके लिए श्वेताङ्ग लोग लाग डॉटके साथ तैयारी कर रहे हैं।

भारतवर्षमें दुर्भिक्ष, प्लेग और हैजेसे जो करोड़ोंकी मृत्यु हुई है वह तो पुरानी कथा है। (इसका ब्योरा इस पुस्तकके दुर्भिक्ष रोग और मृत्युके प्रकरणमें मिलेगा।) उसके सिवाय अब और नये नये रोग उत्पन्न हो रहे हैं और भारतको समूल नष्ट कर रहे हैं। भूमण्डलके प्रायः सभी प्रधान राष्ट्रोंके भिड़ जानेसे जितने सैनिक पाँच वर्षोंमें मारे गये, अकेले भारतमें उतने ही जनोकी मृत्यु कुल पाँच महीनोंमें केवल इन्फ्लुएन्जा ज्वरसे हो गई! ब्रिटेनने समराग्निमें कूद कर अपने साम्राज्यमें २२ लाख वर्गमीलसे ऊपरके क्षेत्रफलको जोड़ दिया और पौने चार करोड़ जनो पर प्रभुत्व स्थापित किया।[1] भारतने उन्हीं रणक्षेत्रोंमें लगभग १७ लाख योद्धा भेजकर अपने पड़ोसी भाइयोको परतन्त्र बनाया और 'रौलेट एक्ट' इनाम पाया! और साथ ही अपनी गुलामीकी जंजीरको अपने ही हाथों इतना मजबूत बना दिया कि उससे छुटकारा पाना अब और कठिन हो गया। अपने जिन सधर्मी पड़ोसियोको प्रायः हिन्दुस्तानी मुसलमानोंने विजय प्राप्त करके गुलाम बनाया है, थोड़े ही दिनोमें वे ही पड़ोसी ब्रिटेनके लिए हिन्दुस्तानियोको परतन्त्र बनाये रखनेमें पूरी सहायता देंगे। थोड़ा

[1] बृटिश साम्राज्यका क्षेत्रफल युद्धसे पहले सब मिलाकर १,३१,५३,७१२ वर्गमील था। विजयी होने पर जो नये प्रदेश मिले हैं उनका ब्योरा इस प्रकार है—

प्रदेश	क्षेत्रफल, वर्गमील	जनसंख्या
मेसोपोटामिया	१,४३,२५०	२०,००,०००
पैलेस्टाइन	७,७९०	५,८१,६००
अरब	१,०७,३८०	१०,६०,०००
फॉरिस	६,२८,०००	९५,००,०००
मिश्र	३,५०,०००	१,२५,६९,०००
जर्मनीके उपनिवेश	१०,२७,६२०	१,१८,९७,०९२
	२२,६४,०८०	३,७५,६७,६९२

हेल मेल बढ़ जाने पर अरब और मेसोपोटामिया, फारिस और मिश्रके सिपाही ब्रिटेनकी तरफसे हिन्दुस्तानमें युद्ध करने आवेंगे और अवश्य आवेंगे।

सारांश यह कि इस भयंकर धन-जन-नाशसे हम भारतवासियोंको जो शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए वह हम नहीं करते। प्रकृति जीवोंकी संख्या अधिक अवश्य किया चाहती है। एक प्राणीके स्थान पर वह अनेक प्राणियोंको उत्पन्न करती है। किन्तु एक मात्र गिनती बढ़ाकर वह सन्तुष्ट नहीं होती। वह नीचश्रेणीके जीवोंके स्थान पर उच्च श्रेणीके जीवोंको स्थापित करना, निर्बल और निकम्मे व्यक्तियोंको निर्मूल करके उनकी जगह बलवान् और उपयोगी जनोंको देना, और सदाचारविहीन जातियोंको नष्ट भ्रष्ट करके उनके देशमें सदाचारयुक्त जातियोंको फूलते फलते देखना ज्यादा पसन्द करती है।

प्रत्येक जीवके शरीरमें प्रकृतिने असंख्य जीवनके बीज संचय कर रक्खे हैं। नित्य प्रति वह असंख्य जीवोंका विनाश किया करती है। प्रकृतिको निरी निष्ठुर और निर्दय मान बैठना अनुचित है। भावी जीवनकी तैयारीके लिए, जातियोंकी उत्तमतामें वृद्धि करनेके लिए, संख्याकी अपेक्षा श्रेष्ठताको स्थिर करनेके अभिप्रायसे, करुणहृदया आनन्दमयी प्रफुल्लित प्रकृति, सहृदयताके साथ इस निर्दयताका विनाशकारी अभिनय खेला करती है।

बच्चा पैदा करना भी सदाचार (morality) का लक्षण है। इस क्रियामें नाना प्रकारका कष्ट उठाना पड़ता है। स्वार्थत्याग करना पड़ता है। किन्तु साथ ही जीवोंकी श्रेष्ठता बच्चा पैदा करके मर जानेमें नहीं है। इतना स्वार्थ-त्याग तो प्रकृति नीचश्रेणीके जीवोंसे भी करा लेती है। बाज़ हालतोंमें (जैसे टोड) समागमके पश्चात् मादासे अलग होते ही नर अपनी जान खो देता है। कोचीनियलकी मादा अपनेको इतने अण्डोंसे भर लेती है कि उसे जीवनसे हाथ धोना पड़ता है। अण्डोंकी रक्षाके लिए उसका मृतक शरीर थैलीका काम देता है! बहुतसे जानवर इस क्रियाके लिए सालमें एक बार अक्षरशः मत्त हो जाते हैं। इस कालमें, केवल इस कामनाको छोड़कर, उनके हृदयमें कोई दूसरी कामना नहीं रहती। इस समय नर-मादाका समा-गम न होना असम्भव हो जाता है। बहुत ही दुर्बल और भीरु जातिके जानवरोंके नर भी, इस समय मादाओंके लिए लड़ते और प्राणतक त्याग देते हैं।

वैज्ञानिकोंके अनुसार अन्य सब जीवोंकी मादाओंका इस क्रियाके लिए उन्मत्त होना, और मनुष्य जातिकी स्त्रियोंका रजस्वला होना, दोनों अवस्थायें एकसी हैं, दोनों घटनायें एक ही बातकी द्योतक हैं। वास्तवमें यह जनन-क्रिया, या वंशके कायम रखनेकी प्रवृत्ति, मृत्युसे भी बलवती है। यह प्रवृत्ति, किसी भी जीव पर जब पूर्ण अधिकार जमा लेती है तब वह मृत्युका भी भय नहीं करता। स्वयम् अपनी इच्छासे वह मृत्युके कराल गालमें प्रसन्नतासे चला जाता है। ऐसा करा लेना तो प्रकृतिकी साधारण लीला है—एक मामूली खेल है। जीवोंकी उत्तमता केवल इस बात पर निर्धारित है कि इस वंशवृद्धि तथा वंशको कायम रखनेवाली क्रियामें कौन जीव कितना विवेक खर्च करता है। इस परम आवश्यकीय जननक्रियामें प्रवृत्त होनेके पूर्व तथा सन्तान उत्पन्न होनेके पश्चात् जितना ही स्वार्थत्याग, सहृदयता, सदाचार और साव-धानीसे काम लिया जाता है उतने ही उच्च श्रेणीके जीवमें उसकी गणना होती है, और जितनी ही उन्मत्तता, अविवेक, अनुत्तरदायित्वसे काम लिया जाता है उतनी ही नीच श्रेणीमें वह उतरता जाता है। सद्गुणोंके व्यवहारसे जीवोंका विकास होता है, वे क्रमशः उन्नति करते जाते हैं, और इसके विप-रीत आचरणसे उनका ह्रास, अवनति और अधःपतन भी होता है।

विकास-शास्त्रने जीवोंको कई श्रेणियोंम विभक्त किया है। बहुतसे जीव ऐसे हैं कि जिनमें लैङ्गिक भेद (Difference of sex) अभी तक पैदा ही नहीं हुआ है। उनमें नर और मादी दो न होकर, एक ही किसिम होती है। इस प्रका-रका बैक्टिरिया नामक एक अतिसूक्ष्म कीट कुछ मिनटोंमें ही लाखोंकी संख्यामें पैदा हो जाता है। एक बैक्टिरियाका शरीर आपसे आप सैकड़ों टुकड़ोंमें फट जाता है और प्रत्येक टुकड़ेसे उसकी सन्तति उत्पन्न होती है, जो फिर फटती और अपना जीवन खोकर अपनी किसिम बढ़ाती है। कुछ ऐसे जीव हैं जिनके शरीरमें नर और मादा दोनोंके अवयव विद्यमान हैं। ये लैङ्गिक भेद न रखने-वाले जीवोंसे उच्च हैं, किन्तु हैं ये भी बहुत ही नीचे दर्जेके जीव।

कुछ जल और स्थल पर समान रूपसे रहनेवाले जीव हैं, जैसे घड़ियाल आदि (Amphibia), या जो पेटके बल चलते हैं जैसे गिरगिट आदि (Reptiles)। इन्हें अपने अण्डोंके सेनेकी जरूरत नहीं होती, सूर्यकी गरमी-से आपसे आप इनके अण्डोंमेंसे बच्चे निकल आते हैं। कुछ ऐसे जीव हैं जिन्हें रात दिन बड़ी सावधानीसे अपने अण्डे सेना पड़ते हैं। जरा भी सुस्ती करनेमें अण्डे गन्दे हो जाते हैं। बाजोंको महीने महीने भरतक इस प्रकार अण्डोंको

बचाना पड़ता है, तब कहीं उनमेंसे बच्चे पैदा होते हैं। परन्तु, माता-पिताका काम यहाँ ही समाप्त नहीं हो जाता। उन्हे नन्हेसे पूर्णतः निरवलम्बी और विवश बच्चोंको चोंचसे भोजन खिलाना पड़ता है। इस प्रकार उनकी रक्षा करनेपर वे आँख खोलते हैं, खिसकना सीखते हैं और फिर चलना फिरना या उड़ना आरम्भ करते हैं। प्राणि-शास्त्रके विद्यार्थी बतलाते हैं कि ज्यों ज्यों जीवोंका विकास होता है, ज्यों ज्यों वे नीच श्रेणीसे उच्च श्रेणीमें प्रवेश करते हैं, त्यों त्यों अपनी सन्ततिकी ओर उनकी जिम्मेदारी बढ़ती जाती है।

जन्म लेनेके समय सभी ऊँचे दर्जेके जीव, नीचे दर्जेके जीवोंसे, अपेक्षाकृत असहाय रहते हैं। परन्तु, बड़े होने पर ये ही जीव, नीची जातिके जीवोंपर विजय प्राप्त करते हैं तथा उन्हें अपने सुख और आरामका साधन बनाते हैं। घड़ियालका ६–७ इंचका बच्चा अण्डेसे निकलते ही अपना भोजन तलाश कर लेता है। कौआ घड़ियालसे ऊँचे दर्जेका जीव है। उसे अपने अण्डों तथा बच्चोंकी, घड़ियालसे अधिक देखरेख रखनी पड़ती है। बन्दर कौवेसे अधिक विकसित जीव है। अतः, उसे अपने बच्चेके लिए अपने ही तनके दूधसे सहारा देना पड़ता है और कौवेके बच्चेसे अधिक देखरेख रखनी पड़ती है। इन सब श्रेणियोंके बाद जब हम सृष्टिके स्वामी मनुष्य तक पहुँचते हैं तो उसके बच्चेको इन सभी जीवोंके बच्चोंसे कहीं अधिक निरवलम्बी और असहाय पाते हैं। एक ही अवस्थामें यदि मनुष्यके बच्चोंको अन्य जीवोंके बच्चोंके साथ जीवन-संग्राममें मुकाबलेके लिए छोड़ दिया जाता तो क्या इस विस्तीर्ण भूमण्डलपर एक भी मनुष्य देखनेमें आता ?

परन्तु, अन्तमें विजय किसकी होती है ? लाखों अण्डे देनेवाली मछली और सर्पकी, अण्डा देकर पास न फटकनेवाले घड़ियाल और गिरगिटकी, कुछ दिनों तक अण्डा सेने और बच्चोंको दाना चुगानेवाले कौवे और कबूतरकी, महीनों दूध पिलाकर जिलानेवाले बन्दर, गाय, भैंस और शेरकी, या वर्षों तक पाले पोसे जानेवाले पूर्णतः असहाय मनुष्यके बच्चेकी ? सारांश यह कि जिस जीवके लालन-पालनमें जितनी ही सावधानीकी आवश्यकता होती है, वह जीवन-संग्राममें अन्य जीवोंकी अपेक्षा उतनी ही अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करता है। साथ ही, उन्नतिके पथपर जीव जितना ही अग्रसर होता है उतनी ही उसे सन्तान कम होती है, परन्तु शक्तियोंके विकासके कारण उसकी सन्तान जीवन-संग्राममें अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करती है।

प्राणियोंकी उत्पत्ति और विकासकी इस संक्षिप्त कथाका अर्थ यह है कि जीवोंका इतिहास जातियोंके इतिहाससे बिल्कुल लागू और मिलता जुलता है। जीव, जिन जिन अवस्थाओंसे पार होकर श्रेष्ठता तथा उज्ज्वलताको प्राप्त करते हैं, जातियोंको भी ठीक वैसे ही उन्नति अवनतिके मार्गोंकी यात्रा करनी पड़ती है, उनके जीवनमें भी वे अवस्थायें व्याप्त होती हैं। व्यक्तियोंसे ही जाति बनती है। जिस देश, जाति या राष्ट्रके व्यक्तियोंकी शिक्षा और दीक्षामें, लालन और पालनमें, सदाचार और संस्कारमे जितना ही अधिक कष्ट उठाया जायगा, जितना धन, श्रम और बुद्धि उनपर खर्च की जायगी उतनी ही उनकी श्रेष्ठता भी उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी, और घड़ियाल या गिरगिटके समान बच्चे पैदा करके उनके लालन-पालनका उचित प्रबन्ध न करनेवाली जाति पर प्रभुत्व स्थापित करेगी, हुकूमत करेगी, और पशुओंके समान, अपने आराम, अपने गौरव, अपने ऐश्वर्यकी वृद्धिमे उनसे काम लेगी, कठपुतलीकी तरह अँगुलियोंके इशारे पर उन्हें नचाया करेगी और वे नाचेंगे।

लण्डनकी एंग्लो ईस्टर्न पब्लिशिङ्ग कम्पनीने 'दि न्यू रेस ऑफ डेविल्स' (The New Race of Devils) अर्थात् 'शैतानोंकी नवीन जाति' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। इसके लेखक जान वर्डनार्ड हैं। इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि विशेष कृत्रिम उपायो द्वारा एक नवीन जातिके दैत्य, दूसरे शब्दोंमे मनुष्यके रूपमें शैतान, किस तरह उत्पन्न किये जा सकते है। इन मनुष्यतनधारी दैत्य या शैतानोंमे मानवोचित गुणोंका सर्वथा अभाव रहेगा, परन्तु इनकी शक्ति जड़ मशीनोंकी भाँति भयकर, विनाशकारी और घातक होगी। ग्रन्थकार महाशय लिखते है कि इस जाति-का उत्पन्न करना केवल सम्भव ही नहीं है बल्कि जर्मनीने आजकल इस नवीन भयंकर जातिको उत्पन्न करना भी आरम्भ कर दिया है!

हमारे देशमें देव और दानव, सुर और असुर, मानव और राक्षसोंके संग्रामकी कितनी ही कथायें अब तक विद्यमान हैं। ये दानव, दैत्य और राक्षस सींग, पूंछ और अनेक सिर या हाथवाले जानवर नहीं थे। सहस्र-बाहु और दश-कन्धरका यह अर्थ लगाना कि किसी व्यक्तिकी भुजाओंसे एक हजार हाथ वृक्षकी शाखाओंके समान निकले थे अथवा यह कि रावणकी गर्दनपर दस सिर थे वैसा ही भ्रमजनक है जैसे यह मान लेना कि दस घोड़ेकी ताकतमे चलनेवाली मोटर गाड़ीके पेटमें दस घोड़े बैठे उसे चलाया करते हैं! सहस्र

फ्रांसके मैदानोंमें भेज देगी, घोर दरिद्र होने पर भी संसारमात्रसे महँगी और अत्यन्त अधिक व्ययवाली नौकरशाही पर ४२ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष खर्च करेगी, भौमिक आदि नाना करोंसे चूसे जाने पर अशक्त होकर अपने निर्बल शरीर पर ७ अरबका जातीय ऋण लाद लेगी, २१६ करोड़ मन प्रतिवर्ष गल्ला उपजा कर भी अपने ३ करोड़ बच्चोको अकालका ग्रास बना देगी, आधी जनसंख्याके भूखे मरते रहने पर भी ३ अरबसे अधिकका कच्चा माल, खासकर गल्ला, विदेश भेजा करेगी, अपने व्यापार और वाणिज्य पर कुठाराघात करके विदेशसे २ अरबका माल मँगावेगी और उसमें ६२ करोड़का केवल कपड़ा होगा। जहाँ घी और दूधकी नदियाँ बहती थीं, उस भारतमें अब आँखोमें अञ्जन लगानेके लिए भी ये वस्तुयें न मिलेगीं, फिर भी गौओकी एक बड़ी संख्याका वध ८० हजार गोरी सेनाके लिए नित्य होगा और ४ करोड़ मूल्यके ८५ लाख जीवित गाय बैल विदेश भेज दिये जायँगे। सन् १९१९ में केवल गुजरातसे ६० हजार अच्छी दूध देनेवाली गायें अमेरिकाके व्यापारी खरीद ले गये हैं। निर्जीव, और शक्तिहीन हो जाने पर एक ही झोकेमें एक करोड़ जनताको ज्वरकी भेंट चढ़ा देने पर भी शुद्ध जल और वायुके प्रबन्धमें नहींके बराबर खर्च करके यह जाति ६५ करोड रुपये साल खर्चवाली फौज रक्खेगी और खुद निःशस्त्र असहाय और निरवलम्बी बनकर अन्य जीवित जातियोंके लिए भिश्ती, बावर्ची और खरवाली जातिकी भाँति कालक्षेप करेगी। किसी भी जीवित और सभ्य जातिकी जाँचकी कसौटी उस जातिकी मृत्युसंख्या और शिक्षा है। सो यह अब इस अभागे देशमें ६२ प्रति सहस्त्र हो गई है जब कि न्यूजीलैण्डकी ९, इंग्लैण्डकी १४, अमेरिकाकी १५, जर्मनीकी १८, और फ्रासकी १९, प्रति हजार है।

शिक्षाके सम्बन्धमें भी वही दुर्दशा है। भारतकी कुल आबादीमें शिक्षाके सम्बन्धमें फी सैकड़ा कुल ६ आदमी किसी तरहका लिखना पढ़ता जानते हैं, जब कि कलके उठे हुए जपानमें फी सैकड़ा ९५, इंग्लैण्डमें ९४ और अमेरिकामें ९०, साक्षर हैं। इस देशमें गुलाम बनानेवाली चार यूनिवर्सिटियाँ (बनारस, पटना, मैसूर, लखनऊ) तो अवश्य बढ़ी हैं, किन्तु शिक्षामें कुछ भी उन्नति नहीं हो पाई है। अभी तक इन यूनिवर्सिटियोंने ईंट और पत्थरके सुन्दर भवन बनानेमें ही अपनी औकात गुजारी है, मनुष्यको मनुष्य बनानेका बहुत कम प्रबन्ध किया है, कदाचित् कर भी नहीं सकतीं।

इस पुस्तकके अङ्क और आँकड़े कुछ पुराने जरूर जान पड़ेंगे। जनसंख्या-सम्बन्धी नई रिपोर्ट निकलने पर उन्हें दुरुस्त करनेका भी यत्न किया जायगा। परन्तु पाठक इससे असन्तुष्ट न हों। गम्भीर विषयकी पुस्तककी उपयोगिता पुरानी हो जानेसे कम नहीं होती। नाना प्रकारके अंक पुस्तकके सिद्धान्तोंकी पुष्टिके लिए दिये जाते हैं। दैनिक पत्रोंके समान नित्य नये अंक और नई बातें किसी पुस्तकमें नहीं दी जा सकतीं। यदि समय किसी भी पुरानीसे पुरानी पुस्तकमें वर्णन किये हुए सिद्धान्तोंको सत्य और अकाट्य प्रमाणित करता रहे तो उसके आँकड़े चाहे पुराने ही हों उनसे कुछ विशेष हानि नहीं होती। सच तो यह है कि पुस्तकोंकी प्रामाणिकता उनके प्राचीन हो जाने पर ही होती है। जबतक भारतकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दुर्दशा होती रहेगी, जब तक भारतमें एक भी अशिक्षित व्यक्ति रहेगा, जबतक यहाँ शूद्र और स्त्रियोंकी दशा शोचनीय बनी रहेगी, तबतक यह तुच्छ और हीन पुस्तक पुरानी न होगी। जब हमें, एक आदमी और एक हिन्दुस्तानी होनेकी हैसियतसे मनुष्यत्वका पूरा अधिकार मिल जायगा, तभी यह पुरानी होगी।
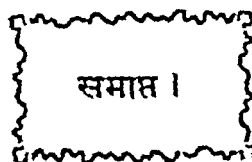
ग्रन्थ-सूची ।

इस ग्रन्थमे जनवृद्धि निरोधका सबसे उत्तम उपाय एक मात्र सर्वोत्तम संतान पैदा करना और दूसरा ब्रह्मचर्य्य या इन्द्रिय-निरोध बतलाया गया है । जिज्ञासुओंको इन विषयोंका अधिक ज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होगी, अतएव उनके सुभीतेके लिए इन विषयोंकी उतमोत्तम पुस्तकोके नाम—जो मुझे मालूम हैं—यहाँ लिख देता हूँ ।

सन्तान-शास्त्र ।

हिन्दी ।

१–**मानव-सन्ततिशास्त्र** । लेखक–मुशी हीरालाल, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, मूल्य १)

२–**उत्तम सन्तति** । लेखक– पंडित जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी, अहमदाबाद, मूल्य १॥)

३–**सन्तान-कल्पद्रुम** । लेखक–पं० रामेश्वरानदजी वैद्य, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, मू० ५)

अँगरेजी ।

1. Essays on Eugenics. A collection of essays on Eugenics, by Sir Francis Galton 1s. 6d,
2. Parenthood & Race-culture. An outline of Eugenics, by C W. Saleeby—Cassel & Co. 7s. 6d.
3. The Feeble-minded: A Guide to Study & Practice, by E. B. Sherlock. Macmillan & Co. 8s. 6d.
4. Inquiries into Human Faculty and its Development, by Sir Francis Galton—Dent. Is.
5. Heredity and Eugenics by J. M. Coulter, Cambridge University Press. 10s.
6. Heredity in Relation to Eugenics, by Charles Benedict Davenport-William & Norgate. 8s. 6d.

7. The Health of the State, by Sir George Newman Headley. 1s.
8. The methods and scope of Genetics, by William Bate Son.
9. The Dependent, Defective and Delinquent classes, by C. R. Henderson—Harrap. 7s. 6d.
10. Woman and Womanhood. A search for Principles, by C. W. Saleeby—Heinemann. 10s.
11. Report of the Inter-Departmental committee on Physical Deterioration, by—Government Publication. 1s 3d.
12 Disease of Occupation, by Sir Thomas Oliver—Methuen. 10s 6d
13. The Bitter Cry of the Children, by John Spargo-Macmillan 6s 6d.
14 The Clements of Child-Protection, by Sigmund, Engel —Allen & Unwin. 15s.
15 Studies of Child, by James Sully—Longmans. 12s. 6d.
16 The Physiology of childhood, by Fredrick Tracy —Harrap.
17. The Children of the Nation, by Sir John E Garst —Methuen. 7s. 6d.
18. Wastage of Child life, by J. Johnston—A C. Fifield. 6d.
19 Child-Life & Labour, by Margarrt Alden—Headley Bros 1s.
20 Problems of Boy Life, Edited by J H Whitehouse —P S King, 10s 6d.
21 Infant Mortality, by Sir George Newman—Methuen 7s 6d.
22. The Town Child by Reginald A Bray—Fisher Unwin 3s 6d
23. Infant Mortality, by H. T. Ashley—Cambridge Unv. Press. 10s. 6d

24. The Right of the Child to be Well-Born, by George E. Dawson—Funk & Wagnals. 3s

25. The Task of Social Hygiene by Havelock Ellis—Constable—8s. 9d.

ब्रह्मचर्य ।

हिन्दी, उर्दू ।

१-ब्रह्मचर्य्य आश्रम (उर्दू) । भारत लिटरेचर कम्पनी, लाहौर।

२-ब्रह्मचर्य्यसेवा, बालकोंके लिए । " " "

३-नव-जीवन-विद्या । पुस्तकभण्डार, लाहौर ।

४-सत्यार्थप्रकाश, सुश्रुत, चरक और मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंमें भी इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है ।

अँगरेजी ।

1. What a young boy ought to know.
2 What a young girl ought to know.
3 Science of New Life by Cowen.
4 The Sexual Question by Torell
5 Lectures to young men by Graham.
6. Sexual Physiology by Dr. Trall.
7 Dr. Stall's books—Sex series.
8. The Sexual Life in our modern condition.

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर ।

हमारे यहाँसे इस नामकी एक ग्रन्थमाला (सीरीज) बहुत समयसे निकल रही है । हिन्दी ससारमें यह सबसे पहली ग्रन्थमाला है और सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित है । भाव, भाषा, छपाई, सौन्दर्य आदि सभी बातोंमें इसकी ख्याति हो चुकी है । इसमें अब तक ५० से ऊपर ग्रन्थ निकल चुके हैं और उनका खूब ही प्रचार हुआ है । इसके स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । ' स्थायी ग्राहक ' बननेके लिए ' प्रवेश फी ' आठ आने देनी पड़ती है ।

आगे सब ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है —

१ **स्वाधीनता** । जॉन स्टुअर्ट मिलके ' लिबर्टी ' नामक ग्रन्थका सुबोध और सरल अनुवाद । स्वाधीनताका इतना सुन्दर, प्रामाणिक और युक्तियुक्त विचार शायद ही किसी ग्रन्थमें किया गया हो । द्वितीय सस्करण । मू० २)

२ **जान स्टुअर्ट मिल** । स्वाधीनताके मूल लेखकका शिक्षाप्रद और आलोचनात्मक जीवनचरित । विद्यार्थियों और लेखकोंके लिए अतिशय उपयोगी । द्वितीयावृत्ति । मूल्य ॥≈)

३ **प्रतिभा** । अतिशय सुरुचिसम्पन्न, भावपूर्ण, मनोरजक और शिक्षाप्रद उपन्यास । बालक, युवा स्त्री और पुरुष सबके हाथमें देने योग्य । भाषा इसकी बहुत शुद्ध और परिमार्जित है । चतुर्थ सस्करण । मू० १।)

४ **फूलोंका गुच्छा** । अनेक भाषाओंसे अनुवादित बहुत ही उत्कृष्ट गल्पोंका संग्रह । सब मिलाकर ११ गल्पें हैं और वे प्राय सभी ऐतिहासिक हैं । भाषा बड़ी ही शुद्ध और सुन्दर है । पढ़ते समय गद्यकाव्यका आनन्द आता है । तीसरा संस्करण । मूल्य ॥-)

५ **ऑखकी किरकिरी** । महाकवि रवीन्द्रनाथ टाकुरके सुप्रसिद्ध उपन्यासका अनुवाद । इसकी जोड़के उपन्यास ससारमें अभीतक बहुत ही कम प्रकाशित हुए हैं । मनुष्यके आन्तरिक भावचित्रोंका, उनके उत्थान पतन और घातप्रतिघातोंका

इसमें बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। रसिकतासे भी लबालब भरा हुआ है। तीसरी आवृत्ति। मूल्य १॥=)

६ **चौबेका चिट्ठा**। स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्रके सुप्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद। इसमें हँसी मजाक, चुटीली बातें, इतिहास, राजनीति, समाजनीति, देशप्रेम आदि सभी कुछ है। पढते पढते जी नहीं भरता। तीसरी आवृत्ति। मूल्य ॥।=)

७ **मितव्ययता**। सेमुएल स्माइल्सके 'थ्रिफ्ट'का छायानुवाद। किफायतशारी और सदाचार सिखानेवाली सुन्दर पुस्तक। तीसरी आवृत्ति। मू०॥।≡)

८ **स्वदेश**। रवीन्द्रबाबूके स्वदेशसम्बन्धी आठ निबन्धोंका अनुवाद। एकसे एक बढकर अपूर्व और अश्रुतपूर्व विचारोंका समावेश। चौथी आवृत्ति। मू०॥=)

९ **चरित्रगठन और मनोबल**। आध्यात्मिक लेखक राल्फ वाल्डोट्राइन-की पुस्तकका अनुवाद। चरित्रसगठनमें सहायता करनेवाली अपूर्व पुस्तक। मू०।)

१० **आत्मोद्धार**। अमेरिकाके गुलाम—नीग्रो या हबशियोंको मनुष्य बनानेवाले सुप्रसिद्ध नेता डा० बुकर टी० वाशिंगटनका आत्मचरित। पराधीन जातियोंके लिए अतीव शिक्षाप्रद। अपढ़ लोगोंमे शिक्षणका प्रचार किस तरह किया जाता है, यह सीखनेके लिए ऐसी आदर्श पुस्तक दूसरी नहीं मिल सकती। द्वितीयावृत्ति। मू० १)

११ **शान्तिकुटीर**। पवित्र, सात्विक और शिक्षाप्रद गृहचित्र। स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए परमोपकारी। बालकोंको भी यह नि शक होकर पढनेके लिए दिया जा सकता है। इसका प्रकृतिका वर्णन बड़ा ही मनोमुग्धकारी है। दूसरी आवृति। मू० ॥।=)

१२ **सफलता और उसकी साधनाके उपाय**। इसमें सफलता और उसके सिद्धान्तोंका सरल और सजीव भाषामें विचार किया गया है। अनेकानेक ग्रन्थोंके आधारसे इसकी रचना हुई है। इसका एक एक वाक्य बहुमूल्य है। दूसरी आवृत्ति। मू० ॥।)

१३ **अन्नपूर्णाका मन्दिर**। बहुत ही पवित्र, पुण्यमय और करुणरसपूर्ण उपन्यास। सती सावित्रीके पौराणिक चरित्रसे भी इसकी नायिकाका चरित्र ऊँचा चित्रित किया गया है। कुटुम्बवात्सल्य, मातृपितृभक्ति, स्वार्थत्याग और नि स्वार्थप्रेमके इसमें एकसे एक बढकर सजीव चित्र हैं। स्त्री और पुरुष दोनोंके ही पढ़ने योग्य। तीसरी आवृत्ति। मूल्य १)

१४ स्वावलम्बन। डा० सेमुएल स्माइल्सके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सेल्फ हेल्प' का छायानुवाद। विदेशी उदाहरणोंके साथ सैकड़ों देशी महापुरुषोंके उदाहरण भी इसमें शामिल कर दिये हैं। अपने पैरों खड़े होनेकी शिक्षादेनेवाला अपूर्व ग्रन्थ। द्वितीय संशोधित और परिवर्धित सस्करण। मू० १॥)

१५ उपवास-चिकित्सा। उपवास या लंघन नीरोग होनेके लिए सबसे अच्छी दवा है। भयंकरसे भयंकर और दु:साध्यसे दु.साध्य बीमारियाँ उपवास-चिकित्सासे आराम हो सकती हैं। इसी बातको इसमें विस्तारके साथ समझाया है। हजारों आदमी इससे लाभ उठा चुके हैं। तीसरी आवृत्ति। मू० ॥)

१६ सूमके घर धूम। सुप्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्र बाबूके एक प्रहसनका अनुवाद। थके हुए मस्तकको घड़ी भर आराम पहुँचानेकी मनोरजक ओषधि। चौथी आवृत्ति। मू० ।)

१७ दुर्गादास। बंगालमें स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल राय बहुत बड़े नाटक-लेखक हो गये हैं। उनकी जोड़का नाटक-लेखक शायद ही कोई दूसरा हो। उनके नाटकोंके अनुवाद मराठी, गुजराती, उर्दू, तामिल आदि अनेक भाषाओंमें हो चुके हैं। देशभक्ति और विश्वप्रेमके भावोंसे उनके नाटक लबालब भरे हुए है। उनके नाटकोंके देखनेमें जैसा आनन्द आता है वैसा ही पढनेमें भी आता है। उनके पात्रोंका एक एक वाक्य कण्ठ करने योग्य होता है। हमारे यहाँसे उनके १४ नाटक प्रकाशित हो चुके हैं और उनकी हिन्दी–ससारमें धूम है। पाठकोंने उन्हें बहुत ही पसन्द किया है। यह दुर्गादास भी उन्हींके एक नाटकका अनुवाद है। इसमें जोधपुरनरेश जसवन्तसिंहके सुप्रसिद्ध सेनापति राठोर दुर्गादासका चरित्र अकित किया गया है। बहुत ही महान् चरित्र है। गुजरातकी अनेक राष्ट्रीय पाठशालाओंमें यह पढाया जाता है। तीसरी आवृत्ति। मू० १≈)

१८ बंकिम-निबन्धावली। स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्रके चुने हुए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक निबन्धोंका अनुवाद। इसकी एक एक पंक्ति बहुमूल्य है। प्रत्येक विचारशील पाठकको इसे पढना चाहिए। दूसरी आवृत्ति। मू० ॥≈)

१९ छत्रसाल। बुन्देलखण्डको स्वतन्त्रताका मन्त्र सिखलानेवाले महाराजा चम्पतराय और उनके बेटे वीरकेसरी छत्रसालकी कुछ ऐतिहासिक घटनाओंको लेकर इस अत्यन्त रोचक, उत्कण्ठावर्धक और घटनाबहुल उपन्यासकी रचना हुई

चीत करता है, सुखदुःख पहुँचाता है, आदि अनेक कुतूहलवर्धक वातोंका इसमें विस्तारके साथ वर्णन किया है और उसके बड़े बड़े विदेशी विद्वानोंकी साक्षीपूर्वक प्रामाणिक उदाहरण दिये हैं। मू० ११)

३८ राजा और प्रजा। जगत्प्रसिद्ध विद्वान् रवीन्द्रबाबूके राजनीतिसम्बन्धी ११ निबन्धोंका अनुवाद। अध्ययन और मनन करने योग्य गंभीर विचारोंका अपूर्व सग्रह। दूसरी आवृति। मू० १)

३९ गोबर-गणेश-संहिता। व्यग और वक्रोक्तियोंसे भरी हुई बहुत ही दिलचस्प चीज। इसके लेखक गोबर गणेशजीने—जिन्हें चिदानन्द चौबेका भाई ही समझना चाहिए—इसमे बड़ी ही मार्मिक और चुभजानेवाली वातें कहीं हैं। धर्म, समाज, राजनीति आदि सभी क्षेत्रोंमे उनकी कलम दौड़ी है। दूसरी आवृत्ति। मू० ॥)

४० साम्यवाद। हिन्दीमें इस विषयका सबसे पहला और उत्कृष्ट ग्रन्थ। इसमें भगवान बुद्धदेवके समयसे लेकर अवतकके तमाम साम्यवादों—लोकमतवाद, व्यापारसघवाद, अराजकतावाद, बोल्शेविज्म आदि–का स्वरूप, उनके सिद्धान्त, इतिहास, और प्रचार आदि सभी वातोंका खूब विस्तारके साथ वर्णन किया है। साथ ही रूस, जर्मनी, इटली आदि देशोंकी राजक्रान्तियोंका इतिहास लिख दिया गया है। ससारका चक्र किस ओरको घूम रहा है, यह जाननेके लिए इस अपूर्व ग्रन्थको अवश्य पढना चाहिए। मू० ३)

४१ पुष्पलता। अतिशय मनोहर, हृदयद्रावक और अमृतोपम गल्पोंका संग्रह। सभी गल्पें मौलिक हैं। इसके लेखक श्रीयुत 'सुदर्शन' जी हिन्दीमें 'प्रेमचन्द' जीके ही समान ख्याति प्राप्त करेंगे। पुस्तक अनेक चित्रोंसे शोभित है। मू० १)

४२ महादजी सिन्धिया। अँगरेजोंके प्रवल प्रतिद्वन्दी, असमसाहसी, वीरकेसरी महादजी सिन्धियाका बड़ी खोजके साथ लिखा हुआ जीवनचरित। महादजी बड़े भारी राजनीतिज्ञ थे। मुगल बादशाहत उनकी मुट्ठीमें थी। यदि उनके बाद उन ही जैसा कोई योग्य पुरुष गद्दी पर आता तो आज इस देशके बादशाह मराठे होते, अँगरेज नहीं। मू० ॥।≈)

४३ आनन्दकी पगडंडियाँ। अमेरिकाके ज्ञानी और अतर्दृष्टा लेखक जेम्स एलेनके 'वाइवेज आफ ब्लेसडनैस' नामक ग्रन्थका अनुवाद। इसके

अध्ययन और मननसे बड़ी शान्ति मिलती है और मनुष्यके चरित्रपर गहरा प्रभाव पड़ता है। पढते समय ऋषि महर्षियोंके उपदेश याद आजाते हैं। मू० १)

४४ ज्ञान और कर्म। बंगालके सुप्रसिद्ध विद्वान्, स्व० गुरुदास बनर्जी एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० एल० के अमूल्य ग्रन्थका अनुवाद। इसमें लेखकके जीवन भरके अध्ययन और मननका सार भरा हुआ है। मनुष्यके अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी बातें हैं, उसके आत्मिक, मानसिक और शारीरिक सुखोंको बढानेवाले जितने भी साधन हैं और सन्तान, परिवार, जाति, सम्प्रदाय, देश, राज्य आदिके प्रति उसके जितने भी कर्तव्य हैं, इस ग्रन्थमे उन सभी पर प्रकाश डाला गया है। सच तो यह है कि ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिस पर इसमे कहीं न कहीं, मुख्य या गौणरूपसे, विचार न किया हो। यह धर्म ग्रथके समान पढने लायक ग्रन्थ है। मू० ३)

४५ सरल मनोविज्ञान। इसमें मनोविज्ञान जैसे कठिन विषयको बहुत ही सरलतासे सुगम भाषामें अच्छी तरह उदाहरण आदि देकर समझाया है और प्रत्येक अध्यायके अन्तमें एक रोचक प्रश्नावली दी है जो इस विषयके विद्यार्थियोंके लिए बड़े कामकी है। मू० १॥)

४६ कालिदास और भवभूति। संस्कृतके दो सुप्रसिद्ध कवियोंके अभिज्ञान शाकुन्तल और उत्तररामचरित इन दो नाटकोंकी गुणदोषविवेचिनी, मर्मस्पर्शिनी और तुलनात्मक समालोचना। यह समालोचना कितनी बढ़िया होगी, यह बतलानेके लिए इतना ही बतला देना काफी होगा कि इसके लेखक सुप्रसिद्ध नाटककार स्व० द्विजेन्द्रलाल राय हैं। हिंदीमें इस विषयका यह सबसे पहला और उत्कृष्ट ग्रन्थ है। जो पढ़ेगा वही मुग्ध हो जायगा। मू० १॥)

४७ साहित्य-मीमांसा। यह भी एक समालोचना-ग्रन्थ है। इसमें पूर्वके और पश्चिमके साहित्यकी—यूरोपियन और आर्यसाहित्यकी—तुलनात्मक समालोचना की गई है और इस देशके साहित्यको सब तरहसे आदरणीय, उत्कृष्ट और महान् सिद्ध किया है। मू० १।=)

४८ राणा प्रतापसिंह। स्वर्गीय द्विजेन्द्रबाबूके दुर्लभ नाटकका अनुवाद। इसमें महाराणा प्रताप, उनके भाई शक्तसिंह, राजकवि पृथ्वीराज, उनकी स्त्री जोशीबाई, अकबरकी कन्या मेहरुन्निसा और भानजी दौलतुन्निसा आदि पात्रोंके चरित्र एक अपूर्व और अकल्पनीय ढंगसे चित्रित किये गये हैं। पढकर तबीयत नाच उठती है। मू० १॥)

४९ अन्तस्तल । इस छोटीसी पुस्तकमे सुख, दु ख, स्मृति, भय, क्रोध, लोभ, निराशा, आशा, घृणा, प्यार, लज्जा, अतृप्ति आदि मानसिक भावोंको बिल्कुल ही अनौखे ढगसे चित्रित किया है। भाषा बड़ी ही चुटीली और जानदार है। मू० ॥=)

५० जातियोंको सन्देश । मूल-लेखक श्रीयुत पाल रिचर्ड और भूमिका-लेखक साहित्यसम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर। इसमें साम्राज्यमदसे मतवाली हुई पाश्चात्य जातियोको बड़ा ही मार्मिक और चुभनेवाला उपदेश दिया है। पाल रिचर्ड महाशय बड़े भारी विश्वप्रेमी और शान्तिप्रेमी हैं। मू० ॥-)

५१ वर्तमान एशिया । पाश्चात्य जातियोंने एशियाके अनेक देशों, प्रान्तों और अगणित द्वीपोंपर जिन धूर्तताओं, छलकपटों, अत्याचारों और झूठे प्रलोभनोंसे जो अधिकार विस्तार किया है और अनेक बड़ी बड़ी जातियोंको अपना गुलाम बनाया है उनका सारा कच्चा चिट्ठा युद्धकालके बाद तकका इसमें दिया है। राजनीतिके प्रेमियोंको अवश्य पढना चाहिए। मू० २)

५२ नीति-विज्ञान । लेखक, बाबू गोवर्द्धनलाल एम० ए०, बी० एल०। आचारशास्त्र या नीतिविज्ञान पर अभीतक हिन्दीमें कोई ग्रन्थ नहीं है। यह सबसे पहला ग्रन्थ है। देशी और विदेशी उदाहरणोंसे भरपूर है। छप रहा है। मूल्य लगभग दो रुपया होगा।

नोट—कपड़ेकी जिल्दवाली पुस्तकोंका मूल्य उपर्युक्त मूल्यसे ।= या ॥) अधिक रक्खा गया है।

आगे और भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित करनेका प्रबन्ध हो रहा है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके '**मुक्तधारा**' नामक नाटकका अनुवाद—विस्तृत समालोचना और विवरणके सहित—शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इस ग्रन्थकी ससारमें बड़ी प्रतिष्ठा हुई है। इसके अँगरेजी, जर्मन और गुजराती अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। '**गोरोंका प्रभुत्व**' नामका एक राजनीतिक ग्रन्थ भी लिखाया जा रहा है।

हिन्दी हितैषियोंको इस ग्रन्थमालाके ग्राहक बनकर हमरा उत्साह बढ़ाना चाहिए और अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निकालनेके कार्यमे हमारे सहायक बनना चाहिए। स्थायी ग्राहक बननेके नियम जुदा पृष्ठ पर छपे हैं।

मैनेजर, **हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय**
हीराबाग, पो० गिरगाव, **बम्बई**।

प्रकीर्णक पुस्तकमाला ।
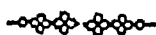
-∞❀❀❀❀∞-

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (सीरीज) के सिवाय हमारे यहाँसे और भी बहुत सी उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं जिनकी सूची आगे दी जाती है —

१ **अस्तोदय और स्वावलम्बन** । सेमुएल स्माइल्सके 'सेल्फ हेल्प'के ढंगका परन्तु उससे बिल्कुल स्वतंत्र और अतिशय शिक्षाप्रद ग्रन्थ । विद्यार्थियोंके लिए बहुत ही उपयोगी । पाठ्य पुस्तकोंमें भरती करनेके योग्य । मू० १≈)

२ **कनक-रेखा** । बंगालके नामी गल्पलेखक बाबू केशवचन्द्र गुप्तकी गल्पोंका सुन्दर अनुवाद । सभी गल्पे एकसे एक बढकर सुन्दर हैं और बड़ी ही मनोरंजक हैं । मू० ।।।)

३ **युवाओंको उपदेश** । विलियम कावेटके 'एडवाईस टू यंगमेन'के आधारसे लिखित । इसका प्रत्येक अध्याय जीवनको सुखपूर्ण बनानेवाली शिक्षाओंसे भरा हुआ है । युवाओंके लिए अतिशय उपयोगी । दूसरी आवृत्ति । मू० ॥-)

४ **भारत-रमणी** । द्विजेन्द्रबाबूका उत्कृष्ट सामाजिक नाटक । इसमें बाल्य-विवाह, प्रौढविवाह, मनमाना दहेज लेनेकी प्रथा, स्त्रीशिक्षा, विदेशयात्रा आदि सामाजिक प्रश्नोंपर अपूर्व प्रकाश डाला गया है । रचना-कौशल भी अपूर्व है।मू०।।।≈)

५ **बच्चोंके सुधारनेके उपाय** । इसमें बच्चोंकी आदते सुधारने, उन्हें सदाचारी और विनयशील बनाने, बुरेसे बुरे स्वभाववालोंको अच्छे बनाने तथा उपद्रवियों और चिढ़चिढोंको शान्त शिष्ट बनानेके बढिया उपाय बताये गये हैं । सभी माता पिता इसे पढ़कर अपने बच्चोंको अच्छा बना सकते हैं । मू० ॥)

६ **कोलम्बस** । अमेरिका महाद्वीपका पता लगानेवाले एक असमसाहसी नाविकका जीवनचरित्र । इस जीवनचरित्रसे उस समयके यूरोपवासियोंकी धन-लुब्धता, दुश्चरित्रता, बन्धुद्रोह और नृशंसता आदिका भी खासा पता चलता है । मू० ।।।)

७ सन्तान-कल्पद्रुम। इस पुस्तकमें देशी विदेशी वैद्यों और डाक्टरोंकी सम्मतियाँ देकर मनचाही खूबसूरत, बलवान्, चरित्रवान् और नीरोग सन्तान उत्पन्न करनेकी विधि लिखी गई है। हिन्दीमें अपने ढगकी एक ही पुस्तक है। देशदर्शनके पाठकोंको इसे अवश्य पढना चाहिए। दूसरी आवृत्ति। मू० १)

८ प्राकृतिक-चिकित्सा। जो लोग देशी और विदेशी सब प्रकारके उपाय करते करते थक गये हों, उन्हें इस पुस्तकसे बहुत लाभ होगा। इसमें रोग होनेके वास्तविक कारणोंका और उन कारणोंको दूर करनेवाले बिना कौड़ी पैसेके उपायोंका वर्णन किया गया है। मू० ।≈)

९ कर्नल सुरेश विश्वास। एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटनाओंसे भरा हुआ अद्भुत जीवनचरित। ढीली धोतीवाला और भीरु कहलानेवाला एक बंगाली केवल स्वावलम्बनके बलसे अमेरिकाके एक राज्यका सेनापति कैसे हो गया, यह कौन न जानना चाहेगा? मू० ॥)

१० व्यापार-शिक्षा। इसमें व्यापारका महत्त्व, धधा, पूजी, सिक्का, हुण्डी, बैंक, बही खाता, साझा, विज्ञापन, तेजी मन्दी, बीमा, जकात, धनविद्या आदि विषयोंपर बहुत ही सरल और उपयोगी पाठ हैं। व्यापार सीखनेवालोंके कामकी चीज। दूसरी आवृत्ति। मू० ।||)

११ शान्ति-वैभव। विलियम जार्ज गार्डनकी 'मैजेस्टी आफ कामनेस'के आधारसे लिखी हुई शिक्षाप्रद पुस्तक। चरित्रगठन और चरित्रसशोधनके लिए बहुत ही उपयोगी। दूसरी आवृत्ति। मू० ।-)

१२ ब्याही बहू। ससुराल जानेवाली लड़कियोंके लिए बहुत ही उत्तम पुस्तक। स्वतंत्र अनुभवसे लिखी हुई। तीसरी आवृत्ति। मू० ।)॥

१३ योगचिकित्सा। शारीरिक और मानसिक क्रियाओंके द्वारा नीरोग रहनेके और तमाम रोगोंको दूर करनेके सहज उपाय। दूसरी आवृत्ति। मू०≈)

१४ पाषाणी। द्विजेन्द्रबाबूका पौराणिक नाटक। इसमें अहल्या और गौतम ऋषिका विचित्र चरित्र अंकित किया गया है। खूब मनोरंजक है। मू० ।||)

१५ सिंहल-विजय। सिंहल या लंकाको जीतनेवाले बंगालके सेनवंशीय राजाके ऐतिहासिक चरित्रको लेकर इस नाटककी रचना प्रख्यात लेखक द्विजेन्द्र-लालरायने की है। विश्वप्रेम और देशप्रेमके भावोंसे भरा हुआ है। मू० १≈)

१६ दुग्ध-चिकित्सा । केवल दूधके सेवनसे सब प्रकारके रोग दूर करनेके उपाय बतलानेवाली पुस्तक । मू० =)

१७ देवदूत । सुकवि पं०रामचरित उपाध्याय कृत खण्ड-काव्य । भारतकी महत्ता, पूज्यता और श्रेष्ठता प्रकट करनेवाली नये ढंगकी सुन्दर रचना । मू० ।=)

१८ श्रमण नारद । बौद्ध युगकी बहुत ही मनोरंजक और परोपकारका पाठ सिखानेवाली कहानी । बालक और युवाओंके लिए विशेष उपयोगी । दूसरी आवृत्ति । मू०=)

१९ भाग्यचक्र । स्वर्गीय बंकिमबाबूके भाई संजीव बाबूकी एक शिक्षाप्रद और करुणकहानीका अनुवाद । दूसरी आवृत्ति मू० -)॥

२० विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य । तीसरी आवृत्ति । मू० -)॥

२१ पिताके उपदेश । एक आदर्श पिताने अपने पुत्रको जो शिक्षाप्रद चिट्ठियाँ लिखी थीं उनका संग्रह । चौथी आवृत्ति । मू० =)

२२ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा । चौथी आवृत्ति । मू०=)॥

२३ सदाचारी बालक । छोटीसी शिक्षाप्रद कहानी । मू०=)॥

२४ बूढ़ेका ब्याह । खड़ी बोलीका सुन्दर काव्य । सचित्र । सुकवि श्रीयुत सय्यद अमीरअली (मीर) । वृद्धविवाहके दुष्परिणामोंका खाका । तीसरी आवृत्ति । मू० ।=)

२५ सुगम चिकित्सा । खानेपीनेके नियमों और दिनचर्यामें सावधानी तथा संयम रखने द्वारा बड़े बड़े रोगोंको आराम करनेके उपाय । मू० =)

२६ भारतके प्राचीन राजवंश । प्रथम भाग । इसमें क्षत्रप, हैहय, परमार, पाल, चौहान और सेनवंशके राजाओंका इतिहास बड़ी खोजके साथ लिखा गया है । हिन्दीमें इस विषयका अपूर्व ग्रन्थ है । मूल्य ३)

२७ भारतके प्राचीन राजवंश । द्वितीय भाग । इसमें शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग, कण्व, पल्लव, शक, कुशान, हूण, गुप्त, बैस, आन्ध्र, मौखरी, लिच्छवि, ठाकुरी आदि प्राचीन राजवंशोंका इतिहास जो अब तककी खोजोंसे मालूम हो सका है बड़े परिश्रमके साथ लिखा गया है । मू० ३)

२८ जीवन-निर्वाह । असली धर्मका, सच्चे सदाचारका, और सच्ची देशोन्नतिका स्वरूप समझानेवाला अतिशय शिक्षाप्रद ग्रन्थ । अन्धश्रद्धा, गतानुगतिकता और जड़ताको दूर करनेवाला सच्चा उपदेशक । मू० १)

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरके स्थायी ग्राहकोंकी

नियमावली ।

१ आठ आने 'प्रवेश फीस' देनेसे प्रत्येक सज्जन इस सीरीजके स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह 'प्रवेश फीस' लौटाई नहीं जाती। 'प्रवेश फीस' का आठ आना पेशगी म० आ० से भेजना चाहिए।

२ स्थायी ग्राहकोंको सीरीजके तमाम ग्रन्थ—पूर्वप्रकाशित और आगे प्रकाशित होनेवाले—पौनी कीमतमें दिये जाते हैं।

३ ग्राहक बननेके समयसे पहले प्रकाशित हुए ग्रन्थोंको लेना न लेना ग्राहकोंकी इच्छा पर है, परतु आगे निकलनेवाले ग्रन्थ उन्हें अवश्य लेने पड़ते हैं।

४ किसी उचित कारणके बिना यदि किसी ग्रन्थका वी० पी० वापस आता है तो उसका डॉकखर्च आदि ग्राहकको देना होता है। वापस किये हुए वी०पी० का डॉक खर्च जब तक ग्राहक नहीं भेज देते तब तक उनको दूसरा वी० पी० नही भेजा जाता। अधिकसे अधिक दो वी० पी० वापस कर देनेवालोंका नाम ग्राहकश्रेणीमेंसे अलग कर दिया जाता है।

५ स्थायी ग्राहक बनकर दस रुपयेसे अधिक मूल्यके ग्रन्थ मँगानेवालोंको 'कुछ रुपये' (प्रत्येक दस रुपये पर एक रुपयाके लगभग) पेशगी भेजना होते हैं जो वी० पी० में मुजरा कर दिये जाते हैं।

६ स्थायी ग्राहक सीरीजके ग्रन्थोंकी चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार पौनी कीमतमें ही मँगा सकते हैं।

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगॉव, बम्बई।

अनाथ

[हिन्दुओं की नालायक़ी, मुसलमान-गुण्डों की शरारतें, ईसाइयों के हथकण्डे और अनाथालयों का भण्डाफोड़]

लेखक—

श्री० जगदीशचन्द्र जी शास्त्री, काव्यतीर्थ

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

अप्रैल, १६२६

प्रथम बार, २०००] [मूल्य ॥)

FIRST EDITION

Two Thousand Copies

Printed and Published

by

R. SAIGAL

at

The Fine Art Printing Cottage

28, Elgin Road

Allahabad

April

1929

समर्पण
जिसकी स्नेहमयी सद्भावना
का
यह सुन्दर फल है
उसके ही
कर-कमलों में

पहला परिच्छेद

अनाथ

उन दिनों दिल्ली में बड़े ज़ोर का हैज़ा था। रोज़ सैकड़ों स्त्री-पुरुष अपनी अगणित वासनाओं को लिए-लिए संसार से चल देते थे। उफ, कैसे वीभत्स दिन थे! पिता पुत्र को, भाई भाई को हैज़े के मुख में फेंक देते थे। कोई किसी का साथी नहीं था। सबके मुख पर स्वार्थ—बस राक्षसी स्वार्थ। गली-गली बाज़ार-बाज़ार में बिलबिलाहट, चीत्कार, हाहाकार, क्रन्दन और निराशा। दिल्ली उजाड़-सी हो गई थी। कोई कहीं भाग गया, कोई कहीं चला गया। जिनके पास पैसा था, जो आज़ाद थे, जिनके दफ़्तर बन्द हो गए, वे चले गए। कोई पहाड़ पर, कोई वतन को और कोई कहीं, कोई कहीं। आधी दिल्ली योंही ख़ाली हो गई। पर आधे कम्बख्त बाक़ी थे, जो गलियों में रहते थे, मोरियों को सूँघते और हैज़े से लड़ते थे। क्या करें, खाने को अन्न नहीं, घर नहीं, ज़मीन नहीं, जायदाद

नहीं। इन्हीं में से एक खत्री-परिवार था, गन्दी गली की चार बालिस्त चौड़ी गली में रहता था। इसके ६ सदस्य थे—२ लड़की, २ लड़के और दो प्राणी यानी माता-पिता। दस साल पहले इस मण्डली के अधिष्ठाता एक सफल गृहस्थ थे, तीस-चालीस हज़ार नकद था, बीसो नौकर, गाड़ी-घोड़ा और सब ठाठ-बाट। अब वह दिन नहीं रहे, वह ठाठ भी नहीं रहे, सारा खेल बिगड़ गया। पर उन्हे परमात्मा पर विश्वास था, हाथ थे, कमाना जानते थे, यही एक भरोसा था। इसी बूते पर अब तक जी रहे थे, एक सेठ के यहाँ चालीस रुपए की नौकरी मिल गई थी। इसी से सारे परिवार का पालन होता था।

हैज़ा किसी से नहीं डरता, किसी पर दया नहीं दिखाता। राजा हो या रङ्क, उसके लिए सब एक से हैं। लक्ष्मी उसे नहीं ललचा सकती, दरिद्रता उसे नहीं डरा सकती। इसी लिए उसे इस दरिद्र परिवार पर भी दया नहीं आई, इसकी बेबसी पर उसका दिल नहीं पसीजा। सबसे पहले उसकी वक्रदृष्टि लाला कृष्णचन्द्र पर पड़ी। अभी दस्त हुए, अभी कै हुए और अभी ख़ातमा! लाला जी अभी अन्तिम साँस ले ही रहे थे कि उनकी बड़ी लड़की पर हैज़े का कोप शुरू हुआ। इधर रोना-धोना शुरू हुआ, उधर क़ै पर क़ै, दस्त पर दस्त। बस घण्टे भर मे समाप्त। अब छोटी लड़की की बारी आई, इसे भी वही। देखते-देखते तीन प्राणी निर्जीव हो गए।

मानव-जीवन की अनित्यता का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण कहाँ मिल सकता है ? उस घर की अधिष्ठात्री कभी रोती थी, कभी पीटती थी और कभी पड़ोसियों को पुकारती थी, पर कोई पास फटकता ही नहीं था। किन्तु विधाता को कुछ और ही मञ्जूर था। उन्हें एक अनाथ पैदा करना था, किन्तु सारे परिवार को उजाड़ कर। पहले बुढ़िया को और फिर बड़े लड़के को हैज़े ने जा पकड़ा। सारा घर क़ै-दस्तों से भर गया। डॉक्टर पैसों से ख़रीदा जाता है। जब पैसे ही नहीं, डॉक्टर आए कैसे ? शाम तक दोनों माँ-बेटे भी चल बसे, घर श्मशान बन गया। हाँ, पाँच साल का एक अभागा बच्चा वहीं था। रोता था, चिल्लाता था। उस शून्य प्रदेश में बैठे-बैठे उसे चौबीस घण्टे से अधिक हो गए थे। अब तक उसके पेट में दाना भी नहीं पड़ा था, संसार के सभी दानी मर गए थे। अब तक किसी ने उसके मुँह में एक चुल्लू पानी भी नहीं डाला था, अभागा रोता था, चिल्लाता था और कभी-कभी बड़े ज़ोर से चीख़ उठता था। सभी को हैज़े की भीषणता का पूरा पता था, इसी से कोई किसी को छूता भी नहीं था। फिर वह बच्चा तो अनाथ था—पहले न सही, अब तो उसका कोई नाथ नहीं था। बालक देखने में सुन्दर था। रङ्ग गोरा, लाल मुखड़ा, निर्दोष नेत्र, लम्बा ललाट, कृष्ण कुन्तल और शुभ्र दन्त उसकी शोभा को बढ़ाते थे। लाला कृष्णचन्द्र के कई मित्र थे, सब दग़ाबाज़, किसी ने

उनके लड़के को देखा भी नहीं। उस गली को सैकड़ों पार करते थे, बहुधा उनकी आँख उधर फिर ही जाती थी, पर बस—आगे कुछ नहीं। वह वहीं पड़ा था, वहीं धूल फाँक रहा था।

सहसा एक मुसलमान-युवक उधर से निकला। उसका पहनावा पठानी था, हाथ में लम्बा लट्ठ था। उसने क्षण भर में बालक को ऊपर से नीचे तक देखा। कछ सोचा, पहले हिचका, थोड़ा ठहरा, फिर झट गोद में ले लिया। बालक उससे पहले डरा, फिर रोया, आख़िर आँखों से सब कुछ ताड़ गया और प्यार की थपकियों में सब कुछ भूल गया। मुसलमान-युवक बच्चे को लेकर बढ़ना ही चाहता था कि उसकी दृष्टि एक हट्टे-कट्टे हिन्दू-युवक पर पड़ी। दोनों पहले से परिचित थे, दोनों की मुठभेड़ कई बार हो चुकी थी। ज्योंही दोनों की आँखें चार हुईं, पठान-पुत्र हिन्दू-पुत्र को छोड़ खिसक चला। बच्चा यह नाटक बड़े कौतूहल से देख रहा था, युवक ने उसे गोद में ले लिया।

गन्दी गली के बाहर एक पनवाड़ी की दूकान थी। युवक ने वहीं से उस बच्चे के घर का पता लगा लिया। घर मे घुसते ही उसकी दृष्टि मुर्दों पर पड़ी। यह काण्ड देखते ही उसका कलेजा मुँह को आगया। बालक रोने लगा, उसको चुप करावे वह बाहर निकला। फ़ौरन ट्राम पर जाकर दो-तीन साथियों को बुला लाया। एक नहीं, पाँच मुर्दे थे और

ले जाने वाले तीन ही थे, अतः उन सबको एक ठेले पर लादा गया। जैसे-तैसे अन्त्येष्ठि संस्कार समाप्त हुआ।

अब वह लड़के को लिए घर पहुँचा।

दूसरा परिच्छेद

अनाथालय
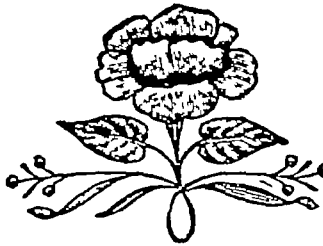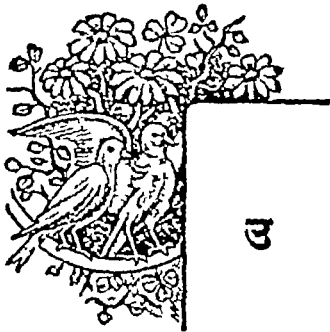
उस समय बहुत से अनाथालय नहीं थे। सारी दिल्ली में नाम लेने लायक एक ही अनाथालय था—वह भी ईसाइयों का। ईसाई मिश्नरी बड़े प्रेम से बालकों को पालते थे। उन्होंने ईसा से प्रेम का पाठ पढ़ा था। हिन्दुस्तान में प्रेम से अपने मिशन को फैलाने आए थे। हाँ, एक 'मुस्लिम-कङ्गालखाना' अवश्य था, उसमें बीस-तीस लड़के थे, वह भी इस हैजे की ही कृपा थी, नहीं तो वहाँ उल्लू बोलते थे।

हैजे मे जब भाई भाई को छोड़ भागते थे, वे सबके पास आते थे। इसी लिए बच्चों के लिए सिरफुड़ौवल नहीं होती थी। जिसके हाथ जो आया, ले गया, कोई उँगली उठाने वाला नहीं था। हिन्दू-सङ्गठन का आन्दोलन उठा नहीं था।

इसी लिए हिन्दुओं को अपने हानि-लाभ से कोई वास्ता नहीं था। आर्यसमाज ही उन दिनों एक जीती-जागती संस्था थी। उसने हिन्दू-जाति के कुछ अग्रगण्य व्यक्तियों को बुला कर एक अनाथाश्रम खोलने की योजना की। जिस दिन हैज़े पर विचार करने को सभा बुलाई गई थी, उस दिन हैज़े के नाम पर अनाथाश्रम का उद्‌घाटन बड़े काम का हुआ। हिन्दू-जाति के बच्चों को विधर्मी लूट ले जायँ, कैसे शर्म की बात थी। अनेक हृदय-द्रावक घटनाओं का वर्णन किया गया, सबके रोंगटे खड़े हो गए, सबके दिल पसीज गए।

सर्व-सम्मति से तय होगया कि एक आश्रम खोला जाय और उसका नाम हो हिन्दू-अनाथाश्रम। हैज़े में अनाथ बच्चों को जमा कर, उनसे काम शुरू कर दिया जाय। एक उत्साही सज्जन ने अवैतनिक सेवा समर्पित कर दी, जो धन्यवाद-सहित स्वीकृत भी होगई।

परन्तु एक महाशय ने एक और कठिनाई पेश की। स्वयंसेवकों का हैज़े जैसी छूत की बीमारी में इकट्ठा करना हँसी-खेल नहीं है। एक सज्जन ने प्रस्ताव किया कि इस सभा के सभी सदस्य दिन में कुछ न कुछ समय अवश्य दें। अब तो सभी बग़लें झाँकने लगे। आधे से अधिक सदस्यो ने आगा-पीछा करना शुरू किया। प्रधान और मन्त्री जी ने सैकड़ों कठिनाइयाँ बताईं। उन्होंने प्रस्ताव की उपयोगिता को तो स्वीकार किया, पर साथ ही अव्यवहार्य भी बताया।

बहुत सी दलीलें दीं, सैकड़ों चालें चले, लेकिन सब व्यर्थ। लोग हाथ धोकर पीछे पड़ गए—पर शाबास अधिकारियो! सबकी आँख में धूल झोंक ही तो दिया। अपनी अकाट्य युक्तियों के बल पर सब आपत्तियों से बाल-बाल बच गए।

आखिर प्रधान मन्त्री को छोड़ कर सभी ने स्वयंसेवक-समिति में नाम लिखा ही दिया। समिति चल निकली। दस-बीस बच्चे और बच्चियाँ मिल गईं, आश्रम आबाद हो गया। सैकड़ों हिन्दू-अनाथों का ईमान बच गया। वह अनाथाश्रम में पलने लगे। दानियों को सात्विक दान का स्वर्ण-संयोग मिल गया। दिल्ली में अनाथाश्रम की धूम मच गई।
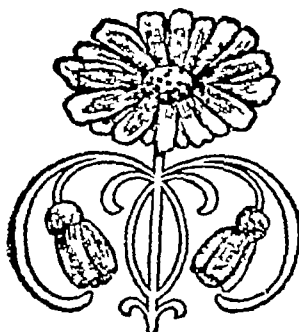
युवक

वक स्थानीय स्वयंसेवक-समिति का एक सधारण सदस्य था। केवल नामधारी सदस्य नहीं, सच्चा सदस्य था। बीस साल का मुँछउठान, पञ्जाबी पट्ठा क़द्दावर जवान था। नई सड़क की एक सकली गली में वह रहता था। घर में बुढ़िया दादी को छोड़ कर उसका अपना कोई नहीं था। दादी के पालन-पोषण का भार उसी के मत्थे था। दो प्राणियों की उदर-पूर्ति के लिए २० रुपए मासिक पर आठ घण्टे क़लम घसीटनी पड़ती थी। इधर सार्वजनिक कामों का भी उसे शौक़ था। दफ़्तर से आते ही चट रोटी खाई और घर से निकला। दवाइयों की एक झोली कन्धे में डाली और गली-गली, द्वार-द्वार चक्कर काटना शुरू किया।

वह ऐसे घरों में घुसा, जहाँ अकेला बूढ़ा कराह रहा है, अकेला बच्चा बिलबिला रहा है और अकेली स्त्री चिल्ला रही है, क़ै और दस्त से घर भर गया है, बिछौना भी उसकी

छीटों से बचा नहीं है, जहाँ घुसते ही प्राण निकलते हैं, दम घुटता है, आँखें मुँदती हैं और नाकें सड़ती हैं।

यह सब कुछ था, पर युवक का हृदय बड़ा कठोर था। दुर्गन्धि और गन्दगी की यातनाएँ उसे नहीं डिगा सकीं। वह जाता था, उनके कपड़े धोता था, उनके घर को साफ करता था, उनको दवा देता था। रोगियों के लिए वह देवता था। उससे जो कुछ बनता, करता और दवा मुफ्त देकर चला जाता। उस दिन जब वह उस नन्हें बालक को लेकर आया, उसकी बूढ़ी यमुना-स्नान का पुण्य लाभ करके आई थी, बहुत देर से उसकी राह देख रही थी। आज उसकी गोद में एक दो साल की बालिका थी। एक-दूसरे को देख कर उनका स्नेह उमड़ आया। दोनों ही एक दूसरे की गोद में बालक-बालिका को देख रहे थे। क्षण-भर दोनों अवाक् रहे। घर में सन्नाटा सा छा गया।

"मैं तो गन्दी गली से इस बालक को उठा लाया, बेचारे के माँ-बाप, भाई-बहिन सब मर गए, पर तुम्हें यह लड़की कहाँ मिली माँ?" युवक ने शान्ति भङ्ग करते हुए पूछा।

बूढ़ी दादी के सूखे और सिकुड़े हुए सफेद कपोल पर दो बूँद मोती ढुलक पड़े। उसने एक लम्बी साँस खींची, सहसा रुकी और फिर बोली—

"बड़ी बुरी जगह से लाई बेटा!"

"कौन सी बुरी जगह से माँ!" बेटे ने पूछा।

बुढ़िया ने कहा—एक औरत यमुना की रेती पर मरी पड़ी थी, यह उसी का थन चूस रही थी।

युवक के कण्ठ से एक क्षीण आह निकल पड़ी। हैजे के दिनों में ऐसी घटनाओं का कोई महत्व नहीं था। अधिक पूछ-ताछ नहीं हुई। दोनों को स्थानीय अनाथाश्रम में दाखिल कर दिया गया।

रही थी। परेड के मैदान के पास सहसा रुकी, यहीं से यमुना का रास्ता मुड़ता था।

इसी काल-रात्रि में मालिन भी मानों बुढ़िया से भेंट करने, फूल की टोकरी लिए आ बैठती थी। उसने गेहूँ दिए, फूल-पत्ते लिए और आगे बढ़ी। माघ महीने में स्नान का बड़ा माहात्म्य है। सारे महीने नियम से स्नान कर लो, बेरोक स्वर्ग में घुस जाओ, मोक्ष निश्चित है। यह सब कुछ है, फिर भी कदाचित् दो-एक श्रद्धालु ही इस परम-पद को पाने ठीक मुहूर्त में आए थे। उस दिन सभी लोग पिछड़ गए थे—दिल्ली भर में एक ही भक्तिन थी—वह थी हमारी बुढ़िया।

उस दिन पाँच बजते-बजते बुढ़िया घाट पर पहुँची। अभी तक घाटिए सोए पड़े थे, मँगतों की नींद अभी नहीं टूटी थी, फूल बेचने वाले घर से नहीं निकले थे, यमुना शान्त थी, झोपड़ियाँ निस्तब्ध थीं, श्मशान मौन था, पुल किसी लाल जन्तु की तरह मुँह बाए खड़ा था। बुढ़िया ने जाते ही यमुना मैया को सिर नवाया। वह आगे बढ़ना ही चाहती थी कि सहसा सहम उठी। थोड़ी दूर पर एक देवी का निर्जीव शरीर पड़ा था, परन्तु गति मालूम होती थी। बुढ़िया ने डरते-डरते पैर बढ़ाए, आगे जो देखा, वह बीभत्स था।

वह एक स्त्री का शव था। छाती खुली हुई थी और एक बालिका उसके थनों में मुँह मार रही थी। बुढ़िया बहुत देर तक बेसुध रही। दूर आती दो-एक स्त्रियों का गान उसके

कानों में पड़ा। वह चौंक उठी, झट उसने उसे आँचल में लपेटा। इधर दो-एक स्त्रियाँ आ पहुँचीं, उन्हे सब सुनाया। सबने उसे बालिका को ले जाने से मना किया। बुढ़िया नहाई-धोई, किसी की परवा नही की और बालिका को लेकर आगे बढ़ी। रास्ते मे कई परिचित स्त्री-पुरुष मिले, किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। जैसे-तैसे वह घर पहुँच ही गई।

रिपोर्ट

जा दो मास से कुछ अधिक रहा। सैकड़ों मनुष्य फिर से दिल्ली आने लगे। जितने लोग भागे, उससे कहीं अधिक फिर आबाद हो गए। इधर गर्मी की ऋतु भी बीत गई। वाइस-राय के तमाम दफ़्तर और सारे दफ़्तरी राजधानी की शोभा बढ़ाने लगे। नई दिल्ली आबाद हो गई, मकानों का भाव चढ़ गया, होटल गुलज़ार हो गए। बस चारों ओर बहार, और चहल-पहल दिखाई देने लगी।

जिनके अपने सगे मरे उनके घाव भर गए, बात पुरानी पड़ गई। संयोग-वियोग तो अनादि है, संसार असार है, जीवन-मृत्यु यहाँ का प्रधान व्यवसाय है, रोने-धोने से कहीं कोई वापस आया है! यही सबके सन्तोष का आधार था।

इसी तरह कई साल बीत गए। दिल्ली में अनेक परि-

वर्तन हुए। बड़े-बड़े आलीशान मकान उठ गए, बड़े-बड़े कोठे ढह गए। अनाथाश्रम में अनेक वैतनिक-अवैतनिक कर्मचारी नियुक्त हुए। काम अनेक भागों में बँट गया। छोटे से बड़े तक सभी काम के लिए पूरा प्रबन्ध हो गया। पढ़ने के लिए स्कूल, बैण्ड के लिए बैण्डमास्टर, मोटर के काम के लिए एक बढ़िया कारीगर, दर्ज़ी के काम के लिए दर्ज़ी-मास्टर, इसी तरह बेत, क़लई, लकड़ी, सोना, चाँदी, ज़ुर्राब आदि अनेक कामों के लिए अनेक प्रबन्ध हुए। कई लड़के हाईस्कूल में शिक्षा पाने लगे, कुछ प्रचारक बने और कुछ गवैए। म्युनिसिपैलिटी ने भी कई हज़ार वार्षिक देना स्वीकार कर लिया। दान की आय भी दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ने लगी, डेढ़ सौ बच्चे-बच्चियाँ चैन से रोटी पाने लगे। एक अनाथाश्रम ने डेढ़ सौ बच्चों को विधर्मी होने से बचा लिया। वह दोनों अनाथ भी इसी आश्रम के अङ्ग थे। बालक अब कुछ बड़ा हो गया था, प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था। बालिका अभी बच्ची थी, आश्रम में खेलती थी। अनाथालय की प्रशंसा देश के बड़े-बड़े नेताओं ने की थी।

इन्हीं दिनों अनाथाश्रम की रिपोर्ट बड़े सजधज के साथ निकली। यह सब जो कुछ हम कह रहे हैं, उसी का सारांश है। अब भी कई उल्लेख योग्य बातें रह गई हैं। भूमिका में लिखा था—"अनाथाश्रम खोलने का श्रेय आश्रम के प्रधान पं० अम्बिकादत्त एम० ए० तथा मन्त्री को है, जिन्होंने हैज़े

में अथक परिश्रम किया। साथ ही कुछ दानियों के नाम भी थे, जिन्होंने दान देने में अपनी उदारता का पूर्ण परिचय दिया था। पर उस युवक का कहीं ज़िक्र नहीं था, जिसने दिन-रात खून-पानी एक कर सैकड़ों बच्चे अनाथालय की गोद में दिए थे।
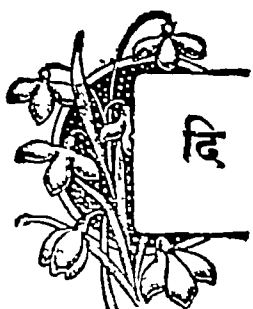
प्रबन्ध

दिल्ली-अनाथाश्रमके अधिकारी बड़े उत्साही थे। प्रबन्ध के सम्बन्ध में उनसे जो कुछ बना, किया। लोगों का यह विचार है कि शिक्षा पाने से बड़े-बड़े पद मिल जाते हैं, पर हमने तो बहुत से बी० ए० को मारे-मारे फिरते देखा है, बहुत से एम० ए० को ठोकर खाते पाया है। भाग्य अच्छा हो तो रुपया हाथ की मैल है। बड़े-बड़े विद्वान् मारे-मारे फिरते हैं और मूर्ख मौज करते हैं। अनाथाश्रम के अधिकारियों ने इस सिद्धान्त को खूब समझा था। इसी से पढ़ने में बहुत कम लड़के लगाए थे। इस शिल्प के युग में सैकड़ों शिल्पी गढ़े जा रहे थे, इसी से शिल्प के सैकड़ों विभाग धड़ल्ले से चल रहे थे। घर भी भरता था, काम भी होता था।

बीस लड़के मोटर का काम सीखते थे, चार साल से लगातार जुट रहे थे। साइकिल में हवा भरना, पञ्चर दुरुस्त

करना उन्हें ख़ूब आता था। कारीगर बनें चाहे नहीं, पर उलटे-सीधे, उठते-बैठते साइकिल दौड़ाने का उन्हें अच्छा अभ्यास था। मरम्मत के दस-पाँच पैसे, आलू-कचालू, अमरख-अमरूद, शकरकन्द और सन्तरे की चाट से उन्हें बड़ा प्रेम था। पुरज़े चुराना और पैसे उड़ाना उनका प्रधान व्यवसाय था। यही उनकी चार साल की विद्या थी।

दर्ज़ी का काम वर्षों से जारी था, पर क़मीज़ काटने की तमीज़ किसी-किसी को आ गई थी। अनाथाश्रम के कपड़े वहाँ सिलते थे। क़मीज़ और कुर्तों का काम ही होता था, मीन-मेख निकालने की कोई गुञ्जाइश ही नहीं थी। गुरु-सेवा यहाँ का पाठ्य विषय था। लड़के इस कला में परम-पटु थे।

बढ़ई, लुहारी, सुनारी, लकड़ी, फोटोग्राफी, सभी काम दुकानों पर सिखाए जाते थे। कारीगर काम करते थे, बालक बड़े चाव से उन्हे देखते थे, बाजार से सौदा लाते थे, ग्राहकों की गप्प सुनते थे और शाम को आश्रम में डट कर रोटी खाते थे।

कलई का काम चलता-फिरता था। दो ईंट डाली, दो-चार बर्तन रख लिए, आग सुलगा ली, बस दुकान आबाद हो गई।

हाँ, एक बैण्ड का काम और था। कुछ गज़लें, कुछ बाज़ारू गाने और कुछ दो-एक भ्रष्ट अङ्गरेजी गाने, बस यही बैण्ड-

विद्या थी। कभी कहीं चले गए, आँख के अन्धे गाँठ के पूरे को मूँड़ लिया, गुजारा चल गया। ९५ फ़ीसदी लड़के इसी कला के शौक़ीन थे। दिन भर लगे रहते थे, वर्षों से ढोल पीटते थे, बाँसुरी बजाते थे, तुर्री फूँकते थे, पर आता उतना ही था जितना हम लिख चुके हैं।

अनाथों के लिए कई कमरे थे, बहुत से तख्त थे, कुछ खाटें थीं। गर्मी में बहार रहती थी, जिसका जहाँ जी चाहा, लुढ़क गया। जाड़ों में जब कपड़े कम हो जाते, दो-तीन को साथ सुला देते। लोटे किसी-किसी के पास थे, बहुधा बाग़ की क्यारियों में आबदस्त लेते। सुबह उठे, हाथ-मुँह धोया, टट्टी गए और खाकर पड़ रहे—यही उनकी संक्षिप्त दिन-चर्या थी।

और भोजन ? सूप से फुलके, पानी सी दाल, तेल का छौंक और हरे-हरे ! भोजन बड़ा मजेदार होता था। कभी-कभी मार-पीट, गाली-गलौज, धींगा-मुश्ती, अहा ! देखते ही बनता था।

बड़े-बड़े अधिकारियों की 'विजिट' बहुत कम होती थी। स्याह-सफ़ेद सब कुछ अन्य अधिकारियों के हाथ में था। उनका प्रबन्ध प्रशंसनीय कहा जाता था। दिल्ली का अनाथाश्रम नामी था, फिर क्या उन्हे भोजन भद्दा मिले ? नाम चाहिए, काम कैसा ही हो। हमें तो देखना है, लोग हमारे विषय में क्या कहते हैं। हाँ, हमारे आराम में कमी नहीं

चाहिए। बच्चे सैकड़ों आते हैं, सैकड़ों जाते हैं, कहाँ तक किस की परवा करें। अनाथ बच्चों की क्या मजाल, चीं-चपड़ करें। किसी ने तीन-पाँच की, दस-पाँच लात-घूँसे जड़ दिए, बस मामला ठण्ढा पड़ गया।

एक दिन एक काउन्सिल के मेम्बर आए। अनाथाश्रम सुन्दर गृहस्थ बन गया। भोजनालय में घी पहुँच गया, बढ़िया फुलके बनने लगे, सब विभाग सुव्यवस्थित हो गए, मकानों पर क़ली पुत गई, बिस्तरों पर चादर बिछ गई, सबके कपड़े बदल दिए गए, नरक स्वर्ग हो गया, चेहरों पर तेल पोत दिया गया, धूप में चेहरे चम-चम करने लगे। यही नहीं, जो होना चाहिए, सब कुछ हो गया। ऑनरेबुल मेम्बर ने सम्मति-बुक के दो पृष्ठ भरे, अधिकारियों की प्रशंसा मुक्त-कण्ठ से की।

पञ्चों की बात सिर-माथे पर। प्रबन्ध बड़ा अच्छा था। अहा! दिल्ली का अनाथालय कैसा अच्छा था!

सुशील

शील बालक का नाम था। सचमुच वह शील का पुतला था। अब वह उस दिन का हँसमुख शिशु नहीं रहा। उम्र बढ़ी, क़द बढ़ा, हाथ-पैर बढ़े, रोना बढ़ा, हँसना बढ़ा। संसार में सुख-दुःख दोनों ही हैं, रोना और हँसना अवश्यम्भावी है। राजा हो या रङ्क, इस नियम का कहीं अपवाद नहीं। सुशील जब निरा अबोध था, मस्त था। जब कुछ होश हुआ, मस्ती हवा हो गई। मुख-कमल कुम्हला गया, लाल गुलाब मुरझा गया। वह स्कूल जाता था, स्कूल का काम करना लाजिमी था। क्लास में वह अव्वल था, सबक सबसे पहले सुनाता था। होमटास्क बहुत होता था। अङ्गरेजी

हिसाब, हिन्दी, संस्कृत, इतिहास, भूगोल सबका थोड़ा-बहुत काम होता ही था। इधर अध्यापकों का रिमार्क भी भद्दा था। अनाथों की बुद्धि भी अनाथ होती है, मार-पीट में 'कोड' का कोई आर्टिकल बाधक नहीं था, इससे जिम्मेदारी और बढ़ गई थी। एक तो अनाथ, फिर अनेक अपराध। फ़ीस मुआफ़, फ़ाइन मुआफ़, ट्यूशन मुफ्त, सब बेगार—लगाओ डण्डे, इनका देह फौलाद का होता है, चोट इन्हें नहीं लगती।

उधर अनाथाश्रम का दावा था—हम इन्हें पालते हैं, खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र देते हैं, इन्हें आश्रम के लिए कुछ करना चाहिए। वहाँ के काम अनेक थे। उसे भी उनमें घसीटा जाता था। अधिष्ठाता आचार्य के समान है, आचार्य की सेवा उसका परम धर्म है। सेवा का विनिमय कहीं वेतन से सम्भव है? इच्छा हो या अनिच्छा, धर्म धर्म ही है, उसे तो करना ही चाहिए।

आश्रम के अधिकारियों ने सेवा का पाठ बच्चों को खूब पढ़ाया था। घण्टों पङ्खा डुलाते रह जाते, एक नहीं, चार-चार, जहाँ चूके चट चपत। ताँगा चाहिए, दस-पाँच शिष्य दौड़ पड़े, सारी दिल्ली छान डाली, एक नहीं आठ-आठ ताँगे हाज़िर हुए। अब उनसे पीछा छुड़ाना मुश्किल। हिन्दू हुआ, मुफ़्त टरका दिया, मुसलमान हुआ दो-चार पैसे दे दिए। किसी से लड़े, किसी से पिटे, किसी को मारा। कोई काम

हुआ, लड़का दौड़ा दिया। एक नहीं, अनेक झमेले थे। इधर भी मुश्किल, उधर भी मुश्किल। स्कूल का काम पड़ा रह गया, पङ्खा डुलाता रह गया, ताँगा लाता रह गया, प्रेस में दौड़ता थक गया। रात को किताब लेकर बैठा, अख़बार सुनाने की बारी आई, बड़ी विपत्ति में पड़ा। पेट के लिए सब कुछ सहना पड़ता है, भूखे भजन भी नहीं होता, पर काम की भी सीमा होती है, दिन-रात काम ही काम ? लोग कहते थे, अधिष्ठाता पागल है, पर डॉक्टर कुछ और ही कहते हैं।

सुशील शरारत नहीं सीखा था। उसे व्यङ्ग-बाण छोड़ने नहीं आते थे। हुक्म-उदूली करना जानता था, वह सबका स्नेह पात्र था, बस इसीलिए वह सुशील था, सच्चा सेवक था।

वर्षों बीत गए। यही दिनचर्या रही। स्कूल का काम बढ़ने लगा। आश्रम का बैण्ड चल निकला। बीसों रुपए रोज़ की आय बढ़ गई। स्कूली लड़कों के लिए यह 'कम्पलसरी' विषय हो गया। म्युनिसिपैलिटी का निर्वाचन ज़ोरों पर था। एक-एक अखाड़े में कई-कई पहलवान डटे थे। लम्बे-लम्बे पोस्टरों से दिल्ली की दीवारें भर गई थीं। बड़े गाजे-बाजे के साथ अपने पक्ष का बहुमत बढ़ाया जा रहा था। दिल्ली के दो-एक बड़े व्यक्ति भी खड़े हुए। बाजे पर व्यय व्यर्थ है, आश्रम का बैण्ड बरक़रार फिर क्या ? उस दिन स्कूल की छुट्टी नहीं थी, पढ़ाई ज़ोरों पर थी। पोयट्री का 'इम्पॉर्टेण्ट पीस' पढ़ाया जा रहा था। ऑर्डर आया, उसे बैण्ड में जाना होगा।

घण्टा बजने में अभी बीस मिनट बाक़ी थे। वह पढ़ रहा था। बीस मिनट रुक गया, डरता-डरता आश्रम पहुँचा, अधिष्ठाता की आँखें लाल थीं, हाथ में बेत था, देखते ही उसके देवता कूच कर गए। उस दिन खूब मरम्मत हुई। चीख़-पुकार सब व्यर्थ। फौरन डोंडी पीटने जाना पड़ा, कई घण्टे ढोल पीटा। भोजन में बड़ी देर हो गई थी। रोटी घास हो गई थी और दाल गोबर। खाने लगा, खाया नहीं गया। रात को ज्वर हो गया। खाट पर पड़ा था, दिन भर वहीं कराहता रहा, किसी ने बात तक नहीं पूछी।

शान्ता

ही वह आश्रम में आई, शान्ता हो गई। वह रङ्ग में गोरी, देखने में भोली और शरीर से दुबली थी। जब माँ का दूध पीती थी, चेहरे पर चिकनाहट, गालों पर सुर्खी और आँखों में तेज़ था। दूध माँ की छाती में छिप गया, गौएँ बाँझ हो गईं, भैंसें भस्म हो गईं, बकरियाँ मर गईं। वही रोटी, वही दाल, उसी पर वर्षों बीत गए। आश्रम में स्त्रियों का विभाग पृथक् था, बच्चे वहीं पलते थे, पाँच साल तक दिगम्बर बनना पड़ता था। साधारण तौर से सिर में दाद, मुँह पर घाव, आँख में मैल, नाक में सिनक, हाथ में चोट और पैर में ज़ख्म होता ही है। किसी को ज़ुकाम, किसी को खाँसी, किसी को बुख़ार और किसी को तिल्ली। शान्ता भी वहीं की थी, रोगों से बच गई तो क्या? देह मिट्टी से लथपथ और शरीर पर मक्खियों की भिनभिनाहट।

निरीक्षण

स दिन आश्रम में बड़ी चहल-पहल थी। बड़े से छोटे तक सभी दौड़-धूप कर रहे थे। सभी में जीवन था, उत्साह था, उमङ्ग थी। कहीं कली पुत रही थी, और कहीं सफ़ाई हो रही थी। कहीं चादर बिछ रही थी, कहीं फ़ोटो टँग रहे थे। कोई कपड़े बदल रहा था, कोई तेल पोत रहा था। इसी से सर्वत्र जीवन था, जाग्रति थी।

जिनके चेहरे पर मौत खेला करती थी, जिनके मुख पर मक्खी भिनभिनाती थी, दिन भर नङ्गे काट देते थे, वे भी आज सज धज रहे थे, रेशमी वस्त्रों से नहीं, बल्कि बिलकुल सादे सफ़ेद धोती-कुर्तों से—"ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया।"

"भगवान् करे मेहमान रोज आवें, उनका हज़ार बार स्वागत है। अहा! आज का परम सौभाग्यशाली दिवस! चुपड़ी रोटियाँ, छौंकी दाल, ऊपर से सब्ज़ी, एक-एक नहीं, तीन-तीन त्रिवेणी सङ्गम।" सुशील ने दबी ज़बान से कहा—दीवार के भी कान होते हैं। कहीं किसी ने सुन लिया तो बेभाव की पड़ेगी। इसी से बेचारा डरता था, दो रोटियों पर उसने आत्मा की कुर्बानी कर दी थी।

आज म्युनिसिपैलिटी के कमिश्नर आने वाले थे, क़िस्मत का फ़ैसला होने वाला था। सालाना सहायता बढ़ेगी या घटेगी? सुबह से शाम तक सैकड़ो परिवर्तन हुए। कोई रजिस्टर फाड़ा, कोई बनाया, कहीं कुछ काटा, कहीं कुछ लिखा। सब के पेट मे पानी था। अधिष्ठाता गश्त लगा रहा था। आश्रम के कई अधिकारी आ धमके, इधर निरीक्षक भी आ पहुँचे। द्वार पर बैण्ड था, घुसते ही बजा। जिधर देखो झण्डी ही झण्डी। उनका हृदय कृतज्ञता से भर आया।

आजकल कौन किसका स्वागत करता है। विवाह में दुलहे का स्वागत होता है। क्या हम दुलहे हैं? आगे बढ़े। दफ़्तर विवाह-मण्डप सा सजा था। कुर्सियाँ थीं, मेज़ें थीं, गुलदस्ते थे, सोडा था, लेमन था, छक कर पिया। यह मधुपर्क-पान था। फिर कुछ देर अठखेलियाँ, रङ्ग जम गया।

जोश ज़रा ठण्ढा पड़ा, पचास रजिस्टर सामने पटक

दिए गए। "लाहौलविलाक़ूवत" मौलवी अब्दुलरहमान ने कहा। अधिष्ठाता ने दबी ज़बान से कहा, "यह अनाथालय का हिसाब है।" वार खाली नहीं गया। दोनों कमिश्नरों की कमिश्नरी हवा हो गई। घण्टा भर रजिस्टरों के नाम ही पढ़ने को चाहिए। प्रबन्ध सुन्दर था, लिस्ट तैयार थी, पाँच मिनट में रजिस्टरों के नाम पढ़ लिए। कोई रजिस्टर उठाया, दो-चार पन्ने पलटे। इतने में वाउचरों की फाइल हाज़िर हुई। पाई-पाई का वाउचर था। परची फाड़ी, मुहर दे मारी, अँगूठा लगाया, वाउचर तैयार। आधे वाउचर इसी रिज़र्व बैङ्क में बने थे। हिसाब इतना अप-टु-डेट, कमिश्नरों के दिल में बात बैठ गई, हिसाब बड़ा अच्छा है।

भोजन बारह बजे होता था, उस दिन नौ बजे ही लड़के बैठा दिए गए। सब के आगे थाली थी। ज़रा-ज़रा से फुलके, सब घी से चुपड़े, दाल गाढ़ी मसालेदार, सब्ज़ी स्वादिष्ट। बिलकुल घरू प्रबन्ध था। कमिश्नरों ने भोजन देखा, जी प्रसन्न हो गया। सफ़ाई का तो कहना ही क्या? अनाथाश्रम नहीं, किसी अच्छे स्कूल का बोर्डिङ्ग था। इधर सारे डिपार्टमेण्ट चालू थे। वर्कशॉप से लेकर क़लई के काम तक बिलकुल अप-टु-डेट। सभी देखा। जहाँ गए 'वाह-वाह' बलात् निकल पड़ा। जादू वह, जो सिर पर चढ़ कर बोले।

जब म्युनिसिपल कमिश्नर लौटे, बड़े खुश थे। जाते समय बैण्ड का सम्मोहिनी अस्त्र मारा, दो दिन में लॉगबुक

आई। प्रशंसा के पुल बाँध दिए थे। दो हज़ार मासिक सहायता मन्ज़ूर हो गई थी।

आश्रम का निरीक्षण एक बार नहीं, सैकड़ों बार हुआ। जब कोई आया, गद्‌गद हो गया। जो अचानक आ गया, बेलाग बात करने लगा। उसे सम्मति-बुक नहीं मिली, कुढ़ता चला गया। एक दिन एक संन्यासी को इसी तरह मुँह की खानी पड़ी थी। अस्तु—

हम भी कहते हैं—निरीक्षण रोज़ हो, कमिश्नर रोज़ पधारें, नेताओं की झाँकी रोज़ देखने को मिले, तो खाली प्रदर्शन हट जाय। अनाथाश्रमों में यही जीवन सदैव रहे।

नौ-दो ग्यारह

सभी आश्रमों में एक हेल्थ-ऑफिसर होता है। अनाथाश्रम में भी यह पद रिक्त नहीं था। दिल्ली के एक नामी डॉक्टर इस पद पर आसीन थे। जब रोगी असाध्य हो, दो घूँट दवा पीने को तड़प रहा हो, फोन खड़का दो, वह उपस्थित होंगे। यदि कुछ दम बाक़ी है, कम्पाउण्डर मौजूद है, उसे दिखा दो। आखिर वह किस मर्ज की दवा है? पाँच रुपए मासिक किस बात के लेता है।

डॉक्टर और कम्पाउण्डर में क्या अन्तर है? एक पढ़ा है दूसरा नहीं, पर अनुभव में दूसरा पहले से कहीं अधिक बड़ा है। वह दवा अपने हाथ से देता है। प्रत्येक बात का उसे 'प्रेक्टिकल' ज्ञान है। इसी तर्क का प्रयोग आश्रम के बच्चों पर होता था। कहाँ किसी अधिकारी के पेट में दर्द हुआ, आँख दुखी, कान दुखा तीन-तीन डॉक्टर हाजिर। फिर वैद्यों की बारी आई। फिर भी सन्तोष नहीं, हकीम

जी बुलाए गए। दवा पर दवा दी गई। सारी फ़िलॉसफ़ी ग़ायब—सारा कुतर्क समाप्त।

सुशील बीमार था। टेम्परेचर १०४ से भी बढ़ गया। ग़रीब मारे व्यथा के कराह रहा था। किसी ने बात तक नहीं पूछी। कम्पाउण्डर ने दवा दी। कुछ बना नहीं, रोग बिगड़ता चला गया। दो-एक दिन और निकल गए। अब उसके मुख पर चेचक की फुन्सियाँ दिखाई दीं। अधिष्ठाता को सूचना दी गई। उन्हें एक मीटिङ्ग में जाना आवश्यक था, असिस्टेण्ट को आज्ञा दे दी, डॉक्टर को फोन कर दो। अधिष्ठाता उधर गए, इधर फ़ोन कर दिया गया। उस दिन डॉक्टर साहब एक-दो आवश्यक कार्यों मे व्यग्र थे। फोन के उत्तर में उन्होंने कहा, मैं आने का प्रयत्न करूँगा। कई जगह एङ्गेज्म़ेण्ट्स थे। उन्होंने अपनी ओर से तो प्रयत्न किया। समय नहीं मिला तो क्या करें ?

शाम हुई, रात हुई, भोजन हुआ, गप्प शप्प हुआ, और फिर रातभर मौज, सुख-स्वप्न, रँगरेलियाँ। यही डॉक्टर का 'टाइमटेबल' था, यही अधिष्ठाता का और यही उसके सहायकों का भी।

खाने को अन्न, जेब में पैसे, संसार में सुख ही सुख है। ईश्वर सब की जरूरतों को जानता है। जिसको चार पैसे चाहिए उसे चार पैसे, जिसे दस रुपए चाहिए उसे दस रुपए! अधिष्ठाता दस बजे आए। उन्हे कहा गया, सुशील

की हालत ख़राब है। उन्होंने कहा, अच्छा सुबह देखेंगे। रात मौज में गुजर गई।

सुशील तड़पता रहा। जिससे उसका स्नेह था, उसने साथ दिया। प्रातःकाल से पहले उसकी ज़बान बन्द हो गई। कम्पाउण्डर हक्का-बक्का हो गया। डॉक्टर साहब को फिर फ़ोन किया गया, फौरन मोटर गरजती हुई आ पहुँची। उन्होंने अभी आश्रम में पैर भी नहीं रक्खा था, अधिष्ठाता पहुँच गया। वह पहिले उन्हें अपने घर की ओर खींच ले गया। उसका बच्चा बीमार था, पेट में दर्द था, सुबह से दस्त बन्द था।

अब सुशील की बारी आई। डॉक्टर ने बड़ी गम्भीरता से उसे देखा। चेहरा देखते ही घबड़ा उठा। चेचक के निशान देख कर उसे छूने का साहस नहीं हुआ। दो मिनट में बाहर आ गया। अधिष्ठाता के कान मे धीरे से कहा, बचना कठिन है। अजमेरी गेट भेज दो, वहाँ चेचक का अस्पताल है, इसको चेचक निकल रही है। चेचक संक्रामक रोग है, बच्चों में इसके फैलने का डर है।

अधिष्ठाता ने फौरन ताँगा लाने की आज्ञा दे दी। ताँगा आया। रोगी के एक मित्र ने उसका साथ दिया।

दिल्ली के एक नीरव प्रदेश मे यह अस्पताल है। डॉक्टर का पता नहीं था। हाँ, एक मुसलमान कम्पाउण्डर ज़रूर था, वही यहाँ का कर्ता-धर्ता था। जीवन-मृत्यु का वही एक-मात्र ठेकेदार था। डॉक्टर साहब दो घण्टे के लिए सुबह

आते थे। रोगियों को देखा और चल दिए। सुशील के भाग्य अच्छे थे। घण्टे भर बाद डॉक्टर के दर्शन हुए। उन्होंने देखा, दवा दी। मित्र ने शक्ति भर सेवा की, हालत कुछ सुधरने लगी।

वह अस्पताल नहीं, यमालय है। वहाँ से लौटना खाला जी का घर नहीं है। यह मौत के घर से लौटना है, वहाँ से लौटना है जहाँ से सत्यवान लौटा था। वह बच तो गया, पर आश्रम से उसे घृणा हो गई। एक हफ्ते तक वह मौत से लड़ता रहा, किसी ने झाँका तक नहीं। जब वह अच्छा होने लगा था, मित्र भी चल दिया था। इधर कम्पाउण्डर उसके पास आया, मीठी-मीठी बातें बनाने लगा। बातचीत से उसने ताड़ लिया, कि यह आश्रम से ऊब उठा है। उसने कहा, हमारा एक आश्रम है, वहाँ तुम बड़े मौज से रहोगे। लेकिन वह मुसलमान था, सुशील ने मुसलमाना के धोखे की बहुत सी कथाएँ सुनी थीं। वह राजी नहीं हुआ। इधर कम्पाउण्डर निकला, उधर वह नौ-दो ग्यारह हो गया।
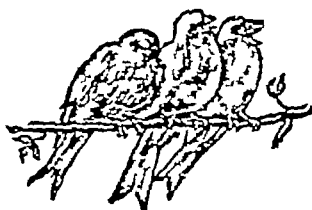
दूकानदारी

शील ज्योंही निकला, 'आल इण्डिया' अनाथालय के एजेण्ट के हत्थे चढ़ गया। वह उसे ले गया और अपनी एजेन्सी में पहुँचा दिया। वह एक नाम का आल इण्डिया अनाथालय था। कोई नहीं जानता, उसका इतना व्यापक नाम क्यों पड़ा? चावड़ीबाजार की एक गली में एक मकान था, उस में गवर्नर का एक शानदार कमरा। कुर्सी, मेज, कौच, गलीचा, जो कुछ एक रईसी दफ्तर के लिए चाहिए, उसमें सब मौजूद था।

दूसरी ओर दस-पाँच लड़के थे, उनको खाने को बढ़िया, पहनने को बढ़िया, यही नहीं, सब कुछ बढ़िया। कुछ चलते-फिरते अनाथ भी थे, जिनका था काम ढोल पीटना, और

माँगना-खाना। इनकी संख्या लगभग तीस होगी। यह तीन-चार टोलियों में बँटे थे। कभी गाँव, कभी शहर, कभी दिल्ली, कभी मेरठ, कभी कलकत्ते, कभी बम्बई। सर्वत्र इनकी गति थी। बड़ी रकम की जरूरत नहीं। बस, पैसे-पैसे और आने-दो आने से बड़ी रक़म आप ही खड़ी हो जाती थी।

हर एक टोली का एक-एक मुखिया था। नाम को ये उपदेशक कहलाते, पर वास्तव में थे 'आल इण्डिया अनाथालय एण्ड को०' के 'शेयरहोल्डर'। घर आते ही आय बाँट लेते थे। जब कभी ये लौटकर आते, चहल-पहल हो जाती, नहीं तो मुखिया चैन करता।

नाम को यह एक हिन्दू-अनाथालय था, पर बिला नागा खाना-पीना उड़ता था। बहुधा चॉकलेट-चर्चा भी हुआ करती थी। धूम्रपान से तो क़तई परहेज़ नहीं था। लड़के दिन-भर आवारागर्दी करते। अनाथालय तो एक बहाना था, यह थी पेट पालने की एक ख़ासी दुकानदारी। उन दिनों गली-गली ऐसी दुकानें खुलने लगी थीं। केवल एक-दो नहीं, बीसों दुकानें थीं। यही था दिल्ली का 'आल इण्डिया अनाथालय'।

यह अनाथालय जितना मनोरञ्जक था, उसका इतिहास उससे भी अधिक मनोरञ्जक। दिल्ली के एक नामी अनाथालय में चार चपरासी थे। एक चौकीदार था, दूसरा बर्तन माँजता था, तीसरा आटा माँगता था, और चौथा चन्दा। दस रुपए से अधिक किसी का वेतन नहीं था। ये काम नहीं

करते थे, दिन-भर गड़बड़झाले में रहते। रोज़ डाँट-फटकार पड़ती, अब यह सब कुछ सहने के आदी हो गए थे। आल इण्डिया अनाथालय का गवर्नर उन्हीं में से एक था। दस रुपए पर चन्दे का चपरासी था। वह कामचलाऊ हिन्दी और नाममात्र की अङ्गरेज़ी जानता था। दिन-रात वह इसी ताक में रहता था कि अनाथालय खर्च कैसे पूरा करता है।

उसने एक गुट्ट बनाया। गुप्तरूप से अनाथालय की तैयारी कर दी। 'कुत्ते को घी हज़म नहीं होता' यह गूढ़ रहस्य भी झट फूट निकला। तहक़ीक़ात की गई, सुबूत मिल गए। चारों चपरासी बरखास्त। बस, उन्होंने एक आल इण्डिया अनाथालय गढ़ लिया।

अखबारों में छपा कि चार चपरासियों ने ऐसी बेहूदगी की है। पर कौन किसको पूछता है? जनता धन देना जानती है। उसे क्या, कौन किस लिए माँगता है। वह धर्म करना जानती है, धर्म के लिए धन लुटाना जानती है। धर्म के नाम पर जो कुछ माँगा जाय, आँख मूँद कर देती है। जिनको आँखें हैं, पूछते हैं, कौन क्या माँगता है? किस लिए माँगता है? क्यों माँगता है?

पर जो स्वयं कङ्काल हैं, स्वयं रोटियों को तरसते हैं, उनके पूछने से क्या और न पूछने से क्या? जब तक गङ्गा-यमुना हैं, धर्म संसार से उठ नहीं जायगा और जब तक धर्म है, ऐसे धार्मिक भी मिलते ही रहेंगे।

हाँ, तो सुशील आल इण्डिया अनाथालय का छात्र था। वह दो दिन नहीं, चार दिन नहीं, दो महीने वहाँ रहा। दोनों आश्रम की तुलना करता रहा। वह मनुष्य था, आत्माभिमान भड़क उठा। उसने वहाँ से निकल कर भागना चाहा। पर उस समय अनाथालयों से भागना टेढ़ी खीर थी। भगोड़ों के लिए बड़े कड़े क़ानून थे। कोई उन्हें बाँध कर मारता था, कोई काला मुँह कर कोड़े लगवाता था और कोई बत्तख़ बना कर कन्धे पर आदमी बैठाता था। इस भीषण अपराध के लिए बड़ी साँसतें भुगतनी पड़ती थीं, एक से एक भीषण यन्त्रणाएँ दी जाती थीं। वह बड़े सङ्कट में पड़ा।

एक दिन अनाथालय की एक पार्टी रोहतक गई। वहाँ के मुखिया पकड़े गए। वे आर्यसमाज, दिल्ली के नाम पर चन्दा माँगते थे। जूतों से पिटे और वहाँ के एक बड़े व्यक्ति ने उन्हें पुलिस के सुपुर्द कर दिया। गवर्नर साहब दौड़े। उस दिन अवकाश मिल गया, वह निकल भागा।

उसने सोचा, मैं इतना बड़ा हो गया, इन्ट्रैन्स तक पढ़ा, कब तक अनाथ बना रहूँ। मैं अपना पेट आप पाल सकता हूँ, चलूँ कहीं नौकरी कर लूँ। इसी उधेड़-बुन में वह वहाँ से निकल आया। अब उसके लिए समस्त दिशाएँ शून्य थीं, वह निर्णय नहीं कर सका, कि मैं कहाँ रहूँ, दिल्ली के किस कोने में छिपूँ।

दस बजते-बजते वह पाठशाला पहुँचा। पाठशाला क्या थी, एक पक्की गोशाला थी। स्थान नीरव प्रान्त में बनवाया गया था, मीलो तक मनुष्य का नाम-निशान भी नहीं था, फिर भी कुछ जोर की बड़बड़ाहट कानों में गूँज रही थी। पास ही यमुना की एक छोटी नहर थी। शाला वृत्तों से घिरी हुई थी। एक तो योंही अँधेरा, फिर घने पेड़, हाथ को हाथ नहीं सूझता था। शाला में एक दीपक टिमटिमा रहा था, चार-पाँच छात्र व्याकरण-सूत्रों की रट लगा रहे थे, जोर की बड़बड़ाहट उन्हीं की थी। संसार सूना पड़ा था, पर संस्कृत भाषा की तूती बोल रही थी। वह पाठशाला में घुसा। यह एक छोटा सा कमरा था। जाड़े का प्रारम्भ था, घर भर में पुआल विछाई जा चुकी थी। ठण्ढ दूर करने का यही एकमात्र उपाय था। पाँच गज़ जमीन मे पन्द्रह लड़के पड़े थे। कोई चादर ओढ़े ठिठुर रहा था, कोई कुकड़ी हो रहा था और कोई किसी के कम्बल में घुस रहा था। एक के पास रज़ाई थी, उसमें दो और घुस गए थे। हाँ, चार-पाँच लड़के पढ़ रहे थे। एक छोटा सा दिया था, एक पतली सी वत्ती उसमें पड़ी थी, उनमें दो-चार बूँद तेल था। एक दीवट था, जिस पर दो-दो इञ्च मैल थी, लकड़ी तेल से लसलस हो रही थी, उसी पर दिया था। छात्रों ने उसी को घेर रक्खा था। जब वह पढ़ते थे, सारी देह डोलता था। पढ़ते थे या लड़ते थे, इसका ज्ञान उन्हे ही होगा।

सुशील के लिए यह कोई नई बात नहीं थी, जब वह यहाँ आया था, सब देख गया था। अध्यापक ऊपर थे। सुशील गया, अभिवादन किया, विशेष पूछ ताछ नहीं हुई। रहने की आज्ञा मिल गई। नीचे आया, एक ने सूखी धोती दे दी, दूसरे ने चद्दर, भोजन समाप्त हो चुका था। एक लड़का अधिक दयालु था, साथ सुला लिया, अपना कम्बल ओढ़ा दिया।

वह दिन का थका माँदा था। सारी रात खूब सोया। प्रातः काल जब उठा, सब लड़के उठ चुके थे। कोई नहा रहा था, कोई सन्ध्या कर रहा था, कोई पढ़ रहा था। वह भी उठा, नित्य-कर्म से निवृत्त हुआ। अध्यापक से मिला, लघुकौमुदी पकड़ा दी गई, दो सूत्र पढ़ा था, उसे रटता था, उसका अर्थ रटता था। वह दिन योंही गुज़र गया। पाठशाला में कोई नौकर नहीं था, लड़के स्वयं रोटी बनाते थे, छूतछात का बड़ा ध्यान रक्खा जाता था। सब लकीर काट कर भोजन करते थे। धोती के सिवाय एक कपड़ा भी उस समय देह पर रखना वर्जित था, धर्म की यही एक कसौटी थी। धन्य भाग्य! उस दिन उसे कुछ करना नहीं पड़ा, बनी-बनाई रोटी मिल गई, लेकिन चौके से बाहर, ब्राह्मणों से दूर।

अगले दिन उसे भी काम दिया गया। जाति का खत्री था, चौके में घुस नहीं सकता था। हाँ, बर्तन माँज सकता था, यही काम उसे दिया गया। करे, तो क्या करे गुजारा करना था, बर्तन माँजने लगा।

प्रेम का स्वाँग

न्ता अब चढ़ती जवानी पर थी। कहते हैं, प्रेम वह है जो प्रथम दृष्टि में है। किन्तु यह कल्पना झूठी है, बिलकुल निराधार है। युवक-युवती का आकर्षण प्रथम दृष्टि में अवश्य होता है, लेकिन वह पवित्र प्रेम नहीं, कामुक वासना है। यह उमर बड़ी कच्ची है—"कन्या वरयते रूपम्" यह केवल रूप चाहती है, यह दिल को नहीं देखती, चमड़ी को देखती है, और माता-पिता? 'माता वित्तं पिता श्रुतम' माता धन पर मरती है और पिता कीर्ति पर प्राण देता है। लेकिन शान्ता का था ही कौन आत्मीय? केवल आश्रम? वह उसे थैलियों पर वलिदान कर सकता था। उसका क्या बल चल सकता था वह अधिकारियों के हाथ की कठपुतली थी, जिधर नचाएँ, उधर नाचने वाली। इसीलिए उसके सौन्दर्य की क़ीमत थी बस दो-चार सौ रुपए—रूप नहीं, धन नहीं, और कीर्ति नहीं।

जब सुशील भाग गया, उसे दो-चार दिन चिन्ता हुई। पर जब नहीं आया, महीने दो महीने बड़ी उत्कण्ठा से द्वार पर देखा, फिर भी दर्शन नहीं हुए। वह मूर्ख नहीं थी, पढ़ी-लिखी थी, थोड़ी-बहुत नहीं, मिडिल तक। उसने सोचा, क्या घूरा-घारी का नाम प्रेम है ? यों तो हम सैकड़ों युवको को देखती हैं, सैकड़ों युवक हमको देखते हैं। इन्ट्रैन्स चीज़ ही क्या है, पढ़ी-लिखी लड़कियों को वर की कमी, वह स्वयं वर चुन लेगी, बड़े-बड़े वकील, बड़े-बड़े बैरिस्टर उनके एक-एक कटाक्ष के लिए तड़पते हैं। शकुन्तला कौन से बड़े घर की बेटी थी ? अभी तो उसकी शादी एक बैरिस्टर से हुई है, जीवित प्रेम देखना हो तो उनमें देखो। फिर उसकी मेरी शादी तो कदापि सम्भव नहीं, फिर चिन्ता ही क्यों ?

सचमुच तर्क बड़ा सुन्दर था, सर्वथा अकाट्य था। एक तो सर्वाङ्ग सुन्दर, फिर पन्द्रहवाँ वर्ष, यौवन अङ्ग-अङ्ग से फूट रहा था। जिसको आँखें एक बार किसी से लड़ चुकी हैं, उसकी नजर टिके कैसे ? अङ्गरेजी शिक्षा, आज़ाद रईस-ज़ादियो का सङ्ग, प्रेम-पत्रिकाओं का अनवरत पाठ और घुल-घुल कर विषय-वार्ता। "एकैकमप्यनर्थाय किमुयत्र चतुष्टयम्।" फिर यदि मधु है तो मतवाले मधुप भी हैं। वे स्वयं उसकी तलाश में रहते हैं। संसार में रसिकों की कमी नहीं है, कन्या-शिक्षणालय के मैनेजर भी उन्हीं रसिकों में एक थे, न गोरे थे, न काले। देखने में कुछ बुरे नहीं थे।

सभी बालिकाओं को अपनी समझते थे। किसी के मुँह पर हाथ फेरते थे, किसी के पीठ पर। ऊपर से नीचे तक अङ्गरेज़ी ठाठ। उम्र अभी चालीस से अधिक नहीं थी। वह आज से नहीं, दस साल से इस संस्था के मैनेजर थे। छोटी श्रेणी से बड़ी तक जवानी के उतार-चढ़ाव को देखते थे। जो माल उम्दा होता, पसन्द आ जाता, फ़ौरन हेड मिस्ट्रेस को हुक्म देते, हाज़िर करो। कोई चाल चली जाती और किसी अबोध बालिका का योंही सर्वनाश कर दिया जाता।

उस पाठशाला में बहुत से माल आए, बहुत से पसन्द किए गए। शान्ता बहुत दिनों से आँख पर चढ़ी हुई थी, इसीलिए अब तक उसे बीसों इनाम मिल चुके थे। जब फेल हुई तब भी इनाम मिला, जब पास हुई तब भी इनाम मिला। एक बार एक साड़ी, एक बार एक घड़ी, एक बार एक मैडल। मैडल चाँदी का था, उस पर मैनेजर का नाम खुदा हुआ था, ख़ास उनकी तरफ़ से ही दिया गया था। अब के वही पसन्द की गई, उसी के नाश की तैयारियाँ हुईं, प्रथम उसी की बानगी की गई।

उस दिन विद्यालय में ऑर्डर आया—आठवीं श्रेणी की कन्याओं को गाना सिखाने का नया प्रबन्ध किया गया है, एक अच्छा गवैया ठीक किया गया है। स्थान पाठशाला ही थी, गाने की प्रेक्टिस बराबर जारी रही। किरण शान्ता से अच्छा गाती थी, लेकिन काली थी, उसे कुछ नहीं मिला।

शान्ता को चाँदी का एक 'कप' मिला। लड़कियाँ मैनेजर जी से बिलकुल बेख़बर नहीं थीं, उन्होंने शान्ता पर व्यङ्ग बाण छोड़ने शुरू किए, मगर वह हँस देती। बात ही कुछ नहीं थी, जवाब क्या देती।

उस दिन छुट्टी थी, पर महरी आश्रम में आई, शान्ता को गाना सिखाने के लिए बुलाने। अधिष्ठात्री ने कहा, छुट्टी है। उत्तर मिला—"गाने की नहीं।" आश्रम भर में अकेली शान्ता आठवीं मे थी। बेचारी गई, आज विद्यालय ख़ाली था, मैनेजर हारमोनियम पर थे, उसका माथा ठनका। पर अब क्या करे? मन्त्री जी ने बड़े प्यार से उसे बैठाया, वह शरमाने लगी। शान्ता काँप रही थी, उसके मुँह से शब्द भी नहीं निकला। लेकिन वह तो कुछ और ही ठान चुके थे। कहते हैं, नारी-हृदय को वश में लाना कठिन है। पर उन्हें अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ा। पवित्र शान्ता पाप-सागर में डूब गई। सुशील भूल गया, प्रथम प्रेम भूल गया। महीनों लुके-छिपे यह क्रीड़ा होती रही, और सुशील? वह कराला के विद्यालय में बर्तन माँज रहा था।

चौदहवाँ परिच्छेद

मियाँ महात्मा

ई वद्रीनाथ जाता है, कोई केदारनाथ, सुशील को यही महात्मा मिल गए। आज आठ बजे नागलोई के स्टेशन पर मिलने का वादा था। उसने पाठशाला से छुट्टी ली और नियत समय से पूर्व स्टेशन पहुँच गया। इधर महात्मा जी भी पहुँचे। सारा गाँव उन्हें जानता था, जिसने देखा उसी ने चरण-रज मस्तक पर रख लिया। सबके लिए एक प्रसाद था और 'आयुष्मन्' यही आशीर्वाद। वह बात नहीं करते थे, भगवद्भजन में मस्त थे, खड़े-खड़े भी माला खड़खड़ा रहे थे। हाँ, तो गाड़ी आई, उस पर चढ़े, गाडी मे भी चुप नहीं बैठे, किसी को वेटा दिया, किसी को वेटी; कोई निराश नहीं लौटा। जो गया, गुण-गान करता गया।

थोड़ी देर में दिल्ली आगई। आगे-आगे महात्मा, पीछे-

पीछे सुशील बढ़ते चले गए। बीस मिनट में वल्लीमारान पहुँचे, फिर गली-गली, कभी इधर मुड़े कभी उधर। जिधर देखो, मुसलमान ही मुसलमान। सन्देह तो हुआ, पर बाप रे बाप, ऐसे महात्माओं पर सन्देह—"संशयात्मा विनश्यति।"

आगे एक क़िला सा मकान था, बाहर भारी सिंहद्वार था, उसमें छोटा सा दरवाज़ा था। उसी में घुसा, लेकिन यह क्या ? यहाँ भी मुसलमान, एक अच्छे डील-डौल का पठान पहरे पर था। उसने झट ताला लगा दिया। फिर क्या ? छद्मवेश उतार दिया, महात्मा पूरा महात्मा बन गया। उसने कहा—'हे भगवान, अब तुम्हीं रक्षक हो !' किन्तु वहाँ भगवान कहाँ ? ख़ुदा का राज्य था, अब करे तो क्या करे, होश-हवाश ही गुम हो गए।

अब महात्मा उसे एक बड़े हाल में ले गए। वहाँ कुछ नौजवान थे। कुछ पड़े थे, कुछ बैठे थे, कुछ ऊँघते थे। इनकी संख्या ५० से कम न होगी। इनमें बच्चे थे, जवान थे, सब को बहका कर लाया गया था। कलमा पढ़ाया जा चुका था। ख़तना हो गया था। सब नज़रबन्द थे। बाल बढ़ गए थे। मुँह पीला पड़ गया था, चेहरे पर अनुताप झलकता था और उनके मस्तक पर मुहर थी—'अन्धविश्वास के शिकार।'

मियाँ महात्मा ने उँगली से उनकी ओर इशारा करते हुए कहा—यह सब ताज़े शिकार हैं। सबने कलमा पढ़

अब उसने कुछ नहीं खाया। दिन भर पड़ा रहा, अपनी हालत विचारता था, आदि से अन्त तक घटनाओं का मेल मिला रहा था। शाम हो गई, महात्मा फिर पहुँचे। उसने बीमारी का बहाना कर लिया। कुनैन दी गई, खा ली, चलो जान तो बची, फिर रात हुई। सारी रात करवटें बदलता रहा। अब घण्टाघर ने टन्-टन् दो बजा दिया। वह उठा, भगवान् का नाम लिया। देखा तो दरबान बेख़बर है। सोचा, भागने का अच्छा मौक़ा है। बाएँ हाथ टट्टी थी, उसमें भी ताला था; क्योंकि उधर से भी रास्ता था, चिड़िया उड़ सकती थी। वह दरबान के पास पहुँचा और कहा—मुझे टट्टी लगी है। नींद की ख़ुमीर में उसने कुछ पूछा नहीं, चाबी दे दी। धन्य भाग्य! पाख़ाने में घुसा और उधर ही से चम्पत!
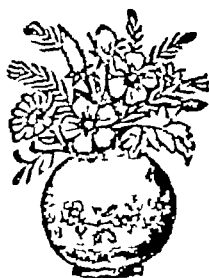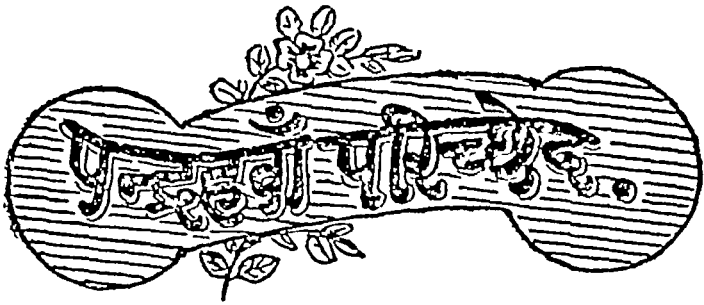
ब्याह की तैयारी

न्ता पूरे सोलह को हो गई। शरीर यौवन की सुगन्ध से गमगमाने लगा, आँखों में मदिरा छलछला रही थी। देखने में मस्ती, सुनने में मस्ती, बोलने में मस्ती, और चलने में मस्ती! अङ्ग-अङ्ग से लावण्य भर-भर भर रहा था। पके हुए सिन्दूरिए आम की तरह गाल लाल-लाल हो रहे थे, देह में रस का स्रोत लहरें मार रहा था, उमङ्ग के वेग से देह फटने को था। वह बिगड़ ज़रूर चुकी थी, बिकी नहीं थी। वह बिगड़ी,नहीं थी, बिगाड़ी गई थी। पहले दिन उसे पता नहीं, कितने प्रलोभन दिए गए थे, प्यार का कितना स्वाँग रचा गया। अब उसे पता लगा कि यह कोरी विडम्बना थी—बिलकुल जाल था। पर

पैंतीस की ही होगी, पर मुँह पर सिकुड़नें पड़ गई थीं। उस दिन बन-ठन कर आया था। मन्त्री ने उसे बड़ा दिलासा दिया। मथुरा के दो-चार वकीलों की चिट्ठी ली। साथ-साथ दिल्ली आया, हेल्थ ऑफिसर से मिला। उनके नाम एक चिट्ठी थी, एक घनिष्ठ मित्र की लिखी हुई थी, बस काम बन गया। जिस सार्टिफिकेट के लिए सैकड़ों प्रयत्न करने पड़ते हैं, बीस-बीस साल के पट्ठों को भी सैकड़ों चक्कर काटने पड़ते हैं, उससे कहीं अधिक बढ़िया योंही मिल गया।

कागजात कमेटी में पेश हुए, बनिया बाज़ी मार ले गया, सिफारिशें उसकी अधिक थीं। वह पैंतीस साल का है, इससे क्या? डॉक्टर ने लिख दिया, उसकी उमर केवल पच्चीस की है, काम करने से ज़रा चेहरा बिगड़ गया है। बिलकुल ठीक! काम करने से आँखें धँस जाती हैं, मुँह पिचक जाता है, चाम सिकुड़ जाता है, पैर चौड़े हो जाते हैं और हाथ मोटे हो जाते हैं। 'इन्टरविड' हो गई, लेकिन बुड्ढा जवान बना रहा। सर्वसम्मति से निश्चय हो गया कि बनिया शान्ता के लिए सबसे उपयुक्त वर है।

बेकार
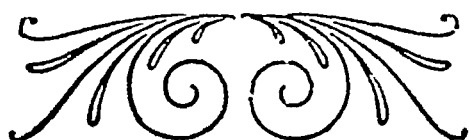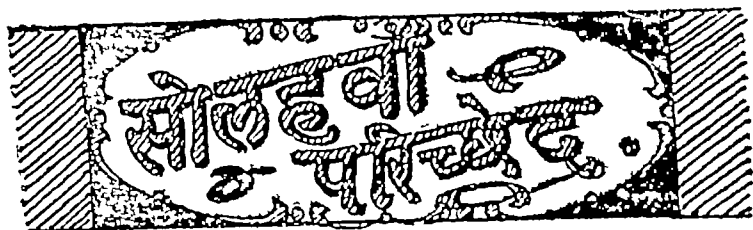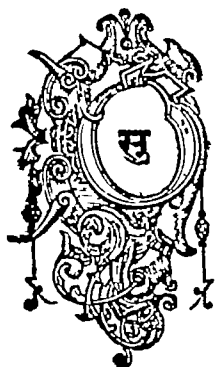
शील बल्लीमारान से भाग तो आया, लेकिन कहीं का न रहा। सोचा था अपने पाँव आप खड़ा होऊँ, कहीं नौकरी कर लूँ। कल का भूखा था, दिन भर मारा-मारा फिरा, सड़कों की धूल छानता रहा, गलियों की बू सूँघता रहा, नौकरी नहीं मिली। वह बाप को नहीं जानता, माँ को नहीं जानता, बस जानता था अनाथाश्रम को। लेकिन उससे उसे कितनी घृणा थी। सचमुच अनाथाश्रम उसका घर था, अधिष्ठाता पिता और उसकी पत्नी माँ। इस तरह पिता था, माता थी, पर दोनों कितने बदमिज़ाज, कितने स्वार्थी, कितने क्रूर! अपने थे तो क्या? उनसे आशा ही क्या है? न तब थी, न अब है।

इन्ट्रैन्स तो पास ही था, लिखता अच्छा था। लिखता

क्या था, मोती पिरोता था। क्लर्की के योग्य था, पर रक्खे कौन ? जगह ही नहीं थी। उस दिन दरियागञ्ज का कोई स्कूल नहीं छोड़ा। सबको ट्रेण्ड चाहिए। लिखने को ट्रेण्ड, कॉपी करने को ट्रेण्ड, हाज़िरी लगाने को ट्रेण्ड और नाम लिखने को ट्रेण्ड। वह अनट्रेण्ड था। बात भी ठीक है, गवर्नमेन्ट ट्रेण्ड चाहती है। ट्रेण्ड की ग्रान्ट देती है।

एक स्कूल अभी बाक़ी था। इसमे वह पहले पढ़ा था। यहीं आशा का अन्त था। घूमते-घूमते थक गया था, देह टूट रही थी, पैर टूट रहे थे। भूखा था, आज तक कभी इतना नहीं चला था। तब भी गया और अनेक आशाओं के साथ। शाम होने को थी, स्कूल बन्द था, ऊपर की मञ्ज़िल में होस्टल था, पर उसे ऊपर जाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ा। नीचे ही सुपरिन्टेन्डेन्ट मिल गए, उन्होंने कोरा जवाब दे दिया, जगह नहीं है।

"मैं आपका ही छात्र था श्रीमान् !" बड़ी दीनता से सुशील ने अङ्गरेजी में कहा।

"स्थान ही नहीं है, लाचारी है !" बड़ी रुखाई से उत्तर मिला। यही उसका अन्तिम अस्त्र था, जिसको वह अमोघ समझे बैठा था। वह इतना फीका निकला।

"क्या चपरासी का काम भी नहीं मिलेगा श्रीमान् ?" दुःखभरी उत्कण्ठा से फिर पूछा।

"स्थान तो वह भी भरा है, पर तुम हेड मास्टर से मिलो, शायद वह रख लें।" जरा कोमल शब्दों में उत्तर मिला।

अब उसमें चलने की शक्ति ही नहीं रह गई थी। अभी उसके पेट में दाना तक नहीं पड़ा था। उस समय हेडमास्टर की सेवा में जाना असम्भव था। अब और ही चिन्ताएँ थीं। खाए कहाँ? सोए कहाँ? स्वावलम्बन टेढ़ी खीर है, उसके लिए और भी जो दीन-दुनिया कहीं का नहीं है—पथ का भिखारी है। किन्तु जिसमें थोड़ा भी आत्मबल है, वह इन कष्टों को मज़े में झेल लेता है। जब कष्ट ही न हो तो कष्ट कैसा?

सुशील समझदार अवश्य था, पर इस दर्जे तक नहीं पहुँचा था, इसी से उसे दुःख था, अधिक नहीं तो थोड़ा अवश्य। एक तो भूखा, फिर थका-माँदा, ऊपर से चिन्ताओ का बोझ, उसने सोचा कहीं मज़दूरी ही कर लूँ, चार पैसे मिल जायँगे, भूखा तो नहीं रहूँगा। उसके भाग्य अच्छे थे, एक सज्जन स्टेशन जा रहे थे। एडवर्ड-पार्क के पास उनका घर था। सामान बस एक बिस्तर और एक बैग। ताँगे की प्रतीक्षा में थे। "बाबू! कुली चाहिए?" सुशील ने नम्रता से पूछा। बाबू साहब अमीर नहीं थे, शौकीन थे, मर्ज़ी ताँगे पर जाने की थी, सुशील पर दया आ गई, उसकी सुन्दरता पर तरस आ गया। उन्होंने सुशील को सामान दिया, वह आगे-आगे और सुशील पीछे-पीछे चला।

स्टेशन आया, कई कुलियो ने बाबू को घेर लिया। लेकिन सुशील ने कहा—मैं ही भीतर पहुँचा दूँगा।

बाबू साहब ने अपने लिए लाहौर का टिकट लिया और कुली के लिए प्लेटफ़ॉर्म का, क्योंकि बिना नम्बर के भीतर जाना मना था। वह उन्हे पहुँचा आया, एक चौवन्नी मिल गई।

अब तो वह फूला नहीं समाया। एक रोटी वाले की दुकान पर गया। चार आने सेर रोटी थी, आध सेर तुलवा ली। छक कर खाया। लक्ष्मीनारायण की धर्मशाला पास थी, वहीं जाकर सोया। जब वह उठा, दिन चढ़ चुका था। वहीं नहाया-धोया, फिर हेडमास्टर के डेरे पर जा पहुँचा। नौकरी नहीं मिली। चपरासी का काम नहीं मिला।
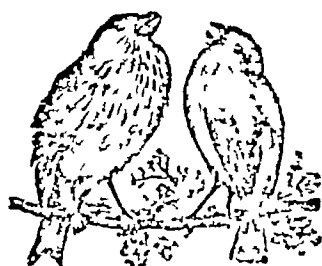
गठबन्धन
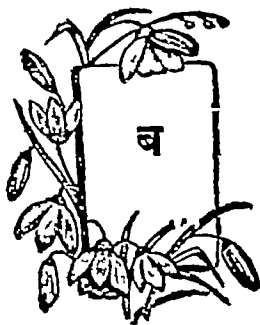
दरपुर नामक एक छोटा सा कस्बा मथुरा के पास है। लाला कूड़ेमल वहीं के बाशिन्दे थे। यही सज्जन आज के अभिनय के सूत्रधार थे। इस ढलती उमर में षोडशी मिल गई। पूर्व रङ्ग हो चुका था, पर अभी अभिनय होना शेष था। लेकिन कूड़ेमल निश्चिन्त थे। खूब बन-ठन कर आए थे, उनकी शोभा देखते ही बनती थी। सिर पर रेशमी दुपट्टा, गर्मी में भी गले में दुशाला, छीट का एङ्गलो-इण्डियन कोट, बेवाई वाले पैर में जुर्राब, ऊपर से फ्लेक्स शू, अद्भुत शोभा थी। जब घर से निकले, कई बार आइने में मुख देखा, कई बार पगड़ी बाँधी और खोली, बार-बार कोट की सिलवटें दूर कीं, बड़ी मुश्किलों से यह बाना पसन्द पड़ा। सचमुच यह उन पर खूब फबता था।

आज वह अकेले नहीं थे, दोनों लड़कों को बहुत फुस-लाया। नहीं माने, बाराती बन ही गए। मन्त्री दलाल थे, उनका होना आवश्यक था। एक और उनके दोस्त थे। सब बड़े ठाठ से घर से निकले थे। जब दिल्ली आए, लौंडे फबतियाँ कसने लगे, कुत्ते देखते ही भौंकने लगे। यही उनका समुचित स्वागत था।

हाँ, तो जब बारात आई, आश्रम में ठहरा दी गई। अभी वर-कन्या-मिलन बाक़ी था। वह एक हिन्दू-अनाथाश्रम था। वहाँ लड़की अब तक क्वाँरी कैसे रह गई? वहाँ स्वयम्बर का नियम कैसे बना? वहाँ 'अष्टवर्षा भवेद्गौरी' के सिद्धान्त के सब क़ायल हैं, यही आश्चर्य की बात है। उन दिनों 'हिन्दू-रक्षिणी सभा' में आर्यसमाजियों का बोल-बाला था। समाजी-सनातनी का झगड़ा ज़रूर था; फिर भी बहुमत प्रधान है, उसकी विजय निश्चित है। शायद इसीलिए वहाँ भी नवीनता घुस गई थी।

हाँ, तो कूड़ेमल ने किस बुरी साइत में घर छोड़ा। लड़की उनकी शकल से चिढ़ गई। उनको देखते ही फूट-फूट कर रोने लगी। अधिकारी बड़े पसोपेश में पड़े। इधर नियम का निर्वाह आवश्यक था, उधर मोटी मुर्गी हाथ से निकल रही थी। तारीफ़ तभी है—साँप मरे न लाठी टूटे।

अधिष्ठाता यही बुड्ढे हुए थे। पूरे अनुभवी थे। एक नहीं, सैकड़ों 'केस' देख रक्खा, बातों-बातों में सुलझाया था। बस

उन्होंने झट पटाक्षेप कर दिया। उस समय बड़ी सावधानी से काम लिया। कूड़ेमल जब बाहर आए, चेहरा उतर गया था। वह भाग्य को सराहते थे, रोने पर रोते थे। उनके मन में भाँति-भाँति के भाव उठ रहे थे। अधिष्ठाता से यह अलक्षित नहीं रह सका। उसने मीठी-मीठी बातें शुरू कीं। बहुत तरह दिलासा दिया। साथ ही यह भी कहा कि शान्ता दुकान भर में सबसे खरा माल है।

जैसे-तैसे दिन के तीन बज गए। शादी शाम को ही थी, पर अभी तक सौदा नहीं पटा था। निदान अधिष्ठाता जी फिर मैदान में उतरे। शान्ता को उन्होंने बहुत-कुछ ऊँच-नीच समझाई, पर उस पर कुछ प्रभाव नहीं। वह बनिए की शकल से ही डरती थी। उसका सारा खेल बिगड़ गया था। आँसू अब भी उसकी आँखों में थे। उसने एक पुर्जा लिखा था। बड़े यत्न से उसे अब तक छिपाया था। अब कोई चारा ही नहीं था। साँस रोक कर अधिष्ठाता को दे दिया। सिर नीचा कर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। अधिष्ठाता ने पुर्जा लिया, झट पढ़ लिया। कुछ बोला नहीं, उसके मस्तक पर बल पड़ गए। एक बार उसकी ओर आग्नेय नेत्रों से देखा। फिर कुछ बोला नहीं, बाहर आ गया।

विवाह विवाह में अन्तर है। लोग लड़की-लड़के के विवाह में हौसले पूरे करते हैं। मगर वहाँ कुछ नहीं, बस यज्ञवेदी बन गई, सामग्री आ गई, पण्डित आए। जो काम दो

घण्टे पीछे होना था, अभी होने लगा। अधिष्ठाता के पेट में पानी था। यों तो सुस्त था, काहिल था, स्वयं वह एक तिनका तक नहीं हिलाता था, लेकिन उस दिन बड़ा चुस्त था। सबको चुस्ती सिखा रहा था। यह चुस्ती उस पुर्जे में थी। शान्ता की अनुमति फिर नहीं पूछी गई, फ़ौरन उसे बलिवेदी पर बैठा दिया गया।

संस्कार बड़ी तेज़ी से हो रहा था। एक पण्डित थे, दो उनकी दुम। इनको बुलाया नहीं गया था, स्वयं आए थे, केवल दक्षिणा के लिए। वर के गले में माला डाली गई। विवाह-मण्डप में ऊधम-सा मच गया। संस्कार रुक गया। कूड़ेमल के दोनों बच्चों ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया। दोनों लड़ते थे, पिता के गले से माला छीनते थे। एक ने इधर खींचा, दूसरे ने उधर। बीच में कूड़ेमल ने पकड़ लिया। इसी से ऊधम मच गया। बेचारी माला का कचूमर निकल गया। अधिष्ठाता ने इशारा किया, दोनों बच्चे दूर हटा लिए गए।

संस्कार सानन्द होने लगा, पर कन्या के आँसू टप-टप गिरते थे। जब अग्नि में पड़ते, छन-छन होता था। बेचारी आँसुओं की आहुति दे रही थी। वहाँ सब क़साई थे। उल्लू सीधा करने की फ़िक्र में थे। आश्रम क़साई, अधिष्ठाता क़साई, वर क़साई और पण्डित क़साई। किसी में ज़रा भी दया नहीं। सब बद-बद कर ज़िबह कर रहे थे।

यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। वर-वधू पति-पत्नी बन गए। आज-कल खिलाना मुश्किल है। लड्डू का रिवाज है। अब लड्डू की बारी आई। सब को चार-चार मिले। सब ने दोने सँभाले। वर भूखा था, सब बैठे थे। किसी से पूछा तक नहीं। साबित मुँह में डाल लिया। लड्डू जरा बड़ा था, गले में फँस गया, पानी से नीचे उतरा। जरा दिल्लगी हो गई। बच्चे नहीं थे, नहीं तो और मजा आता। चलो अच्छा उपसंहार हुआ।

वर महाशय ने तीन सौ आश्रम को दिए। आश्रम की ओर से धन्यवाद दिया गया। बारात अगले दिन जाने वाली थी, लेकिन उसी दिन विदा कर दी। चतुर अधिष्ठाता ने बड़े ढङ्ग से टरकाया। ताँगे मँगाए गए, उनपर बारातियों को बैठाया गया। शान्ता धाड़ मार कर रोती थी, पर सबका हृदय वज्र था, पिघला ही नहीं। जब बारात बाहर पहुँच गई, अधिष्ठाता ने शान्ति की साँस ली।
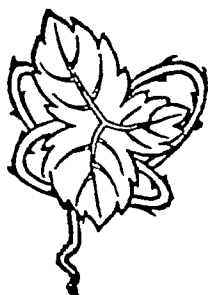
उस समय अधिष्ठाता उठ गया था। घण्टे भर बाद स्वयं गया, सुशील को भी साथ लेता गया। अब क्रोध ठण्डा पड़ गया था। बहुत देर बाद कहा—अच्छा, तू भी तेल मालिश कर देना, रह जा, रोटी मिल जायगी।

सौदा बुरा नहीं था, पर एक-दो दिन के लिए। वह अधिष्ठाता के रोजमर्रा की आदतों से परिचित था। वह रह तो गया, पर यही सोचता रहा, यह 'डायर शाही' कैसे सही जायगी।

सुशील ने वैद्यराज की नौकरी छोड़ दी, यहीं आकर रहने लगा। वह अपनी दशा की तुलना करता था, पहले से और अब से। वह जितना विचारता था, अपनी दीनता पर आप ही कुढ़ता था। वह अब भी अनाथ था। खाने में अनाथ, पहनने में अनाथ। हाँ, थोड़ा सा अन्तर अवश्य था—पहले मुफ्तखोर था, खाता था हाथ पर हाथ धर कर, लेकिन अब काम कर खून को पसीने की तरह बहा कर। कहने को काम तेल मलना था, पर चन्दा माँगने की 'ड्यूटी' सुपुर्द हुई थी। दिन भर धूप में फिरता था, द्वार-द्वार माँगता था, पाई-पाई बटोरता था, किसी की झिड़की सुनता था, किसी की गाली खाता था। लोग खाते खूब हैं, उड़ाते खूब हैं, पर देने में सबकी छाती फटती है। मुनीम कहते हैं सेठ जी नहीं हैं, सेठ जी कहते हैं मुनीम नहीं है। अजब तमाशा है। पैसे मुश्किल से आते हैं। माँगना बड़ा ही कठिन काम है।

काम इतना ही नहीं था, बहुत था। चिट्ठी लिखना, चिट्ठी पढ़ना, तीन मील से कुएँ का पानी लाना, अधिष्ठाता को उठाना, दातून लाना, दातून के साथ मञ्जन की याद दिलाना, कभी-कभी तेल मलना और डेली अखबार सुनाना। कभी कोई नौकर भाग गया, काम और बढ़ गया, बच्चा खिलाना, उन्हें घुमाना-फिराना।

सुशील ने समझा था कि पेट ही बेचा है, काम थोड़ा होगा, पढ़ूँगा तो सही। मगर यहाँ मरने की फुरसत नहीं, दिन में काम, रात मे काम। वह कब का भाग गया होता, लेकिन उस युवक के स्नेह में रुका था। एक दिन वह युवक चला गया, काम छोड़ गया। अब सुशील का मन भी उचट गया, वह अब भी चन्दा माँगता था, साथ ही नौकरी भी ढूँढ़ता था।

पण्डित जी

ल्ली से हिन्दी का एक पत्र निकला। पण्डित जी उसी के सम्पादक थे। हिन्दी नहीं लिख सकते थे, परन्तु थे हिन्दी के सम्पादक। लोग कहते हैं हिन्दी बढ़ रही है, पत्र बढ़ रहे हैं, पत्रिकाएँ बढ़ रही हैं, कवि बढ़ रहे हैं, लेखक बढ़ रहे हैं और प्रकाशक बढ़ रहे हैं। यह सत्य है, पर सम्पादन-कला की बड़ी छीछालेदर है, ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे सम्पादक की कुर्सी पर आसीन हैं—अध्ययन नहीं, अनुशीलन नहीं। उनका कहना है, लेख चाहिए, फिर सम्पादन क्या बला है? जो चिट्ठी लिख सकते हैं, अच्छे लेख मँगा सकते हैं, सावधानी से प्रूफ देख सकते हैं, हिन्दी में अधिकतर वही कुशल सम्पादक हैं, ऐसे ही सम्पादक शिरोमणि हैं।

पण्डित जी भी इसी श्रेणी के सम्पादकों में थे। बड़े पुरुषार्थी थे। पूँजी नहीं थी, सौ पृष्ठ का पत्र निकालते थे। वह पहुँचे हुए नौजवान थे, बड़े सावधान, बड़े चतुर, बड़े-बड़ों के कान काटते थे। चकमा देना तो उनके बाएँ हाथ का खेल था। जो सौदा किसी से न पटे, वह फ़ौरन पटा लावें, जो चिड़िया किसी से न फँसे वह फ़ौरन फँसा लावें। उनके पास प्रेस था, ख़रीदा हुआ नही, ठेके का—सिर्फ दो साल के लिए ठेके पर लिया था, अब तीन साल हो गए, क़िस्तो में रुपया चुकाते थे। बड़ी-बड़ी नोटिसबाज़ियाँ हुईं, साफ निकल गए, कोई बाल भी बाँका नहीं कर सका। अब भी वह उनके पास था, वहीं से एक पत्र निकलता था, पण्डित जी उसी के सम्पादक थे।

सुशील उन्हीं के यहाँ गया। उन्हे कर्मचारियो की सख़्त ज़रूरत रहती थी, उन्होंने दो-चार चिट्ठी लिखाई, चेहरा-मोहरा देखा। लिखाई अच्छी थी, चेहरा-मोहरा अच्छा था, चट रख लिया। वेतन पर नहीं, ट्रायल पर। दो-एक दिन के लिए नहीं, दो मास के लिए। सुशील सम्पादक क्या थे, काम करने की मैशीन थे। कितने सहकारी आए, कोई नहीं टिका। सब ट्रायल पर रहे, किसी को पाई तक नहीं मिली। किसी-किसी ने कोर्ट तक घसीटने की धमकी दी, पर स्वयं पिछड़ गया। आजकल भी ऑफ़िस ख़ाली था। सारा बोझ उन्हीं पर था। पत्र लिखना, पता लिखना, प्रूफ़ देखना, पैक

कह दिया था कि उसकी शादी आज हर्गिज़ न होगी। लेकिन उसी दिन हो गई। उसकी सहेलियाँ क्या कहती होंगी? उनके व्यङ्ग की झङ्कार को वह १०० मील से भी अच्छी तरह सुन रही थी। वह कहती थी—"हाय! मैनेजर कितना दग़ा-बाज़ निकला, उसने ज़बान से एक शब्द नहीं निकाला। मुझे भेड़-बकरी की तरह इस बुड्ढे के गले मढ़ दिया गया। पाखण्डी उस दिन मुँह तक दिखाने नहीं आया। हाय! मैं तो कहीं की न रही, मुझे मुँह दिखाने लायक़ नहीं रक्खा।" फिर वह कुछ समय तक विचार में पड़ गई। उसने इस घटना की सिलसिलेवार आलोचना शुरू कर दी। बहुत से अपराधी ठहरे, सब ग़ैरहाज़िर। यहाँ तो कोई नहीं था, हाँ बनिया था। सारा गुस्सा उधर ही आ पड़ा। वह कम अपराधी नहीं था, वही पाप की जड़ था। उसने ठान लिया, अवश्य बदला लूँगी, नाक में नकेल डाल कर नचाऊँगी।

हुआ भी यही। बनिया घर भर में अकेला था। रोटी तक भाई के घर खाता था। बच्चे वहीं रहते थे। इस नई शादी में कोई शरीक नहीं था, सब बिगड़ उठे थे। शान्ता के जात का पता नहीं, गोत्र का पता नहीं, इसीलिए भाई तक रूठ गए। बहू का मुँह तक देखने कोई नहीं आया। सारा घर सूना था, मिसेज़ कूड़ेमल अकेली थी। कूड़ेमल अभी तक दुकान में थे, खाना पकाने का सब सामान भेज दिया था। यही सोचते थे, बीबी ने रोटी पकाई होगी, प्रेम से खिलाएगी।

लेकिन जब घर आए, चूल्हा ठण्ढा पड़ा था, चीज़ें बिखरी पड़ी थीं। शान्ता भुनी बैठी थी। वह रोटी पकाने नहीं आई थी, बासन माँजने नहीं आई थी, वह आई थी घर की रानी बनने, पति पर हुकूमत करने और यौवन का सुख लूटने। एक बार कभी उसकी सहेली ने मान ठाना था, पति से असहयोग किया था, सत्याग्रह का कठोर व्रत धारण किया था और वह सफल हो गई थी। पति से जो चाहा, करवा लिया, उसको वह कथा याद थी। आज उसने भी यही किया।

'प्रथम चुम्बने नासिका भङ्गः—कूड़ेमल के तो होश उड़ गए। यह कैसा श्रीगणेश है। पास गया मनाने के लिए। अभी दूर था, दूसरी ओर चली गई। उसके पेट में चूहे कूद रहे थे। सोचा, भोजन बनाता हूँ, खिलाऊँगा, मनाऊँगा। बेचारे के घर नौकर कहाँ? स्वयं चूल्हा फूँकने बैठा। लकड़ी अच्छी नहीं थी, आध घण्टे में आग जली। धूएँ से आँखें लाल हो गईं, नेत्र आँसू से तर हो गए। अब आटा गूँदा, पतिदेव रोटी पकाने लगे। पत्नी खाट पर विराजमान थीं। रोटी तैयार हो गई, शाक पक गया, मानिनी का मान नहीं टूटा। नौकर रखने का वचन दिया, पैरों में पड़ा, तब देवी जी ज़रा नरम पड़ीं। रोटी खाने बैठीं। पति कृतकृत्य हो गया।

पति ने समझा, नौकर के लिए सारा हङ्गामा था। कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायगा। कूड़ेमल शान्ता की ख़ूबसूरती का दीवाना था, उसकी मीठी बोली सुनने को

थी। हर मास दस-बीस खोद कर निकालने ही पड़ते थे। साथ में दस बीस और, नहीं तो देवी रूठ जातीं। इसी तरह आठ मास बीत गए, ६००) रु० खर्च होगए। उधर मिसेज़ कूड़ेमल का पेट लटक गया, कूड़ेमल के आनन्द का पारावार नहीं रहा।

प्रोफ़ेसर स्टोक्स

शील पूरा भगोड़ा निकला। जहाँ गया वहीं से भागा। उस दिन मई की बीस तारीख थी। फिर भी मार्च का हिसाब चुकता हुआ था, उसे भी १०) मिले थे। वही अण्टी में थे, इसी का उसे भरोसा था। इसीलिए मालिक से लड़ा-भिड़ा नहीं, बस भाग चला, यही अच्छा साधन था। इसी में वह अभ्यस्त था। हाँ, तो उस दिन दुकान की पटरी पर सो रहा। वह नीचे रहता था। भागते समय दरी-चादर लेता आया था, उसे सिरहाने रख लिया। वहीं सुबह हो गई। जब दुकानदार पहुँचा, उसे लात मार कर उठाया। वह आँख मलता उठा। सरकारी पैखाने में पैखाना गया और सरकारी नल में नहाया।

दस रुपए होते क्या हैं। दिल्ली में कब तक ठहरेंगे? महीना भी नहीं चलेगा, खाने को भी पूरा नहीं पड़ेगा। अब

फिर नौकरी की तलाश। अब जाए किधर ? कोई जानता तक नहीं। उसने सोचा, कोई अखबार देखूँ, शायद जगह निकल आवे। फ़ौरन् पुस्तकालय पहुँचा। मारवाड़ी पुस्तकालय यहाँ से थोड़ी दूर था, वहाँ मुफ़्त अख़बार पढ़ सकते थे। हिन्दुस्तान टाइम्स उठा लिया। वाण्टेड देखने लगा। उसकी दृष्टि एक नोटिस पर पड़ी। वह हर्ष से उछल पड़ा।

बीस रुपए बहुत होते हैं। अच्छी तरह ख़र्च निकल जायगा। वह नौकरी का नोटिस नहीं था, एक वज़ीफ़े का विज्ञापन था। जो छात्र एफ़० ए० में पढ़ना चाहे, संस्कृत उसका ऐच्छिक विषय हो, उसको २०) मासिक मिलेगा, लेकिन कॉलेज में भर्ती हो जाने तथा प्रिन्सिपल या प्रोफेसरों की सिफ़ारिश पर। सुशील प्रसन्न तो था, पर दूसरे अंश ने ज़रा उसे सोच में डाल दिया। यह शर्त कुछ कठिन थी, कॉलेज में दाखिल होना, सिफ़ारिश लाना।

भाग्य सीधे हों, सब कुछ हो जाता है। हिन्दू कॉलेज का नाम उसने सुना था, पहले वहीं गया। उस दिन रविवार था। कॉलेज की तो छुट्टी ही थी, बोर्डिङ्ग में सुपरिन्टण्डेण्ट साहब से मिला था। उन्होंने उसे डरा दिया, साफ़ कह दिया कि सिफ़ारिश मुश्किल है।

आगे मिशन कॉलेज था। उसका दिल तो टूट गया था, पर साहस किया। यहाँ के सुपरिन्टेण्डेण्ट अङ्गरेज़ थे। पहले घण्टी बजानी पड़ती थी, तब वह बुलाते थे। सुशील ने

बटन दबा दिया, साहब स्वयं बाहर आए। यह क्या ? वह इनको भूला नहीं था, जब वह अनाथाश्रम में था, यह पैदल आते थे, बच्चों को तरह-तरह के खेल खिलाते थे, गन्दे-गन्दे बच्चों को कन्धे पर बिठा लेते, उनसे हँसते-खेलते थे। कोड़े के खेल में बड़ा मज़ा आता, लड़के उन्हें कोड़े मारते थे, वह हँस देते थे। सप्ताह के दो दिन उनका आगमन होता, उस दिन बच्चे उनकी प्रतीक्षा करते, उनसे हँसते-खेलते और वह उनको प्यार करते थे।

अधिकारी उन्हें बेवक़ूफ़ समझते थे, बच्चे उनको बेवक़ूफ़ समझते थे, सुशील भी उन्हीं में था। वह भी उन्हें बेवक़ूफ़ समझता था। वह बेवक़ूफ़ नहीं, उनको बेवक़ूफ़ समझने वाले बेवक़ूफ़ थे।

एक दिन उन्होंने लड़कों से कहा, गाना गाओ। सब हँसते थे, किसी ने नहीं गाया। वह स्वयं गाने लगे। बच्चों के लिए अङ्गरेज़ी शब्द, उनके बोलने का ढङ्ग, गाने का ढङ्ग, सब कुछ कौतूहल की सामग्री बन गए। फिर एक दिन नहीं, रोज़ यही गाना गाते थे, गवाते थे। दो-तीन मास में एक महान् कार्य कर लिया। आश्रम के आधे लड़कों को यह एक छन्द नहीं, सारा गाना याद हो गया। फिर 'प्रेयर' सिखाई गई। एक-एक वाक्य करके वह भी याद हो गई।

सुशील ने अपने भाग्य को सराहा। सुशील जैसे आश्रम में कितने लड़के थे, फिर भी उन्हें पहचानने में देर नहीं लगी।

अनाथ समझ कर उसका तिरस्कार नहीं किया, फ़ौरन हाथ मिलाया, भीतर ले गए और कुर्सी पर बैठाया। वह हिन्दी कम जानते थे, अङ्गरेज़ी में ही सब हाल पूछने लगे। बीच-बीच में हिन्दी की पुट भी लगा देते थे। सुशील ने अपनी राम-कहानी कह सुनाई। सहानुभूति से उनका हृदय भर आया। उन्होंने उसके दुःख पर दुःख प्रकट करते हुए कहा—यद्यपि दाख़िला बन्द हो गया है, फर्स्ट डिवीज़न के इन्ट्रैन्स को हम लेते हैं, फिर भी तुम्हे ले लेगें, सिफारिश करा दी जायगी, वज़ीफ़ा मिल जायगा, नहीं मिला तो कॉलेज से दिला देगें।

सुशील ने जिनको पागल समझा था वह सचमुच पागल थे, पर अपने मिशन के। ऑक्सफ़ोर्ड के एम० ए० थे। स्कॉट-लैण्ड में जन्मे थे। लखपती बाप के बेटे थे। ईसाइत का प्रचार करने आए थे। कॉलेज में प्रोफेसर थे। आठ-नौ सौ मासिक लेना उनके लिए मामूली बात थी, चाहते तो शिक्षा-विभाग में उच्च से उच्च पद पा सकते थे, लेकिन कॉलेज से पैसा भी नहीं लेते थे। अवैतनिक सेवा करते थे। दिल्ली से चार मील पर उनका आश्रम है, वहाँ गाँव के गाँव ईसाई हैं। उन्होंने किसी को शुद्ध नहीं किया।

सुशील का काम बन गया। प्रोफ़ेसर साहब की कृपा से वज़ीफ़ा मिल गया। फीस माफ़ हो गई। होस्टल में मुफ्त जगह मिल गई।

बाईसवाँ परिच्छेद

ऑक्सफ़ोर्ड मिशन-हाउस

सुशील अब दिल्ली के मिशन-कॉलेज में पढ़ता था, वह पढ़ने में पहले ही तेज़ था, पैसे की कमी थी, वह भी पूरी हो गई, वह अच्छे लड़कों में गिना जाने लगा। एक तो होशियार, फिर प्रो० स्टोक्स का कृपा-पात्र, सोने में सुगन्ध। कॉलेज में उसका अच्छा मान होने लगा। कॉलेज एक महीने तक खुला रहा, फिर गर्मी की छुट्टी हो गई। तीन मास के लम्बे अरसे के लिए सब एक-दूसरे से पृथक् हो गए। कॉलेज के दिनों में प्रोफेसर साहब सुपरिन्टेण्टेण्ट रहते थे, छुट्टी में अपने आश्रम चले जाते थे। इसी आश्रम का नाम था ऑक्सफोर्ड मिशन-हाउस।

ऑक्सफोर्ड मिशन-हाउस क्या था, दस-पन्द्रह बीघे

ज़मीन में बाग़ ही बाग़ था। सभी क़िस्म के बढ़िया से बढ़िया फल, एक तरफ फुलवाड़ी, रङ्ग-बिरङ्गे देशी-विदेशी फूल। बीच में थोड़ी-थोड़ी दूर पर दो बँगले तथा दो और सुन्दर कमरे थे। एक में प्रो० स्टोक्स का परिवार रहता था, दूसरे में पादरी साहब।

दरवाज़े के पास ही एक भव्य गिरजा था, दूर-दूर से लोग यहाँ एकत्र होते थे और सुबह-शाम प्रार्थना करते थे।

१० जुलाई को जब कॉलेज बन्द हो गया, प्रोफ़ेसर साहब सुशील को भी वहीं लेते आए। वह उनसे अङ्गरेज़ी पढ़ना चाहता था, इसलिए उनके साथ रहना आवश्यक था। यों तो होस्टल ख़ाली हो गया था, सब अपने-अपने घर चले गए, पर उसका था ही कौन ? न माँ न बाप, प्रो० स्टोक्स ही सब कुछ थे, इसी से वह उन्हीं के आश्रम में चला गया। उस समय वह अनाथाश्रम का सुशील नहीं था, बर्तन माँजने वाला सुशील नहीं था, बल्लीमारान का सुशील नहीं था, तेल मलने वाला सुशील नहीं था, अब वह हो गया था साहब, प्रो० स्टोक्स का आत्मीय ! प्रोफेसर साहब ने उसका चोला ही बदल दिया था, कोट, पतलून, टोप, टाई सब कुछ यथास्थान शरीर पर मौजूद थे। दिन-दिन प्रोफ़ेसर साहब पर उसकी श्रद्धा बढ़ती जाती थी, वह उनका भक्त हो गया था। अकेला वही नहीं, गाँव के गाँव उनके भक्त थे, हज़ारों

मनुष्य उनका स्मरण प्रातः उठते ही करते थे, सैकड़ो उनकी कृपाओं के आभारी थे, सहस्रों उनके उपकार से दबे थे।

सुशील प्रो० स्टोक्स के परिवार में हिल-मिल गया था। यह परिवार लखपतियों का परिवार नहीं था, वहाँ साहब नहीं थे, मेम नहीं थीं। उन्होंने एक जाटनी से शादी की थी, उसे ही मेम साहब बनाया था। उसी के बच्चे हुए थे, एक लड़का दो लड़की। दिल्ली में उनका ठाठ साहबी होता था, परन्तु यहाँ एक ख़ासे जाट बन जाते थे। उनके लड़की-लड़के बाहर कितने ही बनते फिरें, यहाँ साधारण वेश में रहना पड़ता था, सादा जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

प्रो० साहब का लड़का देहरादून के फॉरेस्ट कॉलेज में पढ़ता था और लड़कियाँ दिल्ली के कीन मेरी स्कूल में। उन दिनों फ़ॉरेस्ट कॉलेज खुला था, इसलिए लड़का वहीं था। पर मेरी स्कूल बन्द हो चुका था, इसलिए दोनों लड़कियाँ भी मिशन-हाउस मे आ गई थी। सुशील से उनकी अत्यधिक घनिष्ठता हो गई थी। मिसेज़ स्टोक्स तो उसे हद से ज्यादा प्यार करती थीं और लिली तो उस पर जान ही देती थी। सुशील अभागा था, इतना प्यार उसे कहाँ मिला था, इस प्यार में पल कर उसका क़द काफी बढ़ गया था, देह पर चर्बी छा गई थी, चेहरा दमकने लगा था। खा-पीकर पट्ठा हो गया था। वह अपने पूर्व जीवन को भूल सा गया था। सोचता था, इनसे बढ़कर आत्मीय कौन होगा?

प्रो० स्टोक्स ने सुशील को ईसाई बनाने के लिए पूरी तैयारी कर ली थी, पर अभागे को अब तक नहीं सूझा कि यह सब जाल है, धोखे की टट्टी है। वे उसे बाइबिल पढ़ाते थे, लड़कियों के साथ बैठा कर घण्टों बाइबिल पर व्याख्यान देते थे। इन बातों से एक बार सन्देह भी उठा, लेकिन फिर बैठ गया। यदि ऐसा होता तो कुछ कहते नहीं, बाइबिल पढ़ाते हैं; इससे क्या? इससे अङ्गरेज़ी सुधरती है, ईसाई हरगिज़ नहीं बनता।

एक दिन दो चमारों में झगड़ा होगया। दुःखन के बेटे के पास एक मोम साहब था, सुक्खू के बेटे ने उसे तोड़ दिया, सुक्खू के बेटे ने उसे मारा, उसने अपने बाप से शिकायत की, वस मार-पीट हो गई। बुद्धन भङ्गी दौड़ा-दौड़ा मिसेज़ स्टोक्स के पास आया। उन्होंने सब हाल सुना। अपना बेग उठाया। उसमें दो मोम साहब डाल लिए। सुशील को भी साथ ले लिया और घटना-स्थल पर पहुँच गईं। बात कुछ नहीं थी, दोनों को एक-एक मोम साहब मिल गया। दोनों नाचने लगे, सुशील इस न्याय को देख कर दङ्ग रह गया।

इतने में दुःखू की स्त्री इधर आई, उसकी गोद में बच्चा था। दोनों के कपड़े स्याह हो रहे थे। मिसेज़ स्टोक्स ने भौहें टेढ़ी कीं। उसने कहा—"मेम साहब, गरीब आदमी हैं, पैसे पास नहीं, पेट ही नहीं भरता, साबुन कहाँ से लाएँ। मि० स्टोक्स ने बेग से 'सनलाइट' की एक टिक्की निकाल कर

पकड़ा दी। सुशील के मुँह से निकल पड़ा ! धन्य—धन्य ! इतने में बुध्दू भङ्गी का भाई दौड़ा दौड़ा आया। कहने लगा, "मेमसाहब मेरा लड़का सख्त बीमार है, ज़रा चलिए, नहीं तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा।" मि० स्टोक्स फ़ौरन चल दीं, सुशील पीछे-पीछे गया। वहाँ पहुँच कर देखा तो लड़के को बुख़ार था। उसे दवा दे दी गई, और दूध पिलाने को कहा गया। ग़रीब के पास दूध नहीं था। मि० स्टोक्स ने कहा—बँगले से ले आना।

एक दिन शकूरपुर में डिप्टीकमिश्नर का पड़ाव पड़ा। वह हिरन के शिकार को आए। बेगार की ज़रूरत पड़ी। उन्होंने जेलदार को हुक्म दिया कि बेगार भेजो। उसने नम्बरदार को आज्ञा दी, अब चमारों की शामत आई। वह दौड़े-दौड़े स्टोक्स साहब के पास आए। स्टोक्स साहब ने नम्बरदार को फटकार दिया। फिर किसी की हिम्मत नहीं पड़ी, उन्हें बेगार में जोते।

सुशील को अब ज्ञान हुआ कि प्रो० स्टोक्स क्यों प्रातः स्मरणीय हैं, वह उनका क्यों प्रातः स्मरण करता है। तीन मास का सुखमय समय योंही कट गया। कॉलेज खुलने में पाँच दिन और थे। लिली का स्कूल आज खुल गया। आज वह अपनी बहिन के साथ चली गई। वहाँ के सुखमय जीवन में सब से बड़ा सुख था लिली का प्रेममय सम्भाषण। जब से वह गई, मिशन-हाउस बिलकुल शुष्क हो

गया। लाख चेष्टा करके रह गया, उसका दिल लगा ही नहीं। आखिर वह दो-चार दिन पहले ही दिल्ली पहुँच गया। होस्टल में जा रहा। हाँ, शाम को मेरी स्कूल ज़रूर जाता था।
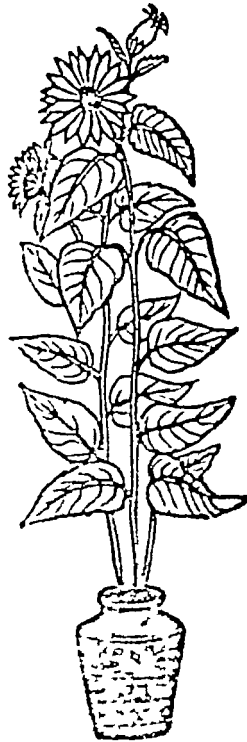
गुलशन

लाला कूड़ेमल ने ब्याह तो किया, लेकिन सन्तान उत्पन्न करने के बिलकुल योग्य न थे। विवाह को अभी ९ महीने भी नहीं हुए थे, शान्ता ने शुभमुहूर्त्त में पुत्र प्रसव किया। पुत्र का नाम ही प्यारा है, इससे सबको हर्ष होता है। जब शान्ता का पेट भारी पड़ा, वह फूले न समाए थे। पौरुष के अभिमान से आप ही अकड़ उठे थे। परन्तु जब बच्चा इतनी जल्दी हो गया, उनका माथा ठनका। हिसाब लगाया, अभी नौ महीने में नौ दिन कम ही थे। उनके दुर्बल शरीर में भी एकाएक ख़ून चलने लगा। आत्म-ग्लानि से उनका अङ्ग-अङ्ग जलने लगा। वह सिर पटक कर रह गए।

अब उन्हें शान्ता की सूरत से घृणा हो गई। आज ही उसको घर से बाहर करने को तैयार हुए, लेकिन पाँच सौ रुपए अनाथाश्रम में जमा थे, तीन साल के लिए ज़मानत

रक्खे गए थे, अभी साल भर भी नहीं बीता था। निकाल देते, तो वह भी जाते रहते। उस समय शान्ता सूतिकागृह में थी। दाई बुला ली गई थी। वह उसकी सेवा मे व्यस्त थी। कूड़ेमल ने उधर झाँका तक नहीं। पुत्र का मुँह देखने की तनिक भी उत्कण्ठा नहीं थी। यहाँ उनके स्वजन नहीं थे। किसी को इस लीला का ज्ञान तक नहीं था। चुपचाप मामला रफ़ा-दफ़ा करना ही अच्छा था। पाँच सौ रुपए कम नहीं होते, उन्हें शान्ता की चिन्ता नहीं थी, बच्चे की चिन्ता नहीं थी, बस चिन्ता थी पाँच सौ रुपए की।

बड़ी मुश्किल से दस दिन काटे। ज्योंही शान्ता चलने-फिरने लायक़ हुई, दिल्ली चलने को कहा। उसकी इच्छा थी, अधिष्ठाता को उसकी पाप-कथा कहे। अपने रुपए वापस ले। फिर वह जहाँ चाहे जाय, उसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं। सोच-विचार कर कूड़ेमल ने यही रास्ता निकाला था, यही उपाय उत्तम था।

आज बच्चे का दसवाँ दिन था। घर में संग्राम मच गया। जो बनिया पत्नी का क्रीत-दास था, उसकी आज्ञा के आगे सिर नहीं उठा सकता था, दिन-रात तलवे सुहलाता था, आज अकड़ा हुआ था, बढ़-बढ़ कर बातें कर रहा था। बात बढ़ गई, उसने एक लकड़ी जड़ दी। दाई बीच में पड़ गई, नहीं तो ख़ून हो जाता। शान्ता को कूड़ेमल से प्रेम ही कितना था? वह तो उसे छोड़ने को सदा उद्यत थी। उसे

मन के अनुसार मनुष्य ही कहाँ मिला था ? नहीं तो कब की चल देती। बनिए का सर्वस्व लूट ले जाती।

हाँ, तो दोनों दिल्ली चले। शान्ता का बच्चा गोद में था। शान्ता ने कूड़ेमल को साफ कह दिया था, मैं सब स्वीकार कर चुकी हूँ, मैंने तुम्हें धोखा देना नहीं चाहा था। मैंने उसी दिन पत्र द्वारा अधिष्ठाता को यह घटना सूचित कर दी थी। उनका वहाँ परिचित ही कौन था ? शर्मा होटल में एक कमरा लिया गया, यह भी शान्ता का ही उपदेश था। उसने कहा—"पहले तुम जाओ, वह रुपए दे देंगे, न दिए तो मैं चलने को तैयार हूँ।" कूड़ेमल पूरा बुद्धू था, शान्ता उसे बेच सकती थी। वह उधर गया, शान्ता ने चट ताला लगाया और निकल पड़ी।

कूड़ेमल को देखते ही अधिष्ठाता के तो होश उड़ गए। उसने पहले तो उसे फटकार दिया, पर कूड़ेमल हर तरह तैयार था। उसने गुल मचाना शुरू किया। अधिष्ठाता डर गया, नियम का क्या है, कहीं लेने के देने न पड़ जायँ, बस चेक काट कर दे दिया। बनिया ख़ुशी-ख़ुशी लौट आया। यहाँ शान्ता चम्पत। बला योंही टल गई। उसके हर्ष का पारावार न रहा। उसी दिन मथुरा लौट गया।

इधर शान्ता होटल से निकल तो पड़ी, किन्तु अब जाय कहाँ ? इतने में उसने सोचा, विद्यालय के मैनेजर के घर चलूँ। वह उसका घर जानती थी। बस पहुँच गई। किवाड़

बन्द थे, भीतर रङ्ग जम रहा था। एक पन्द्रह साल की बालिका के सर्वनाश की तैयारियाँ थीं। किवाड़ कितना पीटा, नहीं खुले। १५ मिनट बाद लड़की हटा दी गई, फिर पट खुले। मैनेजर स्वयं आया था, वह शान्ता को देखते ही काँप उठा। वह रोज़ ताज़ा माल खाता था, शान्ता चुस चुकी थी, उसने साफ़ जवाब दिया, मैं तुम्हें नहीं जानता, निकल यहाँ से? वह कुछ कहना ही चाहती थी कि धक्का दे दिया, किवाड़ बन्द कर लिए।

शान्ता की आँखों का परदा हट गया, उसको स्वयं अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। यह वही मैनेजर है, जिसने मुझे सब्ज़ बाग़ दिखलाए थे, जिसका पाप उसकी गोद में अब भी विद्यमान था। उसने कहा, मेरा कौन है? आश्रम धक्के देगा। जब मैंने पत्र दिया था, अधिष्ठाता ने कैसा मुँह बनाया था। अब वह नाक की सीध में चल दी, उद्देश्य-हीन भटकने लगी। थोड़ी दूर पर एक वालण्टियर मिला। वह रोजमर्रा के अभ्यस्त होते हैं, शकल से सब ताड़ लेते हैं।

दो-चार प्रश्न किए, बस सारा रहस्य खुल गया। उसने अपने आश्रम के गीत गाने शुरू किए। वहीं ताँगा लिया, उसे बैठाया और थोड़ी देर में विधवा-आश्रम आगया। उसे छोड़ गया, अपना कमीशन ले गया।

शान्ता जब विधवाश्रम में आई, वहाँ बहुत सी विधवाएँ थीं। सब इसी तरह पकड़ी गई थीं। वहाँ सब प्रकार का

आराम था। शान्ता सुन्दरी थी, अभी १७ की भी नहीं थी; इससे उसका विशेष सत्कार होता था।

विधवाश्रम के पीछे एक मुसलमान युवक था। शान्ता की कोठरी ठीक उसके कमरे के सामने थी। वह घण्टों वहाँ से ताका करता। एक दिन दोनों की आँखें लड़ गईं। शान्ता यौवन की प्यासी थी। वासना बहुत दिनों सुषुप्ति दशा में थी। बस आग भड़क उठी। इधर शान्ता का ब्याह पक्का हो गया था। एक ४५ वर्ष का अधेड़ था। आश्रम उससे एक हज़ार माँगता था। बड़ी कठिनता से ८०० में सौदा पक्का हुआ। यहाँ उमर के लिहाज़ से क़ीमत बढ़ती-चढ़ती थी। शान्ता का रूप और यौवन बस ८०० में! कल को वह फिर काल के गाल में चली जायगी।

बस क्या था, शान्ता ने एक चिट्ठी लिखी। नीचे गली थी, उसमें फेंक दी। युवक ने उठा ली। आज रात को भागने का उल्लेख था। अन्धे को दो आँखें। युवक तो यही चाहता था। वह शान्ता पर मरता था।

रात के ७ बजे थे, उस दिन कम्पनी बाग़ में एक सभा थी, सारा आश्रम वहीं था। दस-पाँच विधवाएँ रह गई थीं। अधिकारी भी नहीं थे। द्वार पर एक द्वारपाल ही था। शान्ता गोद में बच्चा लिए गई। द्वारपाल से कहा, जमुना बुलाती है। जमुना की कोठरी ऊपर थी। उससे उसका लाग था। वह उधर गया, यह इधर गायब। सुबह इस घटना का

पता चला। बड़ी खोज हुई। पुलिस में रिपोर्ट की गई। चारों ओर आदमी दौड़ा दिए गए। बड़े-बड़े इनाम बोले गए, पर कुछ पता नहीं चला। भावी दुलहे ने ८०० धरवा लिए। इतना भारी दान मारा गया। तभी ऐसे आश्रम नहीं चलते।

मुसलमान युवक एक दफ्तर में नौकर था। उसने शान्ता पर बुरका डाल दिया। रायसीने ले गया। एक क्वार्टर में दोनों रहने लगे। उसने बहुत कहा कि मुसलमान हो जा, पर वह नहीं हुई। उसने उसका फर्जी नाम गुलशन रख लिया। सबको कह दिया कि वह उसकी व्याहता है।

इसी तरह चार वर्ष गुज़र गए। वह एक और स्त्री पर आशिक़ हो गया। एक दिन उसे मेले में छोड़ दिया, वहीं बच्चा भी खो गया। तब से वह भीख माँगती थी, अपने को गुलशन बतलाती थी। पर रूप को लेकर भीख माँगना भी मुश्किल है।

ईसाई

ब सुशील और लिली दोनों एक दूसरे पर तन-मन न्योछावर कर चुके थे। महीने दो महीने नहीं, पूरे पाँच साल। सहस्रों बार सम्मिलन, घण्टों घुल-घुल कर बातें, बात-बात मे प्रेम की दुहाई। क्षण भर का वियोग असह्य हो जाता था। उस समय सुशील एम० ए० में पढ़ता था, लिली अभी एफ़० ए० में थी। दिल्ली में लड़कियों का पृथक् ईसाई कॉलेज नहीं था। हिन्दू-कॉलेज से उन्हे घृणा थी। इसलिए लिली भी वहीं थी। मिशन कॉलेज में पढ़ती थी और प्रो० स्टोक्स के साथ रहती थी। सुशील का प्रेम यहाँ खूब पल्लवित हुआ। अब उसके प्रेम का रुख

बदला, उसका दिल हिल उठा। शान्ता वहाँ नहीं रह सकी, वहाँ लिली का अखण्ड राज्य होगया।

प्रो० स्टोक्स भद्र अवश्य थे, उनकी सेवाएँ स्तुत्य अवश्य थीं, पर तह में गहरा स्वार्थ था। वह हिन्दुस्तान के भक्त नहीं थे, ईसाइयत के भक्त थे। उसी के दीवाने थे। उसी के लिए सब कुछ करते थे। उन्होंने जाटनी से शादी की। उसे पढ़ाया, मेम साहब बनाया, यह इसलिए कि गँवारों में मिल जाय, स्त्री के द्वारा। मिशन का अच्छा प्रचार हो। पुत्र-पुत्री से स्नेह किसे नहीं होता? प्रो० स्टोक्स को भी अपनी सन्तान से प्रेम था, परन्तु वह एक सोने की चिड़िया थी, जिस पर सैकड़ों मूर्ख टूटते थे, सैकड़ों उल्लू फँसते थे। कॉलेज के कितने ही छात्र मिशन का चर्च देख लेते थे, यह इन्हीं युगल मूर्तियों की कृपा थी। वे इन्हीं पर लट्टू थे, मनसा-वाचा ईसाई हो गए थे, बस बपतिस्मा लेना बाक़ी था। दस-पाँच तो ईसाइयत की दीक्षा तक ले चुके थे। प्रो०साहब इनकी मूर्खताओं पर मन ही मन हँसते थे। उनके लड़कियों की क़ीमत बहुत थी, जो किसी तरह क़ाबू न आए, धाग्मसूल हो, जो पूरा जितेन्द्रिय हो, ये अप्सराएँ उसी के डिगाने के लिए थीं, उसी का तप भ्रष्ट करने को थीं।

सुशील को प्रोफ़ेसर साहब की शरण में आए पाँच साल से अधिक हो गए, वह बड़े चिन्तित थे। वह अब तक ईसाई नहीं बना। सहस्रों उपदेशों का उस पर कोई असर

नहीं हुआ, बाइबिल पढ़ाने का कोई परिणाम नहीं हुआ, हिन्दू-धर्म पर उसकी अब भी अटल श्रद्धा थी। प्रोफेसर साहब को इसका अभिमान था, उन्होंने ईसाई बनने को किसी को नहीं कहा। उन्होंने सबकी सेवा की, सब उनके भक्त स्वयं हो गए। आप चर्च में आ गए। सुशील उनका भक्त था, कदाचित् सबसे अधिक सम्मान करता था, ईसाइयत को अच्छा समझता था, उसके कामों की प्रशंसा करता था, पर स्वयं हिन्दू था। उन्होंने कई बार लिली से सुना था कि वह हिन्दू-धर्म की कड़ी आलोचना करता है, फिर भी क्या रहस्य है कि अब तक वह हिन्दू है।

हिन्दू-धर्म की एकनिष्ठा ने उसे प्रो० स्टोक्स के हृदय में बिठा दिया, लिली को अपना बना दिया, सारे परिवार के सिर पर चढ़ा दिया। लिली प्रो० स्टोक्स की सर्वोत्तम हथियार थी, उन्होंने उसका प्रयोग ही अच्छा समझा, इसीलिए सुशील के लिए उनका घर सदा खुला था, जब चाहे आए, जब चाहे जिससे मिले। इससे उनका नियम नहीं टूटता, सुशील को ईसाई बनाने के लिए खुल्लम-खुल्ला नहीं कहना पड़ता।

अब सुशील लड़का नहीं था, पच्चीस साल का हट्टा-कट्टा युवक था और लिली अट्ठारह की युवती। इस उम्र में एकान्त स्थान में बैठ कर प्रेम की मीमांसा ? कोर्टशिप चाहे कितना ही अच्छा हो, ईसाइयों में इसका कितना ही

प्रचार क्यों न हो, इसका परिणाम वहुधा भयङ्कर होता है, इसी लिए हिन्दुओं में इसकी निन्दा है। शान्ता ने सुशील के हृदय में सब से प्रथम प्रेम-बीज बोया था। जब उसके देखते-देखते शान्ता को बुरी तरह बेचा गया तभी उसकी प्रतिज्ञा थी कि वह आजन्म अविवाहित रहेगा, प्रेम के झञ्झट में नहीं पड़ेगा। लेकिन हुआ क्या? लिली मिली, वह बड़े बाप की बेटी अवश्य थी, सुशील उसके सामने आदमी अवश्य बना था, फिर भी काल ने दोनों को एक कर दिया था, बेरोक मिलन ने दोनों का तन-मन बिलकुल मिला दिया था। हाँ, विवाह के प्रश्न पर दोनों ने घण्टों विवाद किया है, फिर कोई समझौता नहीं हो सका, वह ईसाई बनना नहीं चाहता और बिना ईसाई के विवाह सम्भव नहीं।

उस दिन शनिवार था। सुशील और लिली साइकिल पर मिशन हाउस जा रहे थे। सुशील की दृष्टि एक भिखारिन पर पड़ी। वह पैसा माँगती थी। लिली ने चलते-चलते एकन्नी फेंक दी। परन्तु सुशील के साइकिल की गति जरा धीमी पड़ी। वह भिखारिन की तरफ गौर से देख रहा था। यह आकृति परिचित थी। उसने उसका परिचय चाहा। इस पर उसने बक-झक शुरू किया। इतने में लिली भी वहाँ आ गई। वहीं खड़ी हो गई। फिर भी सुशील नहीं माना, उससे नाम पूछा। बड़ी रुखाई से उसने उत्तर दिया—

"गुलशन।"

"गुलशन ?" उसने चौंक कर कहा—"तुम तो मुझे हिन्दू मालूम देती हो ?"

"आप रास्ते चलते भिखारिन को क्यों तङ्ग करते हैं"—भिखारिन ने क्रोध से कहा।

सुशील ने कहा—तुम मुझे अपना मित्र समझो, शत्रु नहीं, मुझसे तुम्हारा बुरा न होगा।

अब ज़रा वह नरम पड़ी। अपनी दुख-भरी कहानी का सार कह सुनाया।

"तुम सुशील को पहचानती हो ?"

"ऐं ! सुशील ?"

"हाँ, सुशील मैं ही हूँ।"

इतने में वह पैरों पर गिर पड़ी। "तुम ईसाइन के साथ यह क्या × × ×"

फिर उसने कहा, पीछे सब पता लग जायगा। लिली अब तक कुछ न समझ सकी। उसके सामने बाइस वर्ष की एक भिखारिन खड़ी थी। चिन्ता के मारे चेहरा पीला पड़ रहा था, फिर भी सुन्दरता नष्ट नहीं हुई थी। अब सुशील ने ताँगे वाले को आवाज़ दी। भिखारिन बैठती ही नहीं थी, रोती थी, पैरों पड़ती थी। सुशील नहीं माना, हाथ पकड़ कर बैठा ही तो दिया। ताँगा आगे-आगे चला, दोनो साइकिल पीछे-पीछे। मार्ग में कोई नही बोला, थोड़ी देर में मिशन हाउस आ गया।

शान्ता भी वहाँ रहने लगी। फिर वही बात, 'वही व्यवहार! कौन कहता है सुशील हिन्दू था, बपतिस्मा नहीं लिया तो क्या? प्रो० स्टोक्स ने उसके रग-रग में ईसाई-मत भर दिया था, लाख अपने को हिन्दू कहे, लिली तो हिन्दू नहीं थी।
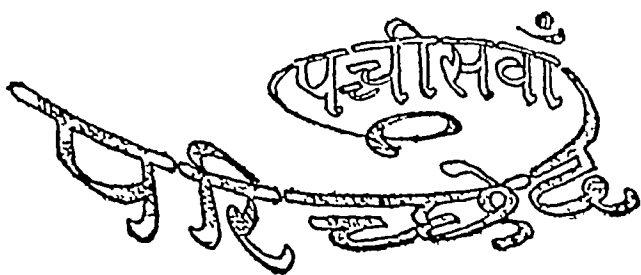
सेवाश्रम

ब तक प्रो० स्टोक्स का प्रतिद्वन्दी कोई नहीं था, वर्षों उन्होंने प्रचार किया, अब आर्यसमाज की आँखें खुलीं। दिल्ली के प्रत्येक जलसे में कूद-कूद कर इस दुर्दशा का ख़ाका खींचा जाने लगा। गाँव के गाँव विधर्मी हो गए, वहाँ जाना चाहिए, प्रचार करना चाहिए। एक उपदेशक पहुँचे, ठीक मिशन हाउस के सामने धुआँधार वक्तृता झाड़ी। एक बार एक और विद्वान गए। प्रो० स्टोक्स को खुल्लम-खुल्ला चैलेञ्ज दिया। पादरी से उत्तर देते नहीं बना, ख़ूब तालियाँ पिटीं। हिन्दू-धर्म के जयजयकारों से मिशन-हाउस गूँज उठा, पर दूसरे दिन सब गायब। व्याख्यान देने आए थे, प्रचार कर गए, चल दिए। कोई मोटर पर, कोई ताँगे पर और कोई पैदल।

लेकिन प्रोफेसर साहब से डरता था। फिर भी युवक को
वह नहीं छोड़ सकता। वह उसे उस दिन न बचाता तो
प्रो० साहब कैसे पालते ? हाँ, तो वह गया, शान्ता के साथ
सेवाश्रम मे रहने लगा। कभी-कभी लिली भी आ जाती।
प्रोफेसर साहब अब खीझ गए थे, उन्होंने साफ कह दिया
था, सेवाश्रम कभी नहीं जाना होगा।

लिली चाहे सुशील को लाख भुलाने की चेष्टा करे, उस
पर कितना ही क्रोध करे, उसके विना उसे कल नहीं पड़
सकती। उसे इस लोक में क्या, परलोक में भी नहीं भुला
सकती। शरीर पिता का था तो मन सुशील के अर्पण कर
चुकी थी। इसलिए उसे पिता के आज्ञा की परवा नहीं थी।
सुशील ने उसे जीवन दिया था, प्रेम दिया था। शारीरिक
सम्बन्ध चाहे न हो, आध्यात्मिक सम्बन्ध निश्चय था। वह
शान्ता से चिढ़ती थी, सुशील पर कोप करती थी। वह भी
इसलिए कि वह उसका था, उसे उस पर कोप करने का
अधिकार था।

सुशील जब सेवाश्रम मे था, बड़े दिन की छुट्टियाँ थीं,
वह १० दिन सेवाश्रम में रहा। जब कॉलेज खुला, प्रोफ़ेसर
स्टोक्स ने उसे सब कहा। आज उन्होंने सब साफ़-साफ़ कह
दिया। सुशील ने कहा कि सोचने का समय दीजिए। अब
दिन-रात वह सोचता था, लिली या शान्ता ?

शुद्धि

वाश्रम में अब अकेला युवक नहीं रहा, वहाँ एक मण्डली बन गई। दस-पाँच नवयुवक चौबीसों घण्टे वहीं पड़े रहते। घूम-घूम कर सबकी सेवा करते, हिन्दू-धर्म का सन्देश सुनाते प्रोफेसर स्टोक्स का मिशन हाउस तीन-तेरह होगया। गिरजे में उल्लू बोलने लगे। उन्होंने सेवा से अपना मिशन फैलाया था, यहाँ उससे भी अधिक सेवा करने वाले विद्यमान थे। अब उन्होंने दूसरी चाल चली। अधिकारियों को सारे हालात लिखे। बतलाया कि यह सेवाश्रम बदमाशों का अड्डा है। स्त्रियों को भगाना, बच्चों को उड़ाना यहाँ का प्रधान व्यवसाय है। साथ ही यह बोलशेविकों का अड्डा है। यहाँ बम बनते हैं, गोले तैयार होते हैं। बृटिश गवर्नमेण्ट को समूल नाश करने की तैयारी है।

एक दिन पुलिस ने छापा मारा, 'इण्डिया एण्ड चायना' पुस्तक मिली। कुछ बम बनाने का सामान भी बरामद हुआ। फिर क्या था, स्पेशल मैजिस्ट्रेट बिठाया गया। मुकद्मा चला, धड़ाधड़ पेशी होने लगी। फ़ैसला सुना दिया गया। युवक को कालापानी, बाक़ी सबको कई-कई वर्ष की कठोर क़ैद।

सुशील सैकड़ों बार वहाँ गया था, आज तक बम नहीं देखा। उसे युवक पर विश्वास था। उन दिनों समाचार-पत्रों में प्रो० स्टोक्स के विरुद्ध लेख पर लेख निकल रहे थे। गवर्नमेण्ट के अद्भुत न्याय की आलोचना हो रही थी। उसी उपलक्ष में उस दिन कम्पनी बाग में एक सभा की गई। प्रो० सुशील भी पधारे। शान्ता भी आई। मिस लिली भी लुक-छिप कर पहुँच गई थी। उसे पता था सुशील वहाँ पहुँचेगा। प्रोफेसर सुशील ने सभापति को एक चिट भेजी। थोड़ी देर में उनका नाम लिया गया। वह मञ्च पर चढ़ आए।

उन्होंने अपनी राम कहानी सुनाते हुए कहा—"सज्जनो! मैं प्रो० स्टोक्स का शिष्य हूँ, उन्होंने मुझे पुत्र की तरह पाला है, उनकी कृपा से आज मैं एम० ए० हुआ। वह बहुत चाहते थे, मैं ईसाई हो जाऊँ, इसी शर्त पर वह अपनी लड़की मिस लिली का व्याह भी मुझसे कर रहे थे। मैं निस्सङ्कोच कहता हूँ कि मिस लिली को मैं प्यार करता हूँ। मैं उसके लिए प्राण तक दे सकता हूँ, लेकिन यहाँ धर्म का प्रश्न है। मैं धर्म को संसार

की प्यारी से प्यारी चीज़ से भी अच्छा समझता हूँ। (तालियाँ) मुझे लोग यही जानते हैं, मैं ईसाई हूँ, लेकिन आप सुन कर प्रसन्न होंगे, मैं अब तक ईसाई नहीं हुआ। (देर तक हर्ष-ध्वनि)

एक सज्जन—आपके सिर पर चोटी कहाँ है?

हाँ, आपने ठीक कहा, मैंने चोटी कटा दी है, मैं इसके लिए प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ। परन्तु आप विश्वास रक्खें, मैंने बपतिस्मा नहीं लिया। (फिर हर्ष-ध्वनि)

वह प्रायश्चित्त क्या होगा, इस पर मैं पण्डितों की व्यवस्था नहीं चाहता। जिन महानुभाव को मेरे परम हितैषी प्रो० स्टोक्स की कृपा से कालापानी भेज दिया गया है, वह मेरे धर्म-पिता हैं। उन्होंने मेरी प्राण-रक्षा की थी। उन्होंने हिन्दू-धर्म की कितनी सेवाएँ कीं, यह बहुत कम लोग जानते हैं। मेरा हृदय उनके स्मरण से गद्‌गद हो रहा है, इसलिए उनके वर्णन के लिए यह उपयुक्त अवसर ही नहीं है। आगे उन्होंने शान्ता का क़िस्सा कहा। लोगों ने अनाथाश्रम और विधवाश्रम पर थू-थू किया। चारों ओर से 'शेम-शेम' की आवाज़ आने लगी।

फिर उन्होंने कहा—"मुझे मेरे पिता ने प्रायश्चित्त बतलाया है, वह है शान्ता का ग्रहण।" (तालियाँ) 'सेवाश्रम' के लिए अपील करते हुए उन्होंने व्याख्यान समाप्त किया।

इतने में एक नवयुवती भीड़ से निकल कर आई और

स्टेज पर कूद पड़ी। उसने कहा—"मैं शुद्ध होने को तैयार हूँ, क्या आप मेरा ग्रहण करने को तैयार न होंगे?" सभा में हाहाकार मच गया। यही अभागी लिली थी। इतने में एक और स्त्री मञ्च पर आई। उसने कहा—"मैं वही शान्ता हूँ, जिसकी कथा आप सुन चुके हैं, मैं विवाहित हूँ, पुनर्विवाह हर्गिज़ नहीं करना चाहती। मैं मिस लिली का स्थान नहीं छीनना चाहती, प्रो० सुशील सहर्ष उन्हें ग्रहण करें।"

फिर कोलाहल मच गया, उसी दिन शुद्धि हो गई। प्रो० सुशील के सिर पर चोटी रक्खी गई। गुलशन का नाम फिर शान्ता पड़ा और लिली का पूरा संस्कार हुआ, नाम पड़ा कमला।

लोग एक-एक कर चलने लगे। सुशील अभी ताँगे की प्रतीक्षा में थे, उसी समय प्रो० स्टोक्स मोटर पर आ धमके। क्रोध से पागल हो रहे थे, जेब में भरी पिस्तौल थी। बस लिली को लक्ष्य कर गोली दाग़ दी। शान्ता आगे आ गई, गोली उसकी छाती चीर कर निकल गई, देह से ख़ून का फ़व्वारा यह निकला। पुलिस आ गई, प्रो० साहब पकड़े गए, सुशील और लिली भी साथ गए।

विचार प्रारम्भ हुआ। प्रो० स्टोक्स का कुछ नहीं बिगड़ा, बस साल भर नज़रबन्द रहे। मिस लिली बालिग थी, फिर भी प्रो० सुशील पर उसके भगाने का अभियोग चला। दो साल का कठोर दण्ड हुआ, अब वह जेल में सड़ रहे हैं। हाँ,

मिस लिली फिर मिशन हाउस नहीं गई, वह सेवाश्रम में है। 'युवक' का काम सँभाल लिया है, फिर भी वह अकेली है।

सेवाश्रम खाली सा पड़ा है—धन नहीं, जन नहीं। प्रो० स्टोक्स का मिशन जोरों पर है। वहाँ अभी स्वयसेवकों की जरूरत है। जो धर्म का प्रेमी है, सेवा करना चाहता है, हमें लिखे, हम प्रो० स्टोक्स के आश्रम का पता बता देंगे।